CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

14455

सायणभाष्यसहिता

अथर्ववेदसंहिता

सैव

हिन्दीभाषानुवादसंवलिता

व्याख्याकारः सम्पादकश्च

पं॰ रामस्वरूपशर्मा गौडः

चौखम्बा विद्याभवन

वाराणसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

4455

श्री गणेशवर्णी दि० जैन संस्थान
नरिया, वाराणसी-५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला

१८

4455
श्री गणेशवर्णी दि० जैन संस्थान
नरिया, वाराणसी-५

सायणभाष्यसहिता

अथर्ववेदसंहिता

सैव

हिन्दीभाषानुवादसंवलिता

भाग ६

व्याख्याकारः सम्पादकश्च

पं० रामस्वरूपशर्मा गौडः

PHONE : (Shop) 320414 (Office) 333445
चौखम्भा संस्कृत भवन
CHAUKHAMBHA SANSKRIT BHAWAN
Post Box No. 1160
(Opp. Chitra Cinema)
Chowk, Varanasi-221 001

चौखम्बा विद्याभवन

वा रा ण सी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशक

चौखम्बा विद्याभवन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

चौक (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे)

पो० बा० नं० १०६९, वाराणसी २२१००१

दूरभाष : ६३०७६

Chaukhamba Vidyabhawan
CHOWK (Behind The Benares State Bank Building)
Post Box No. 1069
VARANASI - 221001
Telephone : 320404 Price : 20.00/-

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

के० ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन

पो० बा० नं० ११२९, वाराणसी २२१००१

दूरभाष : ५७२१४

*

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

३८ यू. ए., बंगलो रोड, जवाहरनगर

दिल्ली ११०००७

दूरभाष : २३६३९१

मुद्रक

श्रीजी मुद्रणालय

वाराणसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

THE
VIDYABHAWAN PRACHYAVIDYA GRANTHAMALA
18

4455
श्री गणेशवर्णी दि० जैन संस्थान
नरिया, वाराणसी-५

ATHARVA-VEDA-SAṀHITĀ

Along with

SĀYAṆABHĀṢYA

Volume 6

Edited with Hindi Translation

By
Pt. Ramswaroop Sharma Gaud

CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
VARANASI

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

© CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
(*Oriental Publishers & Distributors*)
CHOWK (Behind The Benares State Bank Building)
Post Box No. 1069
VARANASI 221001
Telephone : *63076*

Also can be had of
CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
K. 37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1129
VARANASI 221001
Telephone : 57214

*

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
38 U. A. Bungalow Road, Jawaharnagar
Post Box No. 2113
DELHI 110007
Telephone : 236391

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५४५५

❀ श्रीहरिः ❀

❀ सभाष्य अथर्ववेदकी विषयसूची ❀

श्री गणेशवर्णी दि० जै० संस्थान नरिया, वाराणसी-५

विषय पृष्ठ

❀ द्वादश-काण्ड ❀

प्रथम अनुवाक-

प्रथमसूक्त। इसमें प्रायः पृथिवीके प्राकृतिक दृश्यका वर्णन है। कुछ पौराणिक कथाओंको लक्षित करके वर्णन है। इसमें ऋषिने अनेक वार पृथिवीसे वरोंकी प्रार्थना की है। सम्प्रदायके अनुसार इसका विनियोग अनेक प्रकारसे होता है। इस अनुवाकका वास्तोष्पत्यगणमें पाठ हैं, इसका विनियोग ३। १२ में है। इसका आग्रहायणीकर्ममें, पुष्टिकर्ममें, कृषिकर्ममें, पुत्रधनादिसर्वप्राप्तिकर्ममें, व्रीहियव आदिकी प्राप्तिमें, हिरण्य मणि आदिकी प्राप्तिमें, ग्राम नगर आदिकी रक्षाके कर्ममें, भूकम्पके प्रायश्चित्तमें, सोमयज्ञमें और पार्थिवी महाशांतिमें प्रयोग किया जाता है। १

द्वितीय अनुवाक-

प्रथमसूक्त। यह सूक्त क्रव्याद् अग्निविषयक है। क्रव्याद् अग्निकी व्याख्या। क्रव्याद् अग्निकी भयंकरता, क्रव्यादग्निके उपासकोंका नाश। क्रव्याच्छमन। ३९

तृतीय अनुवाक-

प्रथमसूक्त। यह स्वर्गौदनविषयक है। स्वर्गौदनका माहात्म्य स्वर्गौदनसे मिलने वाले फल, स्वर्गौदनकी फलप्राप्तिका समय, स्वर्गौदनकी रीति। इसका सवयज्ञविधिमें विनियोग होता है। ६५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय पृष्ठ

चतुर्थ अनुवाक–

प्रथमसूक्त । यह वशाविषयक है । १००

पञ्चम अनुवाक–

प्रथम २ । ३ । ४ । ५ । ६ । ७ सूक्त–यहसूक्त ब्राह्मणकी गौसे संबन्ध रखता है। क्षत्रियको ब्राह्मणकी गौ नहीं छीननी चाहिये । ब्राह्मणकी गौको छीननेसे मिलने वाली आपत्तियें। सम्प्रदायके अनुसार इसका विनियोग ५ । १८ में है । १२१

❀ त्रयोदश काण्ड ❀

प्रथम अनुवाक–

प्रथम सूक्त । यह रोहित देवताका सूक्त है । उदय होते ही सूर्यदेवका नाम रोहित है । इसमें रोहितदेवताके साथ मरुत् इन्द्र अज एकपाद अग्नि सविता मित्रावरुण अग्नि और सूर्य देवता का भी आह्वान किया है और उनका वर्णन किया है । राजाके राष्ट्रका भरण इन सबका प्रयोजन है । याज्ञिक पुरुष इसका धनाभिलाषीके सूर्योपस्थान में, अर्थोत्थापनकामके उपस्थानमें, वस्त्राभिमन्त्रणमें, भगदड़की शान्तिके वस्त्राभिमन्त्रणमें प्रयोग करते हैं । १३८

द्वितीय अनुवाक–

प्रथम सूक्त । यह सविता देवताका सूक्त है । इसका सलिलगणमें पाठ होनेसे इसका विनियोग १ । ५ में है । तथा इसका उपनयनके आयुर्वृद्धिके उपस्थानमें और सौत्रामेधकी पित्र्येष्टिके सूर्योपस्थानमें विनियोग है । १६९

तृतीय अनुवाक–

यह सूक्त रोहित देवताका है । इसका आभिचारिक कर्ममें विनियोग होता है । १९१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय पृष्ठ

चतुर्थ अनुवाक–

१ । २ । ३ । ४ । ५ । ६ सूक्त । यह भी रोहितदेवता का सूक्त है । विनियोग–मालामें कहा है, कि–स्वर्गको चाहने वाला इसका जप करे । २१२

❀ चतुर्दश काण्ड ❀

प्रथम द्वितीय अनुवाक–

यह काण्ड विवाहपरक है । २२४

❀ पञ्चदश काण्ड ❀

प्रथम द्वितीय अनुवाक–

व्रात्यकी महिमा । २९३

❀ षोडश काण्ड ❀

प्रथम अनुवाक–

प्रथम सूक्त । इसमें शान्तिकर्मोंका विधान है । ३५१

द्वितीय सूक्त । इससे अभिचारकर्मकी समाप्तिमें अपना अभिमर्शन किया जाता है । उपनयनकर्ममें आयुष्काम इससे अपना अभिमन्त्रण करता है । चक्षु आदि इन्द्रियों की दृढ़ता चाहनेवाला वनमें जा इस सूक्तसे सर्वौषधियों को अभिमन्त्रित करके अनुलोम लेप करे । ३५४

तृतीय चतुर्थ सूक्त । इनसे बालक आयुकी वृद्धिके लिये उदय होते हुये सूर्यदेवका उपस्थान करे । ३५७

द्वितीय अनुवाक–

प्रथमसूक्त । दुःस्वप्नदर्शनकी शान्तिमें इसका विनियोग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय पृष्ठ

होता है। परम घोर दुःस्वप्नको देखने पर इस सूक्तसे मैश्रधान्य पुरोडाशकी आहुति दी जाती है। दुःस्वप्न दीखने पर इस सूक्तको जप कर दूसरी करवटसे सोजावे। स्वप्नमें अन्नको देख कर इस सूक्तका पाठ करे। ३६१

२। ३। ४। ५ सूक्त। इनका अभिचार कर्म में प्रयोग होता है। ३६४

❀ सप्तदशकाण्ड ❀

इसका सलिलगणमें पाठ है। उपनयन कर्म में ब्रह्मचारी के नाभिदेशका स्पर्श, ऋषिहस्तसे आचार्यके द्वारा उपनयनमें बालकका अभिमन्त्रण, आदित्योपस्थान, सूर्य वा चन्द्रग्रहणकी शान्ति, अपूपदान आदिमें इसका पाठ किया जाता है। ३८५

❀ अष्टादश काण्ड ❀

इस काण्डमें चार अनुवाक हैं। इस सारे काण्डका पितृमेधमें शवदाहमें अग्नि देनेके अनन्तर सात नौ वा ग्यारह आदि विषमसंख्यक ब्राह्मण पूर्वकी ओर मुख करके पाठ करें। तहाँ ही कर्ममें सारस्वतहोमके अनन्तर सब बान्धव इस काण्डसे प्रेतका उपस्थान करें।

प्रथम अनुवाक—

प्रथम द्वितीय तृतीय चतुर्थ सूक्त। यमयमीसम्वाद, यमयमीकी उत्पत्ति। इन सबका काण्डप्रयुक्त विनियोग है ४५१

पञ्चमसूक्त। पितृमेधकर्ममें अग्निदाता कनिष्ठ पुत्र "सरस्वतीं देवयन्तः" आदि तीन ऋचाओंसे घृतसे सारस्वत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय पृष्ठ

होमोंको करता है। तहाँ ही "उदीरिताम्" ऋचासे काम्पील-शाखासे चिह्न बनावे। पिण्डपितृयज्ञमें इस ऋचासे गड्हे को खोदे। ४६ वीं ऋचासे गड्हेमें कुशा बिछावे। और परेयिवांसम् आदि दो ऋचाओंसे याम्यहोमोंको करे। ५०४

छठा सूक्त। पिण्डपितृयज्ञमें "बर्हिषदः पितरः" ऋचासे कुशाओंको बिछावे तहाँही कर्ममें ५२ वीं ऋचासे कुशाओं पर तिल डाले जाते हैं। ५३ वीं से पितृमेधमें प्रेतकी अस्थियोंको छींके पर रक्खे। ५४ वीं ऋचासे प्रेतको उठा कर गाड़ीमें रखा जाता है। ५५ वींसे प्रेतदहन स्थानको काम्पीलशाखासे संप्रोक्षित किया जाता है। ५६ वीं और सत्तावनवींसे अग्निको प्रदीप्त किया जाता है। "अंगिरसो नः" आदि सात ऋचाओंसे प्रेतके शरीरमें घृतकी आहुति दीजाती है। साठवीं ऋचासे यमके लिये आहुति दीजाती है। "इत एतद्" आदि चार ऋचाओंसे प्रेतको उठा कर शकटमें रखा जाता है। ५१६

द्वितीय अनुवाक–

प्रथम सूक्त। इसका प्रेत शरीरके उपस्थान, अजबंधन, और अग्निप्रदीपनमें विनियोग होता है। ५३१

द्वितीय सूक्त। इसकी आठ ऋचाओंका प्रेतोपस्थानमें विनियोग है। इनसे प्रेतशरीरका अनुमन्त्रण होता है और इस सूक्तकी ऋचाओंसे अस्थियोंसे भरे हुए कलशको गाड़नेके स्थानमें लेजाना, मुमूर्षु यजमानको अग्निहोत्रशाला में बिछे हुए कुशाओं पर लिटाना, प्रेतके शरीरका गाड़ी से उतारना आदि कर्म किये जाते हैं। यममार्गके कुत्तोंका वर्णन ५४३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय पृष्ठ

तृतीय सूक्त। इससे कुशाओं पर तिल डालना आदि कर्म किये जाते हैं। पितरोंके डाँकू राक्षस आदि। पितरों से प्रार्थना। धेनुदानका माहात्म्य। ५५३

चतुर्थ सूक्त। इससे अग्निप्रदीपन आदि कर्म किये जाते हैं। यमकी प्रशंसा, अश्वावती नदी। अग्निसंस्कृत, अनग्निसंस्कृत, भूमिमें गाढ़े हुए आदि पितर। पुत्रोंके दिये हुए पिण्डोंसे पितरोंका स्वर्गमें आनन्द पाना। अग्नि का प्रेतको सुखपूर्वक भस्म करना, अधिक भस्म करनेके निषेधका कारण। ५६३

पञ्चम सूक्त। इसकी ऋचाओंका श्मशानके नाँपने, अनुमन्त्रण करने, प्रेतको उठा कर टिकटिकी आदिमें रखने श्मशानको चिनने आदिमें विनियोग होता है। अकाल मृत्युनिवारण की प्रार्थना। सन्तानरहित अद्वेष्टा पुरुषोंको श्रेष्ठ स्वर्गकी प्राप्ति। श्राद्धद्रव्य ही मृतपुरुषका जीवन है। ५७४

छठा सूक्त। इसकी ऋचाओंका प्रेतको वस्त्र उढ़ाने आदिमें विनियोग होता है। इष्टापूर्तके फलकी प्राप्ति। ५८२

तृतीय अनुवाक—

प्रथम सूक्त। प्रेतके साथ चितामें भार्याको बैठाना। सतीप्रथाका शिष्टानुमोदितत्व। सतीका माहात्म्य। सती न होकर पत्नीको प्रेतके पाससे उठाना। चौथे दिन अस्थियों का अवसेचन। इत्यादि ५९४

द्वितीयसूक्त। पिण्डपितृयज्ञमें कर्ताका हस्तप्रक्षालन। यमका प्रेतलोकको जाना। पितरोंका विसर्जन। जमदग्नि आदि शब्दोंका अर्थ। खाली घड़ेका फोड़ना। घृतसे पिंडों का अभिघारण। धूमादिमार्गसे चन्द्रलोककी प्राप्ति। ६०८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय पृष्ठ

तृतीय सूक्त। इसकी ऋचाका प्रेतोपस्थानमें विनियोग है। श्मशानचयनकर्ममें घृतकी आहुति। भूमिदानका माहात्म्य ६२४

चतुर्थ सूक्त। इसकी ऋचाओंका घृतहोम और अभिमन्त्रणमें विनियोग है। ६३६

पञ्चम सूक्त। इसकी ऋचाओंसे पिण्डपितृयज्ञमें समिधाओंका रखना कुशाओंका बिछाना और श्मशानदेशका चुनाव होता है, देवताओंका अमरत्व और मनुष्योंका मरणधर्मित्व, बृहस्पतिका देवपुरोहित होना और बृहस्पतिका मरण, अग्निका पितरोंको कव्य पहुँचाना, अग्निष्वात्ता और बर्हिषद् पितरोंका भेद और पृथिवीकी प्रार्थना। ६४५

छठा सूक्त। इसके मन्त्रोंसे शवदाहके अनन्तर स्नान, सर्प आदिके काटे हुए अंगका अग्निमें भस्म करना, और अस्थियोंका सिञ्चन होता है। प्रेतके कुलकी स्त्रियोंके लिये अवैधव्य आदिकी प्रार्थना, सपिण्डीकरण, दाहको शान्त करने वाली औषधियें। ६५८

सप्तम सूक्त। इसके मन्त्रोंसे गोत्र वालोंके द्वारा प्रेतका उपस्थान, चौथे दिनकी आहुति, हुतशेषका प्राशन, स्वस्त्ययनार्थ जप, अस्थियों पर खीलें डालना, अस्थियोंका वृक्षसे उठाना, प्रेतशरीरमें अग्निप्रदीपन, मधु घृतसे चरुका अभिमन्त्रण और पिंडों पर घृतधारा पातन कर्म होते हैं। अभय और पुष्टिकी प्रार्थना, यमकी महिमा, अग्निकी महिमा प्रेतका वरुणदूतत्व और कुम्भदान। ६६९

चतुर्थ अनुवाक—

प्रथम सूक्त। इसकी ऋचाओंसे आहिताग्नि प्रेतका उपस्थान, विदेशमें मरे हुए अहिताग्निकी दोनों अर-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय पृष्ठ

णियोंका अग्निमें प्रतापन और प्रेतके अंगों पर रखे जाने वाले यज्ञपात्रोंका अनुमन्त्रण किया जाता है। सब कर्म अग्निसाध्य हैं, देवयान और पितृयान, आहिताग्निकी गति अंगिरा गोत्र वालोंका यज्ञसे स्वर्गको जाना, जुहू उपभृत् और ध्रुवा नामक यज्ञपात्रोंकी व्याख्या, योगभ्रष्टकी गति, स्रुचको बछड़ा कहनेका कारण, अग्निका प्रेतको स्वर्गमें लेजाना। पृष्टिरथका अर्थ। अग्निके सुखप्रद और असुख-प्रद शरीर। ६८२

द्वितीय सूक्त। इसके मन्त्रोंसे अग्निका उपस्थान चितामें चित्त पड़े हुए प्रेतका अनुमन्त्रण और चरुस्थापन कर्म होते हैं। पितृमेधयज्ञसे स्वर्ग प्राप्ति, प्रेतके ऋत्विज। ७०१

तृतीय सूक्त। इसके मन्त्रोंसे चरुओंका अभिमन्त्रण, अग्निष्टोम आदिमें वैप्रुषहोम और अस्थियोंका अवसिञ्चन होता है। सोमस्तुति। ७१२

चतुर्थ सूक्त। इसकी ऋचाओंसे प्रेतको ढकने वाले वस्त्र का अभिमन्त्रण, तिलमिश्रित खीलोंका देना, स्थालीपाककी आहुति, अस्थियोंका आप्लावन, गड़हेमें रखी हुई अस्थियों का अवलोकन, जलती हुई लकड़ीका धूलमें फेंकना, पिंड-पितृयज्ञमें पिण्डप्रदानके अनन्तर आचमन और अग्निका अवसेचन होता है। खीलें देनेका परिणाम, स्थालीपाकसे पितरोंकी तृप्ति, कुम्भकी प्रेत भूत आदिके द्वारा उपासना। आचमनसे मातृकुल और पितृकुलके पितरोंकी तृप्ति। ७२२

पञ्चमसूक्त। इसकी ऋचाओंसे समिधाओंका आधान, तिलमिश्रित खीलोंका बखेरना, भस्म करनेके लिये प्रेतको उठा कर शकटमें रखना, सारस्वतहोम, चरुस्थालीका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय पृष्ठ

लीपना, चौथे दिन दक्षिणाकी गौका अभिमन्त्रण और प्रेतवाहन वृषभोंका अनुमन्त्रण होता है। प्रेतको तृप्त करनेके लिये सक्तुमन्थप्रदान, टिकटिकी, सरस्वती प्रार्थना, प्रेतको लेजाने वाले वृषभोंकी निन्दा। ७३३

छठा सूक्त। इसकी ऋचाओंसे चिताकाष्ठों पर कुशाको बिछाना, चिता पर प्रेतको चित्त लिटाना, श्मशानचयन-कर्ममें गड़हेमें कुशाओंका बिछाना, अस्थियोंका रखना चरुओंका पलाशपत्रोंसे ढकना, चरु और पात्रोंको पाषाण वा ईंटोंसे ढकना, चिने हुए श्मशानस्थलको कूटना, सुवर्ण का अभिघारण, मधुसहित घृतका अस्थियोंके समीपमें स्थापन, पिण्डपितृयज्ञमें पिण्डोंका घृतसे अभिघारण आदि होता है। प्रेतगृहका उन्नत बनाना, सुवर्णके अभिघारण का अर्थ, सोम और प्रेताग्निकी स्तुति ७४४

सप्तमसूक्त। इसकी ऋचाओंसे पिण्डोपस्थानके अनन्तर उत्तरपरिषेक, पिण्डदानके लिये बिछी हुई कुशाओं पर तिल डालना, पितरोंका विसर्जन, सांयवन तण्डुलोंका हवन, सर्वप्रणीत अग्निका प्रत्यानयन, श्मशानदेशका चयन, कुशा बिछाना, शवदाहके अनन्तर स्नान, पितृमेधमें दश दिन तक सायं प्रातः स्वस्तिपाठ होता है। पितरोंका आनन्दमें भर कर नाचना, प्रेतके अवयवका अग्निमें डालना, वरुणप्रार्थना। ७५७

अष्टमसूक्त। इसके मन्त्रोंसे पिण्डपितृयज्ञकी स्थालीपाकाहुति और पिण्डोंका स्थापन होता है। देवताओंको क्या कह कर हवि दी जाती है, पितरोंको क्या कह कर हवि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय पृष्ठ

दी जाती है, तत शब्दका अर्थ, प्रजापतिका उपाख्यान पितरोंके नामको न जानने वाला किस शब्दसे पितरोंको सम्बोधित करे। ७६८

नवमसूक्त। इसके मंत्रोंसे पिण्डोंमें आवाहित पितरोंका उपस्थान, समिदाधान और जलक्षय तथा जलभयके लिये वरुणदेवत्या शांति कीजाती है। त्रित ऋषिकी कथा। ७७४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथर्ववेदसंहिता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

4455

श्रीहरिः

अथर्ववेदसंहिता

श्री गणेश वर्णी दि० जैन संस्थान नरिया, वाराणसी-५

द्वादशं-काण्डम्

भाषानुवाद-सहित

पृथिवीसूक्तम् एतत्। अस्मिन् पृथिव्याः प्रभूतं निसर्गवर्णनम्। कतिचित्पौराणिकीः कथाश्चानुलक्ष्य वर्णनम्। बहुवारं च ऋषिः पृथिवीं वरान् प्रार्थयते ॥

संप्रदायानुसारेण तु सूक्तं बहुविधं विनियुज्यते। तद्यथा "सत्यं बृहत्" इत्यनुवाको वास्तोष्पत्यगणे पठितः। अस्य गणस्य विनियोगः "इहैव ध्रुवाम्" [३. १२] इति सूक्ते द्रष्टव्यः ॥

तथा आग्रहायणीकर्मणि रात्रौ अभ्यातानान्तं कृत्वा त्रयश्चरवः श्रपयितव्याः। ततः अनेनानुवाकेन अग्नेः पश्चाद्द गर्ते दर्भान् आस्तीर्य एकं चरुं सकृत् सर्वहुतं जुहोति। द्वितीयं चरुम् अनेनानुवाकेन संपात्याभिमन्त्र्य अश्नाति। तृतीयं चरुं "सत्यं बृहत्" इति आद्याभिः सप्तभिर्ऋग्भिः "भूमे मातः" [६३] इत्यष्टम्या ऋचा च त्रिर्जुहोति। अष्टानाम् ऋचाम् आवृत्या होमत्रयं संपादनीयम् इत्यर्थः। अग्नेः पश्चाद् दर्भेषु कशिपु तृणमयं प्रस्तरणम् आस्तीर्य "विमृग्वरीम्" [२९] इत्यनयोपविशति। "यास्ते शिवाः" [९. २. २५] इति संविशति। "यच्छयानः" [३४] इति पर्यावर्तते। "सत्यं बृहत्" इति नवभिः शन्तिवा [५९] इत्यृचा "उदायुषा" [३. ३१. १०, ११] इति द्वाभ्यां च प्रातरुत्तिष्ठते। "उद्वयम्" [७. ५५. ७] इति गच्छति। "उदीराणाः"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[२८] इत्यृचा प्राङ् वोदङ् वा बाह्यतो गच्छति । "यावत् ते" [३३] इत्यृचा स्रुवम् ईक्षते ॥ इत्याग्रहायणीकर्म ॥

तथा पुष्टिकामः उन्नतं स्थलम् आरुह्य "यावत् ते" [३३] इत्यृचा ईक्षते ॥

तथा अनेनानुवाकेन उदपात्रं संपात्य पुरस्ताद्ध अग्नेः सीरं युक्तं संप्रोक्षति ॥

तथा अनेनानुवाकेन कृषिकर्म भवति ॥ तच्च "सीरा युञ्जन्ति" इति [३. १७] सूक्ते विस्तरेणोक्तं द्रष्टव्यम् ॥

तथा पुत्रधनादिसर्वफलप्राप्त्यर्थं "यस्यां सदोहविर्धाने"[३८-४०] इति तिसृभिराज्यं जुहोति ॥

तथा व्रीहियवाद्यन्नकामः "यस्यामन्नम्" [४१] इत्यृचा पृथिवीम् उपतिष्ठते ॥

तथा मणिहिरण्यादिकामः "निधिं बिभ्रती" [४४, ४५] इति द्वाभ्यां पृथिवीम् उपतिष्ठते ॥

तथा प्राप्यापि मणिं हिरण्यं वा आभ्यामेवोपतिष्ठते ॥

तथा पुष्टिकामो वृष्टिकाले "यस्यां कृष्णम् [५२] इत्यृचा नवोदकम् अभिमन्त्र्य आचमनं स्नानं च करोति ॥

तद्ध उक्तं कौशिकेन । "सत्यं बृहद् इत्याग्रहायण्याम् । पश्चाद् अग्नेर्दर्भेषु खदायां सर्वहुतम् । द्वितीयं संपातवन्तम् अश्नाति । "तृतीयस्यादितः सप्तभिर्भूमे मातरिति त्रिर्जुहोति । पश्चाद्ध अग्नेर्दर्भेषु कशिप्वास्तीर्य विमृग्वरीम् इत्युपविशति । यास्ते शिवा इति संविशति । यच्छयान इति पर्यावर्तते । नवभिः शन्तिवेति दशम्योदायुषेत्युपोत्तिष्ठति । उद्वयम् इत्युत्क्रामति । उदीराणा इति त्रीणि पदानि प्राङ् वोदङ् वा बाह्येनोपनिष्क्रम्य यावत् त इति वीक्षते । उन्नताच्च । पुरस्ताद् अग्नेः सीरं युक्तम् उदपात्रेण संपातवतावसिञ्चति । आयोजनानाम् अप्ययः । यस्यां सदोहविर्धाने इति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जुहोति वरो म आगमिष्यतीति। यस्यामन्नम् इत्युपतिष्ठते। निधिं बिभ्रतीति मणिं हिरण्यकामः। एवं विद्वान्। यस्यां कृष्णम् इति वार्षकृतस्याचामति। शिरस्यानयते" इति [कौ० ३.७]॥ वरो वरणीयोर्थो मम भवेद्ध इत्यर्थः ॥

तथा ग्रामपत्तनादिरक्षार्थम् अनेनानुवाकेन चतुरः पुरोडाशान् अश्मोत्तरान् कृत्वा ग्रामादिकोणेषु निखनति ॥

तथा ग्रामपत्तनादिरक्षार्थम् अनेनानुवाकेन एकैकस्य पुरोडाशस्य पाषाणम् उपरि कृत्वा उभयान् संपातवतः कृत्वा ग्रामादिकोणेषु निखनति। सर्वत्र प्रतिद्रव्यं सूक्तावृत्तिः ॥

तथा अग्नेरायतनस्य असंतापयुक्ते देशे शयानः एतम् अनुवाकं जपति। सर्वत्र कर्मणां विकल्पः ॥

तद्ध उक्तं कौशिकसूत्रे। "भौमस्य दृतिकर्माणि। पुरोडाशान् अश्मोत्तरान् अन्तः स्रक्तिषु निदधाति। उभयान्त्संपातवतः। सभाभागधानेषु च। असंतापे ज्योतिरायतनस्यैकतोन्यं शयानो भौमं जपति" इति [कौ० ५. २] ॥

तथा भूमिचलने अस्यानुवाकस्य होमे विनियोगः। "अथ यत्रैतद् भूमिचलो भवति" इत्युपक्रम्योक्तं कौशिकेन। "सत्यं बृहद्ध इत्येतेनानुवाकेन जुहुयात् सा तत्र प्रायश्चित्तिः" इति [कौ०१३.६]

तथा सोमयज्ञे दीक्षितनियमेषु मूत्रपुरीषशुद्ध्यर्थं लोष्टादाने अस्य विनियोगः। तद्ध उक्तं वैताने। सत्यं बृहद्ध इति लोष्टम् आदाय" इति [वै० ३. २] ॥

तथा 'पार्थिवीं भूमिकामस्य" इति [न० क० १७] विहितायां पार्थिव्यां महाशान्तौ अस्यानुवाकस्य विनियोगः। तद्ध उक्तं नक्षत्रकल्पे। "सत्यं बृहद्ध इत्यनुवाकः पार्थिव्याम्" इति[न०क०१८]।

श्रीः ॥ यह पृथिवी सूक्त है। इसमें अधिकतर पृथिवीके निसर्ग का वर्णन है। और कुछ पौराणिक कथाओंको लक्षित करके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्णन किया गया है। अनेक स्थलोंमें ऋषिने पृथ्वीसे वरोंकी प्रार्थना की है।

सम्प्रदायके अनुसार इस सूक्तका अनेक प्रकारका विनियोग होता है। यथा–"सत्यं बृहत्" अनुवाकका वास्तोष्पत्यगणमें पाठ है। इस गणका विनियोग "इहैव ध्रुवाम्" इस तृतीय काण्डके बारहवें सूक्तमें देखना चाहिये।

तथा आग्रहायणी कर्ममें रात्रिके समय अभ्यातान तक करके तीन चरुओंको राँधे फिर इस अनुवाकसे अग्निके पीछे गड्ढेमें दर्भोंको बिछा कर एक चरुको एक वार कुछ अवशिष्ट न रख कर होम देय। फिर इस अनुवाकसे दूसरे चरुको सम्पातित और अभिमन्त्रित करके प्राशन करे। तीसरे चरुको "सत्यं बृहत्" आदि पहिलीं सात ऋचाओंसे और "भूमे मातः" (६३) नामक आठवीं ऋचासे तीन वार आहुति देय। तात्पर्य यह है आठ ऋचाओंकी आवृत्ति करके तीनवार होम करे। अग्निके पीछे दर्भों पर तृणमय फैली हुई चटाईको बिछा कर "विमृग्वरीम्" इस उन्तीसवीं ऋचासे उपवेशन करे। "यास्ते शिवाः" (९।२।२५) से संवेशन करे। "यच्छयानः" इस ३४ वीं ऋचासे पर्यावर्तन करे। "सत्यं बृहत्" आदि नौ ऋचाओंसे "शन्तिवा" इस उनसठवीं ऋचासे और "उदायुषा" आदि तीसरे काण्डके इकतीसवें सूक्तकी दशवीं और ग्यारहवीं ऋचासे प्रातःकालके समय उठे। "उद्वयम्" इस सातवें काण्डके पचपनवें सूक्तकी सातवीं ऋचासे चले। "उदीराणाः" इस अट्ठाईसवीं ऋचासे पूर्व उत्तर वा बाहर से जावे। "यावत् ते" इस तैंतीसवीं ऋचासे भूमिको देखे। यह आग्रहायणी कर्म हुआ।

तथा पुष्टिको चाहने वाला उन्नत स्थान पर चढ़ कर "यावत् ते" इस चौंतीसवीं ऋचासे देखे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा इस अनुवाकसे जलपूर्ण पात्रको सम्पातित करके अग्निके सामने युक्त सीरका प्रोक्षण करे।

तथा इस अनुवाकसे कृषिकर्म होता है। इसका "सीरा युञ्जन्ति" इस तीसरे काण्डके सत्रहवें सूक्तमें विस्तृत वर्णन है। तहाँ ही देखना चाहिये।

तथा पुत्र धन आदि सब फलोंकी प्राप्तिके लिये "यस्यां सदो हविर्धाने" आदि अड़तीसवीं, उन्तालीसवीं, और चालीसवीं-इन तीन ऋचाओंसे घृतकी आहुति देय।

तथा व्रीहि यव आदि अन्नकी कामना रखने वाला "यस्यामन्नम्" इस बयालीसवीं ऋचासे पृथिवीका उपस्थान करे।

तथा मणि सुवर्ण आदिको चाहने वाला "निधिं बिभ्रतीम्" इन चौबालीसवीं और पैंतालीसवीं ऋचाओंसे पृथिवीका उपस्थान करे।

तथा मणि वा सुवर्णको पाकर भी इन दोनों ऋचाओंसे उपस्थान करे।

तथा पुष्टिको चाहने वाला वृष्टिके समयमें "यस्यां कृष्णम्" इस बावनवीं ऋचासे नवीन जलको अभिमन्त्रित करके आचमन और स्नान करे।

इसी बातको कौशिकने कहा है, कि—"सत्यं बृहत् इत्याग्रहायण्याम्। पश्चाद् अग्नेर्गर्भेषु खदायां सर्वहुतम्। द्वितीयं सम्पातवन्तं अश्नाति तृतीयस्यादितः सप्तभिर्भूमे मातरिति त्रिर्जुहोति। पश्चाद् अग्नेर्दर्भेषु कशिप्वास्तीर्य विमृग्वरीम् इत्युपविशति। यास्ते शिवा इति संविशति। यच्छयान इति पर्यावर्तते। नवभिः शन्तिवेति दशम्योदायुषेत्युपोत्तिष्ठति। उद्वयम् इत्युत्क्रामति। उदीराणा इति त्रीणि पदानि प्राङ् वोदङ् वा बाह्येनोपनिष्क्रम्य यावत् त इति वीक्षते। उन्नताच्च। पुरस्ताद् अग्नेः सीरं युक्तं उदपात्रेण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्पातवताऽवसिञ्चति । आयोजनायां अप्ययः । यस्यां सदो हविर्धाने इति जुहोति वरो म आगमिष्यतीति । यस्यामन्नमुपतिष्ठते । निधिं बिभ्रतीति मणिं हिरण्यकामः । एवं विद्वान् यस्यां कृष्णम् इति वार्षकृतस्याचमति । शिरस्यानयते" इति (कौशिकसूत्र ३।७) वरो वरणीयो मम भवेदित्यर्थः ।

तथा ग्राम नगर आदिकी रक्षाके लिये इस अनुवाकसे चार पुरोडाशोंको अश्मोत्तर कर ग्राम आदिके कोनोंमें गाढ़ देवे ।

तथा ग्राम नगर आदिकी रक्षा करनेके लिये एक एक पुरोडाशके पाषाणको ऊपर करके दोनोंको संपात वाले करे फिर ग्राम आदिके कानोंमें गाढ़देय । सर्वत्र प्रत्येक् द्रव्य पर सूक्तकी आवृत्ति करनी चाहिये ।

तथा अग्निभवनके सन्तापरहित स्थानमें लेट कर इस अनुवाकको जपे । सर्वत्र कर्मोंका विकल्प है ।

इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि–"भौमस्य इतिकर्माणि । पुरोडाशान् अश्मोत्तरान् अन्तः स्रक्तिषु निदधाति । उभयान्त्सम्पातवतः । सभाभागधानेषु च । असन्तापे ज्योतिरायतनस्यैकतोऽन्यं शयानो भौमं जपति" इति (कौशिकसूत्र ५ । २) ॥

तथा भूकम्प होने पर इस अनुवाकका होममें विनियोग होता है । "अथ यतैतद् भूमिचलो भवति ।–जहाँ पर यह भूकम्प होता है" इस बातका आरम्भ करके कौशिकने कहा है, कि–"सत्यं बृहद् इत्येतेनानुवाकेन जुहुयात् सा तत्र प्रायश्चित्तिः ।–सत्यं बृहत् इस अनुवाकसे आहुति देय, यही उसका प्रायश्चित्त है" । (कौशिकसूत्र १३ । ६) ॥

तथा सोमयज्ञके दीक्षित नियमोंमें मूत्र वा पुरीषकी शुद्धिके लिये लोष्टदानमें इसका विनियोग होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"सत्यं बृहद् इति लोष्टं आदाय" । इति (वैतान सूत्र ३ । २) ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा "पार्थिवीं भूमिकामस्य ।–भूमिकी कामना वालेके लिये पार्थिवी शान्तिको करे" इस नक्षत्रकल्प १७ से विहित पार्थिवी महाशान्तिमें इस अनुवाकका विनियोग होता है । इसी बातको नक्षत्रकल्पमें कहा है, कि–सत्यं बृहत् इत्यनुवाकः पार्थिव्याम्" इति (नक्षत्रकल्प १८) ॥

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु

सत्यम् । बृहत् । ऋतम् । उग्रम् । दीक्षा । तपः । ब्रह्म । यज्ञः । पृथिवीम् । धारयन्ति ।

सा । नः । भूतस्य । भव्यस्य । पत्नी । उरुम् । लोकम् । पृथिवी । नः । कृणोतु ॥ १ ॥

सत्य, बृहत् जल, दीक्षा, उग्र तप, ब्रह्म और यज्ञ ये पृथिवी को धारण करते हैं अर्थात् इनके आधार पर पृथिवी टिकी रहती है, ऐसी यह उत्पन्न हुए और उत्पन्न होने वाले प्राणियोंका पालन करने वाली पृथ्वी देवी हमको विस्तीर्ण स्थान दें ॥ १ ॥

असंबाधं बध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः ॥ २ ॥

असम्ऽबाधम् । मध्यतः । मानवानाम् । यस्याः । उत्ऽवतः । प्रऽवतः । समम् । बहु ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नानाऽवीर्याः । ओषधीः । या । बिभर्ति । पृथिवी । नः । प्रथताम् ।

राध्यताम् । नः ॥ २ ॥

जिस पृथिवीके मनुष्योंके मध्यमें असम्बाधरूपसे बहुतसे नीचे को ढलकाव वाले ऊपरको चढ़ाई वाले और सम इस प्रकारके बहुतसे स्थान हैं और जो पृथिवी अनेक प्रकारकी शक्तियोंसे सम्पन्न औषधियोंको धारण करती है वह पृथिवी हमारे लिये विस्तीर्ण मात्रामें प्राप्त हो और हमारे कृषि आदि मनोरथोंको सिद्ध करे ॥ २ ॥

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये
दधातु ॥ ३ ॥

यस्याम् । समुद्रः । उत । सिन्धुः । आपः । यस्याम् । अन्नम् ।

कृष्टयः । सम्ऽबभूवुः ।

यस्याम् । इदम् । जिन्वति । प्राणत् । एजत् । सा । नः । भूमिः ।

पूर्वऽपेये । दधातु ॥ ३ ॥

जिस पृथिवीमें समुद्र है, नदियें हैं, जल है, और जिसमें खेती तथा अन्न होता है और जिसमें यह चेष्टाशील प्राण वाला जगत् तृप्त होता है वह पृथ्वी हमको जिस स्थलमें फलरूपी रसका पहिले पान होसकता है उस स्थलमें स्थापित करे ॥ ३ ॥

यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः
संबभूवुः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु ॥ ४ ॥

यस्याः । चतस्रः । प्रऽदिशः । पृथिव्याः । यस्याम् । अन्नम् । कृष्टयः । सम्ऽबभूवुः ।

या । बिभर्ति । बहुऽधा । प्राणत् । एजत् । सा । नः । भूमिः । गोषु । अपि । अन्ने । दधातु ॥ ४ ॥

जिस पृथिवीमें पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिणरूप चार श्रेष्ठ दिशायें हैं और जिसमें खेती और अन्न होता है और जो चेष्टाशील प्राणवाले जगत्को अनेक प्रकारसे धारण करती है वह भूमि देवी हमको गौ और अन्नमें स्थापित करे ॥ ४ ॥

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन् ।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु

यस्याम् । पूर्वे । पूर्वऽजनाः । विचक्रिरे । यस्याम् । देवाः । असुरान् । अभिऽअवर्तयन् ।

गवाम् । अश्वानाम् । वयसः । च । विऽस्था । भगम् । वर्चः । पृथिवी । नः । दधातु ॥ ५ ॥

जिस पृथ्वीमें परम प्राचीन पूर्वपुरुषोंने अनेक प्रकारके कर्म किये हैं और जिसमें देवताओंने असुरोंके सन्मुख युद्ध किया है जो पृथिवी गौ अश्व और पक्षियोंके अनेक प्रकारसे रहनेका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का स्थान है अर्थात् जिसमें गौ अश्व और पक्षी अनेक रीतिसे रहते हैं, वह पृथिवी हमको धन और तेज देवे ॥ ५ ॥

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी ।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु

विश्वम्ऽभरा । वसुऽधानी । प्रतिऽस्था । हिरण्यऽवक्षाः । जगतः । निऽवेशनी ।

वैश्वानरम् । बिभ्रती । भूमिः । अग्निम् । इन्द्रऽऋषभा । द्रविणे । नः । दधातु ।

विश्व भरका भरण करने वाली, धनको धारण करने वाली प्राणियोंकी स्थितिकी हेतु है, सुवर्णको (खानरूपमें) वक्षःस्थल में धारण करने वाली है, जगत्को बसाने वाली है, वैश्वानर अग्निको धारण करने वाली है ऐसी वृषभरूप इन्द्रको धारण करने वाली पृथ्वी हमको धन प्रदान करे ॥ ६ ॥

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम्
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥ ७ ॥

याम् । रक्षन्ति । अस्वप्नाः । विश्वऽदानीम् । देवाः । भूमिम् । पृथिवीम् । अप्रऽमादम् ।

सा । नः । मधु । प्रियम् । दुहाम् । अथो इति । उक्षतु । वर्चसा ७

शयन न करने वाले देवता जिस पृथ्वीकी सावधानीसे सदा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रक्षा करते हैं, वह हमको मधुर और प्रिय (अन्नादि) को देवे फिर वर्चः से सम्पन्न करे ॥ ७ ॥

यार्णवेधि सलिलमग्र आसीद् यां मायाभिरन्वचरन्

मनीषिणः ।

यस्या हृदयं परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः ।

सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ॥ ८ ॥

या । अर्णवे । अधि । सलिलम् । अग्रे । आसीत् । याम् । मायाभिः ।

अनु ऽअचरन् । मनीषिणः ।

यस्याः । हृदयम् । परमे । विऽओमन् । सत्येन । आऽवृतम् । अमृ-

तम् । पृथिव्याः ।

सा । नः । भूमिः । त्विषिम् । बलम् । राष्ट्रे । दधातु । उत्ऽतमे ८

जो पहिले समुद्रमें थी और विद्वान् पुरुष शक्तियोंसे जिस पर विचरण करते हैं और जिस पृथिवीका अमृतमय हृदय परमव्योम में प्रतिष्ठित है, वह भूमि हमको उत्तम राष्ट्रमें स्थापित करे तथा दीप्ति और बल प्रदान करे ॥ ८ ॥

यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति ।

सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा ९

यस्याम् । आपः । परिऽचराः । समानीः । अहोरात्रे इति । अप्र-

मादम् । क्षरन्ति ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सा । नः । भूमिः । भूरिऽधारा । पयः । दुहाम् । अथो इति । उक्षतु ।
वर्चसा ॥ ९ ॥

जिसमें चारों ओर विचरण करने वाले जल दिन रातमें एक सी रीतिसे सावधानतापूर्वक बहते रहते हैं, ऐसी भूरिधारा भूमि हमको दुग्धकी समान सारभूत फलको देवे और हमको वर्चसे सम्पन्न करे ॥ ९ ॥

यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे ।
इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः ।
सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः ।१०।

याम् । अश्विनौ । अमिमाताम् । विष्णुः । यस्याम् । विऽचक्रमे ।
इन्द्रः । याम् । चक्रे । आत्मने । अनमित्राम् । शचीऽपतिः ।
सा । नः । भूमिः । वि । सृजताम् । माता । पुत्राय । मे । पयः १०

अश्विनीकुमारोंने जिसका निर्माण किया है और विष्णुने जिस पर विक्रमण किया है और इन्द्रने जिसको शत्रुरहित करके अपने वशमें किया था ऐसी भूमि, माता जैसे पुत्रको दूध पिलाती है इस प्रकार मेरे लिये दुग्धकी समान सारभूत फलको देवे १० (१)

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु ।
बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवी-
मिन्द्रगुप्ताम् ।
अजीतोहतो अक्षतोध्यष्ठां पृथिवीमहम् ॥ ११ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गिरयः । ते । पर्वताः । हिमऽवन्तः । अरण्यम् । ते । पृथिवि । स्योनम् । अस्तु ।

बभ्रुम् । कृष्णाम् । रोहिणीम् । विश्वऽरूपाम् । ध्रुवाम् । भूमिम् । पृथिवीम् । इन्द्रऽगुप्ताम् ।

अजीतः । अहतः । अक्षतः । अधि । अस्थाम् । पृथिवीम् । अहम् ॥ ११ ॥

हे पृथिवी देवि ! तेरे पर्वत, छोटे २ पर्वत, हिमाचलके स्थान, और वन हमारे लिये सुखदायक हों, मैं बभ्रु कृष्ण, लाल (आदि) अनेक रूपों वाली, इन्द्रगुप्ता ध्रुवा भूमि पर, अक्षत अजित और अहत रहता हुआ अधिष्ठित रहूँ ॥ ११ ॥

यत् ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः ।

तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः ।

पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ॥ १२ ॥

यत् । ते । मध्यम् । पृथिवि । यत् । च । नभ्यम् । याः । ते । ऊर्जः । तन्वः । सम्ऽबभूवुः ।

तासु । नः । धेहि । अभि । नः । पवस्व । माता । भूमिः । पुत्रः । अहम् । पृथिव्याः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर्जन्यः । पिता । सः । ऊं इति । नः । पिपर्तु ॥ १२ ॥

हे पृथिवि ! जो तेरा मध्यभाग है जो तेरा नाभिभाग है और तेरे शरीरसे जो पुष्टिप्रद पदार्थ प्रकट होते हैं, तुम उसमें मुझको स्थापित करो, हमको पवित्र करो, भूमि माता है और मैं उसका पुत्र हूँ और पर्जन्य-मेघ–मेरा पिता है, वह हमारा पालन करे १२

यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः ।
यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात् ।
सा नो भूमिर्वर्धयद् वर्धमाना ॥ १३ ॥

यस्याम् । वेदिम् । परिऽगृह्णन्ति । भूम्याम् । यस्याम् । यज्ञम् । तन्वते । विश्वऽकर्माणः ।
यस्याम् । मीयन्ते । स्वरवः । पृथिव्याम् । ऊर्ध्वाः । शुक्राः । आऽहुत्याः । पुरस्तात् ।
सा । नः । भूमिः । वर्धयत् । वर्धमाना ॥ १३ ॥

जिस भूमिमें वेदिको बनाते हैं और संपूर्ण प्रकारके कर्मोंको करने वाले जिसमें यज्ञको करते हैं और आहुति देनेसे पहिले जिस भूमि पर दमकते हुए यज्ञस्तम्भ खड़े किये जाते हैं ऐसी बढ़ती हुई भूमि हमको बढ़ावे ॥ १३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पृतन्याद् योऽभिदासान्मनसा यो वधेन ।
तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि ॥ १४ ॥

यः । नः । द्वेषत् । पृथिवि । यः । पृतन्यात् । यः । अभिऽदासात् । मनसा । यः । वधेन ।
तम् । नः । भूमे । रन्धय । पूर्वऽकृत्वरि ॥ १४ ॥

हे पृथिवी देवि ! जो हमसे द्वेष करे, जो हमारे लिये सेनाको एकत्रित करे, जो मनमें हमारा वध करनेका विचार कर हमको क्षीण करना चाहे, हे पूर्वकृत्वरि भूमे ! उसको आप हमारे लिये मार डालिये ॥ १४ ॥

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः ।
तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥ १५ ॥

त्वत् । जाताः । त्वयि । चरन्ति । मर्त्याः । त्वम् । बिभर्षि । द्विऽपदः । त्वम् । चतुःऽपदः ।
तव । इमे । पृथिवि । पञ्च । मानवाः । येभ्यः । ज्योतिः । अमृतम् । मर्त्येभ्यः । उत्ऽयन् । सूर्यः । रश्मिऽभिः । आऽतनोति ॥१५॥

हे पृथिवी देवि ! आपके ऊपर उत्पन्न हुए मनुष्य आप पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही विचरण करते हैं, तुमको दो पैर वाले मनुष्य आदिका और चार पैर वाले घोड़े आदिका भरण करती हो जिनके लिये उदय होते हुए सूर्यदेव अपनी किरणोंसे ज्योति और आमरणसाधन पदार्थसमूहोंको देते हैं वे पाँच जन भी आपके ही हैं ॥ १५ ॥

ता नः प्रजाः सं दुह्रतां समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम् ॥ १६ ॥

ताः । नः । प्रऽजाः । सम् । दुह्रताम् । समऽग्राः । वाचः । मधु । पृथिवि । धेहि । मह्यम् ॥ १६ ॥

सूर्यकी किरणें हमारे लिये प्रजाओंको, सब प्रकारकी वाणियों को दुहें और हे पृथिवी ! आप मुझको मधुमय पदार्थ दीजिये १६

विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम् ।
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा ॥ १७ ॥

विश्वऽस्वम् । मातरम् । ओषधीनाम् । ध्रुवाम् । भूमिम् । पृथिवीम् । धर्मणा । धृताम् ।
शिवाम् । स्योनाम् । अनु । चरेम । विश्वहा ॥ १७ ॥

हम विश्वकी धनरूप, औषधियोंकी उत्पादिका, धर्मसे धृत, ध्रुवा शिवा सुखदायिनी पृथ्वी पर सर्वत्र गमन करते हुए विचरण करें ॥ १७ ॥

महत् सधस्थं महती बभूविथ महान् वेग एजथुर्वेपथुष्टे ।
महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सा नो भूमे प्र रोचय हिरण्यस्येव संदृशि मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ १८ ॥

महत् । सधऽस्थम् । महती । बभूविथ । महान् । वेगः । एजथुः । वेपथुः । ते ।

महान् । त्वा । इन्द्रः । रक्षति । अप्रऽमादम् ।

सा । नः । भूमे । प्र । रोचय । हिरण्यस्यऽइव । सम्ऽदृशि । मा । नः । द्विक्षत । कः । चन ॥ १८ ॥

हे भूमे ! तू बड़ी भारी आवासभूमि है, तेरा वेग और कम्पन महान् है, और महान् (पूजनीय) इन्द्र सावधानीसे तेरी रक्षा करते हैं ऐसी हे पृथिवि ! तू हमको इस प्रकार सबका रुचिकर बना जिस प्रकार सुवर्ण सब दृष्टिमें रोचक होता है, कोई हमसे द्वेष न करे ॥ १८ ॥

अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु ।
अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः ॥ १९ ॥

अग्निः । भूम्याम् । ओषधीषु । अग्निम् । आपः । बिभ्रति । अग्निः । अश्मऽसु ।

अग्निः । अन्तः । पुरुषेषु । गोषु । अश्वेषु । अग्नयः ॥ १९ ॥

(वाष्परूप) अग्नि भूमिमें है, जल (बिजलीकेरूपमें) अग्नि को धारण करता है और पत्थरोंमें अग्नि है, पुरुषोंके भीतर (जठराग्निरूपमें) अग्नि है, तथा गौ और घोड़ोंके भीतर भी अग्नियें हैं ॥ १९ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेर्देवस्योर्वन्तरिक्षम् ।
अग्निं मर्तास इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम् ॥ २० ॥

अग्निः । दिवः । आ । तपति । अग्नेः । देवस्य । उरु । अन्तरिक्षम्
अग्निम् । मर्तासः । इन्धते । हव्यऽवाहम् । घृतऽप्रियम् ॥ २० ॥

अग्निदेव (सूर्यरूपमें) स्वर्गमें तपते हैं, यह विशाल अन्तरिक्ष भी अग्नि देवता वाला है, मरणधर्मी प्राणी घृतप्रिय हव्यवाह अग्निको ही प्रज्वलित किया करते हैं ॥ २० ॥ (२)

अग्निवासाः पृथिव्यसितज्ञूस्त्विषीमन्तं संशितं मा कृणोतु ॥ २१ ॥

अग्निऽवासाः । पृथिवी । असितऽज्ञूः । त्विषिऽमन्तम् । सम्ऽशितम् ।
मा । कृणोतु ॥ २१ ॥

अग्निका जिसमें वास है ऐसी असित (धूम) को जानने वाली पृथिवी मुझको दीप्ति वाला और तीक्ष्ण करे ॥ २१ ॥

भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरंकृतम् ।
भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः ।
सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु ॥ २२ ॥

भूम्याम् । देवेभ्यः । ददति । यज्ञम् । हव्यम् । अरम्ऽकृतम् ।
भूम्याम् । मनुष्याः । जीवन्ति । स्वधया । अन्नेन । मर्त्याः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सा । नः । भूमिः । प्राणम् । आयुः । दधातु । जरत्ऽअष्टिम् ।
मा । पृथिवी । कृणोतु ॥ २२ ॥

मनुष्य भूमि पर अलंकृत यज्ञमें देवताओंके निमित्त हव्य दिया करते हैं, और भूमिमें ही मरणधर्मी प्राणी अन्न और जलसे जीवित रहा करते हैं, ऐसी यह भूमि हमको प्राण और आयु देय और यह पृथिवी देवी मुझको बुढ़ापे तक रहने वाला करे २२

यस्ते गन्धः पृथिवि संबभूव यं बिभ्रत्योषधयो यमापः।
यं गन्धर्वा अप्सरसश्च भेजिरे तेन मा सुरभिं कृणु मा
नो द्विक्षत कश्चन ॥ २३ ॥

यः । ते । गन्धः । पृथिवि । सम्ऽबभूव । यम् । बिभ्रति । ओषधयः । यम् । आपः ।
यम् । गन्धर्वाः । अप्सरसः । च । भेजिरे । तेन । मा । सुरभिम् ।
कृणु । मा । नः । द्विक्षत । कः । चन ॥ २३ ॥

हे पृथिवि ! जो तेरा गन्ध है, जिस गंधको औषधि और जल धारण करते हैं गंधर्व और अप्सरायें भी तेरे उसी गंधका सेवन करते हैं, उससे तू मुझको सुगन्धित कर, मुझसे कोई द्वेष न करे २३

यस्ते गन्धः पुष्करमाविवेश यं संजभ्रुः सूर्याया विवाहे।
अमर्त्याः पृथिवि गन्धमग्रे तेन मा सुरभिं कृणु मा
नो द्विक्षत कश्चन ॥ २४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यः । ते । गन्धः । पुष्करम् । आऽविवेश । यम् । सम्ऽजभ्रुः ।
सूर्यायाः । विऽवाहे ।
अमर्त्याः । पृथिवि । गन्धम् । अग्रे । तेन । मा । सुरभिम् । कृणु ।
मा । नः । द्विक्षत । कः । चन ॥ २४ ॥

हे पृथिवि ! तुम्हारा जो गन्ध कमलमें प्रविष्ट है, और जिस गन्धको पहिले मरणधर्मी प्राणियोंने सूर्याके विवाहमें धारण किया था, उस गन्धसे हे पृथिवि ! तुम मुझको सुगन्धित करो, कोई मुझसे द्वेष न करे ॥ २४ ॥

यस्ते गन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचिः ।
यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु ।
कन्यायां वर्चो यद् भूमे तेनास्माँ अपि सं सृज मा
नो द्विक्षत कश्चन ॥ २५ ॥

यः । ते । गन्धः । पुरुषेषु । स्त्रीषु । पुम्ऽसु । भगः । रुचिः ।
यः । अश्वेषु वीरेषु । यः । मृगेषु । उत । हस्तिषु ।
कन्यायाम् । वर्चः । यत् । भूमे । तेन । अस्मान् । अपि । सम् ।
सृज । मा । नः । द्विक्षत । कः । चन ॥ २५ ॥

हे पृथिवी देवि ! तुम्हारा जो गन्ध, भग और रुचि पुरुष और स्त्रियोंमें है, अश्वोंमें है, वीरोंमें हैं, मृगमें है, हाथियोंमें है और कन्यामें जो वर्च है, हे भूमि ! उन सबसे आप मुझको संपृक्त करिये, कोई मुझसे द्वेष न करे ॥ २५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता ।
तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः ॥ २६ ॥

शिला । भूमिः । अश्मा । पांसुः । सा । भूमिः । सम्ऽधृता । धृता ।
तस्यै । हिरण्यऽवक्षसे । पृथिव्यै । अकरम् । नमः ॥ २६ ॥

शिला भूमि पत्थर और धूल इनके रूपोंको पृथ्वी धारण करती है, इस प्रकार ऐसे रूपोंमें भली प्रकार परिणत हुई सुवर्ण को (खानरूप) वक्षःस्थलमें धारण करने वाली पृथिवीके लिये मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २६ ॥

यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा ।
पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि ॥ २७ ॥

यस्याम् । वृक्षाः । वानस्पत्याः । ध्रुवाः । तिष्ठन्ति । विश्वहा ।
पृथिवीम् । विश्वऽधायसम् । धृताम् । अच्छऽआवदामसि ॥२७॥

जिस पर वनस्पतिको उत्पन्न करने वाले वृक्ष ध्रुवतासे खड़े रहते हैं ये वृक्ष औषधि आदिके रूपमें सबके पास जाते हैं। वृक्षों को धारण करने वाली धर्मसे धृता ऐसी सबका पोषण करने वाली पृथिवीकी हम अभिमुख होकर स्तुति करते हैं ॥ २७ ॥

उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः ।
पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम् २८

उत्ऽईराणाः । उत । आसीना । तिष्ठन्तः । प्रऽक्रामन्तः ।
पत्ऽभ्याम् । दक्षिणऽसव्याभ्याम् । मा । व्यथिष्महि । भूम्याम् २८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हम दायें वायें पैरसे भूमिमें चलते हुए बैठते हुए खड़े होते हुए वा कदम उठाते हुए व्यथा न पावें ॥ २८ ॥

विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम् ।
ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतं त्वाभि नि षीदेम भूमे

विऽमृग्वरीम् । पृथिवीम् । आ । वदामि । क्षमाम् । भूमिम् । ब्रह्मणा । ववृधानाम् ।
ऊर्जम् । पुष्टम् । बिभ्रतीम् । अन्नऽभागम् । घृतम् । त्वा । अभि । नि । सीदेम । भूमे ॥ २९ ॥

मैं परम पवित्र, मन्त्रशक्तिसे वृद्धिको प्राप्त होती हुई क्षमा भूमि की स्तुति करता हूँ, हे भूमे ! पुष्टिप्रद अन्नरस और बलको धारण करने वाली तुझ पर हम घृतकी आहुति देते हैं ॥२९॥

शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो नः सेदुरप्रिये तं नि दध्मः ।
पवित्रेण पृथिवि मोत् पुनामि ॥ ३० ॥

शुद्धाः । नः । आपः । तन्वे । क्षरन्तु । यः । नः । सेदुः । अप्रिये । तम् । नि । दध्मः ।
पवित्रेण । पृथिवि । मा । उत् । पुनामि ॥ ३० ॥

जो पवित्र जल हैं वे हमारे शरीर पर पड़ें, जो जल हमारे शरीरसे उतर कर चले गए हैं उनको हम शत्रुके लिये देते हैं, हे पृथिवि ! मैं पवित्रेसे अपनेको पवित्र करता हूँ ॥ ३० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यास्ते प्राची प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे अधराद् याश्च पश्चात् ।
स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु मा नि पप्तं भुवने शिश्रियाणः ॥ ३१ ॥

याः । ते । प्राचीः । प्रऽदिशः । याः । उदीचीः । याः । ते । भूम । अधरात् । याः । च । पश्चात् ।
स्योनाः । ताः । मह्यम् । चरते । भवन्तु । मा । नि । पप्तम् । भुवने । शिश्रियाणः ॥ ३१ ॥

हे पृथिवि ! आपकी जो पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण ये श्रेष्ठ दिशाएँ हैं, वे मुझे विचरण करते समय सुख देवें, भुवनमें रहता हुआ मैं गिरूँ नहीं ॥ ३१ ॥

मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा मोत्तरादधरादुत ।
स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन् परिपन्थिनो वरीयो यावया वधम् ॥ ३२ ॥

मा । नः । पश्चात् । मा । पुरस्तात् । नुदिष्ठाः । मा । उत्तरात् । अधरात् उत ।
स्वस्ति । भूमे । नः । भव । मा । विदन् । परिऽपन्थिनः । वरीयः । यवय । वधम् ॥ ३२ ॥

हे भूमि ! तू मेरे पश्चिमकी ओर खड़ी रह, तू मेरे पूर्वकी ओर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खड़ी रह, तू मेरे उत्तरकी ओर खड़ी रह, तू मेरे दक्षिणकी ओर खड़ी रह अर्थात् मुझको चारों ओर दीवार वाला भवन मिले, हे भूमे ! तू मुझे कल्याण देने वाली हो डाँकू मुझको न पा सकें और विकट वधको मुझसे पृथक् रख ॥ ३२ ॥

यावत् तेभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना ।
तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम् ॥ ३३ ॥

यावत् । ते । अभि । विऽपश्यामि । भूमे । सूर्येण । मेदिना ।
तावत् । मे । चक्षुः । मा । मेष्ट । उत्तराम्ऽउत्तराम् । समाम् ३३

जब तक मैं स्नेही सूर्यदेवके सामने तुझको देखता रहूँ तबतक अगले अगले वर्षोंमें मेरा नेत्र क्षीण न हो ॥ ३३ ॥

यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिणं सव्यमभि भूमे पार्श्वम् ।
उत्तानास्त्वा प्रतीचीं यत् पृष्टीभिरधिशेमहे ।
मा हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवरि ॥३४॥

यत् । शयानः । परिऽआवर्ते । दक्षिणम् । सव्यम् । अभि । भूमे ।
पार्श्वम् ।

उत्तानाः । त्वा । प्रतीचीम् । यत् । पृष्टीभिः । अधिऽशेमहे ।
मा । हिंसीः । तत्र । नः । भूमे । सर्वस्य । प्रतिऽशीवरि ॥३४॥

हे भूमे ! मैं जो शयन करता हुआ जो दाईं बाईं करवट बदलूँ और उत्तान होकर जो पश्चिमकी ओर पसलियोंसे शयन करूँ हे सबकी प्रतिशीवरि पृथिवि ! उस समय तू हमारा संहार न कर ३४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु ।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम् ॥ ३५ ॥

यत् । ते । भूमे । विऽखनामि । क्षिप्रम् । तत् । अपि । रोहतु ।
मा । ते । मर्म । विऽमृग्वरि । मा । ते । हृदयम् । अर्पिपम् ॥३५॥

हे भूमे ! मैं तेरे जिस भागको खोदूँ वह शीघ्र ही भर जावे हे विमृग्वरि ! मैंने तेरे मर्मस्थानको वा हृदयको पूरण नहीं किया है३५

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः ।
ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम्

ग्रीष्मः । ते । भूमे । वर्षाणि । शरत् । हेमन्तः । शिशिरः । वसन्तः ।
ऋतवः । ते । विऽहिताः । हायनीः । अहोरात्रे इति । पृथिवि ।
नः । दुहाताम् ॥ ३६ ॥

हे भूमे ! ग्रीष्म वर्षा शरद् हेमन्त शिशिर और वसन्त ऋतु तथा दिन रात और वर्ष ये सब तुम्हारे लिये विहित हैं ये हमको (फल) दें ॥ ३६ ॥

यापं सर्पं विजमाना विमृग्वरी यस्यामासन्नग्नयो ये
अप्स्वन्तः ।
परा दस्यून् ददती देवपीयूनिन्द्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रम्
शक्राय दध्रे वृषभाय वृष्णे ॥ ३७ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

या । अप । सर्पम् । विजमाना । विऽमृग्वरी । यस्याम् । आसन् ।
अग्नयः । ये । अप्ऽसु । अन्तः ।
परा । दस्यून् । ददती । देवऽपीयून् । इन्द्रम् । वृणाना । पृथिवी ।
न । वृत्रम् ।
शक्राय । दध्रे । वृषभाय । वृष्णे ॥ ३७ ॥

जो पवित्रशीला पृथ्वी सर्पके हिलने पर काँपा करती है, जो अग्नि वैद्युतरूपमें जलमें प्रविष्ट है वही अग्नि जिसमें रहता है जो पृथिवी देवहिंसक डाँकुओंको फल नहीं देती है जिसने इन्द्रका वरण किया था वृत्रासुरका वरण नहीं किया था, जो पृथिवी वर्षक धर्मात्मा समर्थ पुरुषके वशमें रहती है ॥ ३७ ॥

यस्यां सदोहविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते ।
ब्रह्माणो यस्यामर्चन्त्यृग्भि साम्ना यजुर्विदः ।
युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे ॥३८॥

यस्याम् । सदोहविर्धाने इति सदःऽहविर्धाने । यूपः । यस्याम् ।
निऽमीयते ।
ब्रह्माणः । यस्याम् । अर्चन्ति । ऋक्ऽभिः । साम्ना । यजुःऽविदः ।
युज्यन्ते । यस्याम् । ऋत्विजः । सोमम् । इन्द्राय । पातवे ।३८।

जिस भूमि पर हवि देनेके लिये यज्ञमण्डप बनाया जाता है, जिसमें यूप खड़े किये जाते हैं, जिस भूमि पर ब्राह्मण ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेदके मन्त्रोंसे पूजा करते हैं और जिसमें ऋत्विज इन्द्रको सोम पिलानेके कार्यमें लगते हैं ॥ ३८ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचुः ।
सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह ॥ ३९ ॥

यस्याम् । पूर्वे । भूतऽकृतः । ऋषयः । गाः । उत् । आनृचुः ।
सप्त । सत्रेण । वेधसः । यज्ञेन । तपसा । सह ॥ ३९ ॥

जिस भूमि पर परम प्राचीन भूतोंकी रचना करने वाले ऋषियों ने सप्तसत्र ब्रह्मयज्ञ और तपके साथ स्तुतिकी वाणियोंका उच्चारण करके पूजाकी थी ॥ ३९ ॥

सा नो भूमिरा दिशतु यद्धनं कामयामहे ।
भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्र एतु पुरोगवः ॥ ४० ॥

सा । नः । भूमिः । आ । दिशतु । यत् । धनम् । कामयामहे ।
भगः । अनुऽप्रयुङ्क्ताम् । इन्द्रः । एतु । पुरःऽगवः ॥ ४० ॥

वह भूमि हमको उस धनको देवे, कि-जिसकी हम कामना कर रहे हैं । भाग्य हमको प्रेरणा करे इन्द्र आगे २ चलें ॥ ४० ॥

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः ।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः ।
सा नो भूमिः प्र णुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु ॥ ४१ ॥

यस्याम् । गायन्ति । नृत्यन्ति । भूम्याम् । मर्त्याः । विऽऐलबाः ।
युध्यन्ते । यस्याम् । आऽक्रन्दः । यस्याम् । वदति । दुन्दुभिः ।
सा । नः । भूमिः । प्र । नुदताम् । सऽपत्नान् । असपत्नम् । मा ।
पृथिवी । कृणोतु ॥ ४१ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिस भूमि पर नेत्ररोगरहित मनुष्य गाते हैं और नाचते हैं और जिस पर युद्ध करते हैं, जिस पर रोवा पिटाई मचती है और जिस पर दुन्दुभि बजती है, वह पृथ्वी मेरे शत्रुओंको खदेड़ देय इस प्रकार यह पृथिवी मुझको शत्रुरहित कर देय ॥ ४१ ॥

यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः ।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोस्तु वर्षमेदसे ॥ ४२ ॥

यस्याम् । अन्नम् । व्रीहिऽयवौ । यस्याः । इमाः । पञ्च । कृष्टयः ।
भूम्यै । पर्जन्यऽपत्न्यै । नमः । अस्तु । वर्षऽमेदसे ॥ ४२ ॥

जिस पृथ्वीमें धान और जौं होते हैं, ये पाँच खेतियें जिसकी हैं, उस वर्षारूपी मेद वाली पर्जन्यके द्वारा पालिता पृथ्वीके लिये प्रणाम है ॥ ४२ ॥

यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते ।
प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भामाशामाशां रण्यां नः
कृणोतु ॥ ४३ ॥

यस्याः । पुरः । देवऽकृताः । क्षेत्रे । यस्याः । विऽकुर्वते ।
प्रजाऽपतिः । पृथिवीम् । विश्वऽगर्भाम् । आशाम्ऽआशाम् । रण्याम् ।
नः । कृणोतु ॥ ४३ ॥

जिस पृथिवीके सामने क्षेत्रमें देवताओंके निर्मित हिंसक पशु अनेक प्रकारकी क्रीड़ा करते रहते हैं, प्रजापति देवता, उस समस्त विश्वको अपने भीतर धारण करने वाली पृथ्वीकी प्रत्येक दिशा को हमारे लिये रमणीय बनावें ॥ ४३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे ।
वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना

निऽधिम् । बिभ्रती । बहुऽधा । गुहा । वसु । मणिम् । हिरण्यम् । पृथिवी । ददातु । मे ।

वसूनि । नः । वसुऽदा । रासमाना । देवी । दधातु । सुऽमनस्यमाना ॥ ४४ ॥

अनेक स्थलोंमें परम गुप्त भावसे निधियोंको धारण करने वाली, पृथिवी देवी मुझको वसु मणि और सुवर्ण देवे । धनदात्री पृथिवी देवी मनमें हम पर प्रसन्न होकर वरदान देती हुई हमको वसु मणि और सुवर्ण देवे ॥ ४४ ॥

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम् ।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती

जनम् । बिभ्रती । बहुऽधा । विऽवाचसम् । नानाऽधर्माणम् । पृथिवी । यथाऽओकसम् ।

सहस्रम् । धाराः । द्रविणस्य । मे । दुहाम् । ध्रुवाऽइव । धेनुः । अनपऽस्फुरन्ती ॥ ४५ ॥

स्थानके अनुसार अनेक प्रकारके धर्म वाले और अनेक प्रकार की भाषा बोलने वाले मनुष्योंको धारण करने वाली पृथिवी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवी, न हिलने वाली धेनुकी समान मेरे निमित्त धनकी सहस्रों धाराओंको दुहे ॥ ४५ ॥

यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा हेमन्तजब्धो भृमलो गुहा शये ।
क्रिमिर्जिन्वत् पृथिवि यद्यदेजति प्रावृषि तन्नः सर्पन्मोप सृपद् यच्छिवं तेन नो मृड ॥ ४६ ॥

यः । ते । सर्पः । वृश्चिकः । तृष्टऽदंश्मा । हेमन्तऽजब्धः । भृमलः । गुहा । शये ।
क्रिमिः । जिन्वत् । पृथिवि । यत्ऽयत् । एजति । प्रावृषि । तत् । नः । सर्पत् । मा । उप । सृपत् । यत् । शिवम् । तेन । नः । मृड ४६

हे पृथिवी देवि ! जो तुममें सर्प हैं और जिनका दंशन तृषा लगाने वाला है ऐसे प्राणी हैं, तथा विच्छू हैं और जो भृमल हेमन्त ऋतुमें डंकको नमा कर गुहामें पड़ा रहता है ये सब वर्षा ऋतुमें प्रसन्नतापूर्वक घूमते हुए प्राणी तथा जो रेंगने वाले (विषैले प्राणी हैं) वे मेरे पास न आवें, जो कल्याण करने वाला प्राणिसमूह है वह मेरे पास आवे उससे आप मुझको सुख दीजिये ४६

ये ते पन्थानो बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे ।
यैः संचरन्त्युभये भद्रपापास्तं पन्थानं जयेमानमित्रमतस्करं यच्छिवं तेन नो मृड ॥ ४७ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ये । ते । पन्थानः । बहवः । जनऽअयनाः । रथस्य । वर्त्म ।

अनसा । च । यातवे ।

यैः । सम्ऽचरन्ति । उभये । भद्रऽपापाः । तम् । पन्थानम् । जयेम ।

अनमित्रम् । अतस्करम् । यत् । शिवम् । तेन । नः । मृड ॥४७॥

हे पृथिवी देवि ! मनुष्योंके आने जानेके जो तेरे मार्ग हैं, रथ और गाड़ियोंके चलनेका जो तेरा मार्ग है, पुण्यात्मा और पापी ये दोनों जिन मार्गोंसे विचरण करते हैं, जो कल्याणप्रदमार्ग है उस चोररहित और शत्रुरहित मार्गको हम प्राप्त करें, उस मार्गसे आप हमको सुख दीजिये ॥ ४७ ॥

मल्वं बिभ्रती गुरुभृद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः ।

वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय

मल्वम् । बिभ्रती । गुरुऽभृत् । भद्रऽपापस्य । निऽधनम् । तितिक्षुः ।

वराहेण । पृथिवी । सम्ऽविदाना । सूकराय । वि । जिहीते । मृगाय

शत्रुको भी धारण करने वाली, पुण्य और पाप करने वालेके शवको सहने वाली, बड़े २ पदार्थोंको धारण करने वाली और वराह जिसको ढूँढ रहे थे वह पृथिवी वराहको ही प्राप्त हुई थी ४८

ये त आरण्याः पशवो मृगा वने हिताः सिंहा व्याघ्राः

पुरुषादश्चरन्ति ।

उलं वृकं पृथिवि दुच्छुनामित ऋक्षीकां रक्षो अप

बाधयास्मत् ॥ ४९ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ये । ते । आरण्याः । पशवः । मृगाः । वने । हिताः । सिंहाः ।

व्याघ्राः । पुरुषऽअदः । चरन्ति ।

उलम् । वृकम् । पृथिवि । दुच्छुनाम् । इतः । ऋक्षीकाम् । रक्षः ।

अप । बाधय । अस्मत् ॥ ४९ ॥

जो जङ्गली पशु पुरुषभक्षक सिंह व्याघ्र आदि वनमें विचरण करते हैं उनको उल नामक पशुको, भेड़ियेको ऋक्षीकाको और राक्षसोंको यहाँ हमारे पाससे दूर करके बाधित करिये ॥ ४९ ॥

ये गन्धर्वा अप्सरसो ये चारायाः किमीदिनः ।

पिशाचान्त्सर्वा रक्षांसि तानस्मद् भूमे यावय ५०

ये । गन्धर्वाः । अप्सरसः । ये । च । अरायाः । किमीदिनः ।

पिशाचान् । सर्वा । रक्षांसि । तान् । अस्मत् । भूमे । यवय ५०

हे भूमे ! जो गंधर्व और अप्सरायें हैं और जो दानप्रतिबंधक राक्षस हैं, उनको और सकल पिशाच तथा राक्षसोंको हमसे अलग कर ॥ ५० ॥

यां द्विपादः पक्षिणः संपतन्ति हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि ।

यस्यां वातो मातरिश्वेयते रजांसि कृण्वंश्च्यावयंश्च वृक्षान् ।

वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चिः ॥ ५१ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

याम् । द्विऽपादः । पक्षिणः । सम्ऽपतन्ति । हंसाः । सुऽपर्णाः ।

शकुनाः । वयांसि ।

यस्याम् । वातः । मातरिश्वाः । ईयते । रजांसि । कृण्वन् । च्यवयन् ।

च । वृक्षान् ।

वातस्य । प्रऽवाम् । उपऽवाम् । अनु । वाति । अर्चिः ॥ ५१ ॥

जिस पृथ्वी पर दो पैर वाले हंस गीध कौए आदि पक्षी विचरण करते हैं जिस पर मातरिश्वा वायु धूल उड़ाता हुआ और वृक्षोंको गिराता हुआ चलता है और वायुके श्रेष्ठतासे चलने पर वा समीपमें चलने पर अग्निदेव चलते हैं ॥ ५१ ॥

यस्यां कृष्णमरुणं च संहिते अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता सा नो दधातु भद्रया प्रिये धामनिधामनि ॥ ५२ ॥

यस्याम् । कृष्णम् । अरुणम् । च । संहिते इति सम्ऽहिते ।

अहोरात्रे इति । विहिते इति विऽहिते । भूम्याम् । अधि ।

वर्षेण । भूमिः । पृथिवी । वृता । आऽवृता । सा । नः । दधातु ।

भद्रया । प्रिये । धामनिऽधामनि ॥ ५२ ॥

जिस पृथ्वीके ऊपर काले और प्रातःकालके समय लाल दिन रात्रि मिले हुए स्थित रहते हैं। और जो पृथिवी वर्षासे व्याप्त होती रहती है, वह पृथिवी हमको अपनी कल्याणमयी चित्तवृत्तिसे प्रियधाममें स्थापित करे ॥ ५२ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्यौश्च म इदं पृथिवी चान्तरिक्षं च मे व्यचः ।
अग्निः सूर्य आपो मेधां विश्वे देवाश्च सं ददुः ५३

द्यौः । च । मे । इदम् । पृथिवी । च । अन्तरिक्षम् । च । मे ।
व्यचः ।
अग्निः । सूर्यः । आपः । मेधाम् । विश्वे । देवाः । च । सम् । ददुः

द्यौने पृथिवीने अन्तरिक्षने अग्निने सूर्यने जलने मेधाने तथा समस्त देवताओंने मुझको अनेक प्रकारसे चलनेकी शक्ति दी है ५३

अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम् ।
अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः ।५४।

अहम् । अस्मि । सहमानः । उत्तरः । नाम । भूम्याम् ।
अभीषाट् । अस्मि । विश्वाषाट् । आशाम्ऽआशाम् । विऽससहिः

मैं शत्रुओंको तिरस्कृत करने वाला पृथ्वीमें उत्तम रूपमें प्रसिद्ध हूँ, मैं अभिमुख जाकर शत्रुओंका तिरस्कार करने वाला होऊँ, सब प्रकारसे तिरस्कार करने वाला होऊँ, मैं प्रत्येक दिशाके शत्रु को भली प्रकार दबा दूँ ॥ ५४ ॥

अदो यद् देवि प्रथमाना पुरस्ताद् देवैरुक्ता व्यसर्पो महित्वम् ।
आ त्वा सुभूतमविशत् तदानीमकल्पयथाः प्रदिशश्चतस्रः ॥ ५५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अदः । यत् । देवि । प्रथमाना । पुरस्तात् । देवैः । उक्ता ।

विऽअसर्पः । महिऽत्वम् ।

आ । त्वा । सुऽभूतम् । अविशत् । तदानीम् । अकल्पयथाः ।

प्रऽदिशः । चतस्रः ॥ ५५ ॥

हे देवि ! पहिले विस्तृत होते समय देवताओंने तुमसे कहा था, कि—हे महि ! तुम विस्तृत होओ, उस समय तुममें सुन्दर भूत-समूहने प्रवेश किया था और उसी समय तुमने चार श्रेष्ठ दिशाओं की कल्पनाकी थी ॥ ५५ ॥

ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम् ।

ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते ॥ ५६ ॥

ये । ग्रामाः । यत् । अरण्यम् । याः । सभाः । अधि । भूम्याम् ।

ये । सम्ऽग्रामाः । सम्ऽइतयः । तेषु । चारु । वदेम । ते ॥५६॥

जो भूमि पर ग्राम हैं, जो वन हैं, और जो सभाएँ हैं, जो संग्राम होते हैं, जो युद्धमन्त्रणाएँ होती हैं, उन सबमें हे पृथ्वि ! हम सुन्दरतापूर्वक तेरी स्तुति करते हैं ॥ ५६ ॥

अश्व इव रजो दुधुवे वि तान् जनान् य आक्षियन्

पृथिवीं यादजायत ।

मन्द्राग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा वनस्पतीनां गृभिरोष-

धीनाम् ॥ ५७ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अश्वःऽइव। रजः दुधुवे। वि। तान्। जनान्। ये। आऽअक्षियन्।

पृथिवीम्। यात्। अजायत।

मन्द्रा। अग्रऽइत्वरी। भुवनस्य। गोपाः। वनस्पतीनाम्। गृभिः।

ओषधीनाम्॥ ५७॥

जो पदार्थ पृथ्वीमें उत्पन्न हुए हैं वे पदार्थ जो पृथ्वी पर निवास करते हैं उन पर घोड़ेकी समान धूल उड़ाते हैं, यह पृथिवी मंद्रा है, इत्वरी है, औषधि और वनस्पतियोंके (रोगनिवारक अभयप्रद) वचनोंसे भुवनका पालन करती है॥ ५७॥

यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा

त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान् हन्मि दोधतः ५८

यत्। वदामि। मधुऽमत्। तत्। वदामि। यत्। ईक्षे। तत्।

वनन्ति। मा।

त्विषिऽमान्। अस्मि। जूतिऽमान्। अव। अन्यान्। हन्मि।

दोधतः॥ ५८॥

मैं जो कुछ उच्चारण करूँ वह मधुरतासे भरा हुआ हो, जिसको मैं देखूँ वह मेरा सेवन करने लगे। मैं दीप्ति वाला रहूँ, वेग वाला रहूँ दूसरोंकी रक्षा करूँ और जो मुझको कँपावें उनको मैं मार डालूँ

शन्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी पयस्वती।

भूमिरधि ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह॥ ५९॥

शन्तिऽवा। सुरभिः। स्योना। कीलालऽऊध्नी। पयस्वती।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूमिः । अधि । ब्रवीतु । मे । पृथिवी । पयसा । सह ॥ ५९ ॥

शान्तिमयी सुखदायिनी अन्नके देन वाली पयस्वती पृथिवी अपने दुग्धकी समान सार पदार्थके साथ मेरे विषयमें पक्षपात भरा वचन कहे ॥ ५९ ॥

यामन्वैच्छद्धविषा विश्वकर्मान्तरर्णवे रजसि प्रविष्टाम्
भुजिष्यं१ पात्रं निहितं गुहा यदाविर्भोगे अभवन्मातृ-
मद्भ्यः ॥ ६० ॥

याम् । अनुऽऐच्छत् । हविषा । विश्वऽकर्मा । अन्तः । अर्णवे ।
रजसि । प्रऽविष्टाम् ।
भुजिष्यम् । पात्रम् । निऽहितम् । गुहा । यत् । आविः । भोगे ।
अभवत् । मातृमत्ऽभ्यः ॥ ६० ॥

जलके भीतर प्रविष्ट हो रजोगुणी राक्षसोंके चक्करमें पड़ी हुई जिस पृथिवीको सकल कर्म करने वाले विश्वकर्मा–परमात्माने हवि से प्राप्त करनेकी इच्छा की थी जो भुजिष्य पात्र गुप्त रहता है वह माता वालोंके लिये भोगके समय प्रकट होता है ॥ ६० ॥

त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुघा पप्रथाना।
यत् त ऊनं तत् त आ पूरयाति प्रजापतिः प्रथमजा
ऋतस्य ॥ ६१ ॥

त्वम् । असि । आऽवपनी । जनानाम् । अदितिः । कामऽदुघा ।
पप्रथाना ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यत् । ते । ऊनम् । तत् । ते । आ । पूरयाति । प्रजाऽपतिः ।

प्रथमऽजाः । ऋतस्य ॥ ६१ ॥

तू इस संसारकी क्षेत्ररूप है, अदीना है, मनोरथोंको पूर्ण करने वाली है, विस्तृत है, हे पृथिवि ! तेरा जो भाग कम होजाता है उसको ब्रह्मसे प्रथम प्रकट हुए प्रजापति पूर्ण कर देते हैं ॥ ६१ ॥

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि

प्रसूताः ।

दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम

उपऽस्थाः । ते । अनमीवाः । अयक्ष्मा । अस्मभ्यम् । सन्तु । पृथिवि ।

प्रऽसूताः ।

दीर्घम् । नः । आयुः । प्रतिऽबुध्यमानाः । वयम् । तुभ्यम् । बलिऽहृतः ।

स्याम ॥ ६२ ॥

तेरे क्रोडरूप प्रकट हुए द्वीप हमारे लिये रोगरहित और विशेषतः यक्ष्मारोगसे रहित रहें, हम अपनी दीर्घ आयुको समझते हुए तेरे लिये बलि देने वाले बने रहें ॥ ६२ ॥

भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ।

संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम् ६३

भूमे । मातः । नि । धेहि । मा । भद्रया । सुऽप्रतिस्थितम् ।

सम्ऽविदाना । दिवा । कवे । श्रियाम् । मा । धेहि । भूत्याम् ६३

प्रथमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

इति प्रथमोनुवाकः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे मातः भूमि ! मुझको कल्याणकारिणी प्रतिष्ठासे सुप्रतिष्ठित करके स्थापित करिये, हे कवे ! मुझे स्वर्ग प्राप्त कराइये तथा मुझको लक्ष्मी और विभूतिमें स्थापित करिये ॥ ६३ ॥ (६)

प्रथम अनुवाकमें प्रथम सूक्त और प्रथम अनुवाक समाप्त (४९१)

क्रव्याद् नाम योग्निस्तद्विषयं सूक्तम् एतत् । त्रयोग्नयो भवन्ति । आमात्क्रव्याद्धव्यवाह इति । आमम् अपक्वम् अत्तीति आमाद् लौकिकोग्निः "येनेदं मनुष्याः पक्त्वाश्नन्ति" इति शतपथे [१. २. १. ४] । क्रव्यं शवदाहे मांसम् अत्तीति क्रव्याद् घोरस्वरूपश्चिताग्निः पित्र्यः "येन पुरुषं दहन्ति स क्रव्याद्" इति तत्रैव । हव्यं पक्वं देवयजन आहुतम् अन्नम् अत्तीति वा देवान् प्रति तदन्नं वहतीति वा समिद्धो हव्यवाट् यागयोग्योग्निः । आमात्क्रव्यादौ यागयोग्यौ न भवतः । अत्र क्रव्यादं घोरस्वरूपम् अग्निम् अनुलक्ष्य सूक्तं प्रवर्तते । न केवलं क्रव्याच्छवदाहे शवमांसम् अत्ति अपि तु घोरत्वाद् यक्ष्मादीन् बहून् रोगान् मृत्युं च बहुविधम् आवहति । तथैव नानापत्कारको भवति । तास्ता आपदस्तांस्तान् रोगांस्तं तं च मृत्युं सूक्तकर्ता प्रार्थनया परिहारयति । अपि च क्रव्यादो यद् घोरं रूपं तेन स शत्रून् मारयित्विति प्रार्थयते । सर्वाणि पापानि क्रव्याद् अपहरत्वित्याशास्ते । तथैव क्रव्यादो नाशाय गार्हपत्यस्याग्नेः प्रार्थना । क्रव्यादोग्नेर्ये पर्युपासकास्ते नाशमाप्नुवन्तीत्याह ॥

सांप्रदायिकाः क्रव्याच्छमने विनियुञ्जते । क्रव्यादं शमयिष्यन् क्रव्य च्छमनकामः कौशिकेनोक्तप्रकारेण कर्म करोति । तत् सर्वं "पित्र्यमग्निं शमयिष्यन् ज्येष्ठस्य चाविभक्तिनः" इत्यादि नवमेध्याये चतुर्थकण्डिकां यावत् प्रपञ्चितं द्रष्टव्यम् ॥

यह सूक्त क्रव्याद् नामक अग्निपरक है । आमाद् क्रव्याद् और हव्यवाट् भेदसे अग्निके तीन भेद हैं । जो अपक्व वस्तुका भक्षण करता है वह लौकिक-अग्नि आमाद् कहलाता है । शत-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पथब्राह्मण १ । २ । १ । ४ में भी कहा है, कि–"येनेदं मनुष्याः पक्त्वाश्नन्ति ।–जिससे पकाकर पुरुष भक्षण करते हैं (वह आमाद् अग्निकहलाता है)" ।। शवदाहमें मांस क्रव्यका भक्षण करने वाला वह घोररूप चिताकी अग्नि क्रव्याद् कहलाता है ।। इसी बात को शतपथब्राह्मणमें तहाँ ही कहा है, कि–"येन पुरुषं दहन्ति स क्रव्याद् ।।" हव्य पक्व देवयजनमें आहुत अन्नका भक्षण करने वाला वा देवताओंको उस हव्यको पहुँचाने वाला अग्नि हव्य-वाट् कहलाता है यह हव्यवाट् अग्नि यागके योग्य होता है । आत्माद् और क्रव्याद् अग्नि यागके योग्य नहीं होते हैं । यहाँ घोरस्वरूप क्रव्याद् अग्निको लक्ष्यमें रख कर सूक्त प्रवर्तित होता है । क्रव्याद् अग्नि शवदाहके समय मांसका ही भक्षण नहीं करता है, किन्तु घोर होनेसे यक्ष्मा आदि बहुतसे रोगोंको और अनेक प्रकारसे मृत्युको भी देता है तथा अनेक प्रकारकी आपत्तियोंको देता है । उन आपत्ति रोग और मृत्युको सूक्तकर्ता प्रार्थनाके द्वारा दूर कराता है । और यह प्रार्थना करता है, कि–"क्रव्याद्का जो घोररूप है वह शत्रुओंका संहार करे" और यह आशीर्वाद माँगता है, कि–क्रव्याद् सब पापोंको दूर करे" तथा क्रव्याद्का नाश करनेके लिये गार्हपत्य अग्निकी प्रार्थना की है । और यह कहा है, कि–जो क्रव्याद् अग्निके उपासक हैं वे नाशको प्राप्त होजाते हैं ।

साम्प्रदायिक पुरुष इसका क्रव्याच्छमनमें विनियोग करते हैं । क्रव्याद् अग्निको शमन करना चाहने वाला क्रव्याद् अग्निको शान्त करना चाहने वाला कौशिककी कही हुई रीतिके अनुसार काम करे । इस सबका नवम अध्यायकी चतुर्थकण्डिकामें "पित्र्य-मग्निं शमयिष्यन् ज्येष्ठस्य चाविभक्तिनः" में वर्णन है ।

नडमा रोह न ते अत्र लोक इदं सीसं भागधेयं त एहि ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यो गोषु यक्ष्मः पुरुषेषु यक्ष्मस्तेन त्वं साकमधराङ् परेहि ॥ १ ॥

नडम् । आ । रोह । न । ते । अत्र । लोकः । इदम् । सीसम् । भागऽधेयम् । ते । आ । इहि ।

यः । गोषु । यक्ष्मः । पुरुषेषु । यक्ष्मः । तेन । त्वम् । साकम् । अधराङ् । परा । इहि ॥ १ ॥

हे क्रव्याद् अग्ने ! तू चटाई बनानेकी घास नड पर चढ़, यहाँ तेरा स्थान नहीं है, यह सीसा तेरा भाग है तू यहाँ आ । जो यक्ष्मा रोग गौओंमें है, जो यक्ष्मा रोग पुरुषोंमें है, उसके साथ तू निकल कर दूर चला जा ॥ १ ॥

अघशंसदुःशंसाभ्यां करेणानुकरेण च ।
यक्ष्मं च सर्वं तेनेतो मृत्युं च निरजामसि ॥ २ ॥

अघशंसदुःशंसाभ्याम् । करेण । अनुऽकरेण । च ।

यक्ष्मम् । च । सर्वम् । तेन । इतः । मृत्युम् । च । निः । अजामसि २

मैं पापोंको नष्ट करने वाले और दुर्भावोंको नष्ट करने वाले कर और अनुकरसे यक्ष्मारोगको दूर करता हूँ और उसके द्वारा मृत्युको भी दूर फेंकता हूँ ॥ २ ॥

निरितो मृत्युं निर्ऋतिं निररातिमजामसि ।
यो नो द्वेष्टि तमग्ने अक्रव्याद् यमु द्विष्मस्तमु ते प्र सुवामसि ॥ ३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निः । इतः । मृत्युम् । निःऽऋतिम् । निः । अरातिम् । अजामसि ।
यः । नः । द्वेष्टि । तम् । अद्धि । अग्ने । अक्रव्यऽअत् । यम् ।
ऊं इति । द्विष्मः । तम् । ऊं इति । ते । प्र । सुवामसि ॥ ३ ॥

हे अक्रव्याद् अग्ने ! हम यहाँसे मृत्युको दूर करते हैं पापदेवता निर्ऋतिको दूर भगाते हैं, शत्रुको दूर भगाते हैं, हे अग्ने ! जो हमसे द्वेष करता है उसका तू भक्षण कर हम जिससे द्वेष करते हैं उसको हम तेरे लिये प्रेरणा करते हैं ॥ ३ ॥

यद्यग्निः क्रव्याद् यदि वा व्याघ्र इमं गोष्ठं प्रविवेशान्योकाः ।
तं माषाज्यं कृत्वा प्र हिणोमि दूरं स गच्छत्वप्सुषदोऽप्यग्नीन् ॥ ४ ॥

यदि । अग्निः । क्रव्यऽअत् । यदि । वा । व्याघ्रः । इमम् । गोऽस्थम् । प्रऽविवेश । अनिऽओकाः ।
तम् । माषऽआज्यम् । कृत्वा । प्र । हिणोमि । दूरम् । सः ।
गच्छतु । अप्सुऽसदः । अपि । अग्नीन् ॥ ४ ॥

यदि क्रव्याद् अग्निने वा कच्चे मांसका भक्षण करने वाले व्याघ्रने कहीं और स्थान न पानेसे यहाँ गोष्ठमें प्रवेश किया है, तो मैं उसको माषाज्य करके दूर फेंकता हूँ, वह जलमें रहने वाली अग्नियोंको प्राप्त होवे ॥ ४ ॥

यत् त्वा क्रुद्धाः प्रचक्रुर्मन्युना पुरुषे मृते ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुकल्पमग्ने तत् त्वया पुनस्त्वोद्दीपयामसि ॥ ५ ॥

यत् । त्वा । क्रुद्धाः । प्रऽचक्रुः । मन्युना । पुरुषे । मृते ।

सुऽकल्पम् । अग्ने । तत् । त्वया । पुनः । त्वा । उत् । दीपयामसि ५

पुरुषके मरने पर क्रोधमें भरे प्राणियोंने दीनतामें भर कर जो तुझको किया था, वह काम भली भाँति पूर्ण होगया सो हम अब फिर तुझको तुझसे ही उद्दीप्त करते हैं ॥ ५ ॥

पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः पुनर्ब्रह्मा वसुनीतिरग्ने ।

पुनस्त्वा ब्रह्मणस्पतिराधाद् दीर्घायुत्वाय शतशारदाय

पुनः । त्वा । आदित्याः । रुद्राः । वसवः । पुनः । ब्रह्मा । वसुऽनीतिः । अग्ने ।

पुनः । त्वा । ब्रह्मणः । पतिः । आ । अधात् । दीर्घायुऽत्वाय । शतऽशारदाय ॥ ६ ॥

हे अग्ने ! आदित्य रुद्र वसु ब्रह्मा, वसुनीति और ब्रह्मणस्पतिने तुझको सौ वर्षकी दीर्घायु पानेके लिये फिर स्थापित किया था ॥ ६ ॥

यो अग्निः क्रव्यात् प्रविवेश नो गृहमिमं पश्यन्नितरं जातवेदसम् ।

हरामि पितृयज्ञाय दूरं स घर्ममिन्धां परमे सधस्थे

यः । अग्निः । क्रव्यऽअत् । प्रऽविवेश । नः । गृहम् । इमम् ।

पश्यन् । इतरम् । जातऽवेदसम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तम्। हरामि। पितृऽयज्ञाय दूरम्। सः। घर्मम्। इन्धाम्। परमे। सधऽस्थे ॥ ७ ॥

यदि क्रव्याद् अग्निने दूसरे अग्निके देखनेके लिये हमारे इस घरमें प्रवेश किया है तो मैं उसको पितृयज्ञ करनेके लिये दूर निकालता हूँ, वह एक साथ रहनेके स्थान परमव्योममें घर्मको प्रदीप्त करे ॥ ७ ॥

क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः।
इहायमितरो जातवेद देवो देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन्

क्रव्यऽअदम्। अग्निम्। प्र। हिणोमि। दूरम्। यमऽराज्ञः। गच्छतु। रिप्रऽवाहः।

इह। अयम्। इतरः। जातऽवेदाः। देवः। देवेभ्यः। हव्यम्। वहतु। प्रऽजानन् ॥ ८ ॥

मैं क्रव्याद् अग्निको दूर भगाता हूँ, वह पापको लेकर यमराजके पास चला जाये, और यहाँ पर यह दूसरे जातवेदा अग्निदेव देवताओंके लिये हविको पहुँचावें ॥ ८ ॥

क्रव्यादमग्निमिषितो हरामि जनान् दृंहन्तं वज्रेण मृत्युम्
नि तं शास्मि गार्हपत्येन विद्वान् पितॄणां लोके भागो अस्तु ॥ ९ ॥

क्रव्यऽअदम्। अग्निम्। इषितः। हरामि। जनान्। दृंहन्तम्। वज्रेण। मृत्युम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नि । तम् । शास्मि । गार्हऽपत्येन । विद्वान् । पितॄणाम् । लोके ।

अपि । भागः । अस्तु ॥ ९ ॥

मनुष्योंकी मृत्युको दृढ करते हुए क्रव्याद् अग्निको मैं मन्त्र-शक्तिसे प्रेरित होकर मन्त्र–वज्रके द्वारा भगाता हूँ, मैं विद्वान् पुरुष गार्हपत्यके द्वारा इस अग्निका शासन करता हूँ, यह लोक में पितरोंका भाग होवे ॥ ९ ॥

क्रव्यादमग्निं शशमानमुक्थ्यं१ प्र हिणोमि पथिभिः पितृयाणैः ।

मा देवयानैः पुनरा गा अत्रैवैधि पितृषु जागृहि त्वम् ॥ १० ॥

क्रव्यऽअदम् । अग्निम् । शशमानम् । उक्थ्यम् । प्र । हिणोमि ।

पथिऽभिः । पितृऽयानैः ।

मा । देवऽयानैः । पुनः । आ । गाः । अत्र । एव । एधि ।

पितृषु । जागृहि । त्वम् ॥ १० ॥

उक्थ्यकी प्रशंसा करने वाले क्रव्याद् अग्निको मैं पितरोंके जानेके मार्गमें प्रेरित करता हूँ, तू देवयानोंसे फिर न आना तू तहाँ ही पितरोंमें बढ़ और पितरोंमें ही जागता रह ॥ १० ॥ (७)

समिन्धते संकसुकं स्वस्तये शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जहाति रिप्रमत्येन एति समिद्धो अग्निः सुपुना पुनाति ॥ ११ ॥

सम्। इन्धते। सम्ऽकसुकम्। स्वस्तये। शुद्धाः। भवन्तः। शुचयः। पावकाः।

जहाति। रिप्रम्। अति। एनः। एति। सम्ऽइद्धः। अग्निः। सुऽपुना। पुनाति ॥ ११ ॥

दमकते हुए पवित्र करने वाले अग्नि शुद्ध होनेके समय स्वस्ति के लिये शवभक्षक अग्निको दीप्त करते हैं तब यह पापको छोड़ देता है, पापका उल्लंघन कर जाता है इस दशामें प्रज्वलित होता हुआ यह पावक अग्नि पवित्र करता है ॥ ११ ॥

देवो अग्निः संकसुको दिवस्पृष्ठान्यारुहत्।
मुच्यमानो निरेणसोमोगस्माँ अशस्त्याः ॥ १२ ॥

देवः। अग्निः। अम्ऽकसुकः। दिवः। पृष्ठानि। आ। अरुहत्।

मुच्यमानः। निः। एनसः। अमोक्। अस्मान्। अशस्त्याः १२

शवभक्षक अग्निदेव स्वयं पापसे छूटते हुए और हमको अकल्याणसे बचाते हुए स्वर्ग पर आरोहण करते हैं ॥ १२ ॥

अस्मिन् वयं संकसुके अग्नौ रिप्राणि मृज्महे।
अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ण आयूंषि तारिषत् १३

अस्मिन्। वयम्। सम्ऽकसुके। अग्नौ। रिप्राणि। मृज्महे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अभूम । यज्ञियाः । शुद्धाः । प्र । नः । आयूंषि । तारिषत् १३

हम इस शवभक्षक अग्निमें अपने पापोंको शुद्ध कर देते हैं हम यज्ञिय पुरुष शुद्ध होगए हैं, यह अग्निदेव हमारी आयुको पूर्ण करें

संकसुको विकसुको निर्ऋथो यश्च निस्वरः ।
ते ते यक्ष्मं सवेदसो दूराद् दूरमनीनशन् ॥ १४ ॥

सम्ऽकसुकः । विऽकसुकः । निःऽऋथः । यः । च । निऽस्वरः ।
ते । ते । यक्ष्मम् । सऽवेदसः । दूरात् । दूरम् । अनीनशन् १४

जो संकसुक विकसुक निर्ऋथ और निस्वर अग्नि थे वे यक्ष्मा को जानने वाले यक्ष्माके साथ ही दूरसे दूर पर जाकर नष्ट हो गए हैं ॥ १४ ॥

यो नो अश्वेषु वीरेषु यो नो गोष्वजाविषु ।
क्रव्यादं निर्णुदामसि यो अग्निर्जनयोपनः ॥ १५ ॥

यः । नः । अश्वेषु । वीरेषु । यः । नः । गोषु । अजऽअविषु ।
क्रव्यऽअदम् । निः । नुदामसि । यः । अग्निः । जनऽयोपनः १५

मनुष्योंको मोहमें डालने वाला जो क्रव्याद् अग्नि हमारे घोड़ों में, वीर्यसे उत्पन्न होने वाले पुत्र पौत्र आदि वीरोंमें, गौओंमें और भेड़ बकरियोंमें घुस गया हो उसको हम दूर खदेड़ते हैं ॥ १५ ॥

अन्येभ्यस्त्वा पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यस्त्वा ।
निः क्रव्यादं नुदामसि यो अग्निर्जावितयोपनः १६

अन्येभ्यः । त्वा । पुरुषेभ्यः । गोभ्यः । अश्वेभ्यः । त्वा ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निः। क्रव्यऽअदम्। नुदामसि। यः। अग्निः। जीवितऽयोपनः १६

जीवनको गड़वड़ीमें डालने वाला जो अग्नि है उसको हम मंत्र-शक्तिसे खदेड़ते हैं। हे क्रव्याद्! हम तुझको अन्य पुरुषोंसे गौओं से और घोड़ोंसे निकालते हैं ॥ १६ ॥

यस्मिन् देवा अमृजत यस्मिन् मनुष्या उत।
तस्मिन् घृतस्तावो मृष्ट्वा त्वमग्ने दिवं रुह ॥ १७ ॥

यस्मिन्। देवाः। अमृजत। यस्मिन्। मनुष्याः। उत।
तस्मिन्। घृतऽस्तावः। मृष्ट्वा। आ। त्वम्। अग्ने। दिवम्। रुह १७

जिसमें देवता और मनुष्य शुद्ध होते हैं, उसमें हे घृतस्ताव अग्ने! तू शुद्ध होकर स्वर्ग पर चढ़ ॥ १७ ॥

समिद्धो अग्न आहुत स नो माभ्यपक्रमीः।
अत्रैव दीदिहि द्यवि ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ १८ ॥

सम्ऽइद्धः। अग्ने। आऽहुत। सः। नः। मा। अभिऽअपक्रमीः।
अत्र। एव। दीदिहि। द्यवि। ज्योक्। च। सूर्यम्। दृशे ॥१८॥

हे गार्हपत्य अग्ने! तू भली प्रकार दीप्त होरहा है, तुझमें भली भाँति आहुति दी जारही है तू हमको न छोड़, यहाँ दीप्त हो और अन्तरिक्षके सूर्यको चिरकाल तक दिखानेके लिये दीप्त रह ॥१८॥

सीसे मृड्ढ्वं नडे मृड्ढ्वमग्नौ संकसुके च यत्।
अथो अव्यां रामायां शीर्षक्तिमुपबर्हणे ॥ १९ ॥

सीसे। मृड्ढ्वम्। नडे। मृड्ढ्वम्। अग्नौ। सम्ऽकसुके। च। यत्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथो इति । अव्याम् । रामायाम् । शीर्षक्तिम् । उपऽबर्हणे ॥१९॥

हे पुरुषों ! तुम शिरके रोगको सीसेमें शुद्ध करो नड नामक घासमें दूर करो, संकसुक अग्निमें शुद्ध करो भेड़में स्त्रीमें और तकियेमें शुद्ध करो ॥ १९ ॥

सीसे मलं सादयित्वा शीर्षक्तिमुपबर्हणे ।

अव्यामसिक्न्यां मृष्ट्वा शुद्धा भवत यज्ञियाः ॥२०॥

सीसे । मलम् । सादयित्वा । शीर्षक्तिम् । उपऽबर्हणे ।

अव्याम् । असिक्न्याम् । मृष्ट्वा । शुद्धा । भवत । यज्ञियाः २०

हे यज्ञियपुरुषों ! तुम मलको सीसेमें और शिरोरोगको तकिये में स्थापित करके और काली भेड़में शुद्ध करके शुद्ध होओ २०

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्त एष इतरो देवयानात् ।

चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमीहेमे वीरा बहवो भवन्तु २१

परम् । मृत्यो इति । अनु । परा । इहि । पन्थाम् । यः । ते ।

एषः । इतरः । देवऽयानात् ।

चक्षुष्मते । शृण्वते । ते । ब्रवीमि । इह । इमे । वीराः । बहवः ।

भवन्तु ॥ २१ ॥

हे मृत्यो ! देवयानके अतिरिक्त जो दूरका मार्ग है उस मार्गमें तू जा, तुझ नेत्र और कर्णसम्पन्नसे मैं कहता हूँ, कि—यहाँ पर हमारे यह बहुतसे पुत्र पौत्र आदि रहेंगे ॥ २१ ॥

इमे जीवा वि मृतैराववृत्रन्नभूद् भद्रा देवहूतिर्नो अद्य ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय सुवीरासो विदथमा वदेम ॥ २२ ॥

इमे । जीवाः । वि । मृतैः । आ । अववृत्रन् । अभूत् । भद्रा । देवऽहूतिः । नः । अद्य ।

प्राञ्चः । अगाम । नृतये । हसाय । सुऽवीरासः । विदथम् । आ । वदेम ॥ २२ ॥

देवताओंके निमित्त आहुति देना आज हमारे लिये कल्याणकारी हुआ है यह जीव मृत्युको दूर करने वाली शक्तियोंसे सम्पन्न होगए हैं, हम पूजनीयपुरुष सुन्दर पुत्रपौत्र आदि वीरों से सम्पन्न होकर नाचने और हँसनेके लिये आगए हैं हम यज्ञ की प्रशंसा करते हैं ॥ २२ ॥

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीस्तिरो मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥

इमम् । जीवेभ्यः । परिऽधिम् । दधामि । मा । एषाम् । नु । गात् । अपरः । अर्थम् । एतम् ।

शतम् । जीवन्तः । शरदः । पुरूचीः । तिरः । मृत्युम् । दधताम् । पर्वतेन ॥ २३ ॥

हे मनुष्यों ! तुम सौ वर्ष तक जीवित रहते हुए अनेक प्रकार के सत्कारोंको पाओ और पत्थरसे मृत्युको दबादो, मैं तुमको यह मंत्ररूपा परिधि देता हूँ, इन मनुष्योंके अतिरिक्त और कोई दूसरा प्राणी इस अर्थको न पासके ॥ २३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आ रोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यति स्थ।
तान् वस्त्वष्टा सुजनिमा सजोषाः सर्वमायुर्नयतु
जीवनाय ॥ २४ ॥

आ । रोहत । आयुः । जरसम् । वृणानाः । अनुऽपूर्वम् । यत-
मानाः । यति । स्थ ।
तान् । वः । त्वष्टा । सुऽजनिमा । सऽजोषाः । सर्वम् । आयुः । नयतु ।
जीवनाय ॥ २४ ॥

हे मनुष्यों ! तुम बुढ़ापे तककी आयुका वरण करते हुए और तैसी चेष्टा रखते हुए बुढ़ापे तककी आयुको पाओ, सुन्दर जन्म वाले, समान प्रीति वाले तुमको त्वष्टा देवता जीवनके लिये पूर्णायु देवें ॥ २४ ॥

यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथर्तव ऋतुभिर्यन्ति साकम्।
यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूंषि कल्पयैषाम्

यथा । अहानि । अनुऽपूर्वम् । भवन्ति । यथा । ऋतवः । ऋतुऽ-
भिः । यन्ति । साकम् ।
यथा । न । पूर्वम् । अपरः । जहाति । एव । धातः । आयूंषि ।
कल्पय । एषाम् ॥ २५ ॥

जैसे दिन एकके पीछे दूसरे चलते हैं, जैसे ऋतुएँ दूसरी ऋतुओंके साथ चली जाती हैं, जैसे पहिलेको नवीन नहीं त्याग देता है ऐसे ही हे धातः ! आप इनकी आयुको करिये ॥ २५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वं वीरयध्वं प्र तरता सखायः
अत्रा जहीत ये असन् दुरेवा अनमीवानुत्तरेमाभि
वाजान् ॥ २६ ॥

अश्मन्ऽवती । रीयते । सम् । रभध्वम् । वीरयध्वम् । प्र ।
तरत । सखायः ।

अत्र । जहीत । ये । असन् । दुःऽएवाः । अनमीवान् । उत् ।
तरेम । अभि । वाजान् ॥ २६ ॥

हे मित्रों ! यह पत्थर वाली नदी सुनाई आरही है, तुम वीरता करो और इसको तर जाओ, तुममें जो पाप हों उनको इसमें त्याग दो, फिर हम आरोग्यताप्रदायक वेगोंको तरें ॥ २६ ॥

उत्तिष्ठता प्र तरता सखायोऽश्मन्वती नदी स्यन्दत इयम्
अत्रा जहीत ये असन्नशिवाः शिवान्त्स्योनानुत्तरेमाभि
वाजान् ॥ २७ ॥

उत् । तिष्ठत । प्र । तरत । सखायः । अश्मन्ऽवती । नदी ।
स्यन्दते । इयम् ।

अत्र । जहीत । ये । असन् । अशिवाः । शिवान् । स्योनान् ।
उत् । तरेम । अभि । वाजान् ॥ २७ ॥

हे मित्रों ! उठो तैरो ! यह पत्थर वाली नदी शब्द कर रही है, तुम्हारे जो पाप हों उनको इसमें बहा दो, आओ ! हम कल्याणकारक सुखप्रद वेगोंको तरें ॥ २७ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैश्वदेवीं वर्चस आ रभध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।
अतिक्रामन्तो दुरिता पदानि शतं हिमा सर्ववीरा मदेम ॥ २८ ॥

वैश्वऽदेवीम् । वर्चसे । आ । रभध्वम् । शुद्धाः । भवन्तः । शुचयः । पावकाः ।
अतिऽक्रामन्तः । दुःऽइता । पदानि । शतम् । हिमाः । सर्वऽवीराः । मदेम ॥ २८ ॥

हे पवित्र करने वाले पावकों ! तुम पवित्र होनेके समय सम्पूर्ण देवताओंकी स्तुतिका आरंभ करो, हम पापोंका ऋक्पदोंसे अतिक्रमण करते हुए सौ हेमन्त ऋतुओं तक पुत्र पौत्र आदि सब वीरोंके साथ आनन्द पावें ॥ २८ ॥

उदीचीनैः पथिभिर्वायुमद्भिरतिक्रामन्तोवरान् परेभिः त्रिः सप्त कृत्व ऋषयः परेता मृत्युं प्रत्यौहन् पदयोपनेन

उदीचीनैः । पथिऽभिः । वायुमत्ऽभिः । अतिऽक्रामन्तः । अवरान् । परेभिः ।
त्रिः । सप्त । कृत्वः । ऋषयः । पराऽइतः । मृत्युम् । प्रति । औहन् । पदऽयोपनेन ॥ २९ ॥

परलोकमें जाते हुए वायुसे भरे उत्तरायणमार्गमें गमन करते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुए और निकृष्ट पुरुषोंका श्रेष्ठ तपके कारण उल्लंघन करते हुए ऋषियोंने पदयोपनके द्वारा इक्कीस वार मृत्युको लाँघा था २९

मृत्योः पदं योपयन्त एत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः आसीना मृत्युं नुदता सधस्थेथ जीवासो विदथमा वदेम ॥ ३० ॥

मृत्योः । पदम् । योपयन्तः । आ । इत । द्राघीयः । आयुः । प्रऽतरम् । दधानाः ।

आसीनाः । मृत्युम् । नुदत । सधऽस्थे । अथ । जीवासः । विदथम् । आ । वदेम ॥ ३० ॥

ये मृत्युके लक्ष्यको मोहमें डालने वाले ऋषि प्रकृष्टतासे पूर्ण होने वाली दीर्घायुको धारण करके बैठे हुए हैं, तुम भी मृत्युको खदेड़ो फिर हम सब एक साथ स्थित होनेके स्थान जीवलोकमें यज्ञकी वा घरकी वा ज्ञानकी प्रशंसा करें ॥ ३० ॥ (९)

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम् अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥ ३१ ॥

इमाः । नारीः । अविधवाः । सुऽपत्नीः । आऽअञ्जनेन । सर्पिषा । सम् । स्पृशन्ताम् ।

अनश्रवः । अनमीवाः । सुऽरत्नाः । आ । रोहन्तु । जनयः । योनिम् । अग्रे ॥ ३१ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ये स्त्रियें विधवा न होवें, शोभन पतिसे सम्पन्न रहें, और कान्ति देने वाले घीसे सम्पन्न रहें, आँसुओंसे रहित रहें, रोग-रहित रहें, शोभन आभूषणोंको धारण किये रहें और अपत्यजनन के लिये मनुष्ययोनिमें स्थित रहें ॥ ३१ ॥

व्याकरोमि हविषाहमेतौ तौ ब्रह्मणा व्य१हं कल्पयामि स्वधां पितृभ्यो अजरां कृणोमि दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि ॥ ३२ ॥

विऽआकरोमि । हविषा । अहम् । एतौ । तौ । ब्रह्मणा । वि । अहम् । कल्पयामि ।

स्वधाम् । पितृऽभ्यः । अजराम् । कृणोमि । दीर्घेण । आयुषा । सम् । इमान् । सृजामि ॥ ३२ ॥

मैं हविके द्वारा इन दोनों (पति पत्नियों) को मृत्युलोकमें प्रकट रखता हूँ और मंत्रशक्तिसे इनको भली प्रकार समर्थ करता हूँ और पितरोंकी (इनके द्वारा दी जाने वाली) स्वधाको अजर करता हूँ और इनको दीर्घायुसे संपन्न करता हूँ ॥ ३२ ॥

यो नो अग्निः पितरो हृत्स्व१न्तराविवेशामृता मर्त्येषु । मय्यहं तं परि गृह्णामि देवं मा सो अस्मान् द्विक्षत मा वयं तम् ॥ ३३ ॥

यः । नः । अग्निः । पितरः । हृत्ऽसु । अन्तः । आऽविवेश । अमृतः । मर्त्येषु ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मयि । अहम् । तम् । परि । गृह्णामि । देवम् । मा । सः । अस्मान् । द्विक्षत । मा । वयम् । तम् ॥ ३३ ॥

हे पितरो ! जो अविनाशी फलको देने वाला अग्नि हमारे हृदयमें प्रविष्ट है उस अग्निको मैं ग्रहण करता हूँ वह हमसे द्वेष न करे और हम भी उससे द्वेष न करें ॥ ३३ ॥

अपावृत्य गार्हपत्यात् क्रव्यादा प्रेत दक्षिणा ।
प्रियं पितृभ्य आत्मने ब्रह्मभ्यः कृणुता प्रियम् ।३४।

अपऽआवृत्य । गार्हऽपत्यात् । क्रव्यऽअदा । प्र । इत । दक्षिणा । प्रियम् । पितृऽभ्यः । आत्मने । ब्रह्मऽभ्यः । कृणुत । प्रियम् ३४

हे प्राणियों ! तुम मंत्रोंसे गार्हपत्य अग्निसे हट कर क्रव्याद् अग्निके द्वारा दक्षिण दिशामें जाओ तहाँ अपने लिये और अपने पितरोंके लिये प्रिय कार्यको करते रहो ॥ ३४ ॥

द्विभागधनमादाय प्र क्षिणात्यवर्त्या ।
अग्निः पुत्रस्य ज्येष्ठस्य यः क्रव्यादनिराहितः ।३५।

द्विभागऽधनम् । आऽदाय । प्र । क्षिणाति । अवर्त्या ।
अग्निः । पुत्रस्य । ज्येष्ठस्य । यः । क्रव्यऽअत् । अनिःऽआहितः ३५

जो पुरुष क्रव्याद् अग्निका भली प्रकार त्याग नहीं करता है वह अपने बड़े पुत्रके और अपने इस प्रकार दोनोंके धनको लेकर वृत्ति न पाता हुआ क्षीण होजाता है ॥ ३५ ॥

यत् कृषते यद् वनुते यच्च वस्नेन विन्दते ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वं मर्त्यस्य तन्नास्ति क्रव्याच्चेदनिराहितः ॥३६॥

यत् । कृषते । यत् । वनुते । यत् । च । वस्नेन । विन्दते ।

सर्वम् । मर्त्यस्य । तत् । न । अस्ति । क्रव्यऽअत् । च । इत् ।

अग्निःऽआहितः ॥ ३६ ॥

वह जो खेती करता है, जिस वस्तुका सेवन करता है और मूल्य देकर जिस वस्तुको प्राप्त करता है, यदि मनुष्य क्रव्याद् अग्निका सेवन करना न छोड़े तो पुरुषके ये सब नहींके बराबर होजाते हैं ॥ ३६ ॥

अयज्ञियो हतवर्चा भवति नैनेन हविरत्तवे ।

छिनत्ति कृष्या गोर्धनाद् यं क्रव्यादनुवर्तते ॥३७॥

अयज्ञियः । हतऽवर्चाः । भवति । न । एनेन । हविः । अत्तवे ।

छिनत्ति । कृष्याः । गोः । धनात् । यम् । क्रव्यऽअत् । अनुऽवर्तते

क्रव्याद् अग्निका सेवन करने वाला पुरुष यज्ञ करनेका पात्र नहीं रहता है, उसका तेज जाता रहता है और इसके द्वारा (बुलाये हुए देवता) हविका प्राशन करनेके लिये इसके समीप (नहीं आते हैं) जिस पुरुषका क्रव्याद् अनुवर्तन करता है उसको खेती से गौसे और धनसे छिन्न भिन्न कर डालता है ॥ ३७ ॥

मुहुर्गृध्यैः प्र वदत्यार्तिं मर्त्यो नीत्य ।

क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादनुविद्वान् वितावति ३८

मुहुः । गृध्यैः । प्र । वदति । आर्तिम् । मर्त्यः । निऽइत्य ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्रव्यऽअत् । यान् । अग्निः । अन्तिकात् । अनुऽविद्वान् । विऽतावति

अनुविद्वान् क्रव्याद् अग्नि जिनके समीपमें रह कर तपाता रहता है वह पुरुष परम व्यथाको पाकर वारम्वार स्पृहणीय वस्तुओंके लिये दीनता भरी वाणी बोलता रहता है ॥ ३८ ॥

ग्राह्या गृहाः सं सृज्यन्ते स्त्रिया यन्म्रियते पतिः ।
ब्रह्मैव विद्वानेष्यो ३ य क्रव्यादं निरादधत् ॥३९॥

ग्राह्या । गृहाः । सम् । सृज्यन्ते । स्त्रियाः । यत् । म्रियते । पतिः ।
ब्रह्मा । एव । विद्वान् । एष्यः । यः । क्रव्यऽअदम् । निःऽआदधत्

जो क्रव्याद् अग्निको निःशेषरूपसे पूर्णरूपसे–ग्रहण करता है तो उसके निमित्त कैदमें डालने वाले घर बनते हैं और स्त्रीका पति मर जाता है, (उस समय आपत्तिको दूर करनेके लिये) वेदवेत्ता विद्वान्की इच्छा करनी चाहिये ॥ ३९ ॥

यद् रिप्रं शमलं चकृम यच्च दुष्कृतम् ।
आपो मा तस्माच्छुम्भन्त्वग्नेः संकसुकाच्च यत् ४०

यत् । रिप्रम् । शमलम् । चकृम । यत् । च । दुःऽकृतम् ।
आपः । मा । तस्मात् । शुम्भन्तु । अग्नेः । सम्ऽकसुकात् । च ।
यत् ॥ ४० ॥

हम जिस पापको, जिस मलिन पापको और दुःखदायक फल वाले पापको कर चुके हैं उन पापोंसे और शवभक्षक अग्निस्पर्श के दोषसे जल मुझको शुद्ध करें ॥ ४० ॥

ता अधरादुदीचीरावृत्रन् प्रजानतीः पथिभिर्देवयानैः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर्वतस्य वृषभस्याधि पृष्ठे नवाश्चरन्ति सरितः पुराणीः

ताः । अधरात् । उदीचीः । आ । अववृत्रन् । प्रऽजानतीः । पथिऽभिः । देवऽयानैः ।

पर्वतस्य । वृषभस्य । अधि । पृष्ठे । नवाः । चरन्ति । सरितः । पुराणीः ॥ ४१ ॥

जो प्रकृष्टरूपसे होने वाले जल देवयानमार्गोंके द्वारा दक्षिणसे उत्तरके स्थानोंको घेर लेते हैं, फिर वे ही प्राचीन जल नवीन होकर वर्षक पर्वतके शिखर पर नदीरूपमें विचरण करते हैं ४१

अग्ने अक्रव्यान्निः क्रव्यादं नुदा देवयजनं वह ४२

अग्ने । अक्रव्यऽअत् । निः । क्रव्यऽअदम् । नुद । आ । देवऽयजनम् । वह ॥ ४२ ॥

हे क्रव्याद्भिन्न अक्रव्याद् गार्हपत्य अग्ने ! आप क्रव्याद् अग्निको दूर करिये और देवताओंकी पूजाकी सामग्रीको देवताओंके पास पहुँचाइये ॥ ४२ ॥

इमं क्रव्यादा विवेशायं क्रव्यादमन्वगात् ।
व्याघ्रौ कृत्वा नानानं तं हरामि शिवापरम् ॥४३॥

इमम् । क्रव्यऽअत् । आ । विवेश । अयम् । क्रव्यऽअदम् । अनु । अगात् ।

व्याघ्रौ । कृत्वा । नानानम् । तम् । हरामि । शिवऽअपरम् ४३

इस पुरुषमें क्रव्याद्ने प्रवेश कर लिया है, यह क्रव्याद्का अनु-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्तन करने लगा है मैं इन दोनोंको व्याघ्र करता हूँ अर्थात् व्याघ्र की समान दूरसे त्यागने योग्य समझता हूँ और इस शिव (कल्याण) से अपर अमङ्गलरूप अनेकोंको लेजाने वाली क्रव्याद् अग्निको दूर करता हूँ ॥ ४३ ॥

अन्तर्धिर्देवानां परिधिर्मनुष्याणा-
मग्निर्गार्हपत्य उभयानन्तरा श्रितः ॥ ४४ ॥

अन्तःऽधिः । देवानाम् । परिऽधिः । मनुष्याणाम् ।
अग्निः । गार्हऽपत्यः । उभयान् । अन्तरा । श्रितः ॥ ४४ ॥

यह देवताओंकी अन्तर्धि और मनुष्योंकी परिधि गार्हपत्य अग्नि दोनोंके मध्यमें स्थित है ॥ ४४ ॥

जीवानामायुः प्र तिर त्वमग्ने पितॄणां लोकमपि
गच्छन्तु ये मृताः ।
सुगार्हपत्यो वितपन्नरातिमुषामुषां श्रेयसीं धेह्यस्मै ४५

जीवानाम् । आयुः । प्र । तिर । त्वम् । अग्ने । पितॄणाम् । लोकम् ।
अपि । गच्छन्तु । ये । मृताः ।
सुऽगार्हपत्यः । विऽतपन् । अरातिम् । उषाम्ऽउषाम् । श्रेयसीम् ।
धेहि । अस्मै ॥ ४५ ॥

हे अग्ने ! आप जीवोंकी आयुको बढ़ाइये और जो मर गए हैं वे पितरोंके लोकको चले जावें, गार्हपत्य अग्नि शत्रुओंको तपाता रहे हे गार्हपत्य अग्ने ! आप हमको कल्याणकारिणी उषाको हममें स्थापित करिये ॥ ४५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वानग्ने सहमानः सपत्नानैषामूर्जं रयिमस्मासु धेहि

सर्वान् । अग्ने । सहमानः । सऽपत्नान् । आ । एषाम् । ऊर्जम् ।

रयिम् । अस्मासु । धेहि ॥ ४६ ॥

हे अग्ने ! आप सब शत्रुओंका तिरस्कार करते हुए इनके बल और धनको हममें स्थापित करिये ॥ ४६ ॥

इमामिन्द्रं वह्निं पप्रिमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद् दुरितादवद्यात् ।

तेनाप हत शरुमापतन्तं तेन रुद्रस्य परि पातास्ताम् ॥ ४७ ॥

इमम् । इन्द्रम् । वह्निम् । पप्रिम् । अनुऽआरभध्वम् । सः । वः ।

निः । वक्षत् । दुःऽइतात् । अवद्यात् ।

तेन । अप । हत । शरुम् । आऽपतन्तम् । तेन । रुद्रस्य । परि ।

पात । अस्ताम् ॥ ४७ ॥

इन समर्थ ऐश्वर्यसम्पन्न वह्निकी स्तुतिका तुम आरंभ करो यह तुमको अवद्य पापसे दूर करें, उससे आप रुद्रदेवके गिरते हुए बाणको दूर करिये और रुद्रके प्रक्षेपसे अपनी रक्षा करिये॥४७॥

अनड्वाहं प्लवमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद् दुरितादवद्यात् ।

आ रोहत सवितुर्नावमेतां षड्भिरुर्वीभिरमतिं तरेम ४८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनड्वाहम् । प्लवम् । अनुऽआरभध्वम् । सः । वः । निः । वक्षत् । दुःऽइतात् । अवद्यात् ।

आ । रोहत । सवितुः । नावम् । एताम् । षट्ऽभिः । उर्वीभिः । अमतिम् । तरेम ॥ ४८ ॥

तुम हविरूप भारवहनकी गाड़ीका वहन करने वाले, नौकारूप वह्निदेवकी स्तुति करो वह तुमको अवद्य पापसे बचावे तुम इस सवितादेवताकी नौका पर चढ़ो हम छः उर्वियोंसे अमतिको तर जावें ॥ ४८ ॥

अहोरात्रे अन्वेषि बिभ्रत् क्षेम्यस्तिष्ठन् प्रतरणः सुवीरः । अनातुरान्त्सुमनसस्तल्प बिभ्रज्ज्योगेव नः पुरुषगन्धिरेधि ॥ ४९ ॥

अहोरात्रे इति । अनु । एषि । बिभ्रत् । क्षेम्यः । तिष्ठन् । प्रऽतरणः । सुऽवीरः ।

अनातुरान् । सुऽमनसः । तल्प । बिभ्रत् । ज्योक् । एव । नः । पुरुषऽगन्धिः । एधि ॥ ४९ ॥

हे गार्हपत्य अग्ने ! तुम दिन रातको धारण करते हुए आते हो, स्थित रहकर कल्याण देते हो, सुन्दर पुत्र पौत्र आदिसे सम्पन्न रखते हो, पुरुष सुगमतासे आपकी उपासना कर सकते हैं आप पुरुषगंधि हैं आप हमको नीरोग और प्रसन्न मनसे पर्यंक पर धारण करते हुए चिरकाल तक प्रदीप्त होकर बढ़ते रहिये ॥४९॥

ते देवेभ्य आ वृश्चन्ते पापं जीवन्ति सर्वदा ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादश्व इवानुवपते नडम् ५०

ते । देवेभ्यः । आ । वृश्चन्ते । पापम् । जीवन्ति । सर्वदा ।

क्रव्यऽअत् । यान् । अग्निः । अन्तिकात् । अश्वःऽइव । अनुऽवपते ।

नडम् ॥ ५० ॥

वह देवताओंके निमित्त होने वाले यज्ञ आदिका विनाश करते हैं और सदा पापसे जीविका चलाते हैं, कि-जिनके समीपमें आकर घोड़ेके नड घासको कुचलनेके समान क्रव्याद् अग्नि कुचलता है ॥ ५० ॥ (११)

ये श्रद्धा धनकाम्या क्रव्यादा समासते ।

ते वा अन्येषां कुम्भीं पर्यादधति सर्वदा ॥ ५१ ॥

ये । अश्रद्धाः । धनऽकाम्या । क्रव्यऽअदा । सम्ऽआसते ।

ते । वै । अन्येषाम् । कुम्भीम् । परिऽआदधति । सर्वदा ।

जो धनकी कामना वाले अश्रद्धालु पुरुष क्रव्याद् अग्निकी उपासना करते हैं वे सदा दूसरोंके घड़े ही उठाते रहते हैं ॥ ५१ ॥

प्रेव पिपतिषति मनसा मुहुरा वर्तते पुनः ।

क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादनुविद्वान् वितावति ॥ ५२ ॥

प्रऽइव । पिपतिषति । मनसा । मुहुः । आ । वर्तते । पुनः ।

क्रव्यऽअत् । यान् । अग्निः । अन्तिकात् । अनुऽविद्वान् । विऽतावति

अनुविद्वान् क्रव्याद् अग्नि जिसके पास आकर तपता है, वह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुरुष बारम्बार जन्म मरणके चक्रमें पड़ता रहता है और अधोगतिको ही पाना चाहता है ॥ ५२ ॥

अविः कृष्णा भागधेयं पशूनां सीसं क्रव्यादपि चन्द्रं त आहुः ।
माषाः पिष्टा भागधेयं ते हव्यमरण्यान्या गह्वरं सचस्व

अविः । कृष्णा । भागऽधेयम् । पशूनाम् । सीसम् । क्रव्यऽअत् । अपि । चन्द्रम् । ते । आहुः ।
माषाः । पिष्टाः । भागऽधेयम् । ते । हव्यम् । अरण्यान्याः । गह्वरम् । सचस्व ॥ ५३ ॥

हे क्रव्याद् अग्ने ! विद्वान् पुरुष कहते हैं, कि–पशुओंमें काली भेड़, सासा और चन्द्रमा तेरा भाग है और पिसे हुए उड़द तेरा हव्य है, इसलिये तू महावनके गह्वरस्थानमें जापड़ ॥ ५३ ॥

इषीकां जरतीमिष्ट्वा तिल्पिञ्जं दण्डनं नडम् ।
तमिन्द्र इध्मं कृत्वा यमस्याग्निं निरादधौ ॥ ५४ ॥

इषीकाम् । जरतीम् । इष्ट्वा । तिल्पिञ्जम् । दण्डनम् । नडम् ।
तम् । इन्द्रः । इध्मम् । कृत्वा । यमस्य । अग्निम् । निःऽआदधौ ५४

इन्द्रदेवने पुरानी सींक, तिल्पिञ्ज, दण्डन और नटको ईंधन बनाकर यमाग्निको दूर कर दिया था ॥ ५४ ॥

प्रत्यञ्चमर्कं प्रत्यर्पयित्वा प्रविद्वान् पन्थां वि ह्यावि वेश ।
परामीषामसून् दिदेश दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रत्यञ्चम् । अर्कम् । प्रतिऽअर्पयित्वा । प्रऽविद्वान् । पन्थाम् । वि ।
हि । आऽविवेश ।
परा । अमीषाम् । असून् । दिदेश । दीर्घेण । आयुषा । सम् ।
इमान् । सृजामि ॥ ५५ ॥

द्वितीयेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥
इति द्वितीयोनुवाकः ॥

प्रत्येक पुरुषके पूजनीय सूर्यको अर्पण करके विद्वान् गार्हपत्य अग्निने देवयानमार्गमें प्रवेश किया है और इनके प्राणोंको दिया है, मैं इन यजमानोंको दीर्घायुसे सम्पन्न करता हूँ ॥ ५५॥ (१२)

द्वितीय अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (४५३) ॥
द्वितीय अनुवाक समाप्त

"पुमान् पुंसोधि तिष्ठ चर्म" इति स्वर्गौदनविषयकं सूक्तम्। ऋषिः क्वचिद्ध ओदनं क्वचिद्ध दंपती संबोधयति। पक्वस्य स्वर्गौदनस्य प्रतापं तथा तेन प्रापणीयानि फलानि चिन्तयित्वाह। स्वर्गेऽनेनौदनेन पुत्रादिभिः समागमो भविष्यतीत्यभिप्रायं दर्शयति। स्वर्गौदनात् क्रव्यादं रक्षश्च पिशाचं च परिहरति। आदित्याश्च अङ्गिरसश्च एतं क्रव्यादादिभ्यः पालयन्त्वित्याशास्ते। यः स्वर्गौदनः स षष्टिवर्षानन्तरं फलप्रदो भवतीति तथा पक्तुर्निधिपा इवेति वर्ण्यते। तं च प्राच्यादिसर्वाभ्यो दिग्भ्यः संरक्षणार्थं परिदद्मस्ता एतम् अस्मदर्थे परिरक्षन्तु स चास्मान् जरापूर्वकं मृत्युं यावद् भागधेयम् आनयत्वित्याशास्य सूक्तम् उपसंहरति ॥

सांप्रदायिका यत् सवयज्ञविधौ विनियुञ्जते सूक्तं सम्यक् तत्। तच्च "अग्नीन् आधास्यमानः सवान् वा दास्यन्" इति प्रक्रम्य "यथासवम् अन्यान् पृथग्वेति प्रकृतिः" इत्यन्ते कौशिकसूत्रे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[कौ० ८. १-४] द्रष्टव्यम् ॥ अयं यः सौत्रिको विनियोगस्तेन कतिपयमन्त्राणां तात्पर्यं समीचीनम् आविर्भवतीत्यसंशयम् ॥

"पुमान् पुंसोऽधितिष्ठ चर्म" यह स्वर्गौदनविषयकसूक्त है। ऋषि ने कहीं ओदनको और कहीं दम्पतीको सम्बोधित किया है और विचार करके स्वर्गौदनके प्रताप और उससे प्राप्त होने वाले फलों का वर्णन किया है और स्वर्गौदनसे पुत्र आदिके साथ समागम होनेका वर्णन किया है और स्वर्गौदनसे राक्षस पिशाच और क्रव्याद्का परिहरण किया है और यह प्रार्थनाकी है, कि-आदित्य यथा अंगिरागोत्री ऋषि क्रव्याद् आदिसे हमारी रक्षा करें। और यह भी वर्णन किया है, कि-यह स्वर्गौदन साठ वर्ष पीछे फल देता है तथा पाचककी निधिका रक्षक रहता है। उसको हम प्राची आदि सब दिशाओंकी रक्षाके लिये देते हैं वह इसकी हमारे लिये रक्षा करें और यह भी हमारे लिये जरापूर्वक मृत्यु आने तक भागको देता रहे इस बातकी आशा रखकर सूक्तका उपसंहार किया गया है ॥

साम्प्रदायिक सवयज्ञविधिमें जिसका विनियोग करते हैं वह यही है। इस विषयमें कौशिकसूत्र ८। १। ४ देखना चाहिये। यथा-"यथासवं अन्यान् पृथग्वेति प्रकृतिः" यह जो सौत्रिक विनियोग है इससे कुछ मंत्रोंका समीचीन तात्पर्य प्रकाशित होता है।

पुमान् पुंसोधि तिष्ठ चर्मेहि तत्र ह्वयस्व यतमा प्रिया ते
यावन्तावग्रे प्रथमं समेयथुस्तद् वां वयो यमराज्ये
समानम् ॥ १ ॥

पुमान् । पुंसः । अधि । तिष्ठ । चर्म । इहि । तत्र । ह्वयस्व ।
यतमा । प्रिया । ते ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यावन्तौ । अग्रे । प्रथमम् । समऽएयथुः । तत् । वाम् । वयः ।

यमऽराज्ये । समानम् ॥ १ ॥

हे पुंस्त्वगुणविशिष्ट ! तू इस नरपशुके चर्म पर स्थित हो और जो तेरे प्रिय हों उनको बुलाले, जितने दम्पती इसको पहिले कर गए हैं उनका और तुम दोनों दम्पतीकी फलरूपमें प्राप्त होने वाला अन्न एकसा हो ॥ १ ॥

तावद् वां चक्षुस्तति वीर्याणि तावत् तेजस्ततिधा वाजिनानि ।

अग्निः शरीरं सचते यदैधोधा पक्वान्मिथुना सं भवाथः

तावत् । वाम् । चक्षुः । तति । वीर्याणि । तावत् । तेजः ।

ततिऽधा । वाजिनानि ।

अग्निः । शरीरम् । सचते । यदा । एधः । अध । पक्वात् ।

मिथुना । सम् । भवाथः ॥ २ ॥

जब यह अग्नि स्वर्गमें तुम्हारे शरीरोंको बनावेगा तब तुम दोनों इस ईंधनसे पके हुए ओदनके प्रभावसे स्वर्गमें इसी रूपमें प्रकट होओगे तुममें इस जन्मकीसी दृष्टिशक्ति रहेगी, ऐसा ही तेज रहेगा, और शब्दसे जानने योग्य यज्ञ आदिको भी तुम इसी प्रकार कर सकोगे ॥ २ ॥

समस्मिंल्लोके समु देवयाने सं स्मा समेतं यमराज्येषु

पूतौ पवित्रैरुप तद्ध्वयेथां यद्यद् रेतो अधि वां संबभूव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम् । अस्मिन् । लोके । सम् । ऊं इति । देवऽयाने । सम् ।

स्म । सम्ऽएतम् । यमऽराज्येषु ।

पूतौ । पवित्रैः । उप । तत् । हयेथाम् । यत्ऽयत् । रेतः । अधि ।

वाम् । सम्ऽबभूव ॥ ३ ॥

तुम दोनों इस ओदनके प्रतापसे इस लोकमें एकत्रित रहो, देवयानमार्गमें एकत्रित रहो और यमराज्यमें एक साथ मिले रहो, तुम इन पवित्र यज्ञोंसे पवित्र होगए हो अतः जिस २ पुण्यकर्मके लिये तुमने जल गिराया है उस २ पुण्य कर्मके फलका आह्वान करो

आपस्पुत्रासो अभि सं विशध्वमिमं जीवं जीवधन्याः समेत्य ।

तासां भजध्वममृतं यमाहुर्यमोदनं पचति वां जनित्री

आपः । पुत्रासः । अभि । सम् । विशध्वम् । इमम् । जीवम् ।

जीवऽधन्याः । सम्ऽएत्य ।

तासाम् । भजध्वम् । अमृतम् । यम् । आहुः । यम् । ओदनम् ।

पचति । वाम् । जनित्री ॥ ४ ॥

हे दम्पती समूहो! तुम परिणाममें वीर्यरूपको प्राप्त हुए जलके ही पुत्र हो तुम जीवोंमें धन्य बनते हुए इस जीवलोकमें प्रवेश करो, तुमको उत्पन्न करने वाला जल ओदनको राँधता है ऐसे जलका जो अमृतमयभाग है उसका तुम सेवन करो ॥ ४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यं वां पिता पचति यं च माता रिप्रान्निर्मुक्त्यै शमलाच्च वाचः ।

स ओदनः शतधारः स्वर्ग उभे व्याप नभसी महित्वा

यम् । वाम् । पिता । पचति । यम् । च । माता । रिप्रात् । निःऽमुक्त्यै । शमलात् । च । वाचः ।

सः । ओदनः । शतऽधारः । स्वःऽगः । उभे इति । वि । आप । नभसी इति । महिऽत्वा ॥ ५ ॥

पापसे और वाणीके पापसे छूटनेके लिये यदि ओदनको माता वा पिता पकाते हैं तो वह ओदन अपनी महिमासे स्वर्गमें और द्यावापृथिवीमें सहस्र प्रकारसे व्याप्त होजाता है—उनको मिलता है५

उभे नभसी उभयांश्च लोकान् ये यज्वनामभिजिताः स्वर्गाः ।

तेषां ज्योतिष्मान् मधुमान् यो अग्रे तस्मिन् पुत्रैर्जरसि सं श्रयेथाम् ॥ ६ ॥

उभे इति । नभसी इति । उभयान् । च । लोकान् । ये । यज्वनाम् । अभिऽजिताः । स्वःऽगाः ।

तेषाम् । ज्योतिष्मान् । मधुऽमान् । यः । अग्रे । तस्मिन् । पुत्रैः । जरसि । सम् । श्रयेथाम् ॥ ६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे दम्पती ! दोनों द्यावापृथिवीमें और यजमान जिन लोकोंको जीत लेते हैं उन स्वर्ग लोकोंमें जो प्रकाशमय और मधुरता भरे लोक हैं उस लोकमें इस प्रकार स्वर्गमें और भूलोकरूप दोनों लोकों में तुम बुढ़ापे तक पुत्रोंसे समृद्ध रहो ॥ ६ ॥

प्राचींप्राचीं प्रदिशमा रभेथामेतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते ।
यद् वां पक्वं परिविष्टमग्नौ तस्य गुप्तये दंपती सं श्रयेथाम्

प्राचीम्ऽप्राचीम् । प्रऽदिशम् । आ । रभेथाम् । एतम् । लोकम् । श्रत्ऽदधानाः । सचन्ते ।
यत् । वाम् । पक्वम् । परिऽविष्टम् । अग्नौ । तस्य । गुप्तये । दंपती इति दम्ऽपती । सम् । श्रयेथाम् ॥ ७ ॥

हे दम्पती ! तुम पूर्व दिशाकी ओर बढ़ना आरंभ करो, इस स्वर्गलोकमें श्रद्धालु पुरुष चढ़ते हैं तुमने जो परिपक्व ओदनको अग्निमें परोसा है उसकी रक्षाके लिये तुम दोनों भली प्रकार इसकी सेवा करो ॥ ७ ॥

दक्षिणां दिशमभि नक्षमाणौ पर्यावर्तेथामभि पात्रमेतत्
तस्मिन् वां यमः पितृभिः संविदानः पक्वाय शर्म बहुलं नि यच्छात् ॥ ८ ॥

दक्षिणाम् । दिशम् । अभि । नक्षमाणौ । परिऽआवर्तेथाम् । अभि । पात्रम् । एतत् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तस्मिन् । वाम् । यमः । पितृऽभिः । सम्ऽविदानः । पक्वाय ।
शर्म । बहुलम् । नि । यच्छात् ॥ ८ ॥

हे दम्पती ! तुम दक्षिण दिशाकी ओर जाकर इस पात्रकी ओर प्रदक्षिणा करते हुए लौटो, उस समय पितरोंसे एकमति रखकर यम उस पात्रमें तुम्हारे पक्व ओदनके लिये अनेक प्रकारके कल्याण देय ॥ ८ ॥

प्रतीचीं दिशामियमिद् वरं यस्यां सोमो अधिपा मृडिता च ।
तस्यां श्रयेथां सुकृतः सचेथामधा पक्वान्मिथुना सं भवाथः ॥ ९ ॥

प्रतीची । दिशाम् । इयम् । इत् । वरम् । यस्याम् । सोमः । अधिऽपाः । मृडिता । च ।
तस्याम् । श्रयेथाम् । सुऽकृतः । सचेथाम् । अध । पक्वात् । मिथुना । सम् । भवाथः ॥ ९ ॥

यह पश्चिमकी दिशा श्रेष्ठ है, क्योंकि—इसमें अधिप और सुख-दाता सोम हैं उसमें तुम दोनों पक्वौदनको रक्खो पुण्यकर्मोंका सेवन करो, फिर इस पक्व ओदनके प्रभावसे तुम दोनों भूलोक में और स्वर्गमें प्रकट होना ॥ ९ ॥

उत्तरं राष्ट्रं प्रजयोत्तरावद् दिशामुदीची कृणवन्नो अग्रम् पाङ्क्तं छन्दः पुरुषो बभूव विश्वैर्विश्वाङ्गैः सह सं भवेम ॥ १० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तरम् । राष्ट्रम् । प्रऽजया । उत्तरऽवत् । दिशाम् । उदीची । कृण-
वत् । नः । अग्रम् ।

पाङ्क्तम् । छन्दः । पुरुषः । बभूव । विश्वैः । विश्वऽअङ्गैः । सह ।
सम् । भवेम ॥ १० ॥

यह उत्तरका राष्ट्र प्रजासे श्रेष्ठतासम्पन्न है, ऐसी यह दिशाओंमें श्रेष्ठ उत्तर दिशा हमको श्रेष्ठ करे । पांक्त छन्द पुरुषार्थसम्पन्न ओदनके रूपमें प्रकट हुआ है हम भी अपने सब अङ्गों सहित भूलोक और स्वर्गमें प्रादुर्भूत हों ॥ १० ॥

ध्रुवेयं विराण्नमो अस्त्वस्यै शिवा पुत्रेभ्य उत मह्यमस्तु।
सा नो देव्यदिते विश्ववार इयं इव गोपा अभि रक्ष
पक्वम् ॥ ११ ॥

ध्रुवा । इयम् । विऽराट् । नमः । अस्तु । अस्यै । शिवा । पुत्रेभ्यः ।
उत । मह्यम् । अस्तु ।

सा । नः । देवि । अदिते । विश्वऽवारे । इयंऽइव । गोपाः ।
अभि । रक्ष । पक्वम् ॥ ११ ॥

हे सबोंसे वरणीय विश्ववारे अदिति-अखण्डनीया-पृथिवी देवि ! यह पृथिवी ध्रुवा है विराट् है यह हमारे पुत्रोंका कल्याण करने वाली हो हमारे लिये सुखदायिनी हो और प्रेरित किये हुए रक्षककी समान इस पक्व ओदनकी रक्षा करे ॥ ११ ॥

पितेव पुत्रानभि सं रभस्व नः शिवा नो वाता इह
वान्तु भूमौ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यमोदनं पचतो देवते इह तं नस्तप उत सत्यं च वेत्तु

पिताऽइव । पुत्रान् । अभि । सम् । स्वजस्व । नः । शिवाः । नः । वाताः । इह । वान्तु । भूमौ ।

यम् । ओदनम् । पचतः । देवते इति । इह । तम् । नः । तपः । उत । सत्यम् । च । वेत्तु ॥ १२ ॥

हे पृथिवीदेवते ! तुम पिताके पुत्रोंको आलिंगन करनेकी समान इस ओदनका आलिंगन करो । इस भूमिमें हमको कल्याण देने वाला वायु चले, हम दोनों जिस ओदनको पका रहे हैं उसको आप तपाइये और आप हमारे सत्यसंकल्पको जानें ॥ १२ ॥

यद्यत् कृष्णः शकुन एह गत्वा त्सरन् विषक्तं बिल आससाद ।

यद्वा दास्या३र्द्रहस्ता समङ्क्त उलूखलं मुसलं शुम्भताप

यत्ऽयत् । कृष्णः । शकुनः । आ । इह । गत्वा । त्सरन् । विऽसक्तम् । बिले । आऽससाद ।

यत् । वा । दासी । आर्द्रऽहस्ता । सम्ऽअङ्क्ते । उलूखलम् । मुसलम् । शुम्भत । आपः ॥ १३ ॥

यदि कौएने कपटगतिसे आकर जो इसमें बिल बना दिया हो वा दासीने गीले हाथसे ओखली मूसलको छू दिया हो तो यह ताप कल्याणकारी हो ॥ १३ ॥

अयं ग्रावा पृथुबुध्नो वयोधाः पूतः पवित्रैरप हन्तु रक्षः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आ रोह शर्म महि यच्छ मा दंपती पौत्रमघं नि गाताम्

अयम् । ग्रावा । पृथुऽबुध्नः । वयःऽधाः । पूतः । पवित्रैः । अप । हन्तु । रक्षः ।

आ । रोह । चर्म । महि । शर्म । यच्छ । मा । दंपती इति दम्ऽपती । पौत्रम् । अघम् । नि । गाताम् ॥ १४ ॥

यह दृढ़ जड़ वाला पत्थर हविरूप अन्नका धारण करने वाला है पवित्रोंसे पूत हुआ यह राक्षसोंका संहार करे, हे ओदन ! तू चर्म पर आ और महाकल्याण प्रदान कर, इन दम्पतीको और इनके पौत्रको पाप स्पर्श न कर सके ॥ १४ ॥

वनस्पतिः सह देवैर्न आगन् रक्षः पिशाचाँ अपबाधमानः ।
स उच्छ्रयातै प्र वदाति वाचं तेन लोकाँ अभि सर्वान् जयेम ॥ १५ ॥

वनस्पतिः । सह । देवैः । नः । आ । अगन् । रक्षः । पिशाचान् । अपऽबाधमानः ।

सः । उत् । श्रयातै । प्र । वदाति । वाचम् । तेन । लोकान् । अभि । सर्वान् । जयेम ॥ १५ ॥

राक्षस और पिशाचोंको बाधा देता हुआ वनस्पति देवताओं सहित हमारे पास आगया वह ऊँचे स्वरसे वाणीका उच्चारण करता है उस शब्द करने वालेसे हम सब लोकोंको जीत लें १५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सप्त मेधान् पशवः पर्यगृह्णन् य एषां ज्योतिष्माँ उत यश्चकर्श ।
त्रयस्त्रिंशद् देवतास्तान्त्सचन्ते स नः स्वर्गमभि नेष लोकम् ॥ १६ ॥

सप्त । मेधान् । पशवः । परि । अगृह्णन् । यः । एषाम् । ज्योतिष्मान् । उत । यः । चकर्श ।

त्रयःऽत्रिंशत् । देवताः । तान् । सचन्ते । सः । नः । स्वःऽगम् । अभि । नेष । लोकम् ॥ १६ ॥

जो इन धान्योंमें ज्योतिष्मान् और कृश है ऐसे सात चावलों को पवित्ररूपमें पशु (अज्ञानी जीवों) ने ग्रहण किया है इनका तैंतीस देवता सेवन करते हैं ऐसा यह ओदन हमको स्वर्गलोकमें ले जावे ॥ १६ ॥

स्वर्गं लोकमभि नो नयासि सं जायया सह पुत्रैः स्याम ।
गृह्णामि हस्तमनु मैत्वत्र मा नस्तारीन्निर्ऋतिर्मो अरातिः ॥ १७ ॥

स्वःऽगम् । लोकम् । अभि । नः । नयासि । सम् । जायया । सह । पुत्रैः । स्याम ।

गृह्णामि । हस्तम् । अनु । मा । आ । एतु । अत्र । मा । नः । तारीत् । निःऽऋतिः । मो इति । अरातिः ॥ १७ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे ओदन ! तू हमको स्वर्गलोकमें लेजारहा है, तहाँ हम स्त्री और पुत्रोंसहित प्रादुर्भूत होवें, मैं तेरे हाथको पकड़ता हूँ तू मेरे पीछे २ तहाँ स्वर्गमें आ, पापदेवता निर्ऋति और शत्रु मुझको न दबा सकें ॥ १७ ॥

ग्राहिं पाप्मानमति ताँ अयाम तमो व्यस्य प्र वदासि वल्गु ।
वानस्पत्य उद्यतो मा जिहिंसीर्मा तण्डुलं वि शरीर्देवयन्तम् ॥ १८ ॥

ग्राहिम् । पाप्मानम् । अति । तान् । अयाम । तमः । वि । अस्य । प्र । वदासि । वल्गु ।
वानस्पत्यः । उत्ऽयतः । मा । जिहिंसीः । मा । तण्डुलम् । वि । शरीः । देवऽयन्तम् ॥ १८ ॥

हम ग्रहण करने वाले पापको लाँघ जायँ, हे वानस्पत्य ! तू पापके कारण होसकने वाले शोकरूप अन्धकारको दूर करता हुआ मीठी वाणी बोलता है, वानस्पत्य उद्यत होकर मेरी हिंसा न करे और मुझको देवमार्गमें पहुँचाने वाले तण्डुलकी भी हिंसा न करे ॥ १८ ॥

विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्त्सयोनिर्लोकमुप याह्येतम् वर्षवृद्धमुप यच्छ शूर्पं तुषं पलावानप तद् विनक्तु १९

विश्वऽव्यचा । घृतऽपृष्ठः । भविष्यन् । सऽयोनिः । लोकम् । उप । याहि । एतम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्षऽवृद्धम् । उप । यच्छ । शूर्पम् । तुषम् । पलावान् । अप । तत् । विनक्तु ॥ १९ ॥

सब जिसका अनेक प्रकारसे सत्कार करते हैं ऐसे हे ओदन ! तू घृतपृष्ठ होता हुआ और परलोकमें हमारे साथ प्रादुर्भूत होनेके लिये इसलोकमें हमारे पास आ फिर वर्षा ऋतुमें जिसके उपकरण बढ़ते हैं उस छाजको प्राप्त हो वह पलावान् भूसीको तुझसे अलग करे ॥ १९ ॥

त्रयो लोकाः संमिता ब्राह्मणेन द्यौरेवासौ पृथिव्य१न्तरिक्षम् ।
अंशून् गृभीत्वान्वारभेथामा प्यायन्तां पुनरा यन्तु शूर्पम् ॥ २० ॥

त्रयः । लोकाः । सम्ऽमिताः । ब्राह्मणेन । द्यौः । एव । असौ । पृथिवी । अन्तरिक्षम् ।

अंशून् । गृभीत्वा । अनुऽआरभेथाम् । आ । प्यायन्ताम् । पुनः । आ । यन्तु । शूर्पम् ॥ २० ॥

द्यौ अन्तरिक्ष और यह पृथिवी यह तीनों लोक ब्राह्मणके द्वारा प्राप्त होसकते हैं, हे दम्पती ! तुम चावलोंको ग्रहण करके फटकना आरम्भ करो और ये धान भी बढ़ें (उछलें) और छाजमें आवें ॥ २० ॥ (१४)

पृथग्रूपाणि बहुधा पशूनामेकरूपो भवसि सं समृद्ध्या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एतां त्वचं लोहिनीं तां नुदस्व ग्रावा शुम्भाति मलग इव वस्त्रा ॥ २१ ॥

पृथक् । रूपाणि । बहुऽधा । पशूनाम् । एकऽरूपः । भवसि ।

सम् । सम्ऽऋद्ध्या ।

एताम् । त्वचम् । लोहिनीम् । ताम् । नुदस्व । ग्रावा । शुम्भाति ।

मलगःऽइव । वस्त्रा ॥ २१ ॥

(जोतते समय) पशुओंके अनेक प्रकारके अलग २ रूप होते हैं और तू समृद्धिके साथ एक ही रूप वाला प्रकट होता है अब तू पत्थरके द्वारा वस्त्रसे मलगकी समान लोहिनी त्वचा (भूसी) को त्याग ॥ २१ ॥

पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि तनूः समानी विकृता त एषा ।

यद्यद् द्युत्तं लिखितमर्पणेन तेन मा सुस्रोर्ब्रह्मणापि तद् वपामि ॥ २२ ॥

पृथिवीम् । त्वा । पृथिव्याम् । आ । वेशयामि । तनूः । समानी ।

विऽकृता । ते । एषा ।

यत्ऽयत् । द्युत्तम् । लिखितम् । अर्पणेन । तेन । मा । सुस्रोः ।

ब्रह्मणा । अपि । तत् । वपामि ॥ २२ ॥

हे पत्थरके बने मूसल ! तू पृथिवीका बना होनेसे पृथिवी ही है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अतः मैं पृथिवीको पृथिवीमें ही मारता हूँ पृथिवीका और तेरा शरीर एकसा है यह मूसल तो विकृत भूमि ही है। हे ओदन! मूसलके अर्पण करनेसे जो तेरा अंग दाहयुक्त—पीड़ायुक्त होरहा है उससे तू धानसे अलग हो ऐसे तुझको मैं मन्त्रसे अग्निमें आहुत करता हूँ ॥ २२ ॥

जनित्रीव प्रति हर्यासि सूनुं सं त्वा तदामि पृथिवीं पृथिव्या ।

उखा कुम्भी वेद्यां मा व्यथिष्ठा यज्ञायुधैराज्येनातिषक्ता

जनित्रीऽइव । प्रति । हर्यासि । सूनुम् । सम् । त्वा । दधामि । पृथिवीम् । पृथिव्या ।

उखा । कुम्भी । वेद्याम् । मा । व्यथिष्ठाः । यज्ञऽआयुधैः । आज्येन । अतिऽसक्ता ॥ २३ ॥

जैसे माता अपने पुत्रके पासको जाती है इसी प्रकार मैं तुझ पत्थररूप पृथिवीको ओखलीरूप पृथ्वीसे संयुक्त करता हूँ वेदीमें ओखली ही कुम्भी है सो तू व्यथाको प्राप्त मत हो, क्योंकि—यज्ञायुधोंके द्वारा तू घृतसे सक्त होगई है ॥ २३ ॥

अग्निः पचन् रक्षतु त्वा पुरस्तादिन्द्रो रक्षतु दक्षिणतो मरुत्वान् ।

वरुणस्त्वा दृंहाद्वरुणे प्रतीच्या उत्तरात् त्वा सोमः सं ददातै ॥ २४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अग्निः । पचन् । रक्षतु । त्वा । पुरस्तात् । इन्द्रः । रक्षतु ।
दक्षिणतः । मरुत्वान् ।
वरुणः । त्वा । दृंहात् । धरुणे । प्रतीच्याः । उत्तरात् । त्वा । सोमः ।
सम् । ददातै ॥ २४ ॥

पचाते हुए अग्निदेव तेरी रक्षा करें, इन्द्र पूर्व दिशाकी ओरसे तेरी रक्षा करें और मरुत्वान् दक्षिण दिशाकी ओरसे तेरी रक्षा करें और वरुणदेव धरुणमें पश्चिमकी ओरसे वर्धनशील कर्मसे तेरी रक्षा करें और उत्तरकी ओरसे सोम तुझको खिलावें २४

पूताः पवित्रैः पवन्ते अभ्राद् दिवं च यन्ति पृथिवीं च लोकान् ।
ता जीवला जीवधन्याः प्रतिष्ठाः पात्र आसिक्ताः पर्यग्निरिन्धाम् ॥ २५ ॥

पूताः । पवित्रैः । पवन्ते । अभ्रात् । दिवम् । च । यन्ति ।
पृथिवीम् । च । लोकान् ।
ताः । जीवलाः । जीवऽधन्याः । प्रतिऽस्थाः । पात्रे । आऽसिक्ताः ।
परि । अग्निः । इन्धाम् ॥ २५ ॥

पवित्र कर्मोंसे पवित्र हुए जल पवित्र करते हैं, मेघसे स्वर्गमें जाते हैं और पृथिवीमें मनुष्योंको प्राप्त होते हैं, ये जीवनको देने वाले जीवको धन्य करने वाले पात्रमें प्रतिष्ठित हैं यह आसिक्त होरहे हैं अग्नि इनको चारों ओरसे दीप्त करे ॥ २५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आ यन्ति दिवः पृथिवीं सचन्ते भूम्याः सचन्ते अध्यन्तरिक्षम् ।
शुद्धाः सतीस्ता उ शुम्भन्त एव ता नः स्वर्गमभि लोकं नयन्तु ॥ २६ ॥

आ । यन्ति । दिवः । पृथिवीम् । सचन्ते । भूम्याः । सचन्ते ।
अधि । अन्तरिक्षम् ।

शुद्धाः । सतीः । ताः । ऊं इति । शुम्भन्ते । एव । ताः । नः ।
स्वःऽगम् । अभि । लोकम् । नयन्तु ॥ २६ ॥

यह स्वर्गसे आते हैं और पृथिवीका सेवन करते हैं और भूमि परसे अन्तरिक्षका आश्रय लेते हैं ये पवित्र होते हुएजल पवित्र ही करते हैं ये (यज्ञिय चावलोंमें मिले हुए) जल हमें स्वर्गलोकमें ले जावें ॥ २६ ॥

उतेव प्रभ्वीरुत संमितास उत शुक्राः शुचयश्चामृतासः।
ता ओदनं दंपतिभ्यां प्रशिष्टा आपः शिक्षन्तीः पचता सुनाथाः ॥ २७ ॥

उतऽइव । प्रऽभ्वीः । उत । सम्ऽमितासः । उत । शुक्राः । शुचयः ।
च । अमृतासः ।

ताः । ओदनम् । दंपतिऽभ्याम् । प्रऽशिष्टाः । आपः । शिक्षन्तीः ।
पचत । सुऽनाथाः ॥ २७ ॥

ये जल प्रभु हैं और सम्मित हैं, श्वेत वर्ण वाले हैं दमकते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुए हैं और अमृत हैं ऐसे हे जलों ! आप दम्पतीसे छोड़े जाने पर सुनाथ होकर इस ओदनको शिक्षा देते हुए पकाओ ॥ २७ ॥

संख्याता स्तोकाः पृथिवीं सचन्ते प्राणापानैः संमिता ओषधीभिः ।
असंख्याता ओप्यमानाः सुवर्णाः सर्वं व्यापुः शुचयः शुचित्वम् ॥ २८ ॥

सम्ऽख्याताः । स्तोकाः । पृथिवीम् । सचन्ते । प्राणापानैः । सम्ऽमिताः । ओषधीभिः ।
असम्ऽख्याताः । आऽउप्यमानाः । सुऽवर्णाः । सर्वम् । वि । आपुः । शुचयः । शुचिऽत्वम् ॥ २८ ॥

प्राण अपानकी समान थोड़ेसे जल औषधियोंके साथ पृथिवी का सेवन करते हैं और सुन्दर वर्ण वाले प्राणियोंमें डाले हुए असंख्यात पवित्र जल शुचित्वको प्रदान करते हुए सबमें व्याप्त होगए हैं ॥ २८ ॥

उद्योधन्त्यभि वल्गन्ति तप्ताः फेनमस्यन्ति बहुलांश्च बिन्दून् ।
योषेव दृष्ट्वा पतिमृत्वियायैतैस्तण्डुलैर्भवता समापः २९

उत् । योधन्ति । अभि । वल्गन्ति । तप्ताः । फेनम् । अस्यन्ति । बहुलान् । च । बिन्दून् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योषाऽइव । दृष्ट्वा । पतिम् । ऋत्वियाय । एतैः । तण्डुलैः । भवत । सम् । आपः ॥ २९ ॥

ये जल तपने पर युद्धसा करते हैं, शब्द करते हैं, फेनको उड़ाते हैं और बहुतसी बिन्दुओंको भी उड़ाते हैं, हे जलों ! तुम ऋतुमें होने वाले यज्ञके लिये पतिको देखने पर स्त्रीकी समान इन चावलों से मिल जाओ ॥ २९ ॥

उत्थापय सीदतो बुध्न एनानद्भिरात्मानमभि सं स्पृशन्ताम् ।
अमासि पात्रैरुदकं यदेतन्मितास्तण्डुलाः प्रदिशो यदीमाः ॥ ३० ॥

उत् । स्थापय । सीदतः । बुध्ने । एनान् । अत्ऽभिः । आत्मानम् । अभि । सम् । स्पृशन्ताम् ।

अमासि । पात्रैः । उदकम् । यत् । एतत् । मिताः । तण्डुलाः । प्रऽदिशः । यदि । इमाः ॥ ३० ॥

हे ओदनकी अधिष्ठात्री देवते ! इन मूसलकी जड़में दुःख पाते हुए इन चावलोंको आप उठाइये ये जलसे अपना स्पर्श करें हे यजमान ! जो तू पात्रोंसे जलको नाप रहा है तो ये तण्डुल भी नप गए हैं अतः इनको जलमें डालनेकी आज्ञा दे ॥ ३० ॥ (१५)

प्र यच्छ पर्शुं त्वरया हरौषमहिंसन्त ओषधीर्दान्तु पर्वन् ।
यासां सोमः परि राज्यं बभूवामन्युता नो वीरुधो भवन्तु ॥ ३१ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र । यच्छ । पर्शुम् । त्वरय । आ । हर । ओषम् । अहिंसन्तः ।

ओषधीः । दान्तु । पर्वन् ।

यासाम् । सोमः । परि । राज्यम् । बभूव । अमन्युताः । नः ।

वीरुधः । भवन्तु ॥ ३१ ॥

आप फरसेको चलाइये और इनमें जो पक गए हैं इनको ले लीजिये ये प्रत्येक पर्वमें किसीकी हिंसा न करते हुए अपने औषधिरूप फलको देवें सोम जिनका राज्य है ऐसी लतारूप औषधियें क्रोधरहित रहें ॥ ३१ ॥

नवं बर्हिरोदनाय स्तृणीत प्रियं हृदश्चक्षुषो वल्गु स्तु ।

तस्मिन् देवाः सह दैवीर्विशन्त्विमं प्राश्नन्त्वृतुभिर्निषद्य

नवम् । बर्हिः । ओदनाय । स्तृणीत । प्रियम् । हृदः । चक्षुषः ।

वल्गु । अस्तु ।

तस्मिन् । देवाः । सह । दैवीः । विशन्तु । इमम् । प्र । अश्नन्तु ।

ऋतुऽभिः । निऽसद्य ॥ ३२ ॥

नवीन कुशाओंको ओदनके निमित्त बिछाओ, वह कुशासन हृदयको और नेत्रोंको प्रिय लगने वाला मञ्जुल हो । उसमें देवता अपनी दैवी शक्तियोंके साथ बैठें और बैठ कर ऋतुके पदार्थोंके साथ २ इस ओदनका भक्षण करें ॥ ३२ ॥

वनस्पते स्तीर्णर्मा सीद बर्हिरग्निष्टोमैः संमितो देवताभिः

त्वष्ट्रेव रूपं सुकृतं स्वधित्यैना एहाः परिपात्रे ददृश्राम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वनस्पते। स्तीर्णम्। आ। सीद। बर्हिः। अग्निऽस्तोमैः। समृऽमितः।

देवताभिः।

त्वष्ट्राऽइव। रूपम्। सुऽकृतम्। स्वऽधित्या। एना। एहाः। परि।

पात्रे। ददृश्राम्॥ ३३॥

हे वनस्पते! कुशा फैला दी गई हैं अतः आप बैठिये देवताओं ने आपको अग्निष्टोमके समान माना है त्वष्टाकी समान स्वधिति ने इसका रूप अच्छा बना दिया है वह अब पात्रमें दीख रहा है ३३

षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात् स्वः पक्वेनाभ्य-

श्नवातै।

उपैनं जीवान् पितरश्च पुत्रा एतं स्वर्गं गमयान्तमग्नेः

षष्ट्याम्। शरत्ऽसु। निधिऽपाः। अभि। इच्छात्। स्वः। पक्वेन।

अभि। अश्नवातै।

उप। एनम्। जीवान्। पितरः। च। पुत्राः। एतम्। स्वःऽगम्।

गमय। अन्तम्। अग्नेः॥ ३४॥

इस निधिकी रक्षा करने वाला यजमान इस अग्निसे पक्व ओदन के खानेसे स्वर्गमें साठ वर्षके अनन्तर फल पाना चाहे, हे यज्ञाभिमानी देव! इस यजमानको आप स्वर्गमें भेजिये और इसके पुत्र पिता आदि जीवोंको भी इसके पासमें रखिये॥ ३४॥

धर्ता ध्रियस्व धरुणे पृथिव्या अच्युतं त्वा देवता-

श्च्यावयन्तु।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तं त्वा दंपती जीवन्तौ जीवपुत्रावुद् वासयातः पर्यग्नि-
धानात् ॥ ३५ ॥

धर्ता । ध्रियस्व । धरुणे । पृथिव्याः । अच्युतम् । त्वा । देवताः ।
च्यवयन्तु ।

तम् । त्वा । दंपती इति दम्ऽपती । जीवन्ती । जीवऽपुत्रौ । उत् ।
वासयातः । परि । अग्निऽधानात् ॥ ३५ ॥

हे ओदन ! तू धर्ता है अतः पृथिवीके धारक स्थानमें स्थित हो तुझ अच्युतको देवता च्यवित करें । और तुझको जीवित पुत्र वाले जीवित दम्पती अग्निधानसे बसावें ॥ ३५ ॥

सर्वान्त्समागा अभिजित्य लोकान् यावन्तः कामाः
समतीतृपस्तान् ।
वि गाहेथामायवनं च दर्विरेकस्मिन् पात्रे अध्युद्धरैनम्

सर्वान् । सम्ऽआगाः । अभिऽजित्य । लोकान् । यावन्तः । कामाः ।
सम् । अतीतृपः । तान् ।

वि । गाहेथाम् । आऽयवनम् । च । दर्विः । एकस्मिन् । पात्रे ।
अधि । उत् । हर । एनम् ॥ ३६ ॥

तू सम्पूर्ण लोकोंको जीतता हुआ प्राप्त हो जितनी इच्छाएँ हों उन सबको भली प्रकार तृप्त कर दम्पती आयवनको और कर-छलीको घुमावें फिर उनमेंसे एक इस ओदनको पात्रमें निकाल कर रक्खे ॥ ३६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उप स्तृणीहि प्रथय पुरस्ताद् घृतेन पात्रमभि घारयैत्
वाश्रेवोस्रा तरुणं स्तनस्युमिमं देवासो अभिहिङ्कृणोत

उप । स्तृणीहि । प्रथय । पुरस्तात् । घृतेन । पात्रम् । अभि ।
घारय । एतत् ।

वाश्राऽइव । उस्रा । तरुणम् । स्तनस्युम् । इमम् । देवासः ।
अभिहिङ्कृणोत ॥ ३७ ॥

आप इसको परोसिये फैलाइये फिर इसको घृतसे अभिघारित करिये, और हे देवताओं ! जैसे दूध देने वालीं गौएँ दूध पीने वाले बछड़ेकी ओर शब्द करती है, इसी प्रकार पूर्णरूपसे तयार हुए ओदनकी ओर आप शब्द करिये ॥ ३७ ॥

उपास्तरीरकरो लोकमेतमुरुः प्रथतामसमः स्वर्गः ।
तस्मिं छ्रयातैः महिषः सुपर्णो देवा एनं देवताभ्यः प्र
यच्छान् ॥ ३८ ॥

उप । अस्तरीः । अकरः । लोकम् । एतम् । उरुः । प्रथताम् ।
असमः । स्वऽगः ।

तस्मिन् । श्रयातै । महिषः । सुऽपर्णः । देवाः । एनम् । देवताभ्यः ।
प्र । यच्छान् ॥ ३८ ॥

हे यजमान ! तूने इस लोकमें ओदन परोस कर इस लोकको सफल कर लिया है, इस ओदनके प्रभावसे यह ओदन स्वर्गमें इससे भी अधिक विस्तृतरूपमें मिले । हे दम्पती ! सुन्दर गमन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाला महिमामय ओदन उस स्वर्गमें आपको टिकावे, देवता इस यजमानको देवताओंके अर्पण करें ॥ ३८ ॥

यद्यज्जाया पचति त्वत् परःपरः पतिर्वा जाये त्वत् तिरः सं तत् सृजेथा सह वां तदस्तु संपादयन्तौ सह लोकमेकम् ॥ ३९ ॥

यत्ऽयत् । जाया । पचति । त्वत् । परःऽपरः । पतिः । वा । जाये । त्वत् । तिरः ।

सम् । तत् । सृजेथाम् । सह । वाम् । तत् । अस्तु । सम्ऽपादयन्तौ । सह । लोकम् । एकम् ॥ ३९ ॥

जो जाया इसका पाक करती है, ऐसी हे जाये ! तेरा पति तुझसे बादको जावे या तू पतिसे पहिले जावे तो तहाँ स्वर्गमें तुम एकत्रित होजाना तहाँ यह ओदन तुम्हारे साथ रहे और तहाँ तुम एक ही लोकको सम्पादित करो ॥ ३९ ॥

यावन्तो अस्याः पृथिवीं सचन्ते अस्मत् पुत्राः परि ये संबभूवुः ।
सर्वांस्ताँ उप पात्रे ह्वयेथां नाभिं जानानाः शिशवः समायान् ॥ ४० ॥

यावन्तः । अस्याः । पृथिवीम् । सचन्ते । अस्मत् । पुत्राः । परि । ये । सम्ऽबभूवुः ।

सर्वान् । तान् । उप । पात्रे । ह्वयेथाम् । नाभिम् । जानानाः । शिशवः । सम्ऽआयान् ॥ ४० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस स्त्रीके जितने पुत्र पृथिवीका सेवन करते हैं, कि—जो पहिले हमारे पुत्र थे, उन सबको इस पात्रके समीप बुलाओ अपनी नाभि को जानते हुए वे शिशु यहाँ पर आजावें ॥ ४० ॥

वसोर्या धारा मधुनाः प्रपीना घृतेन मिश्रा अमृतस्य नाभयः ।
सर्वास्ता अव रुन्धे स्वर्गः षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात् ॥ ४१ ॥

वसोः । याः । धाराः । मधुना । प्रऽपीनाः । घृतेन । मिश्राः । अमृतस्य । नाभयः ।
सर्वाः । ताः । अव । रुन्धे । स्वःऽगः । षष्ट्याम् । शरत्ऽसु । निधिऽपाः । अभि । इच्छात् ॥ ४१ ॥

वासक ओदनकी जो मधुसे मोटी हुई धारें हैं वे घृतसे मिली हुई हैं और अमृतकी बंधिका हैं स्वर्ग उन सबको रोके रखता है, साठ वर्षोंके अनन्तर निधिपा उसकी इच्छा करे ॥ ४१ ॥

निधिं निधिपा अभ्येनमिच्छादनीश्वरा अभितः सन्तु येऽन्ये ।
अस्माभिर्दत्तो निहितः स्वर्गस्त्रिभिः काण्डैस्त्रीन्त्स्वर्गानरुक्षत् ॥ ४२ ॥

निऽधिम् । निधिऽपाः । अभि । एनम् । इच्छात् । अनीश्वराः । अभितः सन्तु । ये । अन्ये ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अस्माभिः । दत्तः । निऽहितः । स्वःऽगः । त्रिऽभिः । काण्डैः । त्रीन् । स्वःऽगान् । अरुक्षत् ॥ ४२ ॥

निधिपा यजमान इस निधिकी इच्छा करे और जो दूसरे हैं वे अनीश्वर ही रहेंगे, हमारा दिया हुआ और थातीके रूपमें स्थित स्वर्गको जाने वाला ओदन अपने तीनों काण्डोंके साथ स्वर्ग पर चढ़े ॥ ४२ ॥

अग्नी रक्षस्तपतु यद् विदेवं क्रव्यात् पिशाच इह मा प्र पास्त ।
नुदाम एनमप रुध्मो अस्मदादित्या एनमङ्गिरसः सचन्ताम् ॥ ४३ ॥

अग्निः । रक्षः । तपतु । यत् । विऽदेवम् । क्रव्यऽअत् । पिशाचः । इह । मा । प्र । पास्त ।

नुदामः । एनम् । अप । रुध्मः । अस्मत् । आदित्याः । एनम् । आङ्गिरसः । सचन्ताम् ॥ ४३ ॥

मैंने जो कुव्यवहार किया हो तो उसके फलसे बाधित करने वाले राक्षसोंको अग्निदेव संताप दें क्रव्यात् और पिशाच यहाँ हमारा शोषण न कर सकें, हम इस राक्षसको खदेड़ते हैं और अपने पास आनेसे रोकते हैं आङ्गिरस और आदित्य इसका सेवन करें ॥ ४३ ॥

आदित्येभ्यो आङ्गिरोभ्यो मध्विदं घृतेन मिश्रं प्रति वेदयामि ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुद्धहस्तौ ब्राह्मणस्यानिहत्यैतं स्वर्गं सुकृतावपीतम्

आदित्येभ्यः । अङ्गिरःऽभ्यः । मधु । इदम् । घृतेन । मिश्रम् । प्रति । वेदयामि ।

शुद्धऽहस्तौ । ब्राह्मणस्य । अनिऽहत्य । एतम् । स्वःऽगम् । सुऽकृतौ । अपि । इतम् ॥ ४४ ॥

मैं आदित्योंके लिये और अंगिराओंके लिये घृत मिले इस मधुको निवेदित करता हूँ । ब्राह्मणके पुण्यमय शुद्ध हाथ इस स्वर्ग में फलरूपसे जाने वालेके फलको नष्ट किये विना इसको स्वर्गमें लेजावें ॥ ४४ ॥

इदं प्रापमुत्तमं काण्डमस्य यस्माल्लोकात् परमेष्ठी समाप ।

आ सिञ्च सर्पिर्घृतवत् समङ्ग्ध्येष भागो अङ्गिरसो नो अत्र ॥ ४५ ॥

इदम् । प्र । आपम् । उत्ऽतमम् । काण्डम् । अस्य । यस्मात् । लोकात् । परमेऽस्थी । सम्ऽआप ।

आ । सिञ्च । सर्पिः । घृतऽवत् । सम् । अङ्ग्धि । एषः । भागः । अङ्गिरसः । नः । अत्र ॥ ४५ ॥

जिस दर्शनीय काण्डसे परमेष्ठीने भली भाँति फल पाया था उसके उत्तम काण्डको मैंने प्राप्त कर लिया है इसको घृतसे स्रावित करो यह घृतस्रुत भाग इस यज्ञमें हम अंगिराओंका है ॥ ४५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्याय च तपसे देवताभ्यो निधिं शेवधिं परि दद्म एतम् ।
मा नो द्यूतेव गान्मा समित्यां मा स्मान्यस्मा उत्सृजता पुरा मत् ॥ ४६ ॥

सत्याय । च । तपसे । देवताभ्यः । निऽधिम् । शेवऽधिम् । परि । दद्मः । एतम् ।
मा । नः । द्यूते । अव । गात् । मा । सम्ऽइत्याम् । मा । स्म । अन्यस्मै । उत् । सृजत । पुरा । मत् ॥ ४६ ॥

हम सत्यके लिये देवताओंके लिये और तपके लिये इस ओदन-रूप खजानेको थातीके रूपमें अर्पण करते हैं, यह परस्पर कर्मफल को लेने देनेरूप द्यूतमें हमसे अलग न हो और समितिमें भी यह दूर न हो मुझसे इसको दूसरे पुरुषोंके लिये मत उत्सर्जन करो अर्थात् युद्ध आदिमें पलायन करनेसे मेरे यज्ञका फल नष्ट होकर दूसरोंको प्राप्त न होवे ॥ ४६ ॥

अहं पचाम्यहं ददामि ममेदु कर्मन् करुणेधि जाया ।
कौमारो लोको अजनिष्ट पुत्रो३न्वारभेथां वय उत्तरावत्

अहम् । पचामि । अहम् । ददामि । मम । इत् । ऊं इति । कर्मन् । करुणे । अधि । जाया ।
कौमारः । लोकः । अजनिष्ट । पुत्रः । अनुऽआरभेथाम् । वयः । उत्तरऽवत् ॥ ४७ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मैं ही पाकक्रिया कर रहा हूँ और मैं ही इसको दान आदि रूपोंमें देरहा हूँ, क्योंकि हे यज्ञात्मक कर्मन्! इस कर्ममें मेरी ही जाया लग रही है, हमारे यहाँ दर्शनीय कुमारावस्थासे सम्पन्न पुत्र प्रकट है अब हम श्रेष्ठतासम्पन्न यज्ञान्नका पाक दान आदि आरंभ करते हैं ॥ ४७ ॥

न किल्बिषमत्र नाधारो अस्ति न यन्मित्रैः सममंमान एति ।
अनूनं पात्रं निहितं न एतत् पक्तारं पक्वः पुनरा विशाति ॥ ४८ ॥

न । किल्बिषम् । अत्र । न । आऽधारः । अस्ति । न । यत् ।
मित्रैः । सम्ऽअममानः । एति ।
अनूनम् । पात्रम् । निऽहितम् । नः । एतत् । पक्तारम् । पक्वः ।
पुनः । आ । विशाति ॥ ४८ ॥

इस कर्ममें कोई किल्विष नहीं है, न इसका कोई [illegible] है और न यह अपने मित्रोंके साथ नापता हुआ आता है, यहाँ न्यूनतारहित पूर्णपात्र रक्खा जाता है यही पक्ताको फिर प्राप्त होजाता है ॥ ४८ ॥

प्रियं प्रियाणां कृणवाम तमस्ते यन्तु यतमे द्विषन्ति
धेनुरनड्वान् वयोवय आयदेव पौरुषेयमप मृत्युं नुदन्तु

प्रियम् । प्रियाणाम् । कृणवाम । तमः । ते । यन्तु । यतमे । द्विषन्ति ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धेनुः । अनड्वान् । वयःऽवय । आऽयत् । एव । पौरुषेयम् ।
अप । मृत्युम् । नुदन्तु ॥ ४९ ॥

हे यजमान ! जो प्रियोंमें भी परम प्रिय होसकता है ऐसे फल को देने वाले कर्मको हम तेरे लिये करते हैं और जितने पुरुष तुझसे द्वेष करते हैं वे नरकरूप अन्धकारको प्राप्त होवें, धेनु, बैल, अन्न, अवस्था और पुरुषार्थ ये आवें ही और अपमृत्युको दूर करें ४९

समग्नयो विदुरन्यो अन्यं य ओषधीः सचते यश्च सिन्धून् ।
यावन्तो देवा दिव्याऽतपन्ति हिरण्यं ज्योतिः पचतो बभूव ॥ ५० ॥

सम् । अग्नयः । विदुः । अन्यः । अन्यम् । यः । ओषधीः ।
सचते । यः । च । सिन्धून् ।
यावन्तः । देवाः । दिवि । आऽतपन्ति । हिरण्यम् । ज्योतिः ।
पचतः । बभूव ॥ ५० ॥

जो अग्नि ओषधियोंका सेवन करता है और जो अग्नि जलों का सेवन करता है इस प्रकार दूसरा दूसरेको जानता है यह तथा अन्य अग्नियें भी इस कर्मको भलीभाँति जानती हैं, जितने दिव्य देवता तप करते हैं और जो सुवर्ण तथा ज्योतिर्मयपदार्थ हैं ये सब पाक करने वालेको प्राप्त होते हैं ॥ ५० ॥ (१७)

एषा त्वचां पुरुषे सं बभूवानग्नाः सर्वे पशवो ये अन्ये ।
क्षत्रेणात्मानं परि धापयाथो मोतं वासो मुखमोदनस्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एषा । त्वचाम् । पुरुषे । सम् । बभूव । अनग्नाः । सर्वे । पशवः ।
ये । अन्ये ।

क्षत्रेण । आत्मानम् । परि । धापयाथः । अगाऽउतम् । वासः ।
मुखम् । ओदनस्य ॥ ५१ ॥

ये जो पशु नग्नतासे रहित चर्मसे ढके हुए दीखते हैं इनकी त्वचा पहिले पुरुषमें थी, हे दम्पती ! तुम क्षत्रशक्तिसे अपनेको आच्छादित करो और साथ ही इस ओदनके मुखको वस्त्रसे आच्छादित करो ॥ ५१ ॥

यदक्षेषु वदा यत् समित्यां यद्वा वदा अनृतं वित्तकाम्या
समानं तन्तुमभि संवसानौ तस्मिन्त्सर्वं शमलं
सादयाथः ॥ ५२ ॥

यत् । अक्षेषु । वदाः । यत् । समऽइत्याम् । यत् । वा । वदाः ।
अनृतम् । वित्तऽकाम्या ।

समानम् । तन्तुम् । अभि । सम्ऽवसानौ । तस्मिन् । सर्वम् ।
शमलम् । सादयाथः ॥ ५२ ॥

जो तुमने धनकी कामनासे, द्यूतमें वा युद्धमें झूँठ बोला है, तुम समानरूपसे तन्तुओंसे बने हुए वस्त्रको ढककर उसमें अपने कश्मलको स्थापित करो ॥ ५२ ॥

वर्षं वनुष्वापि गच्छ देवांस्त्वचो धूमं पर्युत्पातयासि ।
विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्त्सयोनिर्लोकमुप याह्येतम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्षम् । वनुष्व । अपि । गच्छ । देवान् । त्वचः । धूमम् । परि । उत् । पातयासि ।

विश्वऽव्यचः । घृतऽपृष्ठः । भविष्यन् । सऽयोनिः । लोकम् । उप । याहि । एतम् ॥ ५३ ॥

तू फलवर्षत्वका सेवन कर, और देवताओंके पास जा और अपनी त्वचाको धूमरूपसे उछाल और अनेक प्रकारकी पूजाको पाता हुआ और घृतपृष्ठ होता हुआ, स्वर्गलोकमें समान उत्पत्ति-कारण वाला होकर इस पुरुषको प्राप्त हो ॥ ५२ ॥

तन्वं स्वर्गो बहुधा वि चक्रे यथा विद आत्मन्नन्यवर्णाम् ।
अपाजैत् कृष्णां रुशतीं पुनानो या लोहिनी तां ते अग्नौ जुहोमि ॥ ५४ ॥

तन्वम् । स्वऽगः । बहुऽधा । वि । चक्रे । यथा । विदे । आत्मन् । अन्यऽवर्णाम् ।

अप । अजैत् । कृष्णाम् । रुशतीम् । पुनानः । या । लोहिनी । ताम् । ते । अग्नौ । जुहोमि ॥ ५४ ॥

यह स्वर्गमें प्राप्त होनेवाला ओदन अपने शरीरको अनेक आकार का बना लेता है, जैसे ज्ञानीके लिये आत्मा अन्यवर्ण वाली प्रकृति को अनेक आकारका बना लेता है और कृष्णा रुशतीको पवित्र करता हुआ चला जाता है, इसी प्रकार मैं तेरे लालवर्णको अग्नि में होमता हूँ ॥ ५४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राच्यै त्वा दिशेऽग्नयेऽधिपतयेऽसिताय रक्षित्र आदित्यायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥ ५५ ॥

प्राच्यै । त्वा । दिशे । अग्नये । अधिऽपतये । असिताय । रक्षित्रे । आदित्याय । इषुऽमते ।
एतम् । परि । दद्मः । तम् । नः । गोपायत । आ । अस्माकम् । आऽएतोः ।
दिष्टम् । नः । अत्र । जरसे । नि । नेषत् । जरा । मृत्यवे ।
परि । नः । ददातु । अथ । पक्वेन । सह । सम् । भवेम ५५

हम तुझे पूर्वदिशाके लिये अधिपति अग्निके लिये रक्षक असित सर्पके लिये और बाणधारी आदित्यके लिये देते हैं सो आप इसकी हमारे यहाँसे पयान करने तक रक्षा करिये, इसको हमारे प्रारब्धके रूपमें बुढ़ापे तक प्राप्त कराइये और हमारी जरा इस को मृत्यु अर्पण करे फिर इस पक्व ओदनके साथ हम (स्वर्ग) में आनन्द पावें ॥ ५५ ॥

दक्षिणायै त्वा दिश इन्द्रायाधिपतये तिरश्चिराजये रक्षित्रे यमायेषुमते ।
एतं०।० ॥ ५६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दक्षिणायै । त्वा । दिशे । इन्द्राय । अधिऽपतये । तिरश्चिऽराजये ।

रक्षित्रे । यमाय । इषुऽमते ॥० ॥ ५६ ॥

हम तुझे दक्षिणदिशाके लिये, अधिपति इन्द्रके लिये तिरश्चिराजि रक्षक सर्पके लिये और बाणधारी यमके लिये देते हैं सो आप इसको हमारे यहाँसे पयान करने तक रक्षा करिये, इसको प्रारब्धके रूपमें बुढ़ापे तक प्राप्त कराइये हमारे और हमारी जरा इसको मृत्युके अर्पण करे फिर इस पक्व ओदनके साथ हम (स्वर्गमें) आनन्द पावें ॥ ५६ ॥

प्रतीच्यै त्वा दिशे वरुणायाधिपतये पृदाकवे रक्षित्रेन्नायेषुमते ।

एतं०।० ॥ ५७ ॥

प्रतीच्यै । त्वा । दिशे । वरुणाय । अधिऽपतये । पृदाकवे । रक्षित्रे ।

अन्नाः । इषुऽमते ॥० ॥ ५७ ॥

हम तुझे पश्चिम दिशाके लिये, उसके अधिपति वरुणके लिये, उसके नाग पृदाकुके लिये और बाणरूप अन्नके लिये देते हैं सो आप इसकी हमारे यहाँसे पयान करने तक रक्षा करिये, इसको हमारे प्रारब्धके रूपमें बुढ़ापे तक प्राप्त कराइये और हमारी जरा इसको मृत्युके अर्पण करे फिर इस पक्व ओदनके साथ हम (स्वर्गमें) आनन्द पावें ॥ ५७ ॥

उदीच्यै त्वा दिशे सोमायाधिपतये स्वजाय रक्षित्रेशन्या इषुमत्यै ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एतं०।० ॥ ५८ ॥

उदीच्यै । त्वा । दिशे । सोमाय । अधिऽपतये । स्वजाय ।

रक्षित्रे । अशन्यै । इषुऽमत्यै ॥० ॥ ५८ ॥

हम तुझको उत्तर दिशाके लिये, उस दिशाके अधिपति सोम के लिये, स्वज नामक रक्षक सर्पके लिये और बाणरूपा अशनिके लिये देते हैं सो आप इसको हमारे यहाँसे पयान करने तक रक्षा करिये, इसको हमारे प्रारब्धके रूपमें बुढ़ापे तक प्राप्त कराइये और हमारी जरा इसको मृत्युके अर्पण करे फिर इस पक्व ओदनके साथ हम (स्वर्गमें) आनन्द पावें ॥ ५८ ॥

ध्रुवायै त्वा दिशे विष्णवेऽधिपतये कल्माषग्रीवाय रक्षित्र ओषधीभ्य इषुमतीभ्यः । एतं०।० ॥ ५९ ॥

ध्रुवायै । त्वा । दिशे । विष्णवे । अधिऽपतये । कल्माषऽग्रीवाय ।

रक्षित्रे । ओषधीभ्यः । इषुऽमतीभ्यः ॥० ॥ ५९ ॥

हम तुझको ध्रुव दिशाके लिये, उसके अधिपति विष्णुके लिये और रक्षक कल्माष ग्रीव (सर्प) के लिये और इषुमती औषधियोंके लिये देते हैं सो आप इसकी हमारे यहाँसे पयान करने तक रक्षा करिये, इसको हमारे प्रारब्धके रूपमें बुढ़ापे तक प्राप्त कराइये और हमारी जरा इसको मृत्युके अर्पण करे फिर इस पक्व ओदनके साथ हम (स्वर्गमें) आनन्द पावें ॥ ५९ ॥

ऊर्ध्वायै त्वा दिशे बृहस्पतयेऽधिपतये श्वित्राय रक्षित्रे वर्षायेषुमते ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो
ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥ ६० ॥

ऊर्ध्वायै । त्वा । दिशे । बृहस्पतये । अधिऽपतये । श्वित्राय ।
रक्षित्रे । वर्षाय । इषुऽमते ।

एतम् । परि । दद्मः । तम् । नः । गोपायत । आ । अस्माकम् ।
आऽएतोः ।

दिष्टम् । नः । अत्र । जरसे । नि । नेषत् । जरा । मृत्यवे । परि ।
नः । ददातु । अथ । पक्वेन । सह । सम् । भवेम ॥ ६० ॥

तृतीयेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

इति तृतीयोनुवाकः ॥

हम तुझको ऊर्ध्व दिशाके लिये, उसके अधिपति बृहस्पतिके लिये, रक्षक श्वित्रके लिये और इषुमान् वर्षके लिये देते हैं सो आप इसकी हमारे यहाँसे पयान करने तक रक्षा करिये, इसको हमारे प्रारब्धके रूपमें बुढ़ापे तक प्राप्त कराइये और हमारी जरा इसको मृत्युके अर्पण करे फिर इस पक्व ओदनके साथ हम (स्वर्गमें) आनन्द पावें ॥ ६० ॥ (१८)

तृतीय अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (४९३)

तृतीय अनुवाक समाप्त

वशाविषयकं सूक्तम् एतत् । वशा गौर्या गर्भं न गृह्णातीति दारिलः (कौ० ५. ८) । वशा वन्ध्या गौरिति सायणः (ऋ० २.७.५) । वशा स्वभाववन्ध्या गौरिति स एव (ऋ०१०.९१.१४)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यस्य गृहे वशा जाता तस्य गृहे 'अज्ञातगदा सती' अर्थाद् अज्ञातवशात्वरूपवैकल्या सती आ वर्षत्रयाद् रक्षितव्या। तदनन्तरम् असंग्राह्या भवति। वशा गौर्देवानां विशेषेण प्रियं हविर्भवति। तस्माद् देवानामर्थे तां याचद्भ्यो ब्राह्मणेभ्यस्तत्पतिर्दद्यादेव। तथा कृते प्रजादिवृद्धिर्भवति न च कृते बह्व्य आपदः संजायन्ते। तदेव आपद्व्यसनं तस्या अदत्तायाः कस्मादङ्गात् कीदृशं भवतीत्याह। अन्यापि कथं विपत्तिर्भवतीति च। याचद्भ्यो ब्राह्मणेभ्योऽदत्ता वशा ब्रह्मोपद्रवादि पापं जनयति। यदा वशां ब्राह्मणा याचन्ते देवा एव तद् याचन्तीति मन्तव्यम् वशा हि देवानां भागो भवति। वशा दत्ता सती सर्वान् दातुः कामान् दुग्धे। यो वशां वेहतं मन्यमानः स्वयमेव हत्वा पचेत्तस्य हानिर्भवति। वशा हि ब्राह्मणेभ्य आत्मानं दीयमानां तैश्च हता सती देवेभ्यो हवीरूपेण अर्प्यमाणाम् इच्छति। तस्माद् यदि हुतां वा अहुतां वा यो वशापतिस्तां स्वगृह एव पचते सोधःपातम् आप्य नरकं गच्छतीत्याह॥

श्री गणेशवर्णी दि० जैन संस्थान नरिया, वाराणसी-५ 4455

वशाशमनप्रकारः कौशिके [५. ८, ९] प्रपञ्चितः॥

वशादानस्य प्रकारस्तु "ददामीति वशाम् उदपात्रेण संपातवता संप्रोक्ष्याभिमन्त्र्याभिनिगद्य दद्याद् दाता वाच्यमानः" इति कौशिके [८. ७] दर्शितः॥

यह सूक्त वशाविषयक है। कौशिकसूत्र ५। ८ में दारिलने कहा है, कि—जो गौ गर्भको धारण नहीं करती वह वशा कहलाती है। सायणाचार्यजीने ऋग्वेदसंहिता २।७। ५ में कहा है, कि—वन्ध्या गौ वशा कहलाती है। और सायणाचार्यने ही ऋग्वेदसंहिता १०।११।१४ में कहा है, कि—स्वभाववन्ध्या गौ वशा कहलाती है।

जिसके घरमें वशा प्रकट हो तो अज्ञातवशात्वरूप वैकल्य वाली उस वशाकी तीन वर्ष तक रक्षा करनी चाहिये, तदनन्तर वह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असंग्राह्य होजाती है। वशा गौ देवताओंकी विशेषप्रिय हवि होती है। इसलिये उसके पालकको चाहिये, कि-देवताओंके लिये याचना करने वाले ब्राह्मणोंको दे ही देय। ऐसा करने पर प्रजा आदि की वृद्धि होती है और न करने पर बहुतसी आपत्तियें भोगनी पड़ती हैं। उस गौके न देने पर ऐसा आपद्व्यसन उस के किस २ अंगसे कैसा २ होता है इसका वर्णन किया है और होने वाली अन्य विपत्तियोंका भी वर्णन किया है। याचना करने वाले ब्राह्मणोंको न दी हुई वशा ब्रह्मोपद्रव आदि पापोंको करती है। वशा देवताओंका भाग होता है अतः जब ब्राह्मण याचना करें उस समय यह समझना चाहिये, कि-देवता ही याचना कर रहे हैं। दान करने पर वशा दाताके लिये सब कामनाओंको दुहती है।

जो पुरुष वशाको गर्भघातिनी मानता हुआ स्वयमेव उसका हनन करके भक्षण करता है उसको हानि भोगनी पड़ती है। वशा यह चाहती है, कि-मैं ब्राह्मणोंको दी जाऊँ और उनसे हनन होने पर देवताओंको हवीरूपसे अर्पित होऊँ। इस लिये कहा है, कि-जो हुता वा अहुता वशाको अपने आप ही पचन करता है वह गृहपति अधःपातको प्राप्त होकर नरकमें पड़ता है।

कौशिकने वशाशमनका प्रकार (५। ८, ९) में कहा है।

कौशिकने ८। ७ में वशाशमनका प्रकार कहा है, कि-"ददामीति वशां उदपात्रेण सम्पातवता सम्प्रोक्ष्याभिमन्त्र्याभिनिगद्य दद्याद् दाता वाच्यमानः।-सम्पातयुक्त जलपूर्ण पात्रको दाता देता हूँ कह सम्प्रोक्षित और अभिमंत्रित करके स्वस्तिवाचन कराता हुआ देदेय"॥

ददामीत्येव ब्रूयादनु चैनामभुत्सत।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वशां ब्रह्मभ्यो याचद्भ्यस्तत् प्रजावदपत्यवत् ॥ १ ॥

ददामि । इति । एव । ब्रूयात् । अनु । च । एनाम् । अभुत्सत ।
वशाम् । ब्रह्मऽभ्यः । याचत्ऽभ्यः । तत् । प्रजाऽवत् । अपत्यऽवत् १

याचना करने वाले ब्राह्मणोंसे देता हूँ यही कहे, तदनन्तर वह ब्राह्मण अबबोधन करते हैं, कि यह कर्म यजमानको प्रजा और अपत्यसे सम्पन्न करने वाला होवे ॥ १ ॥

प्रजया स वि क्रीणीते पशुभिश्चोप दस्यति ।
य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति २

प्रऽजया । सः । वि । क्रीणीते । पशुऽभिः । च । उप । दस्यति ।
यः । आर्षेयेभ्यः । याचत्ऽभ्यः । देवानाम् । गाम् । न । दित्सति २

जो पुरुष ऋषि (गोत्र) आदि वाले याचना करते हुए ब्राह्मणों को देवताओंकी गौको नहीं देना चाहता है वह अपनी प्रजाको बेचने लगता है और पशुओंसे क्षीण होजाता है ॥ २ ॥

कूटयास्य सं शीर्यन्ते श्लोणया काटमर्दति ।
बण्डया दह्यन्ते गृहाः काणया दीयते स्वम् ॥ ३ ॥

कूटया । अस्य । सम् । शीर्यन्ते । श्लोणया । काटम् । अर्दति ।
बण्डया । दह्यन्ते । गृहाः । काणया । दीयते । स्वम् ॥ ३ ॥

इस वशाके कूटा नामक अंगसे इस अप्रदाताके पदार्थ शीर्ण होजाते हैं, श्लोणासे अप्रदाता काटको पीड़ित करता है, बण्डा नामक अंगसे इसके घर जल जाते हैं और काणा नामक अंगसे धन देदिया जाता है ॥ ३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विलोहितो अधिष्ठानाच्छक्रो विन्दति गोपतिम् ।
तथा वशायाः संविद्यं दुरदभ्ना ह्युच्यसे ॥ ४ ॥

विऽलोहितः । अधिऽस्थानात् । शक्रः । विन्दति । गोऽपतिम् ।
तथा । वशायाः । सम्ऽविद्यम् । दुरदभ्ना । हि । उच्यसे ॥ ४ ॥

वशाके अधिष्ठानसे विलोहित शक्र और सम्विद्य गोपतिको प्राप्त होता है, क्योंकि—हे वशे ! तू दुरदभ्ना कहलाती है ॥ ४॥

पदोरस्या अधिष्ठानाद् विक्लिन्दुर्नाम विन्दति ।
अनामनात् सं शीर्यन्ते या मुखेनोपजिघ्रति ॥ ५ ॥

पदोः । अस्याः । अधिऽस्थानात् । विऽक्लिन्दुः । नाम । विन्दति ।
अनामनात् । सम् । शीर्यन्ते । याः । मुखेन । उपऽजिघ्रति ॥५॥

इसके पैरोंके अधिष्ठानसे विक्लिन्दु नामक आपत्ति गोपतिको प्राप्त होती है, और जो मुखसे सूँघता है तो विना प्रसिद्धि पाये हुए ही इसके पदार्थ शीर्ण होजाते हैं ॥ ५ ॥

यो अस्याः कर्णावास्कुनोत्या स देवेषु वृश्चते ।
लक्ष्म कुर्व इति मन्यते कनीयः कृणुते स्वम् ॥ ६ ॥

यः । अस्याः । कर्णौ । आऽस्कुनोति । आ । सः । देवेषु । वृश्चते ।
लक्ष्म । कुर्वे । इति । मन्यते । कनीयः । कृणुते । स्वम् ॥ ६ ॥

जो इसके कानोंका आप्रवण करता है वह देवताओंमें काटा जाता है और जो मैं लक्ष्म करता हूँ ऐसा मानता है वह अपनेको कनिष्ठ कर लेता है ॥ ६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यदस्याः कस्मै चिद् भोगाय बालान् कश्चित् प्रकृन्तति।
ततः किशोरा म्रियन्ते वत्सांश्च घातुको वृकः ॥७॥

यत् । अस्याः । कस्मै । चित् । भोगाय । बालान् । कः । चित् ।
प्रऽकृन्तति ।
ततः । किशोराः । म्रियन्ते । वत्सान् । च । घातुकः । वृकः ७

यदि किसी भोगके लिये इसके बालोंको काटता है तो इसके किशोर पुत्र मर जाते हैं और भेड़िया बछड़ोंको मार डालता है ७

यदस्या गोपतौ सत्या लोम ध्वाङ्क्षो अजीहिडत्।
ततः कुमारा म्रियन्ते यक्ष्मो विन्दत्यनामनात् ॥८॥

यत् । अस्याः । गोऽपतौ । सत्याः । लोम । ध्वाङ्क्षः । अजीहिडत् ।
ततः । कुमाराः । म्रियन्ते । यक्ष्मः । विन्दति । अनामनात् ८

यदि गोपतिकी उपस्थितिमें ऐसी गौके लोमका कौआ अपमान करता है तो इसके कुमार मर जाते हैं और अनामनसे यक्ष्मा रोग आजाता है ॥ ८ ॥

यदस्याः पल्पूलनं शकृद् दासी समस्यति।
ततोपरूपं जायते तस्मादव्येष्यदेनसः ॥ ९ ॥

यत् । अस्याः । पल्पूलनम् । शकृत् । दासी । सम्ऽअस्यति ।
ततः । अपऽरूपम् । जायते । तस्मात् । अविऽएष्यत् । एनसः ९

यदि इसके पल्पूलन गोबरको दासी फेंकती है तो उस पापसे न छूटता हुआ पुरुष अपरूप होजाता है ॥ ९ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जायमानाभि जायते देवान्त्सब्राह्मणान् वशा ।
तस्माद् ब्रह्मभ्यो देयैषा तदाहुः स्वस्य गोपनम् १०

जायमाना । अभि । जायते । देवान् । सऽब्राह्मणान् । वशा ।
तस्मात् । ब्रह्मऽभ्यः । देया । एषा । तत् । आहुः । स्वस्य । गोपनम् १०

उत्पन्न होती हुई वशा देवता और ब्राह्मणोंके लिये ही प्रकट होती है, इस लिये इसको ब्राह्मणोंको देना चाहिये यही अपना रक्षण करना है ऐसा सत्पुरुष कहते हैं ॥ १० ॥ (१९)

य एनां वनिमायन्ति तेषां देवकृता वशा ।
ब्रह्मज्येयं तदब्रुवन् य एनां निप्रियायते ॥ ११ ॥

ये । एनाम् । वनिम् । आऽयन्ति । तेषाम् । देवऽकृता । वशा ।
ब्रह्मऽज्येयम् । तत् । अब्रुवन् । यः । एनाम् । निऽप्रिययते ॥११॥

जो इसकी सेवा करते हैं और इसको परम प्रिय समझते हैं उनके लिये यह ब्रह्मज्या होजाती है ऐसा विद्वान् पुरुष कहते हैं ११

य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति ।
आ स देवेषु वृश्चते ब्राह्मणानां च मन्यवे ॥ १२ ॥

यः । आर्षेयेभ्यः । याचत्ऽभ्यः । देवानाम् । गाम् । न । दित्सति ।
आ । सः । देवेषु । वृश्चते । ब्राह्मणानाम् । च । मन्यवे ॥ १२ ॥

जो पुरुष ऋषि प्रवरसे अभिज्ञ आर्षेय याचकोंको देवताओं की गौको नहीं देना चाहता है वह देवताओंके द्वारा और ब्राह्मणों के कोपके द्वारा छिन्न भिन्न होजाता है ॥ १२ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यो अस्य स्याद् वशाभोगो अन्यामिच्छेत तर्हि सः।
हिंस्ते अदत्ता पुरुषं याचितां च न दित्सति ॥१३॥

यः। अस्य। स्यात्। वशाऽभोगः। अन्याम्। इच्छेत। तर्हि। सः।
हिंस्ते। अदत्ता। पुरुषम्। याचिताम्। च। न। दित्सति १३

यदि वशा इसका भोग हो तो यह दूसरीकी इच्छा करे जो पुरुष माँगी हुई वशाको नहीं देना चाहता है तो यह न दी हुई वशा पुरुषका संहार करती है ॥ १३ ॥

यथा शेवधिर्निहितो ब्राह्मणानां तथा वशा।
तामेतदच्छायन्ति यस्मिन् कस्मिंश्च जायते॥ १४ ॥

यथा। शेवऽधिः। निऽहितः। ब्राह्मणानाम्। तथा। वशा।
ताम्। एतत्। अच्छऽआयन्ति। यस्मिन्। कस्मिन्। च। जायते

जैसी थाती रक्खी जाती है तैसी ही वशा ब्राह्मणोंकी होती है, यह वशा चाहें किसीके घर प्रकट होजाती है और यह ब्राह्मण उसके अभिमुख होकर याचना करते हैं ॥ १४ ॥

स्वमेतदच्छायन्ति यद् वशां ब्राह्मणा अभि।
यथैनानन्यस्मिन् जिनीयादेवास्या निरोधनम् १५

स्वम्। एतत्। अच्छऽआयन्ति। यत्। वशाम्। ब्राह्मणाः। अभि।
यथा। एनान्। अन्यस्मिन्। जिनीयात्। एव। अस्याः। निऽरोध-
नम् ॥ १५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो ब्राह्मण वशाके अभिमुख होकर आते हैं वह अपने धनकी ओर ही आते हैं, इसको रोकना दूसरोंके द्वारा अपनेको हानि पहुँचाना है ॥ १५ ॥

चरेदेवा त्रैहायणादविज्ञातगदा सती ।
वशा च विद्यान्नारद ब्राह्मणास्तर्ह्येष्याः ॥ १६ ॥

चरेत् । एव । आ । त्रैहायनात् । अविज्ञातऽगदा । सती ।
वशाम् । च । विद्यात् । नारद । ब्राह्मणाः । तर्हि । एष्याः १६

हे नारद ! यह गौ अविज्ञातगदारूपमें तीन वर्ष तक भक्षण ही करती रहे तदनन्तर इसको वशा जाने और ब्राह्मणोंको ढूँढ़े १६

य एनामवशामाह देवानां निहितं निधिम् ।
उभौ तस्मै भवाशर्वौ परिक्रम्येषुमस्यतः ॥ १७ ॥

यः । एनाम् । अवशाम् । आह । देवानाम् । निऽहितम् । निऽधिम् ।
उभौ । तस्मै । भवाशर्वौ । परिऽक्रम्य । इषुम् । अस्यतः ॥१७॥

जो इस देवताओंकी थातीरूप वशा—निधिको अवशा कहता है तो भव और शर्व ये दोनों देवता उस पर पराक्रम करके बाण फेंकते हैं ॥ १७ ॥

यो अस्या ऊधो न वेदाथो अस्या स्तनानुत ।
उभयेनैवास्मै दुहे दातुं चेदशकद् वशाम् ॥ १८ ॥

यः । अस्याः । ऊधः । न । वेद । अथो इति । अस्याः । स्तनान् ।
उत ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उभयेन । एव । अस्मै । दुहे । दातुम् । च । इत् । अशकत् । वशाम् १८

जो पुरुष इसके स्तनोंको और ऐनोंको नहीं जानता है और वशाका दान कर देता है तो यह वशा गौ उसको दोनोंसे फल देती है ॥ १८ ॥

दुरदभ्नैनमा शये याचितां च न दित्सति ।
नास्मै कामाः समृध्यन्ते यामदत्त्वा चिकीर्षति १९

दुरदभ्ना । एनम् । आ । शये । याचिताम् । च । न । दित्सति । न । अस्मै । कामाः । सम् । ऋध्यन्ते । याम् । अदत्त्वा । चिकीर्षति ॥ १९ ॥

जो पुरुष इसकी याचना होने पर नहीं देता है तो दुरदुभन् दशा इसको घेर लेती है जो इसको न देकर इसको अपने यहाँ ही रखना चाहता है उसके काम (इच्छाएँ) पूर्ण नहीं होते हैं १९

देवा वशामयाचन् मुखं कृत्वा ब्राह्मणम् ।
तेषां सर्वेषामददद्धेडं न्येति मानुषः ॥ २० ॥

देवाः । वशाम् । अयाचन् । मुखम् । कृत्वा । ब्राह्मणम् । तेषाम् । सर्वेषाम् । अददत् । हेडम् । नि । एति । मानुषः ॥२०॥

देवता ब्राह्मणको मुख बनाकर याचना करते हैं, मनुष्य न देनेसे उन सबके क्रोधका पात्र होता है ॥ २० ॥ (२०)

हेडं पशूनां न्येति ब्राह्मणेभ्योददद् वशाम् ।
देवानां निहितं भागं मर्त्यश्चेन्निप्रियायते ॥ २१ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हेडम् । पशूनाम् । नि । एति । ब्राह्मणेभ्यः । अददत् । वशाम् ।
देवानाम् । निऽहितम् । भागम् । मर्त्यः । च । इत् । निऽप्रिययते

देवताओंके थाती रूपमें रक्खे हुए भागको जो पुरुष परम प्रिय समझता है वह ब्राह्मणोंको वशा न देने पर पशुओंके क्रोध का पात्र होता है ॥ २१ ॥

यदन्ये शतं याचेयुर्ब्राह्मणा गोपतिं वशाम् ।
अथैनां देवा अब्रुवन्नेवं ह विदुषो वशा ॥ २२ ॥

यत् । अन्ये । शतम् । याचेयुः । ब्राह्मणाः । गोऽपतिम् । वशाम् ।
अथ । एनाम् । देवाः । अब्रुवन् । एवम् । ह । विदुषः । वशा ॥

चाहे दूसरे सैंकड़ों ब्राह्मण गोपतिसे वशाकी याचना करें, परन्तु देवता यह कहते हैं, कि—वशा विद्वान्‌की ही होती है २२

य एवं विदुषेऽदत्त्वाथान्येभ्यो ददद् वशाम् ।
दुर्गा तस्मा अधिष्ठाने पृथिवी सहदेवता ॥ २३ ॥

यः । एवम् । विदुषे । अदत्त्वा । अथ । अन्येभ्यः । ददत् । वशाम् ।
दुऽगाः । तस्मै । अधिऽस्थाने । पृथिवी । सहऽदेवता ॥ २३ ॥

जो पुरुष ऐसे विद्वान्‌को वशा न देकर दूसरेको वशा देता है, उसके अधिष्ठानमें देवताओं सहित पृथिवी दुर्गम होजाती है २३

देवा वशामयाचन् यस्मिन्नग्रे अजायत ।
तामेतां विद्यान्नारदः सह देवैरुदाजत ॥ २४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवाः । वशाम् । अयाचन् । यस्मिन् । अग्रे । अजायत ।

ताम् । एताम् । विद्यात् । नारदः । सह । देवैः । उत् । आजत

वशा जिसके सामने प्रकट होती है उससे देवता वशाकी याचना करते हैं, नारद उसको जानकर देवताओं सहित तहाँ पहुँच गए थे २४

अनपत्यमल्पपशुं वशा कृणोति पूरुषम् ।
ब्राह्मणैश्च याचितामथैनां निप्रियायते ॥ २५ ॥

अनपत्यम् । अल्पऽपशुम् । वशा । कृणोति । पुरुषम् ।

ब्राह्मणैः । च । याचिताम् । अथ । एनाम् । निऽप्रिययते ।२५।

जो पुरुष ब्राह्मणोंके द्वारा याचनाकी गई वशाको परम प्रिय समझ कर नहीं देता है तो वशा उस पुरुषको अल्प पशुओं वाला और सन्तानरहित कर डालती है ॥ २५ ॥

अग्नीषोमाभ्यां कामाय मित्राय वरुणाय च ।
तेभ्यो याचन्ति ब्राह्मणास्तेष्वा वृश्चतेददत् ॥ २६॥

अग्नीषोमाभ्याम् । कामाय । मित्राय । वरुणाय । च ।

तेभ्यः । याचन्ति । ब्राह्मणाः । तेषु । आ । वृश्चते । अददत् २६

ब्राह्मण अग्निदेवताके लिये, सोम देवताके लिये काम देवता के लिये, मित्र देवताके लिये और वरुण देवताके लिये याचना करते हैं अतः वशाको न देने पर पुरुष उनका ही काट (अपमान) करता है ॥ २६ ॥

यावदस्या गोपतिर्नोपशृणुयादृचः स्वयम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चरेदस्य तावद् गोषु नास्य श्रुत्वा गृहे वसेत् ।२७।

यावत् । अस्याः । गोऽपतिः । न । उपऽशृणुयात् । ऋचः । स्वयम् ।
चरेत् । अस्य । तावत् । गोषु । न । अस्य । श्रुत्वा । गृहे । वसेत्

जब तक गोपति इस गौके विषयमें प्रतिज्ञा न कर लेय तब तक इसकी गौओंमें विचरण करे और प्रतिज्ञाके अनन्तर इसके घरमें न रहे ॥ २७ ॥

यो अस्या ऋच उपश्रुत्याथ गोष्वचीचरत् ।
आयुश्च तस्य भूतिं च देवा वृश्चन्ति हीडिताः २८

यः । अस्याः । ऋचः । उपऽश्रुत्य । अथ । गोषु । अचीचरत् ।
आयुः । च । तस्य । भूतिम् । च । देवाः । वृश्चन्ति । हीडिताः २८

जो यजमान प्रतिज्ञाकी वाणी कहकर भी गौओंमें विचरण करता रहता है तो देवता अपमानित होकर उसकी आयु और विभूतिको नष्ट कर डालते हैं ॥ २८ ॥

वशा चरन्ती बहुधा देवानां निहितो निधिः ।
आविष्कृणुष्व रूपाणि यदा स्थाम जिघांसति २९

वशा । चरन्ती । बहुऽधा । देवानाम् । निऽहितः । निऽधिः ।
आविः । कृणुष्व । रूपाणि । यदा । स्थाम । जिघांसति ॥२९॥

देवताओंकी निधिरूपमें स्थापित हुई वशा जब अनेक प्रकार से विचरण करती है उस समय जब स्थानका नाश करना चाहती है तो अनेक प्रकारके रूपोंको प्रकट करती है ॥ २९ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आविरात्मानं कृणुते यदा स्थाम जिघांसति ।
अथो ह ब्रह्मभ्यो वशा याच्ञ्याय कृणुते मनः ३०

आविः । आत्मानम् । कृणुते । यदा । स्थाम । जिघांसति ।
अथो इति । ह । ब्रह्मऽभ्यः । वशा । याच्ञ्याय । कृणुते । मनः ॥

जब वशा अपने स्थान-(पति) का संहार करना चाहती है तो अपने रूपको प्रकट करती है और ब्राह्मणोंकी याचनाके लिये मन करती है ॥ ३० ॥ (२१)

मनसा सं कल्पयति तद् देवाँ अपि गच्छति ।
ततो ह ब्रह्माणो वशामुपप्रयन्ति याचितुम् ॥३१॥

मनसा । सम् । कल्पयति । तत् । देवान् । अपि । गच्छति ।
ततः । ह । ब्रह्माणः । वशाम् । उपऽप्रयन्ति । याचितुम् ॥२१॥

वह मनसे संकल्प करती है और वह संकल्प देवताओंको प्राप्त होता है तब ब्राह्मण वशाकी याचना करनेके लिये समीपमें आते हैं

स्वधाकारेण पितृभ्यो यज्ञेन देवताभ्यः ।
दानेन राजन्यो वशाया मातुर्हेडं न गच्छति ।३२।

स्वधाऽकारेण । पितृऽभ्यः । यज्ञेन । देवताभ्यः ।
दानेन । राजन्यः । वशायाः । मातुः । हेडम् । न । गच्छति ॥

क्षत्रिय पितरोंके निमित्त स्वधा करनेसे देवताओंके निमित्त यज्ञ करनेसे और वशाका दान करनेसे माताके क्रोधका पात्र नहीं होता है ॥ ३२ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वशा माता राजन्यस्य तथा संभूतमग्रशः ।
तस्या आहुरनर्पणं यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ॥ ३३ ॥

वशा । माता । राजन्यस्य । तथा । सम्ऽभूतम् । अग्रऽशः ।
तस्याः । आहुः । अनर्पणम् । यत् । ब्रह्मऽभ्यः । प्रऽदीयते ३३

वशा राजन्यकी माता है तथा इनका समूह पहिले प्रकट हुआ है, उसका जो ब्राह्मणोंको प्रदान करना है उसको अनर्पण कहते हैं

यथाज्यं प्रगृहीतमालुम्पेत् स्रुचो अग्नये ।
एवा ह ब्रह्मभ्यो वशामग्नय आ वृश्चतेददत् ॥३४॥

यथा । आज्यम् । प्रऽगृहीतम् । आऽलुम्पेत् । स्रुचः । अग्नये ।
एव । ह । ब्रह्मऽभ्यः । वशाम् । अग्नये । आ । वृश्चते । अददत् ॥

जैसे ग्रहण किया हुआ घृत स्रुचासे अग्निके लिये छिन्न हो जाता है, इसी प्रकार ब्राह्मणोंके लिये वशाको न देता हुआ अग्निके लिये छिन्न होजाता है ॥ ३४ ॥

पुरोडाशवत्सा सुदुघा लोकेस्मा उप तिष्ठति ।
सास्मै सर्वान् कामान् वशा प्रददुषे दुहे ॥ ३५ ॥

पुरोडाशऽवत्सा । सुऽदुघा । लोके । अस्मै । उप । तिष्ठति ।
सा । अस्मै । सर्वान् । कामान् । वशा । प्रऽददुषे । दुहे ॥ ३५ ॥

इस यजमानके लिये इस लोकमें पुरोडाशरूपी वत्ससे सुन्दरता से (फलको) दुहाने वाली वशा इसके समीप रहती है, ऐसी यह वशा इस दान करने वालेके लिये सम्पूर्ण कामनाओंको देती है ३५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वान् कामान् यमराज्ये वशा प्रददुषे दुहे ।
अथाहुर्नारकं लोकं निरुन्धानस्य याचिताम् ॥३६॥

सर्वान् । कामान् । यमऽराज्ये । वशा । प्रऽददुषे । दुहे ।
अथ । आहुः । नरकम् । लोकम् । निऽरुन्धानस्य । याचिताम् ॥

वशा दान देने वालेके लिये यमराज्यमें सकल कामनाओंको देती है और माँगी हुई वशाको रोकने वालेको नरकलोक मिलने का विद्वान् पुरुष वर्णन करते हैं ॥ ३६ ॥

प्रवीयमाना चरति क्रुद्धा गोपतय वशा ।
वेहतं मा मन्यमानो मृत्योः पाशेषु बध्यताम् ॥३७॥

प्रऽवीयमाना । चरति । क्रुद्धा । गोऽपतये । वशा ।
वेहतम् । मा । मन्यमानः । मृत्योः । पाशेषु । बध्यताम् ॥३७॥

वशा क्रोधमें भरकर गोपतिका भक्षणसा करती हुई विचरती है, कि—यह मुझ गर्भघातिनीको अपनीमानता हुआ मृत्युके पाशों से बँध जावे ॥ ३७ ॥

यो वेहतं मन्यमानोमा च पचते वशाम् ।
अप्यस्य पुत्रान् पौत्रांश्च याचयते बृहस्पतिः ॥३८॥

यः । वेहतम् । मन्यमानः । अमा । च । पचते । वशाम् ।
अपि । अस्य । पुत्रान् । पौत्रान् । च । याचयते । बृहस्पतिः ३८

जो वशा गर्भघातिनीको अपनी मानता हुआ साथ ही साथ वशाका पचन करता है तो बृहस्पति इसके पुत्र और पौत्रोंकी याचना करते हैं ॥ ३८ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महदेषात्र तपति चरन्ती गोषु गौरपि ।
अथो ह गोपतये वशाददुषे विषं दुहे ॥ ३९ ॥

महत् । एषा । अत्र । तपति । चरन्ती । गोषु । गौः । अपि ।
अथो इति । ह । गोऽपतये । वशा । अददुषे । विषम् । दुहे ३९

यह वशा गौ गौओंमें बड़ा भारी सन्ताप फैलाती हुई विचरण करती है यदि गोपति इसको नहीं देता है तो यह उसके लिये विष दुहती है ॥ ३९ ॥

प्रियं पशूनां भवति यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ।
अथो वशायास्तत् प्रियं यद् देवत्रा हविः स्यात् ४०

प्रियम् । पशूनाम् । भवति । यत् । ब्रह्मऽभ्यः । प्रऽदीयते ।
अथो इति । वशायाः । तत् । प्रियम् । यत् । देवऽत्रा । हविः । स्यात्

जो वशा ब्राह्मणोंको देदी जाती है यह पशुओंका प्रिय होता है, फिर वशाका यह प्रिय होता है जो वह देवताओंमें हविरूपसे दीजाती है ॥ ४० ॥ (२२)

या वशा उदकल्पयन् देवा यज्ञादुदेत्य ।
तासां विलिप्त्यं भीमामुदाकुरुत नारदः ॥ ४१ ॥

याः । वशाः । उत्ऽअकल्पयन् । देवाः । यज्ञात् । उत्ऽएत्य ।
तासाम् । विऽलिप्त्यम् । भीमाम् । उत्ऽआकुरुत । नारदः ४१

देवताओंने यज्ञसे आकर जो वशाकी कल्पनाकी, उस समय विलिप्ती भीमाको नारदने स्वीकार किया ॥ ४१ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तां देवा अमीमांसन्त वशेया३मवशेति ।
तामब्रवीन्नारद एषा वशानां वशतमेति ॥ ४२ ॥

ताम् । देवाः । अमीमांसन्त । वशा । इया३म् । अवशा३ । इति ।
ताम् । अब्रवीत् । नारदः । एषा । वशानाम् । वशऽतमा । इति ॥

उस समय देवताओंने मीमांसाकी, कि—यह वशा अवशा है । तब उसके विषयमें नारदने कहा, कि—यह वशाओंमें भी परमवशा है

कति नु वशा नारद यास्त्वं वेत्थ मनुष्यजाः ।
तास्त्वा पृच्छामि विद्वांसं कस्या नाश्नीयादब्राह्मणः

कति । नु । वशाः । नारद । याः । त्वम् । वेत्थ । मनुष्यऽजाः ।
ताः । त्वा । पृच्छामि । विद्वांसम् । कस्याः । न । अश्नीयात् ।
अब्राह्मणः ॥ ४३ ॥

हे नारद ! मनुष्योंमें प्रकट होने वालीं ऐसी कितनी वशा हैं, कि—जिनको तुम जानते हो, तुम विद्वान् हो इसलिये मैं उनके विषयमें बूझता हूँ, कि—अब्राह्मण किसका प्राशन न करे ॥ ४३ ॥

विलिप्त्या बृहस्पते या च सूतवशा वशा ।
तस्या नाश्नीयादब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम् ४४

विऽलिप्त्याः । बृहस्पते । या । च । सूतऽवशा । वशा ।
तस्याः । न । अश्नीयात् । अब्राह्मणः । यः । आऽशंसेत । भूत्याम्

हे बृहस्पते ! जो अब्राह्मण विभूतिकी प्रार्थना करे वह इनका प्राशन न करे, विलिप्ती सूतवशा और वशा ॥ ४४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नमस्ते अस्तु नारदादानुष्ठु विदुषे वशा ।
कतमासां भीमतमा यामदत्त्वा पराभवेत् ॥ ४५ ॥

नमः । ते । अस्तु । नारद । अनुष्ठु । विदुषे । वशा ।
कतमः । आसाम् । भीमऽतमा । याम् । अदत्त्वा । पराऽभवेत् ४५

हे नारद ! आपके लिये नमस्कार है, वशा विद्वान्की स्तुतिके अनुकूल ही है, परन्तु इन वशाओंमें परम भयंकर वशा कौनसी होती है, कि-जिसको न देने पर पराभव होता है ॥ ४५ ॥

विलिप्ती या बृहस्पतेथो सूतवशा वशा ।
तस्या नाश्नीयादब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम् ४६

विऽलिप्ती । या । बृहस्पते । अथो इति । सूतऽवशा । वशा ।
तस्याः । न । अश्नीयात् । अब्राह्मणः । यः । आऽशंसेत । भूत्याम्

हे बृहस्पते ! जो अब्राह्मण विभूतिकी प्रार्थना करे वह इनका प्राशन न करे, विलिप्ती सूतवशा और वशा ॥ ४६ ॥

त्रीणि वै वशाजातानि विलिप्ती सूतवशा वशा ।
ताः प्र यच्छेद् ब्रह्मभ्यः सो नाव्रस्कः प्रजापतौ ४७

त्रीणि । वै । वशाऽजातानि । विऽलिप्ती । सूतऽवशा । वशा ।
ताः । प्र । यच्छेत् । ब्रह्मऽभ्यः । सः । अनाव्रस्कः । प्रजाऽपतौ ।

विलिप्ती सूतवशा और वशा ये वशाओंके तीन भेद हैं, इनको ब्राह्मणोंके अर्पण कर देय तो वह प्रजापतिको क्षोभ देने वाला नहीं होता है ॥ ४७ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एतद् वो ब्राह्मणा हविरिति मन्वीत याचितः ।
वशां चेदेनं याचेयुर्या भीमाददुषो गृहे ॥ ४८ ॥

एतत् । वः । ब्राह्मणाः । हविः । इति । मन्वीत । याचितः ।
वशाम् । च । इत् । एनम् । याचेयुः । या । भीमा । अददुषः । गृहे

जो अदाताके घरमें भीमा वशा है उस वशाकी यदि इससे याचना करें तो इनके प्रार्थना करने पर यह माने, कि—हे ब्राह्मणों! यह तो तुम्हारे लिये हविरूप है ॥ ४८ ॥

देवा वशां पर्यवदन् न नोदादिति हीडिताः ।
एताभिर्ऋग्भिर्भेदं तस्माद् वै स पराभवत् ॥ ४९ ॥

देवाः । वशाम् । परि । अवदन् । न । नः । अदात् । इति । हीडिताः
एताभिः । ऋक्ऽभिः । भेदम् । तस्मात् । वै । सः । परा । अभवत् ।

क्रोधमें भरे हुए देवताओंने इन वाणियोंसे भेद डालनेके लिये वशासे कहा, कि—इसने हमको नहीं दिया है, अत एव वह अदाता पराजित होजाता है ॥ ४९ ॥

उतैनां भेदो नाददाद् वशामिन्द्रेण याचितः ।
तस्मात् तं देवा आगसोवृश्चन्नहमुत्तरे ॥ ५० ॥

उत । एनाम् । भेदः । न । अददात् । वशाम् । इन्द्रेण । याचितः ।
तस्मात् । तम् । देवाः । आगसः । अवृश्चन् । अहम्ऽउत्तरे ५०

इन्द्रकी प्रार्थना करने पर और भेद पड़ने पर भी यदि वशा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को नहीं देता है, तो इस पापके कारण देवता उसको श्रेष्ठ अहंकार के चक्रमें डाल कर नष्ट कर डालते हैं ॥ ५० ॥

ये वशाया अदानाय वदन्ति परिरापिणः ।
इन्द्रस्य मन्यवे जाल्मा आ वृश्चन्ते अचित्त्या ॥५१॥

ये । वशायाः । अदानाय । वदन्ति । परिऽरापिणः ।
इन्द्रस्य । मन्यवे । जाल्माः । आ । वृश्चन्ते । अचित्त्या ॥ ५१ ॥

जो बड़बड़ाने वाले वशाका दान न करनेको कहते हैं, वे जालम मूर्खतावश अपनेको इन्द्रके क्रोधसे नष्ट कर लेंगे ॥ ५१ ॥

ये गोपतिं पराणीयाथाहुर्मा ददा इति ।
रुद्रस्यास्तां ते हेतिं परि यन्त्यचित्त्या ॥ ५२ ॥

ये । गोऽपतिम् । पराऽनीय । अथ । आहुः । मा । ददाः । इति ।
रुद्रस्य । अस्ताम् । ते । हेतिम् । परि । यन्ति । अचित्त्या ॥५२॥

जो गोपतिके पास जाकर कहते हैं, मत दो वे मूर्खतावश रुद्रके अस्त्रप्रक्षेपको प्राप्त होते हैं ॥ ५२ ॥

यदि हुतां यद्यहुतामुमा च पचते वशाम् ।
देवान्त्सब्राह्मणानृत्वा जिह्मो लोकान्निर्ऋच्छति ५३

यदि । हुताम् । यदि । अहुताम् । अमा । च । पचते । वशाम् ।
देवान् । सऽब्राह्मणान् । ऋत्वा । जिह्मः । लोकात् । निः । ऋच्छति

चतुर्थेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ।
इति चतुर्थेनुवाकः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यदि हुत वा अहुत वशाका पचन करता है तो वह जिह्म देवता और ब्राह्मणोंको दबाता हुआ इस लोकसे दुर्गतिमें पड़ता है ॥ ५३ ॥ (२३)

चतुर्थ अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (४९४)

चतुर्थ अनुवाक समाप्त

ब्रह्मगवीविषयमेतत् सूक्तम् । ब्राह्मणस्य गौर्ब्रह्मगवी । तां क्षत्रियो नादद्यात् । आदद्याच्चेद् नाग् वीर्यं लक्ष्मीस्तं हास्यति । ओजआदि नशिष्यति । तां क्षत्रियो न हन्यात् न पचेत् न भक्षेत् । सा हि हृता सती नानाविधा आपदो नानाविधान् मृत्यून् नानाविधानि च दुःखानि ऐहिकान्यामुष्मिकाणि आवहतीत्याह ॥

संप्रदायानुसारेणास्य सूक्तस्य विनियोगस्तु "नैतां ते देवाः" इत्यत्र [५. १८] द्रष्टव्यः ॥

यह सूक्त ब्रह्मगवीविषयक है । ब्राह्मणकी गौ ब्रह्मगवी कहलाती है क्षत्रिय उसको ग्रहण न करे । यदि ग्रहण कर लेता है तो वाणी वीर्य और लक्ष्मी उसको त्याग देती है । उसका ओज आदि नष्ट होजाता है । क्षत्रिय उसका हनन पचन वा भक्षण न करे । वह हरण करने पर अनेक प्रकारकी आपत्तियोंको, अनेक प्रकारके मृत्युकारणोंको और इस लोक तथा परलोकके अनेक प्रकारके दुःखोंको देती है ।

सम्प्रदायके अनुसार इस सूक्तका विनियोग "नैवं ते देवाः" इस पञ्चमकाण्डके अठारहवें सूक्तमें देखना चाहिये ॥

श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वित्तर्ते श्रिता ॥ १ ॥

श्रमेण । तपसा । सृष्टा । ब्रह्मणा । वित्ता । ऋते । श्रिता ॥ १ ॥

परब्रह्ममें आश्रित तपके द्वारा रची हुई इस गौको ब्राह्मणने श्रमसे पाया है ॥ १ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्येनावृता श्रिया प्रावृता यशसा परीवृता ॥ २ ॥

सत्येन । आऽवृता । श्रिया । प्रावृता । यशसा । परिऽवृता ॥२॥

यह सत्यसे आवृत है, सम्पत्तिसे पूर्ण रहती है और यशसे सम्पन्न रहती है ॥ २ ॥

स्वधया परिहिता श्रद्धया पर्यूढा दीक्षया गुप्ता यज्ञे प्रतिष्ठिता लोको निधनम् ॥ ३ ॥

स्वधया । परिऽहिता । श्रद्धया । परिऽऊढा । दीक्षया । गुप्ता । यज्ञे । प्रतिऽस्थिता । लोकः । निऽधनम् ॥ ३ ॥

यह गौ स्वधासे परिहित श्रद्धासे पर्यूढ, दीक्षासे रक्षित और यज्ञ में प्रतिष्ठा पाती रहती है क्षत्रियका इसकी ओर देखना मृत्यु है ३

ब्रह्म पदवायं ब्राह्मणोधिपतिः ॥ ४ ॥

ब्रह्म । पदऽवायम् । ब्राह्मणः । अधिऽपतिः ॥ ४ ॥

इस गौके द्वारा ब्रह्मपद प्राप्त होता है, ब्राह्मण ही इसका अधिपति है ॥ ४ ॥

तामाददानस्य ब्रह्मगवीं जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य

ताम् । आऽददानस्य । ब्रह्मऽगवीम् । जिनतः । ब्राह्मणम् । क्षत्रियस्य ।

अप क्रामति सूनृता वीर्यं पुण्या लक्ष्मीः ॥ ६ ॥

अप । क्रामति । सूनृता । वीर्यम् । पुण्या । लक्ष्मीः ॥ ६ ॥

इति पञ्चमेनुवाके प्रथमं पर्यायसूक्तम् ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसी ब्राह्मणकी गौका अपहरण करने वाले और ब्राह्मणको दिक करने वाले क्षत्रियकी पवित्र लक्ष्मी वीर्य और प्रिय मधुर वाणी भाग जाती है ॥ ५ ॥ (२४)

पञ्चम अनुवाकमें प्रथम पर्यायसूक्त समाप्त (४९५)

ओजश्च तेजश्च सहश्च बलं च वाक् चेन्द्रियं च श्रीश्च धर्मश्च ॥ १ ॥

ओजः । च । तेजः । च । सहः । च । बलम् । च । वाक् । च । इन्द्रियम् । च । श्रीः । च । धर्मः । च ॥ १ ॥

ब्रह्म च क्षत्रं च राष्ट्रं च विशश्च त्विषिश्च यशश्च वर्चश्च द्रविणं च ॥ २ ॥

ब्रह्म । च । क्षत्रम् । च । राष्ट्रम् । च । विशः । च । त्विषिः । च । यशः । च । वर्चः । च । द्रविणम् । च ॥ २ ॥

आयुश्च रूपं च नाम च कीर्तिश्च प्राणश्चापानश्च चक्षुश्च श्रोत्रं च ॥ ३ ॥

आयुः । च । रूपम् । च । नाम । च । कीर्तिः । च । प्राणः । च । अपानः । च । चक्षुः । च । श्रोत्रम् । च ॥ ३ ॥

पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं चर्तं च सत्यं चेष्टं च पूर्तं च प्रजा च पशवश्च ॥ ४ ॥

पयः । च । रसः । च । अन्नम् । च । अन्नऽअद्यम् । च । ऋतम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust eGangotri

च । सत्यम् । च । इष्टम् । च । पूर्तम् । च । प्रऽजा । च । पशवः । च ॥ ४ ॥

तानि सर्वाण्यप क्रामन्ति ब्रह्मगवीमाददानस्य जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य ॥ ५ ॥

तानि । सर्वाणि । अप । क्रामन्ति । ब्रह्मऽगवीम् । आऽददानस्य । जिनतः । ब्राह्मणम् । क्षत्रियस्य ॥ ५ ॥

इति पञ्चमेनुवाके द्वितीयं पर्यायसूक्तम् ॥

जो क्षत्रिय ब्राह्मणकी गौको छीनकर उसकी आयुको कम करता है तो उस क्षत्रियको ओज तेज शत्रुओंको दबानेकी शक्ति बल वाणी इन्द्रियें श्री धर्म, वेद क्षात्रशक्ति राष्ट्र प्रजायें दीप्ति यश वर्च और धन, आयु रूप नाम कीर्ति प्राण अपान चक्षु श्रोत्र, पय रस अन्न अन्नको पचानेकी अग्नि ऋत सत्य श्रुतिविहित याग आदि इष्ट और स्मृतिविहित कूप तटाक आदि पूर्त प्रजा और पशु ये सब छोड़ देते हैं ॥ १–५ ॥ (२५)

पञ्चम अनुवाकमें द्वितीय पर्याय सूक्त समाप्त (४९६)

सैषा भीमा ब्रह्मगव्यघविषा साक्षात् कृत्या कूल्बजमावृता ॥ १ ॥

सा । एषा । भीमा । ब्रह्मऽगवी । अघऽविषा । सऽअक्षात् । कृत्या । कूल्बजम् । आऽवृता ॥ १ ॥

यह ब्राह्मणकी गौ भयंकर होती है कूल्बजसे आवृत मारण-रूप पापके विषसे सम्पन्न साक्षात् कृत्या बन जाती है ॥ १ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वाण्यस्यां घोराणि सर्वे च मृत्यवः ॥ २

सर्वाणि । अस्याम् । घोराणि । सर्वे । च । मृत्यवः ॥ २ ॥

इसमें सब भयंकर कर्म और सब प्रकारके मृत्युप्रद कारण समाये रहते हैं ॥ २ ॥

सर्वाण्यस्यां क्रूराणि सर्वे पुरुषवधाः ॥ ३ ॥

सर्वाणि । अस्याम् । क्रूराणि । सर्वे । पुरुषऽवधाः ॥ ३ ॥

इसमें सकल क्रूर कर्म और सब प्रकारके पुरुषोंके वध होते हैं ३

सा ब्रह्मज्यं देवपीयुं ब्रह्मगव्यादीयमाना मृत्योः पड्वीशा आ द्यति ॥ ४

सा । ब्रह्मऽज्यम् । देवऽपीयुम् । ब्रह्मऽगवी । आऽदीयमाना । मृत्योः । षड्वीशे । आ । द्यति ॥ ४ ॥

ऐसी यह ब्राह्मणसे छीनी हुई ब्रह्मगवी वेद वा ब्रह्मत्वको हानि पहुँचाने वाले देवतासंहारक पुरुषको मृत्युके काष्ठमय पाद-बन्धनसे जकड़ देती है ॥ ॥ ४ ॥

मेनिः शतवधा हि सा ब्रह्मज्यस्य क्षितिर्हि सा ।५।

मेनिः । शतऽवधा । हि । सा । ब्रह्मऽज्यस्य । क्षितिः । हि । सा५

ब्राह्मणकी आयुका ह्रास करने वालेके लिये वह क्षयंकरी गौ सैंकड़ों प्रकारसे वध करने वाला आयुध होजाती है ॥ ५ ॥

तस्माद् वै ब्राह्मणानां गौर्दुराधर्षा विजानता ॥६॥

तस्मात् । वै । ब्राह्मणानाम् । गौः । दुःऽआधर्षा । विऽजानता ६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस कारण विद्वान् पुरुष ब्राह्मणोंकी गौको दुराधर्ष समझे ६

वज्रो धावन्ती वैश्वानर उद्वीता ॥ ७ ॥

वज्रः । धावन्ती । वैश्वानरः । उत्ऽवीता ॥ ७ ॥

वह वज्रकी समान दौड़ती है-गिरती है-और अग्निकी समान ऊपरको चलती है ॥ ७ ॥

हेतिः शफानुत्खिदन्ती महादेवोऽपेक्षमाणा ॥ ८ ॥

हेतिः । शफान् । उत्ऽखिदन्ती । महाऽदेवः । अपऽईक्षमाणा ८

वह संहारक देव महादेवकी अपेक्षा करती हुई खुरोंको पटकाती हुई आयुधरूप होजाती है ॥ ८ ॥

क्षुरपविरीक्षमाणा वाश्यमानाभि स्फूर्जति ॥ ९ ॥

क्षुरऽपविः । ईक्षमाणा । वाश्यमाना । अभि । स्फूर्जति ॥ ९ ॥

यह देखती हुई छुरेकी समान तीक्ष्ण बज्ररूप होती है और रंभाती हुई कड़कती है ॥ ९ ॥

मृत्युर्हिङ्कृण्वत्युग्रो देवः पुच्छं पर्यस्यन्ती ॥१०॥

मृत्युः । हिङ्ऽकृण्वती । उग्रः । देवः । पुच्छम् । परिऽअस्यन्ती ।

हिम् शब्द करती हुई मृत्युरूप होती है और पूँछको चारों ओर घुमाती हुई उग्र देवतारूप होती है ॥ १० ॥

सर्वज्यानिः कर्णौ वरीवर्जयन्ती राजयक्ष्मो मेहन्ती ११

सर्वऽज्यानिः । कर्णौ । वरीवर्जयन्ती । राजऽयक्ष्मः । मेहन्ती ११

कानोंको हिलाती हुई सब प्रकारसे आयुका ह्रास करनेवाली होती है और मूत्रोत्सर्ग करती हुई राजयक्ष्मा फैलानेवाली होती है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेनिर्दुह्यमाना शीर्षक्तिर्दुग्धा ॥ १२ ॥

मेनिः । दुह्यमाना । शीर्षक्तिः । दुग्धा ॥ १२ ॥

दुही जाती हुई संहारक आयुधरूप होती है और दुहने पर शीर्षक्तिरोगरूप होती है ॥ १२ ॥

सेदिरुपतिष्ठन्ती मिथोयोधः परामृष्टा ॥ १३ ॥

सेदिः । उपऽतिष्ठन्ती । मिथःऽयोधः । पराऽमृष्टा ॥ १३ ॥

समीपमें खड़ी होने पर विशीर्ण करती है और परामृष्ट होने पर आपसमें युद्ध कराने वाली होती है ॥ १३ ॥

शरव्या ३ मुखेपिनह्यमान ऋतिर्हन्यमाना ॥ १४ ॥

शरव्या । मुखे । अपिऽनह्यमाने । ऋतिः । हन्यमाना ॥ १४ ॥

और मुखके मुहरे आदिसे ढकने पर निशाना होती है और पीटने पर दुर्गति करने वाली होती है ॥ १४ ॥

अघविषा निपतन्ती तमो निपतिता ॥ १५ ॥

अघऽविषा । निऽपतन्ती । तमः । निऽपतिता ॥ १५ ॥

बैठती हुई अघविषा और बैठ जाने पर मृत्युप्रद व्याधिरूप अंधकार देती है ॥ १५ ॥

अनुगच्छन्ती प्राणानुप दासयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य

अनुऽगच्छन्ती । प्राणान् । उप । दासयति । ब्रह्मऽगवी । ब्रह्मऽज्यस्य

इति पञ्चमेनुवाके तृतीयं पर्यायसूक्तम् ॥

ऐसी यह ब्रह्मगवी ब्राह्मणकी हानि करने वालेके पीछे चलती चलती उसके प्राणोंको क्षीण कर डालती है ॥ १६ ॥ (२६)

पञ्चम अनुवाकमें तृतीय पर्याय सूक्त समाप्त (४९७)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैरं विकृत्यमाना पौत्राद्यं विभाज्यमाना ॥ १ ॥

वैरम् । विऽकृत्यमाना । पौत्रऽआद्यम् । विऽभाज्यमाना ॥ १ ॥

यह ब्रह्मगवी छेदन करा देती है और पौत्र आदिका विभाग करा देती है ॥ १ ॥

देवहेतिर्ह्रियमाणा व्युद्धिर्हृता ॥ २ ॥

देवऽहेतिः । ह्रियमाणा । विऽऋद्धिः । हृता ॥ २ ॥

हरते समय देवताओंका आयुधरूप होती है और हरी जाने पर क्षयंकरी होती है ॥ २ ॥

पाप्माधिधीयमाना पारुष्यमवधीयमाना ॥ ३ ॥

पाप्मा । अधिऽधीयमाना । पारुष्यम् । अवऽधीयमाना ॥ ३ ॥

अधिधीयमाना पापमयी होती है और कठोरताको लाती है ३

विषं प्रयस्यन्ती तक्मा प्रयस्ता ॥ ४ ॥

विषम् । प्रऽयस्यन्ती । तक्मा । प्रऽयस्ता ॥ ४ ॥

प्रयस्यन्ती विषरूप होती है और प्रयस्ता (अन्नरूप हुई) जीवनको कठिनतामें डालने वाली तक्मारूप होती है ॥ ४ ॥

अघं पच्यमाना दुष्वप्न्यं पक्वा ॥ ५ ॥

अघम् । पच्यमाना । दुःऽस्वप्न्यम् । पक्वा ॥ ५ ॥

पचन करते समय व्यसन देती है और पक्व होजाने पर दुस्वप्नप्रद होती है ॥ ५ ॥

मूलबर्हणी पर्याक्रियमाणा क्षितिः पर्याकृता ॥ ६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मूलऽवर्हणी । परिऽआक्रियमाणा । क्षितिः । परिऽआकृता ६

पर्याक्रियमाणा जड़ उखाड़ने वाली होती है और पर्याकृता क्षय करती है ॥ ६ ॥

असंज्ञा गन्धेन शुगुद्ध्रियमाणाशीविष उद्धृता ॥७॥

असम्ऽज्ञा । गन्धेन । शुक् । उद्ध्रियमाणा । आशीविषः । उद्धृता ७

गंधके द्वारा ज्ञानको भली प्रकार लुप्त कर देती है, उद्ध्रियमाणा शोकप्रदा होती है और उद्धृता सर्पस्वरूपिणी होती है ७

अभूतिरुपह्रियमाणा पराभूतिरुपहृता ॥ ८ ॥

अभूतिः । उपऽह्रियमाणा । पराऽभूतिः । उपऽहृता ॥ ८ ॥

उपह्रियमाण अभूति होती है और उपहृता पराभूति होती है ८

शर्वः क्रुद्धः पिश्यमाना शिमिदा पिशिता ॥ ९ ॥

शर्वः । क्रुद्धः । पिश्यमाना । शिमिदा । पिशिता ॥ ९ ॥

पिश्यमाना क्रोधमें भरे हुए महादेवसी होती है, पिशिता शिमिदा होती है ॥ ९ ॥

अवर्तिरश्यमाना निर्ऋतिरशिता ॥ १० ॥

अवर्तिः । अश्यमाना । निःऽऋतिः । अशिता ॥ १० ॥

प्राशन की जाती हुई वृत्तिहीनतारूप दरिद्रताको देने वाली होती है और प्राशन करने पर दुर्गतिकारिणी पापदेवता होती है

अशिता लोकाच्छिनत्ति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यमस्माच्चामुष्माच्च ॥ ११ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अशिता । लोकात् । छिनत्ति । ब्रह्मऽगवी । ब्रह्मऽज्यम् । अस्मात् । च । अमुष्मात् । च ॥ ११ ॥

इति पञ्चमेनुवाके चतुर्थं पर्यायसूक्तम् ॥

ब्राह्मणकी गौ अशित होने पर ब्राह्मणको हानि पहुँचाने वालेको इस लोकसे और परलोकसे भी उच्छिन्न कर डालती है ॥ ११ ॥ (२७)

पञ्चम अनुवाकमें चतुर्थ पर्याय सूक्त समाप्त (४९८)

तस्या आहननं कृत्या मेनिराशसनं वलग ऊबध्यम् १

तस्याः । आऽहननम् । कृत्या । मेनिः । आऽशसनम् । वलगः । ऊबध्यम् ॥ १ ॥

इसका आहनन (लेजाना) कृत्या है, इसका आशसन संहारक आयुध है, गोबर मिला अर्धपक्व चारा शपथरूप होता है १

अस्वगता परिहृता ॥ २ ॥

अस्वगता । परिऽहृता ॥ २ ॥

यह छीनी हुई अपने अधीन नहीं रहती ॥ २ ॥

अग्निः क्रव्याद् भूत्वा ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यं प्रविश्यत्ति ३

अग्निः । क्रव्यऽअत् । भूत्वा । ब्रह्मऽगवी । ब्रह्मऽज्यम् । प्रऽविश्य । अत्ति ॥ ३ ॥

ब्राह्मणकी गौ क्रव्याद् अग्नि बन ब्रह्मज्यमें प्रवेश कर उसका भक्षण करती है ॥ ३ ॥

सर्वास्याङ्गा पर्वा मूलानि वृश्चति ॥ ४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वा । अस्य । अङ्गा । पर्वा । मूलानि । वृश्चति ॥ ४ ॥

इसके सकल अवयव और जोड़ोंका छेदन कर डालती है, ४

छिनत्त्यस्य पितृबन्धु परा भावयति मातृबन्धु ॥ ५ ॥

छिनत्ति । अस्य । पितृऽबन्धु । परा । भावयति । मातृऽबन्धु ५

इसके पिताके संबन्धी बन्धुओंका छेदन कर देती है और मातृपक्षके बन्धुओंका तिरस्कार कराती है ॥ ५ ॥

विवाहां ज्ञातीन्त्सर्वानपि क्षापयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य क्षत्रियेणापुनर्दीयमाना ॥ ६ ॥

विऽवाहान् । ज्ञातीन् । सर्वान् । अपि । क्षापयति । ब्रह्मऽगवी । ब्रह्मऽज्यस्य । क्षत्रियेण । अपुनःऽदीयमाना ॥ ६ ॥

क्षत्रियके द्वारा न लौटाई हुई ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यके सकल विवाहित बन्धुओंका क्षय कर डालती है ॥ ६ ॥

अवास्तुमेनमस्वगमप्रजसं करोत्यपरापरणो भवति क्षीयते ॥ ७ ॥

अवास्तुम् । एनम् । अस्वगम् । अप्रजसम् । करोति । अपराऽपरणः । भवति । क्षीयते ॥ ७ ॥

वह इसको गृहरहित, परतन्त्र और संतानहीन कर डालती है और वह अपरापरण होता हुआ क्षीण होजाता है ॥ ७ ॥

य एवं विदुषो ब्राह्मणस्य क्षत्रियो गामादत्ते ॥८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यः । एवम् । विदुषः । ब्राह्मणस्य । क्षत्रियः । गाम् । आऽदत्ते ८

इति पञ्चमेनुवाके पञ्चमं पर्यायसूक्तम् ॥

जो क्षत्रिय विद्वान् ब्राह्मणकी गौका अपहरण करता है (उस की यह दशा होती है) ॥ ८ ॥ (२८)

पञ्चम अनुवाकमें पञ्चम पर्याय सूक्त समाप्त (४९९)

क्षिप्रं वै तस्याहनने गृध्राः कुर्वत ऐलबम् ॥ १ ॥

क्षिप्रम् । वै । तस्य । आऽहनने । गृध्राः । कुर्वते । ऐलबम् ॥१॥

जो क्षत्रिय उसको लेजाता है गृध्र शीघ्र ही उसकी नेत्रापत्ति ऐलबको करते हैं ॥ १ ॥

क्षिप्रं वै तस्यादहनं परि नृत्यन्ति केशिनी-
राघ्नानाः पाणिनोरसि कुर्वाणाःपापमैलबम् ॥२॥

०तस्य । आऽदहनम् । परि । नृत्यन्ति । केशिनीः ।

आऽघ्नानाः । पाणिना । उरसि । कुर्वाणाः । पापम् । ऐलबम् २

केश वाली स्त्रियें शीघ्र ही उसकी भस्म करने वाली चिताके पास घूमती हैं, वह हाथसे छातीको कूटती हैं और दुःखमय नेत्र-विकारको करती हैं ॥ २ ॥

क्षिप्रं वै तस्य वास्तुषु वृकाः कुर्वत ऐलबम् ॥ ३ ॥

०तस्य । वास्तुषु । वृकाः । कुर्वते । ऐलबम् ॥ ३ ॥

शीघ्र ही उसके घरोंमें भेड़िये आँखे मटकाने लगते हैं ॥३॥

क्षिप्रं वै तस्य पृच्छन्ति यत्-तदासी३दिदं नु ता३-
दिति ॥ ४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria; Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षिप्रम् । वै । तस्य । पृच्छन्ति । यत् । तत् । आसी३त् । इदम् ।

नु । ता३त् । इति ॥ ४ ॥

उसके घरके विषयमें पुरुष शीघ्र ही कहने लगते हैं, कि–उस का जो घर था वह यह है ॥ ४ ॥

छिन्ध्या च्छिन्धि प्र च्छिन्ध्यपि क्षापय क्षापय ।५।

छिन्धि । आ । छिन्धि । प्र । छिन्धि । अपि । क्षापय । क्षापय ५

(हे ब्रह्मगवि !) तू इस अपहारकका छेदन कर छेदन कर इसको नष्ट कर नष्ट कर ॥ ५ ॥

आददानमाङ्गिरसि ब्रह्मज्यमुप दासय ॥ ६ ॥

आऽददानम् । आङ्गिरसि । ब्रह्मऽज्यम् । उप । दासय ॥ ६ ॥

हे आङ्गिरसि ! इस छीनने वाले ब्रह्मज्यको तू क्षीण कर ६

वैश्वदेवी ह्यु१च्यसे कृत्या कूल्बजमावृता ॥ ७ ॥

वैश्वऽदेवी । हि । उच्यसे । कृत्या । कूल्बजम् । आऽवृता ॥७॥

तू कूल्बजसे आवृत वैश्वदेवी कृत्या कहलाती है ॥ ७ ॥

ओषन्ती समोषन्ती ब्रह्मणो वज्रः ॥ ८ ॥

ओषन्ती । सम्ऽओषन्ती । ब्रह्मणः । वज्रः ॥ ८ ॥

तू मन्त्ररूपी वज्रसे भस्म करने वाली है भली प्रकार भस्म करने वाली है ॥ ८ ॥

क्षुरपविर्मृत्युर्भूत्वा वि धाव त्वम् ॥ ९ ॥

क्षुरऽपविः । मृत्युः । भूत्वा । वि । धाव । त्वम् ॥ ९ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तू क्षुरपवि मृत्यु बन कर आक्रमण कर ॥ ९ ॥

आ दत्से जिनतां वर्च इष्टं पूर्तं चाशिषः ॥ १० ॥

आ । दत्से । जिनताम् । वर्चः । इष्टम् । पूर्तम् । च । आऽशिषः

तू छीनने वालोंके तेज इष्ट पूर्त और आशीर्वादोंको हर लेती है

आदाय जीतं जीताय लोके३मुष्मिन् प्र यच्छसि११

आऽदाय । जीतम् । जीताय । लोके । अमुष्मिन् । प्र । यच्छसि

और उस हानि पहुँचाने वालेको अल्पायु करनेके लिये ग्रहण करके परलोकमें भेज देती है ॥ ११ ॥

अघ्न्ये पदवीर्भव ब्राह्मणस्याभिशस्त्या ॥ १२ ॥

अघ्न्ये । पदऽवीः । भव । ब्राह्मणस्य । अभिऽशस्त्या ॥ १२ ॥

हे अघ्न्ये ! तू ब्राह्मणके शापवश पैरोंको प्राप्त होने वाली वेड़ी बन ॥ १२ ॥

मेनिः शरव्या भवाघादघविषा भव ॥ १३ ॥

मेनिः । शरव्या । भव । अघात् । अघऽविषा । भव ॥ १३ ॥

तू आयुधरूप बाणावलिरूप और पापवश अघविषा बन १३

अघ्न्ये प्र शिरो जहि ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरराधसः ॥ १४ ॥

अघ्न्ये । प्र । शिरः । जहि । ब्रह्मऽज्यस्य । कृतऽआगसः । देवऽपीयोः । अराधसः ॥ १४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे अघ्न्ये ! तू अपराधी देवहिंसक कार्यको सिद्ध न होने देने वाले ब्रह्मज्यके शिरका संहार कर ॥ १४ ॥

त्वया प्रमूर्णं मृदितमग्निर्दहतु दुश्चितम् ॥ १५ ॥

त्वया । प्रऽमूर्णम् । मृदितम् । अग्निः । दहतु । दुःऽचितम् ॥१५॥

इति पञ्चमेनुवाके षष्ठं पर्यायसूक्तम् ॥

तेरे द्वारा प्रमूर्ण और मसले हुए उस दुश्चित्को अग्नि भस्म करे ॥ १५ ॥ (१९)

पञ्चम अनुवाकमें छठा पर्याय सूक्त समाप्त (५००)

वृश्च प्र वृश्च सं वृश्च दह प्र दह सं दह ॥ १ ॥

वृश्च । प्र । वृश्च । सम् । वृश्च । दह । प्र । दह । सम् । दह ॥१॥

ब्रह्मज्यं देव्यघ्न्य आ मूलादनुसंदह ॥ २ ॥

ब्रह्मऽज्यम् । देवि । अघ्न्ये । आ । मूलात् । अनुऽसंदह ॥ २ ॥

हे देवि अघ्न्ये ! तू ब्रह्मज्यको काट ! काट !! भस्म कर प्रकृष्टतासे भस्म कर भली प्रकार भस्म कर उसको मूलसहित भस्म कर डाल ॥ १ ॥ २ ॥

यथायाद् यमसादनात् पापलोकान् पराव्रतः ॥ ३ ॥

यथा । अयात् । यमऽसदनात् । पापऽलोकान् । पराऽवतः ॥३॥

एवा त्वं देव्यघ्न्ये ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरराधसः

एव । त्वम् । देवि । अघ्न्ये । ब्रह्मऽज्यस्य । कृतऽआगसः । देवऽपीयोः । अराधसः ॥ ४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वज्रेण शतपर्वणा तीक्ष्णेन क्षुरभृष्टिना ॥ ५ ॥

वज्रेण । शतऽपर्वणा । तीक्ष्णेन । क्षुरऽभृष्टिना ॥ ५ ॥

प्र स्कन्धान् प्र शिरो जहि ॥ ६ ॥

प्र । स्कन्धान् । प्र । शिरः । जहि ॥ ६ ॥

यह यमसदनसे जिस प्रकार परमदूरके पापलोकोंको प्राप्त हो, इस प्रकार हे देवि अघ्न्ये ! तू अपराधी देवहिंसक कार्यसिद्धिमें विघ्न डालने वाले ब्रह्मज्यके कंधोंको और शिरको तीक्ष्ण धार वाले सैंकड़ों गाँठों वाले क्षुरेकी समान तीक्ष्ण वज्रसे काट डाल३–६

लोमान्यस्य सं छिन्धि त्वचमस्य वि वेष्टय ॥ ७ ॥

लोमानि । अस्य । सम् । छिन्धि । त्वचम् । अस्य । वि । वेष्टय

इसके लोमोंको काट इसकी खालको उधेड़ ॥ ७ ॥

मांसान्यस्य शातय स्नावान्यस्य सं वृह ॥ ८ ॥

मांसानि । अस्य । शातय । स्नावानि । अस्य । सम् । वृह ॥ ८ ॥

इसके मांसोंको काट इस नसोंको फुला ॥ ८ ॥

अस्थीन्यस्य पीडय मज्जानमस्य निर्जहि ॥ ९ ॥

अस्थीनि । अस्य । पीडय । मज्जानम् । अस्य । निः । जहि ९

इसकी हड्डियोंमें दर्दको उत्पन्न कर और इसकी मज्जाको क्षीण कर ॥ ९ ॥

सर्वास्याङ्गा पर्वाणि वि श्रथय ॥ १० ॥

सर्वा । अस्य । अङ्गा । पर्वाणि । वि । श्रथय ॥ १० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसके सब अंगोंको और जोड़ोंको ढीले कर दे ॥ १० ॥

अग्निरेनं क्रव्यात् पृथिव्या नुदतामुदोषतु वायुरन्तरिक्षान्महतो वरिम्णः ॥ ११ ॥

अग्निः । एनम् । क्रव्यऽअत् । पृथिव्याः । नुदताम् । उत् । ओषतु । वायुः । अन्तरिक्षात् । महतः । वरिम्णः ॥ ११ ॥

क्रव्याद् अग्नि इसको भस्म कर डाले और वायुदेव इसको महिमामय महान् अन्तरिक्षसे और पृथिवीसे खदेड़ें ॥ ११ ॥

सूर्य एनं दिवः प्र णुदतां न्योषतु ॥ १२ ॥

सूर्यः । एनम् । दिवः । प्र । नुदताम् । नि । ओषतु ॥ १२ ॥

पञ्चमेनुवाके सप्तमं पर्यायसूक्तम् ॥

पञ्चमोनुवाकः ॥

इति द्वादशं काण्डं समाप्तम् ॥

सूर्यदेव इसको स्वर्गसे खदेड़ें और भस्म कर डालें।१२। (३०)

पञ्चम अनुवाकमें सप्तम पर्याय सूक्त समाप्त (५०१)

पञ्चम अनुवाक समाप्त

इति श्रीअथर्ववेदसंहिताका द्वादश काण्ड ऋषिकुमार
प० रामस्वरूपशर्मात्मज सनातनधर्मपताका
संपादक ऋ० कु० प० रामचन्द्रशर्माकृत
भाषानुवादसहित
समाप्त.

॥ द्वादशकाण्ड समाप्त ॥

—०—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

❀ श्रीहरिः ❀

अथर्ववेदसंहिता

त्रयोदशं-काण्डम्

सायणभाष्य तथा अनुवादसहित

"उदेहि वाजिन्" इति सूक्तं रोहितदेवताकम् । रोहितः कश्चिद् देवः । उद्यन् यः सूर्यस्तदात्मक इति ज्ञेयम् । रोहितसाहचर्येण मरुतः इन्द्रः अज एकपादः अग्निः सविता मित्रावरुणौ क्रव्याद् अग्निः सूर्य इत्यादयो देवा अप्याहूता वर्णिताश्च । रोहितस्य तथा तत्संबन्धिदेवानामत्र वर्णने प्रयोजनं राज्ञो राष्ट्रस्य भरणम् इति सूक्त इतस्ततो द्रष्टव्यम् ॥

क्वचिन्मन्त्रेषु रोहितपदस्य निर्वचनं रुहो रुरोह प्ररुहो रुरोह द्यावापृथिवीभ्यां रुरोहेति रोहित इति ध्वनितम् ॥

याज्ञिकास्तु वक्ष्यमाणप्रकारेण विनियुञ्जन्ति । तद्यथा ।

अर्थकामः "उदेहि वाजिन्" इत्यादिविंशत्यृग्भिरुद्यन्तम् आदित्यम् उपतिष्ठते ॥

तथा अर्थोत्थापनकामः उक्तविंशत्यृग्भिः स्नानं कृत्वा उपतिष्ठते॥

तथा अर्थसिद्धिकामः अहतवस्त्रपरिधानं कृत्वा उक्ताभिर्ऋग्भिरुपतिष्ठते ॥

तथा अर्थो मम सिध्यताम् एवंकामस्ताभिर्ऋग्भिर्वस्त्रम् अभिमन्त्र्य परिधापयति ॥

तथा विद्रावणादिविषये शमनकामः उक्ताभिर्ऋग्भिर्वस्त्रम् अभिमन्त्र्य ददाति ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूत्रितं हि । "०उत्तमेन [६. ६२] वाचस्पतिलिङ्गाभिरुद्य-न्तम् उपतिष्ठते । स्नातोऽहतवसनो निक्त्वाहतम् आच्छादयते ददाति" इति । कौ० ५. ५ ।। उदेहि वाजिन्निति विंशत्यृचो वाचस्पतिलिङ्गा इति केशवः ।।

"यो रोहितः" इति द्वयोर्ऋचोः [२५, २६] सलिलगणे पाठः । अतः "सलिलैः क्षीरौदनम् अश्नाति मन्थान्तानि" [कौ० ३. १] "सलिलैः सर्वकामः" [कौ० ३. ७] इत्यादौ चास्य विनियोगः ।। सलिलगणश्च "आपो हि ष्ठा" इति १. ५ सूक्ते द्रष्टव्यः ।।

"समिद्धो अग्निः समिधानो घृतवृद्धः" इति [२८–३२] पञ्चर्चस्य विनियोगो "य इमे द्यावापृथिवी" [१३. ३] इत्यत्र द्रष्टव्यः ।।

"उदेहि वाजिन्" सूक्तमें रोहित देवताका वर्णन है । उदय होते हुए सूर्यको रोहित देवता समझना चाहिये । रोहितके साहचर्यसे मरुत् इन्द्र अज एकपाद् अग्नि सविता मित्रावरुण क्रव्याद् अग्नि सूर्य आदि देवताओंका आह्वान किया है और उनका वर्णन भी किया है । सूक्तको चारों ओरसे देखने पर प्रतीत होता है, कि–रोहितका तथा उससे सम्बन्ध रखने वाले देवताओं के वर्णनका प्रयोजन राजाके राष्ट्रका भरण ही है ।

मन्त्रोंमें कहीं, रोहण करने वाला, रोहण (प्रादुर्भाव) कर गया, प्रकृष्टतासे रोहण करने वाला और द्यावापृथिवीमें प्रादुर्भूत होने वाला आदि अर्थोंमें रोहित पदका निर्वचन किया है ।

याज्ञिक निम्नलिखितरीतिसे विनियोग करते हैं, कि–

धनको चाहने वाला पुरुष "उदेहि वाजिन्" आदि बीस ऋचाओंसे उदय होते हुए सूर्यका उपस्थान करे ।

तथा धनको उठाना चाहने वाला इन बीस ऋचाओंसे स्नान करके उपस्थान करे ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धनमें सिद्धिको चाहने वाला पुरुष विना फटे कोरे वस्त्रको पहिन कर पूर्वोक्त ऋचाओंसे उपस्थान करे।

तथा "मेरा प्रयोजन सिद्ध होजाय" ऐसी कामना वाला इन ऋचाओंसे वस्त्रको अभिमंत्रित करके उढ़वावे।

तथा विद्रावण आदिके विषयमें शमनकी इच्छा वाला पुरुष इन ऋचाओंसे वस्त्रको अभिमंत्रित करके देवे।

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-"छठे काण्डके बासठवें सूक्त उत्तमसूक्तसे और वाचस्पतिलिंगा ऋचाओंसे उदय होते हुए सूर्यका उपस्थान करे। स्नान करके कोरे वस्त्रको पहिन उसको शुद्ध करके आच्छादन करे और देदेय" (कौशिकसूत्र ५।५)। केशवने कहा है, कि-"उदेहि वाजिन्" यह बीस ऋचाएँ वाचस्पतिलिङ्गा हैं।

"यो रोहितः" आदि पच्चीसवीं छब्बीसवीं दो ऋचाओंका सलिलगणमें पाठ है। अत एव "सलिलैः क्षीरौदनम् अश्नाति मन्थान्तानि" (कौशिकसूत्र ३।१) सलिलैः सर्वकामः (कौशिकसूत्र ३।७) इत्यादिमें इनका विनियोग है। सलिलगणको "आपो हि ष्ठा" इस प्रथम काण्डके पाँचवें सूक्तमें देखना चाहिये।

"समिद्धो अग्निः समिधानो घृतवृद्धः" आदि अट्ठाईसवीं ऋचासे बत्तीसवीं ऋचा तक पाँच ऋचाओंका विनियोग "य इमे द्यावापृथिवी" इस तेरहवें काण्डके तीसरे सूक्तमें देखना चाहिये॥

उदेहि वाजिन् यो अप्स्वन्तरिदं राष्ट्रं प्र विश सूनृतावत्।
यो रोहितो विश्वमिदं जजान स त्वा राष्ट्राय सुभृतं बिभर्तु॥ १॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्ऽएहि । वाजिन् । यः । अप्ऽसु । अन्तः । इदम् । राष्ट्रम् ।
प्र । विश । सूनृताऽवत् ।
यः । रोहितः । विश्वम् । इदम् । जजान । सः । त्वा । राष्ट्राय ।
सुऽभृतम् । बिभर्तु ॥ १ ॥

हे वेगवान् सूर्यदेव ! जो आप अन्तरिक्षके भीतर हैं सो उदित हूजिये और इस प्रिय सत्य वाणीसे सम्पन्न राष्ट्रके भीतर प्रवेश करिये, ऐसे जिन रोहित (सूर्य) देवताने इस विश्वको प्रादुर्भूत किया है वह आपको (हे राजन्) राष्ट्रके भली प्रकार भरण करने वालेके रूपमें पुष्ट करें ॥ १ ॥

उद्वाज आ गन् यो अप्स्व१न्तर्विश आ रोह त्वद्योनयो याः ।
सोमं दधानोप ओषधीर्गाश्चतुष्पदो द्विपद आ वेशयेह ॥ २ ॥

उत् । वाजः । आ । गन् । यः । अप्ऽसु । अन्तः । विशः । आ । रोह ।
त्वत्ऽयोनयः । याः ।
सोमम् । दधानः । अपः । ओषधीः । गाः । चतुःऽपदः । द्विऽपदः ।
आ । वेशय । इह ॥ २ ॥

आप जिनके कारण हैं ऐसी जो जल (वा अन्तरिक्ष) में रहने वाली प्रजाएँ हैं और बलप्रद अन्न हैं वे आपके पास आवें और आप उन पर आरोहण करें आप सोमको धारण करते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुए, जल ओषधि चौपाये, गौ और दो पैर वाले मनुष्य आदि को इस राज्यमें प्रवेश कराइये ॥ २ ॥

यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून्
आ वो रोहितः शृणवत् सुदानवस्त्रिषप्तासो मरुतः
स्वादुसंमुदः ॥ ३ ॥

यूयम् । उग्राः । मरुतः । पृश्निऽमातरः । इन्द्रेण । युजा । प्र ।
मृणीत । शत्रून् ।

आ । वः । रोहितः । शृणवत् । सुऽदानवः । त्रिऽसप्तासः ।
मरुतः । स्वादुऽसंमुदः ॥ ३ ॥

हे इन्द्रके साथ मित्रता रखने वाले अदितिमातृक प्रचण्ड मरुद्गणों ! तुम शत्रुओंका संहार करो, स्वादु पदार्थोंसे मोदको प्राप्त होने वाले, सुन्दरतापूर्वक वृष्टिका दान करने वाले हे उड-श्वास मरुद्गणों ! रोहित देव ! तुम्हारी बातको सुनें ॥ ३ ॥

रुहो रुरोह रोहित आ रुरोह गर्भो जनीनां जनुषा-
मुपस्थम् ।
ताभिः संरब्धमन्वविन्दन् षडुर्वीर्गातुं प्रपश्यन्निह
राष्ट्रमाहाः ॥ ४ ॥

रुहः । रुरोह । रोहितः । आ । रुरोह । गर्भः । जनीनाम् ।
जनुषाम् । उपऽस्थम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ताभिः । सम्ऽरब्धम् । अनु । अविन्दन् । षट् । उर्वीः । गातुम् ।

प्रऽपश्यन् । इह । राष्ट्रम् । आ । अहाः ॥ ४ ॥

आरोहणशील रोहित सूर्यदेव उदय होकर चढ़ रहे हैं यह उत्पत्ति वालोंके उपस्थमें जायाओंके गर्भरूपसे प्रादुर्भूत होते हैं, उनसे संरब्ध हुए छः उर्वियोंको पानेके लिये प्रति दिन राष्ट्रको देखते हुए उन उर्वियोंको पाते हैं ॥ ४ ॥

आ ते राष्ट्रमिह रोहितोहार्षीद् व्यास्थन्मृधो अभयं ते अभूत् ।

तस्मै ते द्यावापृथिवी रेवतीभिः कामं दुहाथामिह शक्वरीभिः ॥ ५ ॥

आ । ते । राष्ट्रम् । इह । रोहितः । अहार्षीत् । वि । आस्थत् ।

मृधः । अभयम् । ते । अभूत् ।

तस्मै । ते । द्यावापृथिवी इति । रेवतीभिः । कामम् । दुहाथाम् । इह ।

शक्वरीभिः ॥ ५ ॥

इस तेरे राज्यको सूर्यदेवने हरण कर लिया है अर्थात् तेरे राज्यमें सूर्यदेव आगए हैं और स्थित होगए हैं अतः तू संग्रामसे निर्भय होगया है, (क्योंकि—उनकी कृपासे तेरी विजय अवश्य होगी) ऐसे तेरे लिये द्यावापृथिवी धनप्रदायिनी ऋचाओंसे इस लोकमें तेरी कामनाओंको दुहें ॥ ५ ॥

रोहितो द्यावापृथिवी जजान तत्र तन्तुं परमेष्ठी ततान तत्र शिश्रियेज एकपादोद्विहद् द्यावापृथिवी बलेन ६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रोहितः । द्यावापृथिवी इति । जजान । तत्र । तन्तुम् । परमेऽस्थी ।
ततान ।
तत्र । शिश्रिये । अजः । एकऽपादः । अदृंहत् । द्यावापृथिवी इति ।
बलेन ॥ ६ ॥

रोहितदेवने द्यावापृथिवीको प्रादुर्भूत किया है उसमें परमेष्ठीने तन्तुको विस्तृत किया है, तहाँ एक पाद–अजने आश्रय लिया और उसने द्यावापृथिवीको बलसे दृढ़ कर दिया है ॥ ६ ॥

रोहितो द्यावापृथिवी अदृंहत् तेन स्वस्तभितं तेन नाकः ।
तेनान्तरिक्षं विमिता रजांसि तेन देवा अमृतमन्वविन्दन् ॥ ७ ॥

रोहितः । द्यावापृथिवी इति । अदृंहत् । तेन । स्वः । स्तभितम् ।
तेन । नाकः ।
तेन । अन्तरिक्षम् । विऽमिता । रजांसि । तेन । देवाः । अमृतम् ।
अनु । अविन्दन् ॥ ७ ॥

रोहितने द्यावापृथिवीको दृढ़ किया है, उसने स्वर्ग दुःखके लेशरहित स्थान–को स्तंभित किया है, उसने अन्तरिक्षका तथा अन्य लोकोंका निर्माण किया है और उसके द्वारा देवताओंने अमृतत्वको पाया है ॥ ७ ॥

वि रोहितो अमृशद् विश्वरूपं समाकुर्वाणः प्ररुहो रुहश्च ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिवं रूढ्वा महता महिम्ना सं ते राष्ट्रमनक्तु पयसा घृतेन ॥ ८ ॥

वि । रोहितः । अमृशत् । विश्वऽरूपम् । सम्ऽआकुर्वाणः । प्रऽरुहः । रुहः । च ।

दिवम् । रूढ्वा । महता । महिम्ना । सम् । ते । राष्ट्रम् । अनक्तु । पयसा । घृतेन ॥ ८ ॥

रुह और प्ररुह सबको भली प्रकार प्रकट करते हुए रोहित देवने सब शरीरोंका स्पर्श किया है वह सूर्यदेव अपनी विशाल महिमासे तेरे राष्ट्रको घृत और दुग्धसे पूर्ण करें ॥ ८ ॥

यास्ते रुहः प्ररुहो यास्त आरुहो याभिरापृणासि दिवमन्तरिक्षम् ।
तासां ब्रह्मणा पयसा वावृधानो विशि राष्ट्रे जागृहि रोहितस्य ॥ ९ ॥

याः । ते । रुहः । प्रऽरुहः । याः । ते । आऽरुहः । याभिः । आऽपृणासि । दिवम् । अन्तरिक्षम् ।

तासाम् । ब्रह्मणा । पयसा । ववृधानः । विशि । राष्ट्रे । जागृहि । रोहितस्य ॥ ९ ॥

(हे राजन्) जो आपकी रोहणशील प्ररोहणशील और आरोहणशील प्रजा लता आदि हैं, कि–जिनसे आप स्वर्ग और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्तरिक्ष निवासियोंका पालन करते हैं उनके दुग्धकी समान फलप्रद कर्मसे और मन्त्रशक्तिसे बढ़ते हुए आप सूर्यदेवकी व्याप्ति वाले राष्ट्रमें (वा सूर्यदेवके राष्ट्रमें और प्रजामें) जागते रहिये ९

यास्ते विशस्तपसः संबभूवुर्वत्सं गायत्रीमनु ता इहागुः।
तास्त्वा विशन्तु मनसा शिवेन संमाता वत्सो अभ्येतु रोहितः ॥ १० ॥

याः । ते । विशः । तपसः । सम्ऽबभूवुः । वत्सम् । गायत्रीम् । अनु । ताः । इह । आ । अगुः ।

ताः । त्वा । आ । विशन्तु । मनसा । शिवेन । सम्ऽमाता । वत्सः । अभि । एतु । रोहितः ॥ १० ॥

(-हे राजन् !) तपके कारण जो आपकी प्रजाएँ प्रकट हुई हैं वे गायत्रीरूप वत्सके द्वारा यहाँ आई हैं, वे अपने कल्याणकारी मनसे आपमें प्रवेश करें अर्थात् मनसे आपका कल्याण चाहें और इनका सम्माता वत्स रोहित आपके पास आवे अर्थात् सूर्यदेव आपके ऊपर अनुग्रह करें ॥ १० ॥ (१)

ऊर्ध्वो रोहितो अधि नाके अस्थाद् विश्वा रूपाणि जनयन् युवा कविः ।
तिग्मेनाग्निर्ज्योतिषा वि भाति तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥ ११ ॥

ऊर्ध्वः । रोहितः । अधि । नाके । अस्थात् । विश्वा । रूपाणि । जनयन् । युवा । कविः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तिग्मेन । अग्निः । ज्योतिषा । वि । भाति । तृतीये । चक्रे । रजसि । प्रियाणि ॥ ११ ॥

रोहित (सूर्यदेव) ऊँचे होकर स्वर्गमें स्थित होते हैं उस समय तरुण हुए वह चतुर सूर्यदेव सब रूपोंको प्रादुर्भूत करते हैं अग्निदेव (उनकी ही) तिरछी ज्योतिसे दमकते हैं, वह (सूर्य वा अग्नि देव) तीसरे लोक (स्वर्ग) में (फलप्रदान करके मनुष्योंके) प्रिय कार्योंको करते हैं ॥ ११ ॥

सहस्रशृङ्गो वृषभो जातवेदा घृताहुतः सोमपृष्ठः सुवीरः । मा मा हासीन्नाथितो नेत् त्वा जहानि गोपोषं च मे वीरपोषं च धेहि ॥ १२ ॥

सहस्रऽशृङ्गः । वृषभः । जातऽवेदाः । घृतऽआहुतः । सोमऽपृष्ठः । सुऽवीरः ।

मा । मा । हासीत् । नाथितः । न । इत् । त्वा । जहानि । गोऽपोषम् । च । मे । वीरऽपोषम् । च । धेहि ॥ १२ ॥

शिखारूप सहस्रों शृंग वाले, कामनापूर्तिकी वर्षा करने वाले, घृतसे आहुत, सोमको पृष्ठभाग पर धारण करने वाले, सुन्दर वीर्यसे उत्पन्न होने वाले पुत्र आदिको प्रदान करने वाले जातवेदा अग्नि मुझको न त्यागें (अपनी शरणमें रक्खें हे अग्निदेव !) आप मुझको गौओंकी पुष्टिमें और वीर्यसे उत्पन्न हुए वीर पुत्र पौत्र आदिकी पुष्टिमें स्थापित करें ॥ १२ ॥

रोहितो यज्ञस्य जनिता मुखं च रोहिताय वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रोहितं देवा यन्ति सुमनस्यमाना स मा रोहैः सामित्यै रोहयतु ॥ १३ ॥

रोहितः । यज्ञस्य । जनिता । मुखम् । च । रोहिताय । वाचा । श्रोत्रेण । मनसा । जुहोमि ।

रोहितम् । देवाः । यन्ति । सुऽमनस्यमानाः । सः । मा । रोहैः । साम्ऽइत्यै । रोहयतु ॥ १३ ॥

रोहित देव यज्ञका प्रादुर्भाव करने वाले हैं और यज्ञके मुख हैं, मैं वाणी श्रोत्र और मनके द्वारा रोहितके लिये ही आहुति देता हूँ सब देवता मनमें प्रसन्न होते हुए रोहितके पास जाते हैं, वह मुझको अपने प्रादुर्भावोंके साथ युद्धके लिये चढ़ावें ॥ १३ ॥

रोहितो यज्ञं व्यदधाद् विश्वकर्मणे तस्मात् तेजांस्युप मेमान्यागुः ।
वोचेयं ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि ॥ १४ ॥

रोहितः । यज्ञम् । वि । अदधात् । विश्वऽकर्मणे । तस्मात् । तेजांसि । उप । मा । इमानि । आ । अगुः ।

वोचेयम् । ते । नाभिम् । भुवनस्य । अधि । मज्मनि ॥ १४ ॥

रोहितने विश्वकर्माके लिये यज्ञको पुष्ट किया था, उस यज्ञसे ये तेज मेरे पास आरहे हैं मैं आपकी नाभिको भुवनकी मज्जा पर ही कहता हूँ अर्थात् आप भुवनकी मज्जाके बंधक हैं ॥ १४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आ त्वा रुरोह बृहत्यूत पङ्क्तिरा ककुब् वर्चसा जातवेदः ।
आ त्वा रुरोहोष्णिहाक्षरो वषट्कार आ त्वा रुरोह रोहितो रेतसा सह ॥ १५ ॥

आ । त्वा । रुरोह । बृहती । उत । पङ्क्तिः । आ । ककुप् । वर्चसा । जातऽवेदः ।
आ । त्वा । रुरोह । उष्णिहाऽअक्षरः । वषट्ऽकारः । आ । त्वा । रुरोह । रोहितः । रेतसा । सह ॥ १५ ॥

हे जातवेदा अग्ने ! बृहतीछन्द पंक्तिछन्द और ककुप् छन्दने अपने प्रतापके साथ आपमें प्रवेश किया है, उष्णिहा और अक्षर ने भी आपमें प्रवेश किया है और वषट्कारने भी आपमें प्रवेश किया है अर्थात् इन सबसे आपको आहुति दीजाती है और हे अग्ने ! सूर्यदेव भी अपने तेजसे आपमें प्रवेश करते हैं ॥ १५ ॥

अयं वस्ते गर्भं पृथिव्या दिवं वस्तेयमन्तरिक्षम् ।
अयं ब्रध्नस्य विष्टपि स्वर्लोकान् व्यानशे ॥ १६ ॥

अयम् । वस्ते । गर्भम् । पृथिव्याः । दिवम् । वस्ते । अयम् । अन्तरिक्षम् ।
अयम् । ब्रध्नस्य । विष्टपि । स्वः । लोकान् । वि । आनशे १६

यह (सूर्यदेव) पृथिवीके गर्भको आच्छादित कर लेते हैं यह द्युलोक और अन्तरिक्षलोकको भी आच्छादित कर लेते हैं, यह (अग्नि वा सूर्य) सब जगत्के बंधक (सूर्य) के स्वर्गमें तथा और सकल स्वर्गोंमें व्याप्त होजाते हैं ॥ ६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाचस्पते पृथिवी नः स्योना स्योना योनिस्तल्पा नः सुशेवा ।

इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् पर्यग्निरायुषा वर्चसा दधातु ॥ १७ ॥

वाचः । पते । पृथिवी । नः । स्योना । स्योना । योनिः । तल्पा । नः । सुऽशेवा ।

इह । एव । प्राणः । सख्ये । नः । अस्तु । तम् । त्वा । परमेऽस्थिन् । परि । अग्निः । आयुषा । वर्चसा । दधातु ॥ १७ ॥

हे वाचस्पते देव ! पृथिवी हमको सुख देने वाली हो, योनि हमको सुख देवे, शय्या हमको सुख देवे, प्राण हमारे साथ मित्रता करता हुआ इसी लोकमें रहे हे परमेष्ठिन् ! ऐसे आपको अग्निदेव आयु और तेजसे धारण करें ॥ १७ ॥

वाचस्पत ऋतवः पञ्च ये नो वैश्वकर्मणाः परि ये संबभूवुः ।

इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् परि रोहित आयुषा वर्चसा दधातु ॥ १८ ॥

०पते । ऋतवः । पञ्च । ये । नो । वैश्वऽकर्मणाः । परि । ये । सम्ऽबभूवुः ।

०परि । रोहितः । आयुषा । वर्चसा । दधातु ॥ १८ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे वाचस्पते ! हम दोनोंके कर्मसे जो पाँच ऋतुएँ प्रकट हुई हैं, हमारा प्राण उनमें मित्रता रखता हुआ यहाँ ही रहे, ऐसे आपको हे परमेष्ठिन् ! सूर्यदेव अपनी आयु और तेजसे धारण करें ॥ १८ ॥

वाचस्पते सौमनसं मनश्च गोष्ठे नो गा जनय योनिषु प्रजाः ।

इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् पर्यहमायुषा वर्चसा दधामि ॥ १९ ॥

वाचः । पते । सौमनसम् । मनः । च । गोऽस्थे । नः । गाः । जनय । योनिषु । प्रऽजाः ।

इह । एव । प्राणः । सख्ये । नः । अस्तु । तम् । त्वा । परमेऽस्थिन् । परि । अहम् । आयुषा । वर्चसा । दधामि ॥ १९ ॥

हे वाचस्पते ! हमारा मन प्रसन्नता—सम्पन्न रहे आप हमारी गोष्ठमें गौओंको उत्पन्न करिये और योनियोंमें प्रजाओंको उत्पन्न करिये, प्राण हमारे साथ मित्रता करता हुआ इसी लोकमें रहे, ऐसे आपको हे परमेष्ठिन् ! मैं वर्च और आयुसे धारण करता हूँ १९

परि त्वा धात् सविता देवो अग्निर्वर्चसा मित्रावरुणावभि त्वा ।

सर्वा अरातीरवक्रामन्नेहीदं राष्ट्रमकरः सूनृतावत् २०

परि । त्वा । धात् । सविता । देवः । अग्निः । वर्चसा । मित्रावरुणौ । अभि । त्वा ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वाः । अरातीः । अवऽक्रामन् । आ । इहि । इदम् । राष्ट्रम् ।

अकरः । सूनृताऽवत् ॥ २० ॥

हे राजन् ! सविता देवता आपको चारों ओरसे पुष्ट करें, अग्निदेव और मित्र तथा वरुण देवता आपको पुष्ट करें, आप सब शत्रुओंको दबाते हुए इस राष्ट्रमें आइये और इस राज्यको प्रिय सत्य वाणीसे सम्पन्न करिये ॥ २० ॥ (२)

यं त्वा पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहित ।

शुभा यासि रिणन्नपः ॥ २१ ॥

यम् । त्वा । पृषती । रथे । प्रष्टिः । वहति । रोहित ।

शुभा । यासि । रिणन् । अपः ॥ २१ ॥

हे रोहित ! आपको पृषती प्रष्टि रथमें धारण करती है आप जलोंमें चलते हुए शुभ करनेके लिये चलते हैं ॥ २१ ॥

अनुव्रता रोहिणी रोहितस्य सूरिः सुवर्णा बृहती सुवर्चाः ।

तया वाजान् विश्वरूपां जयेम तया विश्वाः पृतना अभि ष्याम ॥ २२ ॥

अनुऽव्रता । रोहिणी । रोहितस्य । सूरिः । सुऽवर्णा । बृहती ।

सुऽवर्चाः ।

तया । वाजान् । विश्वऽरूपान् । जयेम । तया । विश्वाः । पृतना ।

अभि । स्याम ॥ २२ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आरोहण करने वाले रोहित (चन्द्र) की रोहिणी अनुव्रता है वह सूरिसुवर्णा बृहती और सुवर्चा है उसके द्वारा हम अनेक रूपों वाले वेगवान् प्राणियोंको जीतते हैं और उसके द्वारा हम सकल सेनाओंको दबावें ॥ २२ ॥

इदं सदो रोहिणी रोहितस्यासौ पन्थाः पृषती येन याति तां गन्धर्वाः कश्यपा उन्नयन्ति तां रक्षन्ति कवयो प्रमादम् ॥ २३ ॥

इदम् । सदः । रोहिणी । रोहितस्य । असौ । पन्थाः । पृषती । येन । याति ।

ताम् । गन्धर्वाः । कश्यपाः । उत् । नयन्ति । ताम् । रक्षन्ति । कवयः । अप्रऽमादम् ॥ २३ ॥

यह रोहिणी और रोहितका स्थान है, यह वह मार्ग है जिससे पृषती जाती है, उसको कश्यप गंधर्व ऊपरको लेजाते हैं, चतुर पुरुष सावधानतापूर्वक इसकी रक्षा करते हैं ॥ २३ ॥

सूर्यस्याश्वा हरयः केतुमन्तः सदा वहन्त्यमृताः सुखं रथम् ।
घृतपावा रोहितो भ्राजमानो दिवं देवः पृषतीमा विवेश

सूर्यस्य । अश्वाः । हरयः । केतुऽमन्तः । सदा । वहन्ति । अमृताः । सुऽखम् । रथम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घृतऽपावा । रोहितः । भ्राजमानः । दिवम् । देवः । पृषतीम् ।
आ । विवेश ॥ २४ ॥

सूर्यके अश्व वेग वाले हैं, ज्ञानसे सम्पन्न हैं और अमर हैं वे सदा सुखपूर्वक रथको खेंचते हैं, घृतकी समान सारमय फलसे पवित्र करनेवाले दमकते हुए सूर्यदेवने पृषती द्यौमें प्रवेश किया है२४

यो रोहितो वृषभस्तिग्मशृङ्गः पर्यग्निं परि सूर्यं बभूव
यो विष्टभ्नाति पृथिवीं दिवं च तस्माद् देवा अधि
सृष्टीः सृजन्ते ॥ २५ ॥

यः । रोहितः । वृषभः । तिग्मऽशृङ्गः । परि । अग्निम् । परि ।
सूर्यम् । बभूव ।
यः । विऽस्तभ्नाति । पृथिवीम् । दिवम् । च । तस्मात् । देवाः ।
अधि । सृष्टीः । सृजन्ते ॥ २५ ॥

जो रोहितदेव कामनाओंकी वर्षा करने वाले हैं, तीखी किरणों वाले हैं जो अग्नि और सूर्यकी ओर रहते हैं जो पृथिवी और द्यौ को रोके हुए हैं, उनसे ही देवता सृष्टिकी रचना किया करते हैं २५

रोहितो दिवमारुहन्महत पर्यर्णवात् ।
सर्वा रुरोह रोहितो रुहः ॥ २६ ॥

रोहितः । दिवम् । आ । अरुहत् । महतः । परि । अर्णवात् ।
सर्वाः । रुरोह । रोहितः । रुहः ॥ २६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रोहित देव महान् समुद्रसे द्यौ पर आरोहण करते हैं, वह रोहित रोहणशील वस्तुओं पर आरोहण करते हैं ॥ २६ ॥

वि मिमीष्व पयस्वतीं घृताचीं देवानां धेनुरनपस्पृगेषा इन्द्रः सोमं पिबतु क्षेमो अस्त्वग्निः प्र स्तौतु वि मृधो नुदस्व ॥ २७ ॥

वि । मिमीष्व । पयस्वतीम् । घृताचीम् । देवानाम् । धेनुः । अनपऽस्पृक् । एषा ।

इन्द्रः । सोमम् । पिबतु । क्षेमः । अस्तु । अग्निः । प्र । स्तौतु । वि । मृधः । नुदस्व ॥ २७ ॥

तू घृतसे पूजित पयस्वती देवधेनुका मान कर यह अनपस्पृक् है, इन्द्र सोमका पान करें और अग्निदेव क्षेम करें और तेरी प्रशंसा करें और तू संग्रामोंमें शत्रुओंको खदेड़ ॥ २७ ॥

समिद्धो अग्निः समिधानो घृतवृद्धो घृताहुतः ।
अभीषाड् विश्वाषाडग्नि सपत्नान् हन्तु ये मम २८

सम्ऽइद्धः । अग्निः । सम्ऽइधानः । घृतऽवृद्धः । घृतऽआहुतः ।

अभीषाट् । विश्वाषाट् । अग्निः । सऽपत्नान् । हन्तु । ये । मम २८

प्रदीप्त हुए अग्निदेव जो घृतसे बढ़े हैं और जिनमें घृतकी आहुति दी गई है वे चारों ओरसे शत्रुओंका पराभव करने वाले, सबका पराभव कर सकने वाले हैं वे जो मेरे शत्रु हैं उनका संहार करें ॥ २८ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हन्त्वेनान् प्र दहत्वरिर्यो नः पृतन्यति ।
क्रव्यादाग्निना वयं सपत्नान् प्र दहामसि ॥ २९ ॥

हन्तु । एनान् । प्र । दहतु । अरिः । यः । नः । पृतन्यति ।
क्रव्यऽअदा । अग्निना । वयम् । सऽपत्नान् । प्र । दहामसि २९

अग्निदेव इन सब शत्रुओंको मारें और जो शत्रु सेनाको लेकर हमको मारना चाहता है उसको भस्म कर डालें, हम क्रव्याद् अग्निके द्वारा शत्रुओंको भस्म करते हैं ॥ २९ ॥

अवाचीनानव जहीन्द्र वज्रेण बाहुमान् ।
अधा सपत्नान् मामकानग्नेस्तेजोभिरादिषि ॥३०॥

अवाचीनान् । अव । जहि । इन्द्र । वज्रेण । बाहुऽमान् ।
अध । सऽपत्नान् । मामकान् । अग्नेः । तेजःऽभिः । आ । अदिषि

हे इन्द्र ! आप भुजबलसम्पन्न हैं अतः आप हमारे नीच शत्रुओंका संहार करिये, फिर हे अग्ने ! आप अपनी लपटोंसे मेरे शत्रुओंको भस्म कर डालिये ॥ ३०) (३)

अग्ने सपत्नानधरान् पादयास्मद् व्यथया सजातमुत्पिपानं बृहस्पते ।
इन्द्राग्नी मित्रावरुणावधरे पद्यन्तामप्रतिमन्यूयमानाः

अग्ने । सऽपत्नान् । अधरान् । पादय । अस्मत् । व्यथय । सऽजातम् । उत्ऽपिपानम् । बृहस्पते ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन्द्राग्नी इति । मित्रावरुणौ । अधरे । पद्यन्ताम् । अप्रतिऽमन्यूयमाना

हे अग्ने ! आप हमारे शत्रुओंको नीचे गिराइये और हे बृहस्पते ! आप ऊपरको बढ़ते हुए समानजन्मा शत्रुको व्यथित करिये, हे इन्द्र अग्नि तथा मित्र और वरुण देवताओं ! जो शत्रु हमारे प्रतिकूल होकर क्रोध कर रहे हैं वे नीचे पड़ जाँय ॥ ३१ ॥

उद्यंस्त्वं देव सूर्य सपत्नानव मे जहि ।
अवैनानश्मना जहि ते यन्त्वधमं तमः ॥ ३२ ॥

उत्ऽयन् । त्वम् । देव । सूर्य । सऽपत्नान् । अव । मे । जहि ।
अव । एनान् । अश्मना । जहि । ते । यन्तु । अधमम् । तमः ३२

हे सूर्यदेव ! उदय होते हुए आप मेरे शत्रुओंका संहार करिये, इनको पत्थरों (ओलों) से मार डालिये, ये मृत्युरूप घोर अंधकारको प्राप्त होजावें ॥ ३२ ॥

वत्सो विराजो वृषभो मतीनामा रुरोह शुक्रपृष्ठोन्तरिक्षम्
घृतेनार्कमभ्यर्चन्ति वत्सं ब्रह्म सन्तं ब्रह्मणा वर्धयन्ति

वत्सः । विऽराजः । वृषभः । मतीनाम् । आ । रुरोह । शुक्रऽपृष्ठः ।
अन्तरिक्षम् ।
घृतेन । अर्कम् । अभि । अर्चन्ति । वत्सम् । ब्रह्म । सन्तम् ।
ब्रह्मणा । वर्धयन्ति ॥ ३३ ॥

विराट्के वत्स, बुद्धियोंकी वर्षा करने वाले शुक्रपृष्ठ सूर्यदेव अन्तरिक्ष पर आरोहण करते हैं, सूर्यरूप वत्सके ब्रह्म होने पर भी पुरुष उसको ब्रह्मसे अर्थात् मन्त्रसे बढ़ाया करते हैं ॥ ३३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिवं च रोह पृथिवीं च रोह राष्ट्रं च रोह द्रविणं च रोह
प्रजां च रोहामृतं च रोह रोहितेन तन्वं १ सं स्पृशस्व ३४

दिवम् । च । रोह । पृथिवीम् । च । रोह । राष्ट्रम् । च । रोह ।
द्रविणम् । च । रोह ।
प्रऽजाम् । च । रोह । अमृतम् । च । रोह । रोहितेन । तन्वम् ।
सम् । स्पृशस्व ॥ ३४ ॥

हे राजन् ! आप स्वर्गमें चढ़ें, पृथिवी पर अधिष्ठित रहें, राष्ट्र पर अधिष्ठित रहें और धन पर अधिष्ठित रहें, प्रजाओं पर छत्र-च्छाया करते रहें, अमृत पर अधिष्ठित रहें और सूर्यसे अपने शरीरका स्पर्श करिये ॥ ३४ ॥

ये देवा राष्ट्रभृतोभितो यन्ति सूर्यम् ।
तैष्टे रोहितः संविदानो राष्ट्रं दधातु सुमनस्यमानः ३५

ये । देवाः । राष्ट्रऽभृतः । अभितः । यन्ति । सूर्यम् ।
तैः । ते । रोहितः । सम्ऽविदानः । राष्ट्रम् । दधातु । सुऽमन-
स्यमानः ॥ ३५ ॥

जो राष्ट्रका भरण करने वाले राष्ट्रभृत् देवता सूर्यके चारों ओर विचरण करते हैं रोहितदेव उनसे प्रसन्नतापूर्वक आपके विषय में एकमत होकर आपके राष्ट्रको पुष्ट करें ॥ ३५ ॥

उत् त्वा यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति ।
तिरः समुद्रमति रोचसेर्णवम् ॥ ३६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत् । त्वा । यज्ञाः । ब्रह्मऽपूताः । वहन्ति । अध्वऽगतः । हरयः । त्वा । वहन्ति ।

तिरः । समुद्रम् । अति । रोचसे । अर्णवम् ॥ ३६ ॥

हे सूर्यदेव ! मन्त्रपूत यज्ञ आपका वहन करते हैं, और मार्गमें जाने वाले घोड़े आपका वहन करते हैं आप तिरछे होकर समुद्र को परम शोभा प्रदान करते हैं ॥ ३६ ॥

रोहिते द्यावापृथिवी अधि श्रिते वसुजिति गोजिति संधनाजिति ।

सहस्रं यस्य जनिमानि सप्त च वोचेयं ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि ॥ ३७ ॥

रोहिते । द्यावापृथिवी इति । अधि । श्रिते इति । वसुऽजिति । गोऽजिति । संधनऽजिति ।

सहस्रम् । यस्य । जनिमानि । सप्त । च । वोचेयम् । ते । नाभिम् । भुवनस्य । अधि । मज्मनि ॥ ३७ ॥

वसुजित गोजित् संधनजित् रोहितमें द्यावापृथिवी अधिश्रित हैं, जिनके सात सहस्र जन्मों (उदयों) का मैं वर्णन करता हूँ भुवनकी मज्जाके बंधक भी उनहीको कहता हूँ ॥ ३७ ॥

यशा यासि प्रदिशो दिशश्च यशाः पशूनामुत चर्षणीनाम् ।

यशाः पृथिव्या अदित्या उपस्थे अहं भूयासं सवितेव चारुः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यशाः । यासि । प्रऽदिशः । दिशः । च । यशाः । पशूनाम् ।
उत । चर्षणीनाम् ।
यशाः । पृथिव्याः । अदित्याः । उपऽस्थे । अहम् । भूयासम् ।
सविताऽइव । चारुः ॥ ३८ ॥

आप यशसे दिशा और प्रदिशाओंमें जाते हैं और यशसे पशु और मनुष्योंमें विचरण करते हैं, मैं भी यशसे अखण्डनीया पृथिवीकी गोदमें सविता देवताकी समान कमनीय रहूँ ॥ ३८ ॥

अमुत्र सन्निह वेत्थेतः संस्तानि पश्यसि ।
इतः पश्यन्ति रोचनं दिवि सूर्यं विपश्चितम् ॥३९॥

अमुत्र । सन् । इह । वेत्थ । इतः । सन् । तानि । पश्यसि ।
इतः । पश्यन्ति । रोचनम् । दिवि । सूर्यम् । विपःऽचितम् ३९

आप परलोकमें रहते हुए यहाँके सब वृत्तान्तोंको जानते हैं और यहाँसे तहाँके सबको देखते हैं और प्राणी भी यहाँसे द्यौमें कमनीय विद्वान् सूर्यको देखते हैं ॥ ३९ ॥

देवो देवान् मर्चयस्यन्तश्चरस्यर्णवे ।
समानमग्निमिन्धते तं विदुः कवयः परे ॥ ४० ॥

देवः । देवान् । मर्चयसि । अन्तः । चरसि । अर्णवे ।
समानम् । अग्निम् । इन्धते । तम् । विदुः । कवयः । परे ॥४०॥

आप देवता होकर भी देवताओंको व्यापारमें प्रवृत्त करते हैं और अन्तरिक्षके भीतर विचरण करते हैं, जो पुरुष समान अग्निको प्रदीप्त करते हैं वे श्रेष्ठ चतुर पुरुष उनको जानते हैं ४०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात्
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् क्व स्वित् सूते नहि
यूथे अस्मिन् ॥ ४१ ॥

अवः । परेण । परः । एना । अवरेण । पदा । वत्सम् । बिभ्रती ।
गौः । उत् । अस्थात् ।
सा । कद्रीची । कम् । स्वित् । अर्धम् । परा । अगात् । क्व ।
स्वित् । सूते । नहि । यूथे । अस्मिन् ॥ ४१ ॥

एक पैरसे अन्नको और अपर पैरसे वत्सको धारण करती हुई श्वेतवर्णा गौ (सूर्यकिरण) उठती है वह कद्रीची किसी आधे भागमें जाती है वह कहीं पड़ती है यूथमें नहीं पड़ती है ४१

एकपदी द्विपदी सा चतुष्पद्यष्टापदी नवपदी बभूवुषी ।
सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिस्तस्याः समुद्रा अधि वि
क्षरन्ति ॥ ४२ ॥

एकऽपदी । द्विऽपदी । सा । चतुःऽपदी । अष्टाऽपदी । नवऽपदी ।
बभूवुषी ।
सहस्रऽअक्षरा । भुवनस्य । पङ्क्तिः । तस्याः । समुद्राः । अधि ।
वि । क्षरन्ति ॥ ४२ ॥

(यह माध्यमिका किरण ही सब जगत्का निर्माण करती है उसकी रीति यह है, कि–) वह मध्यमके साथ एकत्व को प्राप्त होकर एकपदी होजाती है, मध्यम आदित्यके साथ द्विपदी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होजाती है और दिशाओंके साथ चतुष्पदी होजाती है और अवान्तर दिशाओंके साथ अष्टापदी होजाती है, दिशा विदिशा और सूर्यमे नवपदी होजाती है और वह बहुतसे जलोंको करने वाली है, भुवनकी पंक्ति है, उससे मेघ क्षरित होते हैं ॥ ४२ ॥

आरोहन् द्यामम्रृतः प्राव मे वचः ।
उत् त्वां यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति ॥ ४३ ॥

आऽरोहन् । द्याम् । अमृतः । प्र । अव । मे । वचः ।
उत् । त्वा । यज्ञाः । ब्रह्मऽपूताः । वहन्ति । अध्वऽगतः । हरयः । त्वा । वहन्ति ॥ ४३ ॥

हे सूर्यदेव ! आप अमृत हैं अतः द्यौमें आरोहण करते हुए मेरे वचनकी रक्षा करिये, मंत्रपूत यज्ञ आपका वहन करते हैं और मार्गमें चलने वाले घोड़े आपका वहन करते हैं ॥ ४३ ॥

वेद तत् ते अमर्त्य यत् त आक्रमणं दिवि ।
यत् ते सधस्थं परमे व्योमन् ॥ ४४ ॥

वेद । तत् । ते । अमर्त्य । यत् । ते । आऽक्रमणम् । दिवि ।
यत् । ते । सधऽस्थम् । परमे । विऽओमन् ॥ ४४ ॥

हे अमर्त्य सूर्यदेव ! आपका जो द्यौमें विचरण करना है और परम व्योममें उपासकोंके साथ रहनेका जो स्थान है उसको मैं जानता हूँ ॥ ४४ ॥

सूर्यो द्यां सूर्यः पृथिवीं सूर्य आपोऽति पश्यति ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूर्यो भूतस्यैकं चक्षुरा रुरोह दिवं महीम् ॥ ४५ ॥

सूर्यः । द्याम् । सूर्यः । पृथिवीम् । सूर्यः । आपः । अति । पश्यति ।
सूर्यः । भूतस्य । एकम् । चक्षुः । आ । रुरोह । दिवम् । महीम् ॥

सूर्य द्युलोकको देखते हैं, सूर्य पृथ्वीलोकके साक्षी हैं और सूर्य जलके भी साक्षी हैं; सूर्यदेव प्राणिमात्रके असाधारण नेत्र हैं वही द्यौ और मही पर आरोहण करते हैं ॥ ४५ ॥

उर्वीरासन् परिधयो वेदिर्भूमिरकल्पत ।
तत्रैतावग्नी आधत्त हिमं घ्रंसं च रोहितः ॥ ४६ ॥

उर्वीः । आसन् । परिऽधयः । वेदिः । भूमिः । अकल्पत ।
तत्र । एतौ । अग्नी इति । आ । अधत्त । हिमम् । घ्रंसम् । च ।
रोहितः ॥ ४६ ॥

उर्वियें परिधियें बनीं और भूमि वेदीरूपमें कल्पित हुई तहाँ रोहितने इन अग्नियोंको और हिम तथा दिनको स्थापित किया है४६

हिमं घ्रंसं चाधाय यूपान् कृत्वा पर्वतान् ।
वर्षाज्यावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥ ४७ ॥

हिमम् । घ्रंसम् । च । आऽधाय । यूपान् । कृत्वा । पर्वतान् ।
वर्षऽआज्यौ । अग्नी इति । ईजाते इति । रोहितस्य । स्वःऽविदः ४७

सूर्यके स्वर्गको पाने वाले पुरुष हिम और दिनका आधान करके तथा पर्वतोंको यूप बना कर वर्षाज्य अग्निकी पूजा करते थे४७

स्वर्विदो रोहितस्य ब्रह्मणाग्निः समिध्यते ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तस्माद् घ्रंसस्तस्माद्धिमस्तस्माद् यज्ञो जायत॥४८॥

स्वःऽविदः । रोहितस्य । ब्रह्मणा । अग्निः । सम् । इध्यते ।

तस्मात् । घ्रंसः । तस्मात् । हिमः । तस्मात् । यज्ञः । अजायत ४८

स्वर्गप्रापक रोहितके मंत्रसे अग्निको प्रदीप्त किया जाता है, उसी से दिन हिम और यज्ञ प्रकट हुआ है ॥ ४८ ॥

ब्रह्मणाग्नी वावृधानौ ब्रह्मवृद्धौ ब्रह्माहुतौ ।
ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥ ४९ ॥

ब्रह्मणा । अग्नी इति । ववृधानौ । ब्रह्मऽवृद्धौ । ब्रह्मऽआहुतौ ।

ब्रह्मऽइद्धौ । अग्नी इति । ईजाते इति । रोहितस्य । स्वःऽविदः ४९

सूर्यके स्वर्गको पाना चाहने वाले पुरुष मंत्रसे आहुत और मंत्र से बढ़े हुए अग्नियोंको मन्त्रसे बढ़ाते हुए उन मन्त्रप्रज्वलित अग्नियोंकी पूजा करते हैं ॥ ४९ ॥

सत्ये अन्यः समाहितोऽप्स्व१न्यः समिध्यते ।
ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥ ५० ॥

सत्ये । अन्यः । सम्ऽआहितः । अप्ऽसु । अन्यः । सम् । इध्यते ।०

सत्यमें अन्य प्रतिष्ठित है और जलमें दूसरी अग्निको प्रदीप्त किया जाता है सूर्यसम्बंधी स्वर्गको पाना चाहने वालोंने उन मंत्र-समृद्ध अग्नियोंकी पूजाकी थी ॥ ५० ॥ (५)

यं वातः परि शुम्भति यं वेन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः ।
ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥ ५१ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यम् । वातः । परिऽशुम्भति । यम् । वा । इन्द्रः । ब्रह्मणः । पतिः ।

ब्रह्मऽइद्धौ । अग्नी इति । ईजाते इति । रोहितस्य । स्वःऽविदः ५१

वायु जिसको शोभित करना चाहता है इन्द्र और ब्रह्मणस्पति जिसको सुशोभित करना चाहते हैं ऐसे पुरुषोंका समूह ही सूर्य के स्वर्गलोकको पानेके लिये मंत्रप्रदीप्त अग्नियोंकी पूजा करते हैं ५१

वेदिं भूमिं कल्पयित्वा दिवं कृत्वा दक्षिणाम् ।

घ्रंसं तदग्निं कृत्वा चकार विश्वमात्मन्वद् वर्षेणाज्येन

रोहितः ॥ ५२ ॥

वेदिम् । भूमिम् । कल्पयित्वा । दिवम् । कृत्वा । दक्षिणाम् ।

घ्रंसम् । तत् । अग्निम् । कृत्वा । चकार । विश्वम् । आत्मन्ऽवत् ।

वर्षेण । आज्येन । रोहितः ॥ ५२ ॥

रोहितने भूमिको वेदि बनाकर और द्यौको दक्षिणा बना कर तथा दिनको अग्नि बनाकर वर्षारूपी घृतसे विश्वको आत्मन्वद् कर लिया है ॥ ५२ ॥

वर्षमाज्यं घ्रंसो अग्निर्वेदिर्भूमिरकल्पत ।

तत्रैतान् पर्वतानग्निर्गीर्भिरूर्ध्वाँ अकल्पयत् ॥ ५३ ॥

वर्षम् । आज्यम् । घ्रंसः । अग्निः । वेदिः । भूमिः । अकल्पत ।

तत्र । एतान् । पर्वतान् । अग्निः । गीःऽभिः । ऊर्ध्वान् । अकल्पयत्

वर्षाको घृत, दिनको अग्नि और भूमिको वेदि बनाया तहाँ अग्निने स्तुतियोंके द्वारा इन पर्वतोंको ऊँचा बनाया ॥ ५३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गीर्भिरूर्ध्वान् कल्पयित्वा रोहितो भूमिमब्रवीत् ।
त्वयीदं सर्वं जायतां यत् भूतं यच्च भाव्यम् ॥५४॥

गीःऽभिः । ऊर्ध्वान् । कल्पयित्वा । रोहितः । भूमिम् । अब्रवीत् ।
त्वयि । इदम् । सर्वम् । जायताम् । यत् । भूतम् । यत् । च ।
भाव्यम् ॥ ५४ ॥

स्तुतियोंसे ऊपरको बनाकर रोहितने भूमिसे कहा, कि-जो भूत है और होने वाला है यह सब तुझमें उत्पन्न होवे ॥ ५४ ॥

स यज्ञः प्रथमो भूतो भव्यो अजायत ।
तस्माद्ध जज्ञ इदं सर्वं यत् किं चेदं विरोचते रोहितेन ऋषिणाभृतम् ॥ ५५ ॥

सः । यज्ञः । प्रथमः । भूतः । भव्यः । अजायत ।
तस्मात् । ह । जज्ञे । इदम् । सर्वम् । यत् । किम् । च । इदम् ।
विऽरोचते । रोहितेन । ऋषिणा । आऽभृतम् ॥ ५५ ॥

वह यज्ञ पहिले भूत भव्यके रूपमें प्रकट हुआ उससे यह जो कुछ रोचमान है यह प्रकट हुआ, इसको द्रष्टा रोहितने ही पुष्ट किया है ॥ ५५ ॥

यश्च गां पदा स्फुरति प्रत्यङ् सूर्यं च मेहति ।
तस्य वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोपरम् ॥५६॥

यः । च । गाम् । पदा । स्फुरति । प्रत्यङ् । सूर्यम् । च । मेहति ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तस्य । वृश्चामि । ते । मूलम् । न । छायाम् । करवः । अपरम् ५६

जो पैरसे गौका स्पर्श करता है और सूर्यके प्रति मूत्रोत्सर्ग करता है उसकी मैं जड़को काटता हूँ और उसके ऊपर मैं छाया नहीं कर सकता ॥ ५६ ॥

यो माभिच्छायमत्येषि मां चाग्निं चान्तरा ।
तस्य वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोपरम् ॥५७॥

यः । मा । अभिऽछायम् । अतिऽएषि । माम् । च । अग्निम् । च । अन्तरा ।
तस्य । वृश्चामि । ते । मूलम् । न । छायाम् । करवः । अपरम् ।

जो मेरी छायाका अतिक्रमण करता है और मेरे तथा अग्निके बीचमेंको निकलता है, उसकी जड़को मैं काट डालूँगा उसके ऊपर मैं छाया नहीं कर सकूँगा ॥ ५७ ॥

यो अद्य देव सूर्य त्वां च मां चान्तरायति ।
दुष्वप्न्यं तस्मिञ्छमलं दुरितानि च मृज्महे ॥ ५८ ॥

यः । अद्य । देव । सूर्य । त्वाम् । च । माम् । च । अन्तरा । अयति ।
दुःऽस्वप्न्यम् । तस्मिन् । शमलम् । दुःऽइतानि । च । मृज्महे ५८

हे सूर्यदेव ! जो इस समय मेरे आपके बीचमें विघ्न डालना चाहता है हम उसमें दुःस्वप्न पाप और दुष्कर्मोंको डालते हैं ५८

मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः ।
मान्त स्थुर्नो अरातयः ॥ ५९ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मा । प्र । गाम । पथः । वयम् । मा । यज्ञात् । इन्द्र । सोमिनः ।

मा । अन्तः । स्थुः । नः । अरातयः ॥ ५९ ॥

हे इन्द्र ! हम सोम जिसमें प्रयुक्त होता है उस यज्ञपद्धतिसे दूर न जावें और शत्रु हमारे देशके भीतर स्थित न रहें ॥ ५९ ॥

यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः ।

तमाहुतमशीमहि ॥ ६० ॥

यः । यज्ञस्य । प्रऽसाधनः । तन्तुः । देवेषु । आऽततः ।

तम् । आऽहुतम् । अशीमहि ॥ ६० ॥

प्रथमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

इति प्रथमोनुवाकः ॥

जो यज्ञका प्रसाधन तन्तु देवताओंमें विस्तृत हैं उस आहुत (यज्ञ) को हम प्राप्त करें ॥ ६० ॥ (६)

प्रथम अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (५०२)

प्रथम अनुवाक समाप्त

"उदस्य केतवः" इति सवितृदेवताकम् ॥

याज्ञिका वक्ष्यमाणप्रकारेण विनियुञ्जन्ति ।

"उदस्य केतवः" इत्यनुवाकस्य सलिलगणे पाठः । अतस्तस्य गणप्रयुक्तो विनियोगो द्रष्टव्यः [१. ५] ॥

तथा उपनयने आयुरभिवृद्ध्यर्थम् अनेनानुवाकेन माणवकस्त्रिकालम् आदित्यं उपतिष्ठेत । सूत्रितं हि । "उदस्य केतवः [१३. २] मूर्धाहम् [१६. ३] विषासहिम् [१७. १] इत्युद्यन्तम् उपतिष्ठते मध्यंदिनेऽस्तं यन्तम्" इति । कौ० ७. ९ ॥

तथा चातुर्मास्ये साकमेधपर्वणि पित्र्येष्टौ जातायाम् आदित्यो-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पस्थाने इदं विनियुक्तम् । तद् उक्तं वैताने । "प्राञ्चोभ्युत्क्रम्योदस्य केतव इत्यादित्यमुपतिष्ठन्ते" इति । वै० २. ५ ॥

"उदस्य केतवः" यह सविता देवताका सूक्त है । याज्ञिक पुरुष इसका इस प्रकार विनियोग करते है, कि–

"उदस्य केतवः" अनुवाकका सलिलगणमें पाठ है अतः इसका गणके अनुसार विनियोग करना चाहिये। इसका अधिक विस्तार प्रथम काण्डके पञ्चम सूक्तमें है ।

तथा बालक उपनयनमें आयुकी वृद्धिके लिये इस अनुवाकसे तीनों कालमें सूर्यका उपस्थान करे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–'उदस्य केतवः (१३ । २) मूर्धाहम् (१६ । ३) विषासहिम् (१७ । १) इत्युद्यन्तं आदित्यं उपतिष्ठते मध्यन्दिनेऽस्तं यन्तम् ।' (कौशिकसूत्र ७ । ९) ॥

तथा चातुर्मास्यके साकमेधकर्ममें पित्र्येष्टिके होने पर जो आदित्योपस्थान होता है उसमें इसका विनियोग होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"प्राञ्चोऽभ्युत्क्रम्योदस्य केतव इत्यादित्यमुपतिष्ठन्ते" (वैतानसूत्र २ । ५) ॥

उदस्य केतवो दिवि शुक्रा भ्राजन्त ईरते ।
आदित्यस्य नृचक्षसो महिव्रतस्य मीढुषः ॥ १ ॥

उत् । अस्य । केतवः । दिवि । शुक्राः । भ्राजन्तः । ईरते ।
आदित्यस्य । नृऽचक्षसः । महिऽव्रतस्य । मीढुषः ॥ १ ॥

महिमामय कर्म वाले, सेचक, मनुष्योंके साक्षी आदित्यदेवकी निर्मल किरणें आकाशमें दमकती रहती हैं और इनको ऊपरको चढ़ाती हैं ॥ १ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिशां प्रज्ञानां स्वरयन्तमर्चिषा सुपक्षमाशुं पतयन्त-
मर्णवे ।
स्तवाम सूर्यं भुवनस्य गोपां यो रश्मिभिर्दिश आभाति
सर्वाः ॥ २ ॥

दिशाम् । प्रऽज्ञानाम् । स्वरयन्तम् । अर्चिषा । सुऽपक्षम् । आशुम् ।
पतयन्तम् । अर्णवे ।
स्तवाम । सूर्यम् । भुवनस्य । गोपाम् । यः । रश्मिऽभिः । दिशः ।
आऽभाति । सर्वाः ॥ २ ॥

अपनी कान्तिसे (पूर्व पश्चिम आदि) ज्ञान वाली दिशाओंमें (प्राणियोंसे) शब्द कराने वाले, सुन्दर पर वाले (अरुण) को समुद्रमें प्रतिष्ठित करने वाले और जो अपनी किरणोंसे सब दिशाओंको प्रकाशित करते हैं उन भुवनरक्षक सूर्यदेवकी हम स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

यत् प्राङ् प्रत्यङ् स्वधया यासि शीभं नानारूपे अहनी
कर्षि मायया ।
तदादित्य महि तत् ते महि श्रवो यदेको विश्वं परि भूम
जायसे ॥ ३ ॥

यत् । प्राङ् । प्रत्यङ् । स्वधया । यासि । शीभम् । नानारूपे इति
नानाऽरूपे । अहनी इति । कर्षि । मायया ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तत् । आदित्य । महि । तत् । ते । महि । श्रवः । यत् । एकः ।
विश्वम् । परि । भूम । जायसे ॥ ३ ॥

आप अन्नमय हविके द्वारा पूर्व और पश्चिम दिशामें शीघ्रता से जाते हैं और अपनी मायासे दिन रातको अनेक रूपों वाले करते हैं, हे आदित्य ! आपका यह महान् प्रशंसनीय यश है जो आप अकेले ही विश्वमें सबसे महान् रहते हैं ॥ ३ ॥

विपश्चितं तरणिं भ्राजमानं वहन्ति यं हरितः सप्त बह्वीः।
स्रुताद् यमत्रिर्दिवमुन्निनाय तं त्वा पश्यन्ति परियान्तमाजिम् ॥ ४ ॥

विपःऽचितम् । तरणिम् । भ्राजमानम् । वहन्ति । यम् । हरितः ।
सप्त । बह्वीः ।
स्रुतात् । यम् । अत्रिः । दिवम् । उत्ऽनिनाय । तम् । त्वा ।
पश्यन्ति । परिऽयान्तम् । आजिम् ॥ ४ ॥

विद्वान् भवसागरकी नौकारूप दमकते हुए जिन सूर्यदेवको सात घोड़े वहन करते हैं, समुद्रसे जिनको आधिदैविक आध्यात्मिक और आधिभौतिक—इन तीनों दुःखोंसे रहित ब्रह्म द्यौमें ऊपरको लाता है ऐसे आपको हम आजिमें जाता हुआ देखते हैं ॥ ४ ॥

मा त्वा दभन् परियान्तमाजिं स्वस्ति दुर्गाँ अति याहि शीभम् ।
दिवं च सूर्य पृथिवीं च देवीमहोरात्रे विमिमानो यदेषि ॥ ५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मा । त्वा । दभन् । परिऽयान्तम् । आजिम् । स्वस्ति । दुःऽगान् ।
अति । याहि । शीभम् ।

दिवम् । च । सूर्य । पृथिवीम् । च । देवीम् । अहोरात्रे इति ।
विऽमिमानः । यत् । एषि ॥ ५ ॥

हे सूर्य ! आप जो द्यौ और देवी पृथिवीमें दिन रातका मान करते हुए चलते हैं ऐसे आपको आजिमें जाने पर (शत्रु) न दबा सकें आप शीघ्रतासे कल्याणपूर्वक दुर्गम स्थलोंको लाँघ जाइये ५

स्वस्ति ते सूर्य चरसे रथाय येनोभावन्तौ परियासि सद्यः ।
यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः ॥ ६ ॥

स्वस्ति । ते । सूर्य । चरसे । रथाय । येन । उभौ । अन्तौ ।
परिऽयासि । सद्यः ।

यम् । ते । वहन्ति । हरितः । वहिष्ठाः । शतम् । अश्वाः । यदि ।
वा । सप्त । बह्वीः ॥ ६ ॥

हे सूर्यदेव ! जिस रथसे आप दोनों (समुद्रोंके) अन्तोंको शीघ्र ही प्राप्त होते हैं उस आपके विचरण करने वाले रथका कल्याण हो और आपके जो भारवहन करनेमें समर्थ सौ, सात वा बहुतसे हरित घोड़े आपका वहन करते हैं उनके लिये भी स्वस्ति हो ॥ ६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुखं सूर्य रथमंशुमन्तं स्योनं सुवह्निमधि तिष्ठ वाजिनम्
यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः

सुऽखम् । सूर्य । रथम् । अंशुऽमन्तम् । स्योनम् । सुऽवह्निम् । अधि ।
तिष्ठ । वाजिनम् ।

यम् । ते । वहन्ति । हरितः । वहिष्ठाः । शतम् । अश्वाः । यदि ।
वा । सप्त । बह्वीः ॥ ७ ॥

हे सूर्यदेव ! आप सुखस्वरूप सुखदायक सुन्दर अग्निकी समान दमक वाले वेगवाले रथ पर सवार हूजिये उस आपके रथको भार वहन करनेमें श्रेष्ठ सात सौ वा बहुतसे घोड़े खेंचते हैं ॥ ७ ॥

सप्त सूर्यो हरितो यातवे रथे हिरण्यत्वचसो बृहतीरयुक्त
अमोचि शुक्रो रजसः परस्ताद् विधूय देवस्तमो दिव-
मारुहत् ॥ ८ ॥

सप्त । सूर्यः । हरितः । यातवे । रथे । हिरण्यऽत्वचसः । बृहतीः ।
अयुक्त ।

अमोचि । शुक्रः । रजसः । परस्तात् । विऽधूय । देवः । तमः ।
दिवम् । आ । अरुहत् ॥ ८ ॥

निर्मल सूर्य देव गमन करनेके लिये सुवर्णकी समान त्वचा वाले सात बड़े २ अश्वोंको रथमें जोतते हैं और अंधकारको दूर करके लोकसे परे उन घोड़ोंको छोड़ देते हैं और स्वर्गमें प्रवेश कर जाते हैं ॥ ८ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत् केतुना बृहता देव आगन्नपावृक् तमोभि ज्योतिरश्रैत् ।
दिव्यः सुपर्णः स वीरो व्यख्यददितेः पुत्रो भुवनानि विश्वा ॥ ९ ॥

उत् । केतुना । बृहता । देवः । आ । अगन् । अप । अवृक् ।
तमः । अभि । ज्योतिः । अश्रैत् ।
दिव्यः । सुऽपर्णः । सः । वीरः । वि । अख्यत् । अदितेः । पुत्रः ।
भुवनानि । विश्वा ॥ ९ ॥

अपने ऊपरको जाने वाले महान्केतुके द्वारा सूर्यदेव आरहे हैं अन्धकारको दूर कर ज्योतिका आश्रय लेरहे हैं वह अदितिका पुत्र दिव्य सुपर्ण (अरुण) सब लोकोंमें प्रसिद्ध होरहा है ॥ ९ ॥

उद्यन् रश्मीना तनुषे विश्वा रूपाणि पुष्यसि ।
उभा समुद्रौ क्रतुना वि भासि सर्वाँल्लोकान् परिभूर्भ्राजमानः ॥ १० ॥

उत्ऽयन् । । रश्मीन् । आ । तनुषे । विश्वा । रूपाणि । पुष्यसि ।
उभा । समुद्रौ । क्रतुना । वि । भासि । सर्वान् । लोकान् । परिऽभूः । भ्राजमानः ॥ १० ॥

हे सूर्यदेव ! आप उदय होते समय किरणोंको फैलाते हैं और सब रूपवान् पदार्थोंको पुष्ट करते हैं और दमकते हुए आप अपने गमनसे दोनों समुद्रोंको और सब लोकोंको दमकाते हैं॥१०॥ (७)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम्
विश्वान्यो भुवना विचष्टे हैरण्यैरन्यं हरितो वहन्ति

पूर्वऽअपरम् । चरतः । मायया । एतौ । शिशू इति । क्रीडन्तौ ।
परि । यातः । अर्णवम् ।
विश्वा । अन्यः । भुवना । विऽचष्टे । हैरण्यैः । अन्यम् । हरितः ।
वहन्ति ॥ ११ ॥

अपनी मायासे शिशुकी समान क्रीड़ा करने वाले ये दोनों आगे पीछे समुद्रकी ओर चले जाते हैं, इनमें एक सब भुवनोंको प्रकाशित करता है और दूसरेको घोड़े अपने हिरण्यमय शरीरों से वहन करते हैं ॥ ११ ॥

दिवि त्वात्रिरधारयत् सूर्या मासाय कर्तवे ।
स एषि सुधृतस्तपन् विश्वा भूतावचाकशत् ॥ १२ ॥

दिवि । त्वा । अत्रिः । अधारयत् । सूर्य । मासाय । कर्तवे ।
सः । एषि । सुऽधृतः । तपन् । विश्वा । भूता । अवऽचाकशत् १२

हे सूर्य ! आधिदैविक आध्यात्मिक और आधिभौतिक–इन तीनों प्रकारके दुःखसे रहित अत्रिने आपको मास-समूहको करने के लिये द्यौमें स्थापित किया है, वही भली प्रकार धारण किये हुए आप तपते हुए आरहे हैं और सकल भूतोंको प्रकाशित करते रहते हैं ॥ १२ ॥

उभावन्तौ समर्षसि वत्सः संमातराविव ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नन्वे३तदितः पुरा ब्रह्म देवा अमी विदुः ॥ १३ ॥

उभौ । अन्तौ । सम् । अर्षसि । वत्सः । संमातरौऽइव ।

ननु । एतत् । इतः । पुरा । ब्रह्म । देवाः । अमी इति । विदुः १३

जैसे बालक माता पिताके पास जाता है ऐसे ही आप दोनों समुद्रोंके पास जाते हैं, ये देवता यह समझते हैं कि—यही सनातन ब्रह्म हैं ॥ १३ ॥

यत् समुद्रमनु श्रितं तत् सिषासति सूर्यः ।
अध्वास्य विततो महान् पूर्वश्चापरश्च यः ॥ १४ ॥

यत् । समुद्रम् । अनु । श्रितम् । तत् । सिषासति । सूर्यः ।

अध्वा । अस्य । विऽततः । महान् । पूर्वः । च । अपरः । च । यः १४

जो मार्ग समुद्र तक चला गया है सूर्य देव (प्रकाश फैला कर लोकोंके लिये उसीका) दान करते हैं, इनका जो पूर्वापर मार्ग है वह महान् है और विस्तृत है ॥ १४ ॥

तं समाप्नोति जूतिभिस्ततो नाप चिकित्सति ।
तेनामृतस्य भक्षं देवानां नाव रुन्धते ॥ १५ ॥

तम् । सम् । आप्नोति । जूतिऽभिः । ततः । न । अप । चिकित्सति ।

तेन । अमृतस्य । भक्षम् । देवानाम् । न । अव । रुन्धते ॥१५॥

उस मार्गको आप शीघ्रतासे गमन करने वाले घोड़ोंके द्वारा प्राप्त होते हैं आप उससे असावधान नहीं रहते हैं उसके द्वारा देवताओं के अमृतके भक्षणको भी नहीं रोकते हैं ॥ १५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।
दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ १६ ॥

उत् । ऊं इति । त्यम् । जातऽवेदसम् । देवम् । वहन्ति । केतवः ।
दृशे । विश्वाय । सूर्यम् ॥ १६ ॥

किरणें वा अश्व, सब उत्पन्न होने वालोंको जानने वाले सूर्य-देवको, सबको दिखानेके लिये ऊपरको लाती हैं ॥ १६ ॥

अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः ।
सूराय विश्वचक्षसे ॥ १७ ॥

अप । त्ये । तायवः । यथा । नक्षत्रा । यन्ति । अक्तुऽभिः ।
सूराय । विश्वऽचक्षसे ॥ १७ ॥

जैसे चोर रातके साथ ही साथ भाग जाते हैं ऐसे ही सबके द्रष्टा सूर्यके कारण नक्षत्र रातके साथ २ भाग जाते हैं ॥ १७ ॥

अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु ।
भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ १८ ॥

अदृश्रन् । अस्य । केतवः । वि । रश्मयः । जनान् । अनु ।
भ्राजन्तः । अग्नयः । यथा ॥ १८ ॥

अग्निकी समान दमकती हुई इन सूर्यदेवकी ज्ञानदाता किरणें प्रत्येक पुरुषोंके पीछे दीखती हैं ॥ १८ ॥

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विश्वमा भासि रोचन ॥ १९ ॥

तरणिः । विश्वऽदर्शतः । ज्योतिःऽकृत् । असि । सूर्य ।

विश्वम् । आ । भासि । रोचन ॥ १९ ॥

हे कमनीय सूर्यदेव ! आप (संसारसागरकी) नौकारूप हैं सबको देखने वाले और ज्योति देने वाले हैं आप सबको प्रकाशित करते हैं ॥ १९ ॥

प्रत्यङ् देवाना विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषीः ।

प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥ २० ॥

प्रत्यङ् । देवानाम् । विशः । प्रत्यङ् । उत् । एषि । मानुषीः ।

प्रत्यङ् । विश्वम् । स्वः । दृशे ॥ २० ॥

हे सूर्यदेव ! आप प्रत्येक मानुषी और दैवीप्रजाको सामने रख कर उनके सामने उदित होते हैं प्रत्येक पुरुषको देखनेके लिये उसको सामने लाकर उदित होते हैं ॥ २० ॥

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु ।

त्वं वरुण पश्यसि ॥ २१ ॥

येन । पावक । चक्षसा । भुरण्यन्तम् । जनान् । अनु ।

त्वम् । वरुण । पश्यसि ॥ २१ ॥

हे पवित्र करने वाले पापनिवारक सूर्यदेव ! पूर्वके पुण्यात्मा पुरुषोंसे आचरित मार्गमें शीघ्रतासे जाते हुए पुण्यात्मा पुरुषको आप जिस अनुग्राहिकादृष्टिसे देखते हैं (उस दृष्टिकी हम स्तुति करते हैं) ॥ २१ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहर्मिमानो अक्तुभिः ।
पश्यन् जन्मानि सूर्य ॥ २२ ॥

वि । द्याम् । एषि । रजः । पृथु । अहः । मिमानः । अक्तुऽभिः ।
पश्यन् । जन्मानि । सूर्य ॥ २२ ॥

हे सूर्यदेव ! आप उत्पन्न हुए सब प्राणियों पर अनुग्रह करने के लिये उनको देखते हुए तथा रात्रियोंसहित दिनका निर्माण करते हुए द्युलोक भूलोक और विशाल अन्तरिक्षलोकमें अनेक प्रकारसे विचरण करते हैं ॥ २२ ॥

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य ।
शोचिष्केशं विचक्षणम् ॥ २३ ॥

सप्त । त्वा । हरितः । रथे । वहन्ति । देव । सूर्य ।
शोचिऽकेशम् । विऽचक्षणम् ॥ २३ ॥

हे सूर्यदेव ! दमकती हुई किरणों वाले सूक्ष्मद्रष्टा रथमें आपको सात घोड़े सवारी देते हैं ॥ २३ ॥

अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः ।
ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ २४ ॥

अयुक्त । सप्त । शुन्ध्युवः । सूरः । रथस्य । नप्त्यः ।
ताभिः । याति । स्वयुक्तिऽभिः ॥ २४ ॥

सूर्यदेवने सात पवित्र करने वाले रक्तक घोड़ोंको अपने रथमें जोड़ लिया है और वह उनसे अपनी युक्तियोंके द्वारा चल रहे हैं २४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रोहितो दिवमारुहत् तपसा तपस्वी ।
स योनिमैति स उ जायते पुनः स देवानामधिपतिर्बभूव ॥ २५ ॥

रोहितः । दिवम् । आ । अरुहत् । तपसा । तपस्वी ।
सः । योनिम् । आ । एति । सः । ऊं इति । जायते । पुनः । सः ।
देवानाम् । अधिऽपतिः । बभूव ॥ २५ ॥

तपस्वी रोहित सूर्यदेव अपने तपसे द्यौमें आरोहण करते हैं, वह योनिको प्राप्त होते हैं और वही फिर प्रकट होते हैं और वह (सूर्य वा आत्मा) देवताओंके अधिपति हुए थे ॥ २५ ॥

यो विश्वचर्षणिरुत विश्वतोमुखो यो विश्वतस्पाणिरुत विश्वतस्पृथः ।
सं बाहुभ्यां भरति सं पतत्रैर्द्यावापृथिवी जनयन् देव एकः

यः । विश्वऽचर्षणिः । उत । विश्वतःऽमुखः । यः । विश्वतःऽपाणिः ।
उत । विश्वतःऽपृथः ।
सम् । बाहुऽभ्याम् । भरति । सम् । पतत्रैः । द्यावापृथिवी इति ।
जनयन् । देवः । एकः ॥ २६ ॥

जो सबके द्रष्टा हैं और अनेक मुख वाले हैं तथा जिनके हाथ चारों ओर हैं और जो विश्वतस्पृथ हैं वह असाधारण देव अपनी पतनशील किरणोंसे द्यावापथिवीको प्रादुर्भूत करते हुए अपनी भुजाओंसे सबका भरण करते हैं ॥ २६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति पश्चात् ।
द्विपाद्ध षट्पदो भूयो वि चक्रमे त एकपदस्तन्वं१ समासते ॥ २७ ॥

एकऽपात् । द्विऽपदः । भूयः । वि । चक्रमे । द्विऽपात् । त्रिऽपादम् । अभि । एति । पश्चात् ।

द्विऽपात् । ह । षट्ऽपदः । भूयः । वि । चक्रमे । ते । एकऽपदः । तन्वम् । सम् । आसते ॥ २७ ॥

एकपाद्ध द्विपदोंमें आक्रमण करता है, फिर द्विपाद्ध त्रिपदोंको प्राप्त होता है, द्विपाद्ध फिर षट्पदोंमें विक्रमण करता है, वे एकपद्धके तन्व (ब्रह्मपद) की उपासना करते हैं ॥ २७ ॥

अतन्द्रो यास्यन् हरितो यदास्थाद् द्वे रूपे कृणुते रोचमानः ।
केतुमानुद्यन्त्सहमानो रजांसि विश्वा आदित्य प्रवतो वि भासि ॥ २८ ॥

अतन्द्रः । यास्यन् । हरितः । यत् । आऽअस्थात् । द्वे इति । रूपे इति । कृणुते । रोचमानः ।

केतुऽमान् । उत्ऽयन् । सहमानः । रजांसि । विश्वाः । आदित्य । प्रऽवतः । वि । भासि ॥ २८ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तन्द्रारहित सूर्यदेव गमन करते समय जिस समय विश्राम करते हैं उस समय वह रोचमान सूर्य अपने दो रूपोंको करते हैं। हे आदित्य! उदय होते हुए ध्वजा वाले आप सब प्रकृष्ट लोकों को दबाते हुए दमकते हैं ॥ २८ ॥

बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि।
महांस्ते महतो महिमा त्वमादित्य महाँ असि २९

बट्। महान्। असि। सूर्य। बट्। आदित्य। महान्। असि।
महान्। ते। महतः। महिमा। त्वम्। आदित्य। महान्। असि२९

हे सूर्य! आप महान् हैं, यह सत्य है। हे आदित्य! आप महान् हैं यह सत्य है। आप महान्की महिमा भी महान् है, हे आदित्य! आप महान् हैं ॥ २९ ॥

रोचसे दिवि रोचसे अन्तरिक्षे पतङ्ग पृथिव्यां रोचसे
रोचसे अप्स्वन्तः।
उभा समुद्रौ रुच्या व्यापिथ देवो देवासि महिषः स्वर्जित्

रोचसे। दिवि। रोचसे। अन्तरिक्षे। पतङ्ग। पृथिव्याम्। रोचसे।
रोचसे। अप्ऽसु। अन्तः।
उभा। समुद्रौ। रुच्या। वि। आपिथ। देवः। देव। असि।
महिषः। स्वःऽजित् ॥ ३० ॥

हे सूर्यदेव! आप द्यौमें दमकते हैं, अन्तरिक्षमें दमकते हैं आप पृथिवीमें दमकते हैं और जलके भीतर दमकते हैं, आप अपनी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कान्तिसे दोनों समुद्रोंको व्याप्त कर लेते हैं हे देव ! आप स्वर्गके जेता पूजनीय देव हैं ॥ ३० ॥ (९)

अर्वाङ् परस्तात् प्रयतो व्यध्व आशुर्विपश्चित् पतयन् पतङ्गः ।
विष्णुर्विचित्तः शवसाधितिष्ठन् प्र केतुना सहते विश्वमेजत् ॥ ३१ ॥

अर्वाङ् । परस्तात् । प्रऽयतः । विऽअध्वे । आशुः । विपःऽचित् । पतयन् । पतङ्गः ।

विष्णुः । विऽचित्तः । शवसा । अधिऽतिष्ठन् । प्र । केतुना । सहते । विश्वम् । एजत् ॥ ३१ ॥

विद्वान् सूर्य देव दक्षिणगामी होते हुए शीघ्रतापूर्वक मार्गको लाँघते हैं, यह सूर्य देव व्यापक हैं, विशेष ज्ञानवान् हैं, बलपूर्वक अधिष्ठित होते हुए यह अपने ज्ञानसे सब चेष्टा-शील जगत्को दबा देते हैं ॥ ३१ ॥

चित्रश्चिकित्वान् महिषः सुपर्ण आरोचयन् रोदसी अन्तरिक्षम् ।
अहोरात्रे परि सूर्यं वसाने प्रास्य विश्वा तिरतो वीर्याणि

चित्रः । चिकित्वान् । महिषः । सुऽपर्णः । आऽरोचयन् । रोदसी इति । अन्तरिक्षम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अहोरात्रे इति । परि । सूर्यम् । वसाने इति । प्र । अस्य । विश्वा ।
तिरतः । वीर्याणि ॥ ३२ ॥

पूजनीय ज्ञानवान् महिमामय सुन्दरतासे पतन (गमन) करने वाले सूर्यदेव द्यावापृथिवी और अन्तरिक्षको दमकाते हैं, दिन और रात सूर्यका ही आश्रय लेते हैं, इसके वीर्यसे ही सब पार जाते हैं ॥ ३२ ॥

तिग्मो विभ्राजन् तन्वं१ शिशानोरंगमासः प्रवतो रराणः ।
ज्योतिष्मान् पक्षी महिषो वयोधा विश्वा आस्थात् प्रदिशः कल्पमानः ॥ ३३ ॥

तिग्मः । विऽभ्राजन् । तन्वम् । शिशानः । अरम्ऽगमासः । प्रऽवतः ।
रराणः ।
ज्योतिष्मान् । पक्षी । महिषः । वयःऽधाः । विश्वाः । आ ।
अस्थात् । प्रऽदिशः । कल्पमानः ॥ ३३ ॥

यह तिग्म (तीखे) सूर्यदेव दमकते रहते हैं, शरीरको छीलते रहते हैं अर्थात् स्वच्छ करते रहते हैं, मनुष्योंको शब्द कराते हुए प्राप्त होते हैं, दमक वाले हैं, गमन करने वाले हैं, महिमामय हैं, अन्नको पुष्ट करने वाले हैं यह सब दिशाओंकी कल्पना करते हुए स्थित रहते हैं ॥ ३३ ॥

चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्य उद्यन् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिवाकरोति द्युम्नैस्तमांसि विश्वातारीद् दुरितानि शुक्रः ॥ ३४ ॥

चित्रम् । देवानाम् । केतुः । अनीकम् । ज्योतिष्मान् । प्रऽदिशः । सूर्यः । उत्ऽयन् ।

दिवाऽकरः । अति । द्युम्नैः । तमांसि । विश्वा । अतारीत् । दुःऽइतानि । शुक्रः ॥ ३४ ॥

यह सूर्यदेव देवताओंमें दर्शनीय हैं, देवताओंकी केतुरूप हैं, उदय होते हुए दिशाओंमें ज्योतिष्मान् रहते हैं अपने प्रकाशोंसे दिन कर देते हैं यह दमकते हुए सूर्यदेव सकल अंधकारोंको और पापोंको दूर कर देते हैं ॥ ३४ ॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आप्राद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ ३५ ॥

चित्रम् । देवानाम् । उत् । अगात् । अनीकम् । चक्षुः । मित्रस्य । वरुणस्य । अग्ने ।

आ । अप्रात् । द्यावापृथिवी इति । अन्तरिक्षम् । सूर्यः । आत्मा । जगतः । तस्थुषः । च ॥ ३५ ॥

यह जो किरणोंका पूजनीय समूह उदय हुआ है यह मित्र और वरुणदेवका चक्षु है अर्थात् ये देवता इस नेत्रसे ही देखते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं यह सूर्य देव स्थावर और जंगमजगत्की आत्मा हैं, इस प्रकार यह सर्वभूतानुप्रवेशी सूर्य देव द्यावापृथिवी और अन्तरिक्ष सबको ही व्याप्त कर रहे हैं ॥ ३५ ॥

उच्चा पतन्तमरुणं सुपर्णं मध्ये दिवस्तरणिं भ्राजमानम्।
पश्याम त्वा सवितारं यमाहुरजस्रं ज्योतिर्यदविन्दद्-
दत्रिः ॥ ३६ ॥

उच्चा । पतन्तम् । अरुणम् । सुऽपर्णम् । मध्ये । दिवः । तरणिम् । भ्राजमानम् ।

पश्याम । त्वा । सवितारम् । यम् । आहुः । अजस्रम् । ज्योतिः । यत् । अविन्दत् । अत्रिः ॥ ३६ ॥

ऊपरको चलते हुए अरुण वर्ण वाले सुन्दर पतन वाले द्यौके मध्यमें गमन करते हुए आप सविता देवताको हम सदा देखें, ज्योतिःस्वरूप आपको आधिदैविक आध्यात्मिक और आधिभौतिक दुःखोंसे रहित अत्रि पाते हैं ॥ ३६ ॥

दिवस्पृष्ठे धावमानं सुपर्णमदित्याः पुत्रं नाथकाम उप
यामि भीतः ।
स नः सूर्य प्र तिर दीर्घमायुर्मा रिषाम सुमतौ ते स्याम॥

दिवः । पृष्ठे । धावमानम् । सुऽपर्णम् । अदित्याः । पुत्रम् । नाथऽकामः । उप । यामि । भीतः ।

सः । नः । सूर्य । प्र । तिर । दीर्घम् । आयुः । मा । रिषाम । सुऽमतौ । ते । स्याम ॥ ३७ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भयभीत हुआ मैं द्यौमें दौड़ने वाले शोपन पतन वाले अदिति के पुत्र सूर्य देवकी प्रार्थना करता हुआ उनकी शरणमें जाता हूँ, ऐसे हे सूर्य देव ! आप हमको दीर्घायु दीजिये हम हिंसित न होवें और आपकी अनुग्रहात्मिका शोभन बुद्धिमें स्थिर रहें ३७

सहस्राक्ष्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा ॥ ३८ ॥

सहस्रऽअक्ष्यम् । वियतौ । अस्य । पक्षौ । हरेः । हंसस्य । पततः । स्वःऽगम् ।
सः । देवान् । सर्वान् । उरसि । उपऽदद्य । सम्ऽपश्यन् । याति । भुवनानि । विश्वा ॥ ३८ ॥

इन स्वर्गको जाते हुए गमनशील पापनाशक सूर्यके दोनों (दक्षिणायन उत्तरायणरूप) पक्ष सहस्रों दिन तक भी नियमित ही रहते हैं। यह सब देवताओंको अपनेमें लीन कर सब प्राणियों को देखते हुए गमन किया करते हैं ॥ ३८ ॥

रोहितः कालो अभवद् रोहितोग्रे प्रजापतिः ।
रोहितो यज्ञानां मुखं रोहितः स्वरा भरत् ॥ ३९ ॥

रोहितः । कालः । अभवत् । रोहितः । अग्रे । प्रजाऽपतिः ।
रोहितः । यज्ञानाम् । मुखम् । रोहितः । स्वः । आ । अभरत् ३९

पहिले रोहित काल हुए थे और रोहित ही प्रजापति थे, रोहित ही यज्ञोंके मुख हैं और रोहित स्वर्गका भरण करते हैं ॥ ३९ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रोहितो लोको अभवद् रोहितोत्यतपद् दिवम् ।
रोहितो रश्मिभिर्भूमिं समुद्रमनु सं चरत् ॥ ४० ॥

रोहितः । लोकः । अभवत् । रोहितः । अति । अतपत् । दिवम् ।
रोहितः । रश्मिऽभिः । भूमिम् । समुद्रम् । अनु । सम् । चरत् ४०

रोहितदेव दर्शनीय हैं और रोहित स्वर्गमें तपते हैं और रोहित-देव अपनी किरणोंसे समुद्र और भूमिमें विचरण करते हैं ४० (१०)

सर्वा दिशः समचरद् रोहितोधिपतिर्दिवः ।
दिवं समुद्रमाद् भूमिं सर्वं भूतं वि रक्षति ॥४१॥

सर्वाः । दिशः । सम् । अचरत् । रोहितः । अधिऽपतिः । दिवः ।
दिवम् । समुद्रम् । आत् । भूमिम् । सर्वम् । भूतम् । वि । रक्षति

स्वर्गके अधिपति रोहितदेव सब दिशाओंमें विचरण करते हैं, द्यौसे समुद्रमें विचरण करते हैं, यह सब प्राणियोंकी और भूमिकी रक्षा करते हैं ॥ ४१ ॥

आरोहन्छुक्रो बृहतीरतन्द्रो द्वे रूपे कृणुते रोचमानः।
चित्रश्चिकित्वान् महिषो वातमाया यावतो लोकानभि
यद् विभाति ॥ ४२ ॥

आऽरोहन् । शुक्रः । बृहती । अतन्द्रः । द्वे इति । रूपे इति । कृणुते ।
रोचमानः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चित्रः । चिकित्वान् । महिषः । वातम्ऽआयाः । यावतः । लोकान् ।

अभि । यत् । विऽभाति ॥ ४२ ॥

ये तन्द्रारहित निर्मल सूर्य देव अपने अश्वों पर अपने दो रूपों को करते हैं, यह रोचमान हैं, पूजनीय हैं, महिमामय हैं, गमनको प्राप्त होते हैं और जितने लोक हैं उन सबको प्रकाशित करते हैं ४२

अभ्य१न्यदेति पर्यन्यदस्यतेहोरात्राभ्यां महिषः कल्पमानः ।

सूर्यं वयं रजसि क्षियन्तं गातुविदं हवामहे नाधमानाः

अभि । अन्यत् । एति । परि । अन्यत् अस्यते । अहोरात्राभ्याम् ।

महिषः । कल्पमानः ।

सूर्यम् । वयम् । रजसि । क्षियन्तम् । गातुऽविदम् । हवामहे ।

नाधमानाः ॥ ४३ ॥

दिन और रात्रियोंसे पूजनीयरूपमें कल्पित इन सूर्यदेवका एक रूप सामने आता है और दूसरा चलता रहता है । हम प्रार्थना करके स्वर्गमार्गके लंभक अन्तरिक्षलोकमें निवास करने वाले सूर्यदेवका आह्वान करते हैं ॥ ४३ ॥

पृथिवीप्रो महिषो नाधमानस्य गातुरदब्धचक्षुः परि विश्वं बभूव ।

विश्वं संपश्यन्त्सुविदत्रो यजत्र इदं शृणोतु यदहं ब्रवीमि ॥ ४४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृथिवीऽमः । महिषः । नाधमानस्य । गातुः । अदब्धऽचक्षुः ।

परि । विश्वम् । बभूव ।

विश्वम् । सम्ऽपश्यन् । सुऽविदत्रः । यजत्रः । इदम् । शृणोतु ।

यत् । अहम् । ब्रवीमि ॥ ४४ ॥

पृथिवीका पालन करने वाले, महिमामय, प्रार्थना करने वालेके लंभक, अहीनदृष्टि सूर्यदेव विश्वके चारों ओर व्याप्त रहते हैं, वह विश्वको देखते रहते हैं, कल्याणमयी विद्या वाले और पूजनीय सूर्यदेव, मैं जो कुछ कहता हूँ उसको सुनें ॥ ४४ ॥

पर्यस्य महिमा पृथिवीं समुद्रं ज्योतिषा विभ्राजन्

परि द्यामन्तरिक्षम् ।

सर्वं संपश्यन्त्सुविदत्रो यजत्र इदं शृणोतु यदहं ब्रवीमि

परि । अस्य । महिमा । पृथिवीम् । समुद्रम् । ज्योतिषा । विऽ-

भ्राजन् । परि । द्याम् । अन्तरिक्षम् ।

सर्वम् । सम्ऽपश्यन् । सुऽविदत्रः । यजत्रः । इदम् । शृणोतु । यत् ।

अहम् । ब्रवीमि ॥ ४५ ॥

इनकी महिमा सर्वत्र फैली हुई है यह अपनी ज्योतिसे पृथिवी समुद्र द्यौ और अन्तरिक्ष सबमें व्याप्त हैं, सब (के कर्मों) को देखते हैं, शोभन विद्यासे सम्पन्न हैं, यष्टव्य (पूजनीय) हैं ऐसे सूर्यदेव जो कुछ मैं कहता हूँ उसको सुनें ॥ ४५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥ ४६ ॥

अबोधि । अग्निः । सम्ऽइधा । जनानाम् । प्रति । धेनुम्ऽइव ।
आऽयतीम् । उषसम् ।
यह्वाःऽइव । प्र । वयाम् । उत्ऽजिहानाः । प्र । भानवः । सिस्रते ।
नाकम् । अच्छ ॥ ४६ ॥

द्वितीयेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

इति द्वितीयोनुवाकः ॥

धेनुकी समान आती हुई उषाके समय यह (सूर्यात्मक) अग्नि मनुष्योंकी समिधासे जाने गए हैं अर्थात् उषाके द्वारा सूर्यागमन को जानकर मनुष्य अग्निहोत्र करनेका उद्योग करते हैं तब साधारण प्राणी इनके उदय होनेको जानते हैं इनकी ऊपरको जाती हुई किरणें शीघ्रतासे स्वर्गकी ओर जाती हैं मैं भी उन सूर्यदेव की शरणमें जाता हूँ ॥ ४६ ॥ (११)

द्वितीय अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (५०३) ॥

द्वितीय अनुवाक समाप्त

रोहितदेवताकम् एतत् सूक्तम् । रोहितः कश्चिद् देव उद्यत्सूर्यरूपः सूर्यस्य रोहितनामको यः प्रधानोश्वस्तद्रूपेण वा कल्पितः । तस्य परमार्थं रूपं त्रयोदशचतुर्दशपञ्चदशषोडशसप्तदशाष्टादशैकोनविंशेषु मन्त्रेषु द्रष्टव्यम् ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सांप्रदायिकास्तु एवं विनियुञ्जन्ति। तद्यथा।

आभिचारिके कर्मणि "य इमे द्यावापृथिवी" इत्यनुवाकेन पाशान् पदे वृश्चति विधानेन ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेनानुवाकेन रक्तशालिक्षीरौदनं संपातमभिमन्त्र्य द्वेष्याय ददाति ॥

तस्मिन्नेव कर्मणि अनेनानुवाकेन आमपात्रस्योपरि द्वेष्याय हस्तप्रक्षालनं ददाति ॥

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि अनेनानुवाकेन वृषभं संपातवन्तं कृत्वा शत्रोरभिमुखं विसृजति ॥

तथा उक्त एव कर्मणि अनेनानुवाकेन शत्रुप्रतिकृतिं मृन्मयीं कृत्वा पश्चाद् अग्नेः स्थाणौ बद्ध्वा तस्या मूर्ध्नि संपातान् आनयति ॥ "यस्मिन् षडुर्वीः पञ्च" [६] इत्यृचा उदवज्रान् प्रहरति उक्तेन विधानेन ॥ "यो अन्नादो अन्नपतिः" [७] इत्यृचा उदकम् अभिमन्त्र्य द्वेष्यं मनसा चाध्यायन्नाचामति ॥

तद् उक्तं कौशिकेन। "समिद्धो अग्निः [१३. १. २८–३२] य इमे द्यावापृथिवी [१३. ३] अजैष्म [१६. ६] इत्यधिपाशान् आदधाति। पदेपदे पाशान् वृश्चति। अधिपाशान् बाधकां छङ्कूस्तान् संक्षुद्य संनह्य भ्रष्ट्रेभ्यस्यति। अशिशिषोः क्षीरौदनादीनि त्रीणि। गर्तेध्मावन्तरेणावलेखनीं स्थाणौ निबध्य द्वादशरात्रं संपातान् अभ्यतिनयति। षष्ठ्योदवज्रान् प्रहरति सप्तम्याचामति" इति [कौ० ६. ३] ॥

यह सूक्त रोहित देवता वाला है। रोहित एक देव हैं जो उदय होते हुए सूर्यात्मक हैं वा सूर्य के प्रधान अश्व भी रोहितदेव होसकते हैं। इनका वास्तविकरूप तेरहवें, चौदहवें, पन्द्रहवें, सोलहवें, सत्रहवें, अठारहवें और उन्नीसवें मन्त्रमें देखना चाहिये।

साम्प्रदायिक पुरुष इसका विनियोग इस प्रकार करते हैं, कि–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आभिचारिक कर्ममें "य इमे द्यावापृथिवी" अनुवाकसे विधानके अनुसार शत्रुके पैरोंको काटे।

तथा तहाँ ही कर्ममें इस अनुवाकसे लाल सट्टीके चावलोंके दुग्ध-भातको सम्पातित और अभिमंत्रित करके शत्रुओंको देय।

इसी कर्ममें इस अनुवाकसे कच्चे पात्रके ऊपर शत्रुके हाथ धुलवावें।

तथा तहाँ ही कर्ममें इस अनुवाकसे वृषभको सम्पातित करके शत्रुकी ओर छोड़े।

तथा तहाँ ही कर्ममें इस अनुवाकसे शत्रुकी मट्टीकी मूर्तिको बना कर फिर अग्निके स्थाणुमें बाँध कर उसके मस्तकमें सम्पातों को लावे। "यस्मिन् षडुर्वीः पञ्च" इस छठी ऋचासे जलवज्रोंका प्रहार करे। और सातवीं ऋचासे जलको अभिमन्त्रित करके मन में शत्रुका ध्यान करता हुआ आचमन करे।

इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण है, कि—"समिद्धो अग्निः [१३. १. २८-३२] य इमे द्यावापृथिवी [१३. ३] अजैष्म [१६. ६] इत्यधिपाशान् आदधाति। पदेपदे पाशान् वृश्चति। अधिपाशान् बाधकांछङ्कूंस्तान् संक्षुद्य संनह्य भ्रष्ट्रेभ्यस्यति। अशिशिषोः क्षीरौदनादीनि त्रीणि। गर्तेध्मावन्तरेणावलेखनीं स्थाणौ निबध्य द्वादशरात्रं संपातान् अभ्यतिनयति। षष्ठ्योद-वज्राम् प्रहरति। सप्तम्याचामति" इति [कौ० ६. ३]॥

य इमे द्यावापृथिवी जजान यो द्रापिं कृत्वा भुवनानि वस्ते।
यस्मिन् क्षियन्ति प्रदिशः षडुर्वीर्याः पतङ्गो अनु विचाकशीति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तस्य देवस्य । क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।

उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ १ ॥

यः । इमे इति । द्यावापृथिवी इति । जजान । यः । द्रापिम् । कृत्वा । भुवनानि । वस्ते ।

यस्मिन् । क्षियन्ति । प्रऽदिशः । षट् । उर्वीः । याः । पतङ्गः । अनु । विऽचाकशीति ।

तस्य । देवस्य ॥ क्रुद्धस्य । एतत् । आगः । यः । एवम् । विद्वांसम् । ब्राह्मणम् । जिनाति ।

उत् । वेपय । रोहित । प्र । क्षिणीहि । ब्रह्मऽज्यस्य । प्रति । मुञ्च । पाशान् ॥ १ ॥

जिन्होंने इस द्यावापृथिवीको प्रादुर्भूत किया है जो द्रापि करके भुवनोंको आच्छादन करते हैं, जिनमें छः उर्वियें और दिशाएँ निवास करती हैं कि जिन दिशाओंको सूर्य प्रकाशित करते हैं ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है । हे रोहितदेव ! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ १ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यस्माद् वाता ऋतुथा पवन्ते यस्मात् समुद्रा अधि विक्षरन्ति
तस्य देवस्य०।०।० ॥ २ ॥

यस्मात्। वाताः। ऋतुऽथा। पवन्ते। यस्मात्। समुद्राः। अधि। विऽक्षरन्ति।
तस्य ।० ॥ २ ॥

जिस देवसे ऋतुके अनुसार वायु चलते हैं और जिसके प्रभाव से समुद्र बहते हैं ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है। हे रोहितदेव! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ २ ॥

यो मारयति प्राणयति यस्मात् प्राणन्ति भुवनानि विश्वा
तस्य०।०।० ॥ ३ ॥

यः। मारयति। प्राणयति। यस्मात्। प्राणन्ति। भुवनानि। विश्वा।
तस्य ।० ॥ ३ ॥

जो प्राणन कराते हैं अर्थात् मनुष्योंको जीवित रखते हैं और मनुष्योंको मारते हैं और जिनके प्रभाववश सब प्राणी श्वास प्रश्वास लेते हैं ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है। हे रोहितदेव! आप ऐसे ब्रह्मज्य को कँपाइये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ ३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यः प्राणेन द्यावापृथिवी तर्पयत्यपानेन समुद्रस्य जठरं यः पिपर्ति

तस्य०।०।० ॥ ४ ॥

यः । प्राणेन । द्यावापृथिवी इति । तर्पयति । अपानेन । समुद्रस्य । जठरम् । यः । पिपर्ति ।

तस्य ।०॥ ४ ॥

जो प्राणके द्वारा द्यावापृथिवीको तृप्त करता है, अपानके द्वारा समुद्रके जठरका पालन करता है। ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है। हे रोहितदेव! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ ४ ॥

यस्मिन् विराट् परमेष्ठी प्रजापतिरग्निर्वैश्वानरः सह पङ्क्त्या श्रितः ।

यः परस्य प्राणं परमस्य तेज आददे

तस्य०।०।० ॥ ५ ॥

यस्मिन् । विऽराट् । परमेऽस्थी । प्रजाऽपतिः । अग्निः । वैश्वानरः । सह । पङ्क्त्या । श्रितः ।

यः । परस्य । प्राणम् । परमस्य । तेजः । आऽददे ।

तस्य ।० ॥ ५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिसमें विराट परमेष्ठी प्रजा अग्नि और वैश्वानर पंक्तिके साथ स्थित हैं जिसने उत्कृष्टके प्राणको और परमके तेजको ग्रहण कर लिया है। ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है। हे रोहितदेव! आप ऐसे ब्रह्मज्य को कँपाइये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ ५ ॥

यस्मिन् षडुर्वीः पञ्च दिशो अधि श्रिताश्चतस्र आपो यज्ञस्य त्रयोऽक्षराः ।
यो अन्तरा रोदसी क्रुद्धश्चक्षुषैक्षत ।
तस्य ०।०।० ॥ ६ ॥

यस्मिन् । षट् । उर्वीः । पञ्च । दिशः । अधि । श्रिताः । चतस्रः । आपः । यज्ञस्य । त्रयः । अक्षराः ।
यः । अन्तरा । रोदसी इति । क्रुद्धः । चक्षुषा । ऐक्षत ।
तस्य ।० ॥ ६ ॥

जिसमें छः उर्वियें, पाँच दिशायें, चार जल, यज्ञके तीन अक्षर अधिश्रित हैं। जो क्रोधमें भर कर द्यावापृथिवीके मध्यमें नेत्रसे देखता है ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है। हे रोहितदेव! आप ऐसे ब्रह्मज्य को कँपाइये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ ६ ॥

यो अन्नादो अन्नपतिर्बभूव ब्रह्मणस्पतिरुत यः ।
भूतो भविष्यद् भुवनस्य यस्पतिस्-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तस्य ०।०।०॥ ७॥

यः। अन्नऽअदः। अन्नऽपतिः। बभूव। ब्रह्मणः। पति। उत। यः।

भूतः। भविष्यत्। भुवनस्य। यः। पतिः।

तस्य ।०॥ ७॥

जो अन्नके पालक और अन्नके भक्षक होते हैं जो ब्रह्मण-स्पति हैं जो भूत और भविष्यके भुवनके स्वामी हैं। ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है। हे रोहितदेव! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये॥ ७॥

अहोरात्रैर्विमितं त्रिंशदङ्गं त्रयोदशं मासं यो निर्मिमीते

तस्य ०।०।० ॥ ८॥

अहोरात्रैः। विऽमितम्। त्रिंशत्ऽअङ्गम्। त्रयःऽदशम्। मासम्।

यः। निःऽमिमीते।

तस्य ।० ॥ ८॥

जिन्होंने दिन रातोंसे तीस अंगोंका समूह (मास) बनाया है जो तेरहवें (लौंद-अधिक) मासका निर्माण करते हैं। ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है। हे रोहितदेव! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये॥ ८॥

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त आववृत्रन्त्सदनादृतस्य
तस्य ०।०।० ॥ ९ ॥

कृष्णम् । निऽयानम् । हरयः । सुऽपर्णाः । अपः । वसानाः ।
दिवम् । उत् । पतन्ति ।
ते । आ । अववृत्रन् । सदनात् । ऋतस्य ।
तस्य ।० ॥ ९ ॥

सूर्यदेवकी शोभन पतन वाली रसका हरण करने वालीं किरणें जलसे अपनेको ढ़कती हुईं अर्थात् जलको सोखती हुईं द्यौमें जाती हैं फिर दक्षिणायनमें वे जलके साथ रहनेके स्थानमें लौटती हैं। ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है। हे रोहितदेव! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ ९ ॥

यत् ते चन्द्रं कश्यप रोचनावद् यत् संहितं पुष्कलं चित्रभानु ।
यस्मिन्त्सूर्या आर्पिताः सप्त साकं
तस्य ०।०।० ॥ १० ॥

यत् । ते । चन्द्रम् । कश्यप । रोचनऽवत् । यत् । सम्ऽहितम् ।
पुष्कलम् । चित्रऽभानु ।
यस्मिन् । सूर्याः । आर्पिताः । सप्त । साकम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तस्य ।० ॥ १० ॥

हे कश्यप ! आपका जो रोचनासम्पन्न आल्हादक संहित पुष्कल चित्रभानु है और जिसमें सात सूर्य साथ अर्पित हैं । ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मण को मारता है । हे रोहितदेव ! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये, उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ १० ॥ (१२)

बृहदेनमनु वस्ते पुरस्ताद् रथंतरं प्रति गृह्णाति पश्चात् ।
ज्योतिर्वसाने सदमप्रमादं
तस्य ०।०।० ॥ ११ ॥

बृहत् । एनम् । अनु । वस्ते । पुरस्तात् । रथम्ऽतरम् । प्रति ।
गृह्णाति । पश्चात् ।
ज्योतिः । वसाने इति । सदम् । अप्रऽमादम् ।
तस्य ।० ॥ ११ ॥

बृहद् अनुकूल रहकर इसको आच्छादन करता है और रथन्तर इसको पीछेसे ग्रहण करता है ये दोनों प्रमाद रहित होकर सदा ज्योतियोंसे आच्छादित रहते हैं। ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है । हे रोहित-देव ! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ ११ ॥

बृहदन्यतः पक्ष आसीद् रथंतरमन्यतः सबले सध्रीची ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यद् रोहितमजनयन्त देवास्-
तस्य ०।०।० ॥ १२ ॥

बृहत् । अन्यतः । पक्षः । आसीत् । रथम्ऽतरम् । अन्यतः । सबले
इति सऽबले । सध्रीची इति ।

यत् । रोहितम् । अजनयन्त । देवाः ।

तस्य ।० ॥ १२ ॥

जब देवताओंने रोहितको प्रादुर्भूत किया तो बृहत् एक ओर से पक्ष हुआ दूसरी ओरसे रथन्तर हुआ ये दोनों बली और सध्रीची हैं । ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है । हे रोहितदेव ! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशों को डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ १२ ॥

स वरुणः सायमग्निर्भवति स मित्रो भवति प्रातरुद्यन् ।
स सविता भूत्वान्तरिक्षेण याति स इन्द्रो भूत्वा
तपति मध्यतो दिवं
तस्य०।०।० ॥ १३ ॥

सः । वरुणः । सायम् । अग्निः । भवति । सः । मित्रः । भवति ।
प्रातः । उत्ऽयन् ।

सः । सविता । भूत्वा । अन्तरिक्षेण । याति । यः । इन्द्रः ।
भूत्वा । तपति । मध्यतः । दिवम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तस्य ।० ॥ १३ ॥

वह (पापनिवारक) वरुण सायंकालके समय अग्नि होता है और वह प्रातःकालके समय उदय होता हुआ मित्र (सूर्य) होता है, वह सविता बनकर अन्तरिक्षके मध्यमेंको जाता है और वह इन्द्र होकर स्वर्गके मध्यमें तपता है। ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है। हे रोहितदेव ! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ १३ ॥

सहस्राक्ष्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा
तस्य०।०।० ॥ १४ ॥

सहस्रऽअक्ष्यम् । विऽयतौ । अस्य । पक्षौ । हरेः । हंसस्य ।
पततः । स्वःऽगम् ।
सः । देवान् । सर्वान् । उरसि । उपऽदद्य । सम्ऽपश्यन् । याति ।
भुवनानि । विश्वा ।
तस्य ।० ॥ १४ ॥

इस स्वर्गको जाते हुए गमनशील पापनाशक सूर्यके दोनों (उत्तरायण दक्षिणायनरूप) पक्ष सहस्रों दिन तक भी नियमित ही रहते हैं, यह सब देवताओंको अपनेमें लीन करके सब प्राणियों को देखते हुए गमन किया करते हैं। ऐसे क्रोधमें भरे हुए देव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है। हे रोहितदेव! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ १४ ॥

अयं स देवो अप्स्व१न्तः सहस्रमूलः पुरुशाको अत्रिः।
य इदं विश्वं भुवनं जजान
तस्य०।०।० ॥ १५ ॥

अयम्। सः। देवः। अप्ऽसु। अन्तः। सहस्रऽमूलः। पुरुऽशाकः।
अत्रिः।
यः। इदम्। विश्वम्। भुवनम्। जनान।
तस्य।० ॥ १५ ॥

जिन्होंने इस सकल भुवनको प्रकट किया है, वह यह देव जल के भीतर रहते हैं, यह सहस्रोंकी मूल हैं, पुरुशाक हैं और आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक इन तीनों दुःखोंसे से शून्य अत्रि हैं। ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है। हे रोहितदेव! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये इसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ १५ ॥

शुक्रं वहन्ति हरयो रघुष्यदो देवं दिवि वर्चसा भ्राजमानम्।
यस्योर्ध्वा दिवं तन्व१स्तपन्त्यर्वाङ् सुवर्णैः पटरैर्वि भाति
तस्य०।०।० ॥ १६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुक्रम् । वहन्ति । हरयः । रघुऽस्यदः । देवम् । दिवि । वर्चसा ।
भ्राजमानम् ।
यस्य । ऊर्ध्वाः । दिवम् । तन्वः । तपन्ति । अर्वाङ् । सुऽवर्णैः ।
पटरैः । वि । भाति ।
तस्य ।० ॥ १६ ॥

स्वर्गमेंअपने दमकते हुए तेजसे दमकते हुए सूर्यदेवको शीघ्रगामी रसहरणशील किरणें निर्मल रसको पहुँचाती हैं, जिन सूर्यदेवके ऊपरके शरीररूप किरणें स्वर्गको तपाते हैं और जो गमनशील सुन्दर वर्णकी किरणोंसे नीचेको जाकर प्रकाश फैलाते हैं। ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है। हे रोहितदेव ! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ १६ ॥

येनादित्यान् हरितः संवहन्ति येन यज्ञेन बहवो यन्ति
प्रजानन्तः ।
यदेकं ज्योतिर्बहुधा विभाति
तस्य ०।०।० ॥ १७ ॥

येन । आदित्यान् । हरितः । सम्ऽवहन्ति । येन । यज्ञेन । बहवः ।
यन्ति । प्रऽजानन्तः ।
यत् । एकम् । ज्योतिः । बहुऽधा । विऽभाति ।
तस्य ।० ॥ १७ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिस देवताके प्रभावश सूर्यदेवके घोड़े सूर्यदेवको सवारी देते हैं और जिनकी महिमासे विद्वान् पुरुष यज्ञको प्राप्त होते हैं और जो एक ज्योति होने पर भी अनेक प्रकारसे प्रकाशित होता है। ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है। हे रोहितदेव ! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ १७ ॥

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुस्तस्य०।०।० ॥ १८ ॥

सप्त । युञ्जन्ति । रथम् । एकऽचक्रम् । एकः । अश्वः । वहति ।
सप्तऽनामा ।
त्रिऽनाभि । चक्रम् । अजरम् । अनर्वम् । यत्र । इमा । विश्वा ।
भुवना । अधि । तस्थुः ।
तस्य ।० ॥ १८ ॥

सर्पणशील किरणें इन अन्य ज्योतियोंको निस्तेज करके अकेले ही अन्तरिक्षमें विचरण करने वाले एकचक्र सूर्यरूप रथमें लग जाती हैं और यह मुख्य व्यापक सूर्य सप्त ऋषियोंसे नमन पाते हुए विचरण किया करते हैं और यह सूर्य ग्रीष्म वर्षा हेमन्त नामक तीन ऋतुओंके चक्र वाले अजर अनाश्रित कालका करते रहते हैं, इसी कालमें सब भुवन ठहरे हुए हैं। ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मारता है। हे रोहितदेव ! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ १८ ॥

अष्टधा युक्तो वहति वह्निरुग्रः पिता देवानां जनिता मतीनाम् ।
ऋतस्य तन्तुं मनसा मिमानः सर्वा दिशः पवते मातरिश्वा
तस्य ०।०।० ॥ १९ ॥

अष्टऽधा । युक्तः । वहति । वह्निः । उग्रः । पिता । देवानाम् । जनिता । मतीनाम् ।
ऋतस्य । तन्तुम् । मनसा । मिमानः । सर्वाः । दिशः । पवते । मातरिश्वा ।
तस्य ।० ॥ १९ ॥

युक्त वन्हि आठ प्रकारसे वहते हैं यह उग्र हैं, देवताओंके पालक और बुद्धियोंके प्रकट करने वाले हैं और पवनदेव जलके तन्तुका मनसे मान करते हुए सब दिशाओंको पवित्र करते हैं। ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है। हे रोहितदेव ! आप ऐसे ब्रह्मज्य को कँपाइये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ १९ ॥

सम्यञ्चं तन्तुं प्रदिशोनु सर्वा अन्तर्गायत्र्यामृतस्य गर्भे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तस्य०।०।० ॥ २० ॥

सम्यञ्चम् । तन्तुम् । प्रऽदिशः । अनु । सर्वाः । अन्तः । गायत्र्याम् । अमृतस्य । गर्भे ।

तस्य ।० ॥ २० ॥

गायत्रीके भीतर, अमृतके गर्भमें और सब दिशाओंमें सम्पूजित जलतन्तुको (करते हुए वायुदेव पवित्र करते हैं) ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है। हे रोहितदेव ! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ २० ॥ (१३)

निम्रुचस्तिस्रो व्युषो ह तिस्रस्त्रीणि रजांसि दिवो अङ्ग तिस्रः ।

विद्मा ते अग्ने त्रेधा जनित्रं त्रेधा देवानां जनिमानि विद्म

तस्य०।०।० ॥ २१ ॥

निऽम्रुचः । तिस्रः । विऽउषः । ह । तिस्रः । त्रीणि । रजांसि । दिवः । अङ्ग । तिस्रः ।

विद्म । ते । अग्ने । त्रेधा । जनित्रम् । त्रेधा । देवानाम् । जनिमानि । विद्मः ।

तस्य ।० ॥ २१ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे अग्ने ! हम तेरे तीन प्रकारके प्रादुर्भावोंको जानते हैं तेरी विशेषरूपसे भस्म करने वाली तीन गतियें हैं (उनको हम जानते हैं) और तीनों लोकोंको तथा स्वर्गके तीनों भेदोंको भी हम जानते हैं, ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है । हे रोहितदेव ! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशों को डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ २१ ॥

वि य और्णोत् पृथिवीं जायमान आ समुद्रमदधाद-
न्तरिक्षे
तस्य०।०।० ॥ २२ ॥

वि । यः । और्णोत् । पृथिवीम् । जायमानः । आ । समुद्रम् ।
अदधात् । अन्तरिक्षे ।
तस्य ।० ॥ २२ ॥

जो प्रादुर्भूत होकर पृथिवीको आच्छादित कर लेता है और जलको अन्तरिक्ष तकमें स्थापित कर देता है । ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है । हे रोहितदेव ! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशों से बाँध लीजिये ॥ २२ ॥

त्वमग्ने क्रतुभिः केतुभिर्हितो३र्कः समिद्ध उदरोचथा
दिवि ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किमभ्यार्चन्मरुतः पृश्निमातरो यद् रोहितमजनयन्त देवास्-
तस्य ०।०।० ॥ २३ ॥

त्वम् । अग्ने । क्रतुऽभिः । केतुऽभिः । हितः । अर्कः । सम्ऽइद्धः । उत् । अरोचथाः । दिवि ।
किम् । अभि । आर्चन् । मरुतः । पृश्निऽमातरः । यत् । रोहितम् । अजनयन्त । देवाः ।
तस्य ।० ॥ २३ ॥

हे अग्ने ! आप ज्ञानमय यज्ञोंसे स्थापित किये जाते हैं और भली प्रकार दीप्त होकर स्वर्गमें अर्चनसाधनरूपमें दीप्त होते हैं क्या पृश्निमातृक मरुतोंने आपका अर्चन किया था जो देवताओंने रोहित का साक्षात्कार किया है ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है। हे रोहित-देव ! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये, उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रतिपाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
योऽस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदस्-
तस्य ०।०।० ॥ २४ ॥

यः । आत्मऽदाः । बलऽदाः । यस्य । विश्वे । उपऽआसते । प्रऽशिषम् । यस्य । देवाः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यः । अस्य । ईशे । द्विऽपदः । यः । चतुःऽपदः ।

तस्य ।० ॥ २४ ॥

जो आत्मबल देने वाले हैं, बलप्रदान करने वाले हैं, सब देवता जिनके प्रशासनकी उपासना करते हैं, और जो इन दो पैर वाले मनुष्य आदिके और चार पैर वाले गौ घोड़े आदिके ईश्वर हैं। ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है। हे रोहितदेव ! आप ऐसे ब्रह्मज्य को कँपाइये, उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ २४ ॥

एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति पश्चात् ।
चतुष्पाच्चक्रे द्विपदामभिस्वरे संपश्यन् पङ्क्तिमुपतिष्ठमानम्-
तस्य देवस्य । क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ २५ ॥

एकऽपात् । द्विऽपदः । भूयः । वि । चक्रमे । द्विऽपात् । त्रिऽपादम् । अभि । एति । पश्चात् ।
चतुःपात् । चक्रे । द्विऽपदाम् । अभिऽस्वरे । सम्ऽपश्यन् । पङ्क्तिम् । उपऽतिष्ठमानः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तस्य । देवस्य ॥ क्रुद्धस्य । एतत् । आगः । यः । एवम् ।

विद्वांसम् । ब्राह्मणम् । जिनाति ।

उत् । वेपय । रोहित । प्र । क्षिणीहि । ब्रह्मऽज्यस्य । प्रति । मुञ्च ।

पाशान् ॥ २५ ॥

एकपाद् द्विपदोंमें विक्रमण करता है, फिर द्विपाद् त्रिपदोंको प्राप्त होता है, द्विपाद् फिर षट्पदोंमें विक्रमण करता है वे एक-पदके तत्त्व (ब्रह्मपद) की उपासना करते हैं, ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है । हे रोहितदेव! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये, उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ २५ ॥

कृष्णायाः पुत्रो अर्जुनो रात्र्या वत्सोऽजायत ।

स ह द्यामधि रोहति रुहो रुरोह रोहितः ॥ २६ ॥

कृष्णायाः । पुत्रः । अर्जुनः । रात्र्याः । वत्सः । अजायत ।

सः । ह । द्याम् । अधि । रोहति । रुहः । रुरोह । रोहितः २६

तृतीयेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

इति तृतीयोनुवाकः ॥

कृष्णा रात्रिका पुत्र अर्जुन वत्स (सूर्य) हुआ वह द्यौमें आरोहण करता है वह रोहित रोहणशील पदार्थों पर आरोहण करता है ॥ २६ ॥ (१४)

तृतीय अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (५०४)

तृतीय अनुवाक समाप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एतदपि रोहितदेवताकम् । विनियोगस्तु "स एति" इत्यनुवाकं जपति स्वर्गकाम इति विनियोगमालायाम् ॥

यह रोहित देवताका सूक्त है । विनियोगमालामें कहा है कि-स्वर्गकी इच्छा वाला पुरुष इसका जप करे ।

स एति सविता स्वर्दिवस्पृष्ठेवचाकशत् ।

सः । एति । सविता । स्वः । दिवः । पृष्ठे । अवऽचाकशत् ॥१॥

यह सूर्यदेव द्युपृष्ठमें दमकते हुए आरहे हैं ॥ १ ॥

रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ २ ॥

रश्मिऽभिः । नभः । आऽभृतम् । महाऽइन्द्रः । एति । आऽवृतः

इन्होंने अपनी किरणोंसे आकाशको आच्छादित कर लिया है, यह परमेश्वरसम्पन्न किरणोंसे सम्पन्न हुए आरहे हैं ॥२॥

स धाता स विधर्ता स वायुर्नभ उच्छ्रितम् । ॥३॥

सः । धाता । सः । विऽधर्ता । सः । वायुः । नभः । उत्ऽश्रितम् ।

वह धाता हैं विधर्ता हैं वह वायु हैं और वह उच्छ्रित आकाश हैं॥

सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः । ॥ ४ ॥

सः । अर्यमा । सः । वरुणः । सः । रुद्रः । सः । महाऽदेवः ।

वह अर्यमा हैं, रुद्र हैं, महादेव हैं और वरुण हैं ॥ ४ ॥

सो अग्निः स उ सूर्य स उ एव महायमः । ॥५॥

सः । अग्निः । सः । ऊं इति । सूर्यः । सः । ऊं इति । एव । महाऽयमः ॥ ५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वही अग्नि सूर्य हैं और वही महायम हैं ॥ ५ ॥

तं वत्सा उप तिष्ठन्त्येकशीर्षाणो युता दश । ।६।

तम् । वत्साः । उप । तिष्ठन्ति । एकऽशीर्षाणः । युताः । दश ।६

उनकी ही एक शिर वाले दश युक्त वत्स उपासना करते हैं६

पश्चात् प्राञ्च आ तन्वन्ति यदुदेति वि भासति । ७

पश्चात् । प्राञ्चः । आ । तन्वन्ति । यत् । उत्ऽएति । वि । भासति ।

उनको पीछेसे पूजनीय किरणें घेर लेती हैं, वह उदय होते हैं तो दमकते हैं ॥ ७ ॥

तस्यैष मारुतो गणः स एति शिक्याकृतः ॥ ८ ॥

तस्य । एषः । मारुतः । गणः । सः । एति । शिक्याऽकृतः ॥८॥

उनका ही यह छींकेका आकार मारुतगण आरहा है ॥८॥

रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ ९ ॥

रश्मिऽभिः । नभः । आऽभृतम् । महाऽइन्द्रः । एति । आऽवृतः ९

इन सूर्यदेवने अपनी किरणोंसे आकाशको आच्छादित कर लिया है यह महेन्द्रसे किरणोंसे घिरे हुए आरहे हैं ॥ ९ ॥

तस्येमे नव कोशा विष्टम्भा नवधा हिताः ॥ १० ॥

तस्य । इमे । नव । कोशाः । विष्टम्भाः । नवऽधा । हिताः १०

उनके यह विष्टंभ नौ कोश नौ प्रकारसे स्थित हैं ॥ १० ॥

स प्रजाभ्यो वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ॥११॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सः । प्रऽजाभ्यः । वि । पश्यति । यत् । च । प्राणति । यत् । च । न ॥ ११ ॥

वह जंगम और स्थावर सब प्रजाओंको देखते हैं—सबके साक्षी हैं ॥ ११ ॥

तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ॥१२॥

तम् । इदम् । निऽगतम् । सहः । सः । एषः । एकः । एकऽवृत् । एकः । एव ॥ १२ ॥

यह सब उसको ही प्राप्त होता है, वह असाधारण एकवृत् एक ही है ॥ १२ ॥

एते अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति ॥ १३ ॥

एते । अस्मिन् । देवाः । एकऽवृतः । भवन्ति ॥ १३ ॥

इति चतुर्थेनुवाके प्रथमं पर्यायसूक्तम् ॥

ये सब देवता इनमें एकवृत् (इन एकका ही वरण करने वाले) होते हैं ॥ १३ ॥ (१५)

चतुर्थ अनुवाकमें प्रथम पर्यायसूक्त समाप्त (५०५)

कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं चान्नं चान्नाद्यं च ॥ १ ॥

कीर्तिः । च । यशः । च । अम्भः । च । नभः । च । ब्राह्मणऽवर्चसम् । च अन्नम् । च । अन्नऽअद्यम् । च ॥ १ ॥

(उसको) कीर्ति यश जल आकाश ब्रह्मतेज अन्न और अन्नको पचानेकी शक्ति (प्राप्त होती है) ॥ १ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ २ ॥

यः । एतम् । देवम् । एकऽवृतम् । वेद ॥ २ ॥

जो इन एकवृत् देवको जानता है ॥ २ ॥

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते ।० ॥ ३ ॥

न । द्वितीयः । तृतीयः । चतुर्थः । न । अपि । उच्यते ।० ॥ ३ ॥

जो इन एकवृत्देवको जानता है वह दूसरा तीसरा वा चौथा नहीं कहलाता है ॥ ३ ॥

न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते ।० ॥ ४ ॥

न । पञ्चमः । न । षष्ठः । सप्तमः । न ।० ॥ ४ ॥

जो इन एकवृत् देवको जानता है वह पाँचवाँ छठा वा सातवाँ नहीं कहलाता है ॥ ४ ॥

नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते ।० ॥ ५ ॥

न । अष्टमः । न । नवमः । दशमः । न । अपि । उच्यते ।० ५

जो इन एकवृत् देवको जानता है वह आठवाँ नवाँ वा दशम नहीं कहलाता है (किन्तु अप्रतिम रहता है) ॥ ५ ॥

स सर्वस्मै वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ।०

सः । सर्वस्मै । वि । पश्यति । यत् । च । प्राणति । यत् । च । न ।०

जो इन एकवृत् देवको जानता है वह जंगम और स्थावर सबको देखता है ॥ ६ ॥

तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ।० ७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तम् । इदम् । निऽगतम् । सहः । सः । एषः । एकः । एकऽवृत् ।

एकः । एव ।० ॥ ७ ॥

यह सब उसको ही प्राप्त होता है वह असाधारण एकवृत् एक ही है ॥ ७ ॥

सर्वे अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति ।० ॥ ८ ॥

सर्वे । अस्मिन् । देवाः । एकऽवृतः । भवन्ति ।० ॥ ८ ॥

इति चतुर्थेनुवाके द्वितीयं पर्यायसूक्तम् ।

इसमें सब देवता एकवृत् होते हैं ॥ ८ ॥ (१६)

चतुर्थ अनुवाकमें द्वितीय पर्यायसूक्त समाप्त (५०६)

ब्रह्म च तपश्च कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मण-
वर्चसं चान्नं चान्नाद्यं च ।० ॥ १ ॥

ब्रह्म । च । तपः । च । कीर्तिः । च । यशः । च । अम्भः ।

च । नभः । च । ब्राह्मणऽवर्चसम् । च । अन्नम् । च । अन्नऽअद्यम् । च ।०

भूतं च भव्यं च श्रद्धा च रुचिश्च स्वर्गश्च स्वधा च

भूतम् । च । भव्यम् । च । श्रद्धा । च । रुचिः । च । स्वःऽगः ।

च । स्वधा । च ॥ २ ॥

य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ ३ ॥

यः । एतम् । देवम् । एकऽवृतम् । वेद ॥ ३ ॥

ब्रह्म तप कीर्ति यश जल नभ ब्रह्मतेज अन्न और अन्नको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute; Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पचानेकी शक्ति, भूत भव्य श्रद्धा रुचि स्वर्ग स्वधा (ये उसको प्राप्त होते हैं) जो इन एकवृत् देवको जानता है ॥ १-३ ॥

स एव मृत्युः सोऽमृतं सोऽभ्वं स रक्षः ॥ ४ ॥

स । एव । मृत्युः । सः । अमृतम् । सः । अभ्वम् । सः । रक्षः ४

स रुद्रो वसुवनिर्वसुदेयो नमोवाके वषट्कारोनु संहितः

सः । रुद्रः । वसुऽवनिः । वसुऽदेये । नमःऽवाके । वषट्ऽकारः ।

अनु । सम्ऽहितः ॥ ५ ॥

तस्येमे सर्वे यातव उप प्रशिषमासते ॥ ६ ॥

तस्य । इमे । सर्वे । यातवः । उप । प्रऽशिषम् । आसते ॥ ६ ॥

वही मृत्यु है, अमृत है, अभ्व है और वही राक्षस है, वही रुद्र है, वसुदेवमें वसुवनि है नमोवाकमें अनुसंहित वषट्कार है, सब पीड़ाकारक उसकी ही आज्ञामें चलते हैं ॥ ४--६ ॥

तस्यामू सर्वा नक्षत्रा वशे चन्द्रमसा सह ॥ ७ ॥

तस्य । अमू । सर्वा । नक्षत्रा । वशे । चन्द्रमसा । सह ॥ ७ ॥

इति चतुर्थेनुवाके तृतीयं पर्यायसूक्तम् ॥

चन्द्रमा सहित ये सब नक्षत्र उसके ही वशमें रहते हैं ७ (१७)

चतुर्थ अनुवाकमें तृतीय पर्याय सूक्त समाप्त (५०७)

स वा अह्नोजायत तस्मादहरजायत ॥ १ ॥

सः । वै । अह्नः । अजायत । तस्मात् । अहः । अजायत ॥ १ ॥

वह दिनसे प्रादुर्भत हुए और दिन उनसे प्रादुर्भत हुआ है १

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स वै रात्र्या अजायत तस्माद् रात्रिरजायत ॥२॥

०वै । रात्र्याः । अजायत । तस्मात् । रात्रिः । अजायत ॥ २ ॥

वह रात्रिसे प्रादुर्भूत हुए और रात्रि उनसे प्रादुर्भूत हुई है २

स वा अन्तरिक्षादजायत तस्मादन्तरिक्षमजायत ३

०वै । अन्तरिक्षात् । अजायत । तस्मात् । अन्तरिक्षम् । अजायत

वह अन्तरिक्षसे प्रकट हुए और अन्तरिक्ष उनसे प्रकट हुआ है

स वै वायोरजायत तस्माद् वायुरजायत ॥ ४ ॥

०वै । वायोः । अजायत । तस्मात् । वायुः । अजायत ॥ ४ ॥

वह वायुसे प्रकट हुए और वायु उनसे प्रकट हुआ है ॥ ४ ॥

स वै दिवोऽजायत तस्माद् द्यौरध्यजायत ॥ ५ ॥

०वै । दिवः । अजायत । तस्माद् । द्यौः । अधि । अजायत ५

वह द्यौसे प्रादुर्भूत हुए और द्यौ उनसे प्रादुर्भूत हुआ है ॥५॥

स वै दिग्भ्योऽजायत तस्मात् दिशोऽजायन्त ॥ ६ ॥

०वै । दिक्ऽभ्यः । अजायत । तस्मात् । दिशः । अजायन्त ॥६॥

वह दिशाओंसे प्रकट हुए और दिशाएँ उनसे प्रादुर्भूत हुई हैं ६

स वै भूमेरजायत तस्माद् भूमिरजायत ॥ ७ ॥

०वै । भूमेः । अजायत । तस्मात् । भूमिः । अजायत ॥ ७ ॥

वह भूमिसे प्रकट हुए और भूमि उनसे प्रकट हुई है ॥ ७ ॥

स वा अग्नेरजायत तस्मादग्निरजायत ॥ ८ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

०वै । अग्नेः । अजायत । तस्मात् । अग्निः । अजायत ॥ ८ ॥

वह अग्निसे प्रकट हुए और अग्नि उनसे प्रकट हुई है ॥ ८ ॥

स वा अद्भ्योऽजायत तस्मादापोऽजायन्त ॥ ९ ॥

०वै । अत्ऽभ्यः । अजायत । तस्मात् । आपः । अजायन्त ९

वह जलोंसे प्रकट हुए हैं और जल उनसे प्रकट हुआ है॥ ९ ॥

स वा ऋग्भ्योऽजायत तस्मादृचोऽजायन्त ॥ १० ॥

०वै । ऋक्ऽभ्यः । अजायत । तस्मात् । ऋचः । अजायन्त १०

वह ऋचाओंसे प्रादुर्भूत होते हैं और ऋचाएँ उनसे प्रादुर्भूत होती हैं ॥ १० ॥

स वै यज्ञादजायत तस्माद् यज्ञोऽजायत ॥ ११ ॥

सः । वै । यज्ञात् । अजायत । तस्मात् । यज्ञः । अजायत ॥११॥

वह यज्ञसे प्रकट हुए हैं और यज्ञ उनसे प्रादुर्भूत होता है ११

स यज्ञस्तस्य यज्ञः स यज्ञस्य शिरस्कृतम् ॥ १२ ॥

सः । यज्ञः । तस्य । यज्ञः । सः । यज्ञस्य । शिरः । कृतम् १२

वह यज्ञ हैं, यज्ञ उनका है और वह यज्ञके शिरोरूप हैं ॥१२॥

स स्तनयति स वि द्योतते स उ अश्मानमस्यति

सः । स्तनयति । सः । वि । द्योतते । सः । ऊं इति । अश्मानम् । अस्यति ॥ १३ ॥

वही कड़कते हैं, वही दमकते हैं वही ओलोंको फेंकते हैं १३

पापाय वा भद्राय वा पुरुषायासुराय वा ॥ १४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पापाय । वा । भद्राय । वा । पुरुषाय । असुराय । वा ॥ १४ ॥

यद्वा कृणोष्योषधीर्यद्वा वर्षसि भद्रया यद्वा जन्यमवीवृधः

यत् । वा । कृणोषि । ओषधीः । यत् । वा । वर्षसि । भद्रया ।

यत् । वा । जन्यम् । अवीवृधः ॥ १५ ॥

आप पापीके लिये कल्याणकर्ता पुरुषके लिये साधारण पुरुष के लिये वा असुरके लिए जो औषधियोंको करते हैं, कल्याणकारक वृष्टि करके बरसते हैं वा उनकी उत्पत्तिको बढ़ाते हैं ॥१४॥१५॥

तावांस्ते मघवन् महिमोपो ते तन्वः शतम् ॥ १६ ॥

तावान् । ते । मघऽवन् । महिमा । उपो इति । ते । तन्वः । शतम्

हे मघवन् ! ऐसी आपकी महिमा है सैंकड़ों शरीर आपके पास ही हैं ॥ १६ ॥

उपो ते बध्वे बद्धानि यदि वासि न्यर्बुदम् ॥ १७ ॥

उपो इति । ते । बध्वे । बद्धानि । यदि । वा । असि । निऽअर्बुदम्

इति चतुर्थेनुवाके चतुर्थं पर्यायसूक्तम् ॥

आप अनन्त हैं अतः अपने समीपमें है सैंकड़ों बद्धोंको बाँध लेते हैं ॥ १७ ॥ (१८)

चतुर्थ अनुवाकमें चतुर्थ पर्याय सूक्त समाप्त (५०८) ॥

भूयानिन्द्रो नमुराद् भूयानिन्द्रासि मृत्युभ्यः ॥ १ ॥

भूयान् । इन्द्रः । नमुरात् । भूयान् । इन्द्र । असि । मृत्युऽभ्यः १

इन्द्र नमुरसे श्रेष्ठ हैं और हे इन्द्र ! आप मृत्युके कारणोंसे भी श्रेष्ठ हैं ॥ १ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूयानरात्याः शच्याः पतिस्त्वमिन्द्रासि विभूः प्रभूरिति त्वोपास्महे वयम् ॥ २ ॥

भूयान् । अरात्याः । शच्याः । पतिः । त्वम् । इन्द्र । असि । विऽभूः । प्रऽभूः । इति । त्वा । उप । आस्महे । वयम् ॥ २ ॥

शचीपति दानप्रतिबंधिका शक्तिसे बढ़कर हैं, हे इन्द्र ! आप विभु और प्रभु हैं, इस प्रकार हम आपकी उपासना करते हैं॥२॥

नमस्ते अस्तु पश्यत पश्यं मा पश्यत ॥ ३ ॥

नमः । ते । अस्तु । पश्यत । पश्य । मा । पश्यत ॥ ३ ॥

अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ४ ॥

अन्नऽअद्येन । यशसा । तेजसा । ब्राह्मणऽवर्चसेन ॥ ४ ॥

आपको प्रणाम है आप मुझको यश तेज और ब्रह्मतेजसे देखिये, देखिये ॥ ३ ॥ ४ ॥

अम्भो अमो महः सह इति त्वोपास्महे वयम्।०।० ५

अम्भः । अमः । महः । सहः । इतिः ।० ॥ ५ ॥

जल अम मह सह इस रूपमें हम आपकी उपासना करते हैं ०५

अम्भो अरुणं रजतं रजः सह इति त्वोपास्महे वयम् ।०।० ॥ ६ ॥

अम्भः । अरुणम् । रजतम् । रजः । सहः । इति ।० ॥ ६ ॥

इति चतुर्थेनुवाके पञ्चमं पर्यायसूक्तम् ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अंभ अरुण रजत रज और सहरूपमें आपकी उपासना करते हैं अतः आप हमको अन्न आदिसे देखिये आपको प्रणाम है ॥ ६ ॥ (१९)

चतुर्थ अनुवाकमें पञ्चम पर्याय सूक्त समाप्त (५०९)

उरुः पृथुः सुभूर्भुव इति त्वोपास्महे वयम् ।०।० ॥१॥

उरुः । पृथुः । सुऽभूः । भुवः । इति ।० ॥ १ ॥

उरु पृथु और सुभूर्भुवः-इस प्रकार हम आपकी उपासना करते हैं ० ॥ १ ॥

प्रथो वरो व्यचो लोक इति त्वोपास्महे वयम् ।०।०

प्रथः । वरः । व्यचः । लोकः । इति ।० ॥ २ ॥

प्रथ वर व्यच और लोक-इस प्रकार हम आपकी उपासना करते हैं ० ॥ २ ॥

भवद्वसुरिदद्वसुः संयद्वसुरायद्वसुरिति त्वोपास्महे वयम्

भवत्ऽवसुः । इदत्ऽवसुः । संयत्ऽवसुः । आयत्ऽवसुः । इति ।

त्वा । उप । आस्महे । वयम् ॥ ३ ॥

संयद्वसु भवद्वसु इदद्वसु और आयद्वसु-इस प्रकार हम आपकी उपासना करते हैं ॥ ३ ॥

नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ॥ ४ ॥

नमः । ते । अस्तु । पश्यत । पश्य । मा । पश्यत ॥ ४ ॥

अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्नऽअद्येन । यशसा । तेजसा । ब्राह्मणऽवर्चसेन ॥ ५ ॥

चतुर्थेनुवाके षष्ठं पर्यायसूक्तम् ॥

चतुर्थोनुवाकः ॥

इति त्रयोदशं काण्डं समाप्तम् ॥

आपके लिये प्रणाम है मुझको देखिये, अन्नसे यशसे तेजसे और ब्रह्मवर्चस्से (सम्पन्न करनेके लिये) मुझको देखिये।४।५। (२०

चौथे अनुवाकमें छठा पर्याय सूक्त समाप्त (५१०)

चतुर्थ अनुवाक समाप्त

इति श्रीअथर्ववेदसंहिताका त्रयोदश काण्ड ऋषिकुमार

प० रामस्वरूपशर्मात्मज सनातनधर्मपताका

संपादक ऋ० कु० प० रामचन्द्रशर्माकृत

भाषानुवादसहित

समाप्त.

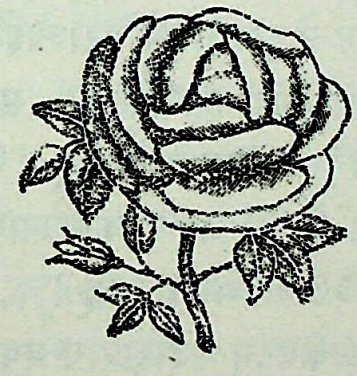

मिलने का पता—

सनातनधर्म-यन्त्रालय,

मुरादाबाद

३५०३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

❀ श्रीहरिः ❀

अथर्ववेदसंहिता

चतुर्दशं-काण्डम्

सायणभाष्य तथा अनुवादसहित

विवाहपरमेतत् काण्डम् । तत्र वक्ष्यमाणानि कर्माणि भवन्ति। तेषु तत्तन्मन्त्रविनियोगाः सूत्रकारेण प्रायोऽन्वर्थमेव कृतास्ते कौशिके दशमेऽध्याये विस्तरेण प्रपञ्चितास्तत्रैव द्रष्टव्याः । अत्र तु कर्मक्रमस्य मन्त्रवद् दिग्दर्शनम् ॥

सूक्तारम्भे सूर्या नाम या सूर्यरूपा सवितृपुत्री देवी तस्या विवाहस्य कथा वर्णिता ॥

कर्मक्रमस्तु यथा वक्ष्यते ।

विवाहः । स कुमार्याः पितृगृहे । सत्येनोत्तभितेति षोडश पूर्वापरमिति १. २३, २४ द्वे इत्यष्टादशभिराज्यहोमः । आगमकृशरं कुमारीमाशयति ॥ हस्तगृहीतशरावसंपुटं सानुचरं कंचिद् वरं प्रति प्रेषयति । १. ३१ ॥ ब्राह्मणप्रेषणम् । १. ३१ ॥ कुमारीरक्षार्थं पालप्रेषणम् । १. ३४ ॥ उदकग्रहणार्थं व्रजनम् ॥ अप्सु लोष्टं प्रक्षिपति । १. ३७ ॥ अवगाहनम् । १. ३८ ॥ उदकघटपूरणम् । १. ३८ ॥ उदकघटम् उदाहाराय प्रयच्छति । १. ३९ ॥ शाखायां घटनिधानम् ॥ तेनोदकेन सर्वोदकार्थकरणम् ॥ आज्यहोमः । १. १७ ॥ कुमारीकेशविचर्तनम् । १. ५८ ॥ ईशानकोणे तिष्ठन्त्याः कुमार्या उष्णोदकेन आसावनम् । २. ६५ ॥ शीतोदकेन सेचनम् । १. ३५, १. ४३ ॥ वाससाङ्गानि प्रमार्ष्टि ॥ तत्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुमारी पालाशं प्रयच्छति । २. ६६, ६७ ॥ तद्वासस्तुम्बरदण्डेन गृहीत्वा गोपाटे प्रक्षिपति ॥ अहतेन वाससा तामाच्छादयति । १. ४५, ५३ ॥ यज्ञोपवीतवद्वाधूयं वस्त्रं बध्नाति ॥ केशप्रलेखनम् । २. ६८ ॥ योक्त्रस्य कटिप्रदेशे बन्धनम् । १. ४२, २. ७० ॥ ज्येष्ठीमधुमणे रक्तसूत्रेण बन्धनम् अनामिकायाम् ॥ कन्यादानाद् अनन्तरम् उपाध्यायः कुमारीं हस्ते गृहीत्वा कौतुकगृहान्निर्णयति । शाखायां युगं धारयति । १. २० ॥ दक्षिणतस्तत् पुरुषो धारयति कन्याया ललाटप्रदेशे हिरण्यबन्धनम् । १. ४०, ४१ । तदुपरि युगच्छिद्रादुदकनिनयनम् ॥ कुमार्या अश्मारोहणम् । १. ४७ ॥ तया लाजहोमः । २. ६३ ॥ वरेण पाणिग्रहणम् । १. ४८–५२ ॥ वरः कन्याम् अग्निं त्रिः परिणयति । १. ३९ ॥ सप्तलेखालेखनम् ॥ तासु वधूमुत्क्रामयति ॥ तल्प उपवेशयति । २. ३१, १. ६० ॥ उपविष्टायास्तस्याः पादौ सुहृत् प्रक्षालयति ॥ कुमारीकटिवेष्टितं योक्त्रं मोचयति । १. ५७, ५८ ॥ तद्योक्त्रे भृत्याः संरभन्ते । ये जयन्ति ते बलीयांसो मन्यन्ते ॥ वधूः सर्वौषधीर्वरमूर्ध्नि पलाश-पत्रेणावपति । २. ५३–५८ ॥ कुमारीं तल्पाद् उत्थापयति । १. ५९, ६०, ६२ ॥ इति विवाहः ॥

अथोद्वाहः । तत्र वरस्य गृहे वधूनयनम् । तद्यथा । वधूवरौ यान-मारोहयति । १. ६१, २. ३० ॥ कर्ता अग्रे व्रजति । २.८, १.६४ ॥ दक्षिणेन पादेन प्रक्रामति अध्वानम् । २.११, १.३४ ॥ तेनैवाह्ना यद्यन्याप्यूढा तर्हि वधूवस्त्रस्य दशाखण्डं गृहीत्वा चतुष्पथे क्षिप्त्वा दक्षिणेन पादेन तदुपरि तिष्ठति तत् प्रायश्चित्तम् । २.७४ ॥ उभ-योरूढयोः शुभकामः सन् जपं कुर्यात् । २.४६ ॥ अन्तरा ब्रह्माणम् अतिक्रमयतः ॥ यानस्य विनिष्करणम् । २. ४७ ॥ अध्वनि तीर्थं आयाते लोष्टं प्रक्षिप्य तत उत्तरति । २.६ ॥ महावृक्षेषु दृष्टेषु जपति । २. ९ ॥ वध्वीक्षणार्थं कुदङ्गु स्त्रीष्वागतासु ताः प्रति जपति ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२. २८ ॥ द्वैभेदं (सिन्धुसंगमं) दृष्ट्वा जपति । २. ७ ॥ ओषधी-नदीक्षेत्रवनेषु दृष्टेषु जपति । २.७ ॥ श्मशाने दृष्टे जपति । २.७३ ॥ अध्वनि सुप्तायां वध्वां प्रबोधयति मन्त्रेण । २. ७५ ॥ वरपितृगृह आसन्नागते जपति । २.१२ ॥ गृहमागते याने तद् अद्भि संप्रोक्ष्य बलीवर्दौ विमोचयति । २. १६ ॥ निर्ऋत्यपनोदाय पत्नीशालां प्रोक्षति । २. १९ ॥ दक्षिणतो गृहपार्श्वे गोमयपिण्डेश्मानं स्थापयति । १. ४७ ॥ तस्योपरि पलाशस्य यत्पर्णत्रितयं तस्माद् मध्यमपर्णं गृहीत्वा स्थापति तस्योपरि घृतं घृतस्योपरि चत्वारि दूर्वाग्राणि तदुपरि वधूं स्थापयति । १. ४७ ॥ तस्माद् वधूं प्रपाद्य वरगृहे प्रवेशयति । २. २६, १. २१, १. ६३, १. ६४ । पूर्णपात्रेण कुम्भफलेन अक्षतसहितेन प्रवेशः ॥ अग्निं प्रज्वाल्य ततो हस्तग्रहणं कृत्वा वरो वधूं परिणयति । २. १७, १८ ॥ अग्निसरस्वतीपितृमूर्यादेवमित्रवरुणेभ्यो नमस्कुर्वतीम् अनुमन्त्रयते । २. २०, २. ४६ ॥ कश्चिद् रोहितचर्म आहरति । २. २१ । उपस्तृतस्य तस्योपरि बल्बजम् उपस्तृणीते तस्योपरि वधूमारोहयति उपवेशयति च । २. २३ ॥ दक्षिणोत्तरम् उपस्थं कुरुते वधूः ॥ ब्राह्मणायनं कुमारं शुभनामकं तस्या उपस्थ उपवेशयति । २.२४ ॥ कुमाराय फलमोदकादि दत्त्वा तम् उत्थापयति । २. २५ ॥ तेन भूतेनेत्यादिना वरवध्वौ क्रमेण जुहुतः । २, १–५, २. ४५ ॥ संपातान् आनयति । उदपात्रे उत्तरान् संपातान् आनयति । उदपात्रं वरवध्वोरञ्जल्योर्निनयति । २. ४५ ॥ तेन भूतेनेति रसान् संपात्य तान् स्थालीपाकं च जायापती उपसर्पयति । तत एकस्मिन् स्थाने स्वजनैः सह उपविश्य मिष्टान्नस्य सहाशनं कुर्यात् पतिः ॥ तेनैव सूक्तेन यवानाम् आज्यमिश्राणां पूर्णाञ्जलिं जुहोति ॥ इत्युद्वाहः ॥

अथ चतुर्थिकाकर्म । तद्यथा । सप्त मर्यादा इति वरो व्रीहीन्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जुहोति विवाहाग्नौ ॥ अक्ष्यौ नाविति परस्परं वरवध्वावक्षिणी अञ्जाते ॥ महीमूष्विति वरवध्वौ खट्वामालम्भयति आचार्यः । आरोहयति । २. ३१ । तत्र च तामुपवेशयति । २. २३ ॥ संवेशयति च । २. ३२ ॥ तौ वस्त्रेणाच्छादयति ॥ तावभिमुखौ करोति । २. ३७ ॥ इहेमाविति । २. ६४ । वरवध्वौ त्रिः संनुदति ॥ मदुघमणिं पिष्ट्वा औक्षे प्रक्षिप्य वधूवरौ परस्परं संगच्छेते । २. ७१, ७२ ॥ ब्रह्म जज्ञानमिति अङ्गुष्ठेन वरः प्रजननदेशं स्पृशति ॥ खट्वाया उत्थापयति वरो वधूम् । २. ४३ ॥ अहतवस्त्रं वरवध्वौ परिधापयति आचार्यः । १. ४५ । ५३, ५५ ॥ वधूसीमन्ते शष्पं निदधाति वरः । १. ५५, ५६ । व्रीहियवौ सीमन्ते निदधाति अमन्त्रकम् । दर्भपिञ्जूल्या सीमन्तं विचृतति । शणशकलेन वधूकेशान् परिवेष्टयति ॥ सर्वेण काण्डेन आज्यं जुहोति वरः । प्रायश्चित्तमेतत् ॥ शुल्कद्रव्यं पृथक् करोति इदं तव इदं मामकीयमिति । १. ३२ ॥ वाधूयं वस्त्रं ददतं वरमनुमन्त्रयते । १. २५–३० । आचार्यस्तत् प्रतिगृह्णाति । २. ४१, ४२ ॥ तत् स्थाणावासजति । २. ४८ ॥ तद् गृहीत्वा गच्छति । २. ४९ ॥ तद् वृक्षं प्रतिच्छादयति । २. ५० ॥ सर्वे स्नानं कुर्वन्ति । २. ४५ ॥ तेन वाधूयेनाच्छादयत्यात्मानमाचार्यः । २. ५१ ॥ नवं वसानः । २. ४४ । इति जपित्वा आचार्यो गृहं गच्छति ॥ कुमार्यां नीयमानायां पितृगृहे रोदने सति जीवं रुदन्ति । १. ४६ । इत्यनया यदीमे केशिनः । २, ५९–६२ । इति चतसृभिश्चाज्यं जुहोति । तत् प्रायश्चित्तम् ॥ इति चतुर्थिकाकर्म ॥

यह काण्ड विवाहपरक है । इसमें आगे कहे जाने वाले कर्म होते हैं । इनमें मन्त्रोंका विनियोग सूत्रकारने प्रयोगके अनुकूल ही किया है और कौशिकने इनका दशम अध्यायमें विस्तार-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्वक वर्णन किया है अतः इनको तहाँ ही देखना चाहिये। यहाँ कर्मक्रमका मन्त्रकी समान दिग्दर्शन करा दिया है ॥

सूक्तके आरम्भमें सूर्या नाम वाली सूर्यरूपा जो सविताकी पुत्री देवी है उसके विवाहकी कथा वर्णित है।

कार्यक्रम इस प्रकार है, कि-पहिले विवाह है, वह कुमारीका पिताके घरमें होता है। "सत्येनोत्तभिते" इन सोलह और प्रथम अनुवाककी तेईसवीं चौबीसवीं इन अठारह ऋचाओंसे आज्य-होम होता है। प्रथम अनुवाककी ३१ वीं ऋचासे शास्त्रोक्त खिचड़ीको कुमारीको प्राशन करावे, हाथमें सम्पुट सकोरा लेकर अनुचरसहित किसी पुरुषको वरके पास भेजे, ब्राह्मणको भेजे॥ १। ३४ वीं ऋचासे कुमारीकी रक्षाके लिए पालकको प्रेषित करे। १। ३७ वीं ऋचासे जल लेनेके लिये जावे और जलमें दला फेंके। १। ३८ वीं ऋचासे स्नान करे और घटको जलसे भरे। १। ३९ वीं ऋचासे जल लेजाने वालेको जलपूर्ण घट देय। १। १७ वीं ऋचासे शाखामें घट बाँधे, उस जलसे सर्वोदकार्य-करण होता है और घृतका होम करे। १। ५८ वीं ऋचासे कुमारीके केशोंको गूँथे॥ दूसरे अनुवाककी पैंसठवीं ऋचासे उष्णोदकसे स्नान करावे। प्रथम अनुवाककी पैंतीसवीं और तैंतालीसवीं ऋचासे शीतल जल छिड़के। द्वितीय अनुवाककी छियासठवीं और सरसठवीं ऋचासे वस्त्रसे अंगको स्वच्छ करे और उसको कुमारी पालकके लिये देदेय। प्रथम अनुवाककी पैंतालीसवीं और तरेपनवीं ऋचाओंसे उस वस्त्रको तुंबरदण्डसे ग्रहण करके गोपाटमें डाले, नवीन वस्त्रसे उस (कुमारी) को आच्छादित करे। दूसरे अनुवाककी अड़सठवीं ऋचासे यज्ञोप-वीतकी समान वाधूय वस्त्रको बाँधे, केशप्रलेखन करे। प्रथम अनुवाककी बयालीसवीं और द्वितीय अनुवाककी सत्तरवीं ऋचा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से योक्त्रको कमरमें बाँधे। प्रथम अनुवाककी बीसवीं ऋचासे ज्येष्ठमधुमणिको रक्तसूत्रसे अनामिकामें बाँधे, उपाध्याय कन्या-दानके अनन्तर कुमारीको हाथसे पकड़ कर कौतुकघरसे लेजाय, शाखामें युगको स्थापित करे। प्रथम अनुवाककी ४० वीं और ४१ वीं ऋचासे दाहिनी ओरसे पुरुष उसको धारण करे, कन्याके ललाटस्थानमें सुवर्ण बाँधे। प्रथम अनुवाककी सैंतालीसवीं ऋचा से उसके युगच्छिद्रसे जल डाले, कुमारीको पत्थर पर चढ़ावे। दूसरे अनुवाककी तरेसठवीं ऋचासे खीलोंके होमको करे। प्रथम अनुवाककी अड़तालीसवींसे बावनवीं तककी पाँच ऋचाओंसे वरके द्वारा पाणिग्रहण कराया जाता है। १। ३९ वीं ऋचासे वर कन्याको तीन वार अग्निकी परिक्रमा करावे। द्वितीय अनुवाक की इकतीसवीं और प्रथम अनुवाककी साठवीं ऋचासे सात रेखाएँ खींचे और उनका वधूसे उत्क्रमण करावे और उसको शय्या पर बैठावे। प्रथम अनुवाककी सत्तावनवीं और अट्ठावनवीं ऋचाओंसे बैठी हुई कुमारीके पादोंको कोई मित्र धो देय और कुमारीकी कमरमें उरसी हुई डोरीको खोल देय। दूसरे अनुवाक की तरेपनसे अट्ठावनवीं तककी ऋचाओंसे उस रस्सीको भृत्य खेंचें, उस समय जो जीत जाते हैं वे बली माने जाते हैं, वधू सर्वौषधियोंको ढ़ाकके पत्तेसे वरके मस्तक पर रक्खे। प्रथम अनुवाककी ५९, ६० और बासठवीं ऋचाओंसे कुमारीको शय्यापरसे उठावे॥ यह विवाहका कृत्य पूर्ण हुआ।

अब उद्वाहके कृत्योंका वर्णन करते हैं, कि-इसमें वरके घरमें वधूको लाया जाता है। यथा-प्रथम अनुवाककी इकसठवीं और द्वितीय अनुवाककी तीसवीं ऋचासे वधू और वरको सवारी पर चढ़ावे। द्वितीय अनुवाककी आठवीं और प्रथम अनुवाककी चौंसठवीं ऋचासे कर्ता आगे चले। द्वितीय अनुवाककी ग्यारहवीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और प्रथम अनुवाककी चौंतीसवीं ऋचासे दाहिने पैरसे रास्ते पर चले। उसी दिन यदि किसी दूसरीका विवाह हुआ हो तो वधूवस्त्र के दशाखण्डको लेकर चौराहेमें डाल देय और उस पर दाहिना पैर रख कर खड़ा होजावे यह उसका प्रायश्चित्त है। दोनोंके ऊढ़ होने पर शुभ चाहता हुआ द्वितीय अनुवाककी छियालीसवीं ऋचाका जप करे। दूसरे अनुवाककी सैंतालीसवीं ऋचासे बीचमेंसे ब्रह्माको छोड़ देय, फिर रथका विनिष्करण होता है। मार्गमें तीर्थ आजावे तो द्वितीय अनुवाककी छियालीसवीं ऋचा से ढलेको डाल कर उतर पड़े यही इसका प्रायश्चित्त है। द्वितीय अनुवाककी नवम ऋचाको महावृक्षोंके दीखने पर जपे। यदि वधूको देखनेके लिये कुट्टक् (नजरलगाने वाली) स्त्रियें आजावें तो दूसरे अनुवाककी नवम ऋचाका जप करे। सिंधुके संगमको देखकर द्वितीय अनुवाककी सातवीं ऋचाका जप करे। औषधि नदी क्षेत्र और वनके दीखने पर दूसरे अनुवाककी सातवीं ऋचाका जप करे। श्मशानके दीखने पर दूसरे अनुवाककी तिहत्तरवीं ऋचाका जप करे। मार्गमें वधूके सोजाने पर दूसरे अनुवाककी पिछहत्तरवीं ऋचासे जगावे। वरके पिताके घरके समीप आने पर दूसरे अनुवाककी बारहवीं ऋचाका जप करे। घरमें यानके आने पर उसको दूसरे अनुवाककी सोलहवीं ऋचा से जलसे प्रोक्षित करके बैलोंको खोल देय। निर्ऋतिको दूर करनेके लिये दूसरे अनुवाककी उन्नीसवीं ऋचासे पत्नीशाला का प्रोक्षण करे। प्रथम अनुवाककी सैंतालीसवीं ऋचासे दाहिनी ओर घरके कोनेमें गोबरके पिण्डे पर पत्थरको स्थापित करे। फिर प्रथम अनुवाककी सैंतालीसवीं ऋचासे उस पत्थर पर पलाशके तीन पत्तोंमेंसे बीचके पत्तेको पकड़ कर स्थापित करे उसके ऊपर घृत रक्खे और घृतके ऊपर चार दूर्वाग्रोंको रक्खे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फिर उन पर वधूको बैठाले। फिर द्वितीय अनुवाककी छब्बीसवीं, प्रथम अनुवाककी इक्कीसवीं तरेसठवीं और चौंसठवीं ऋचाओं से वधूको चला कर वरके घरमें प्रवेश करावे पूर्णपात्रके साथ फलके साथ जिसमें अक्षत भरे हों ऐसे घटके साथ प्रवेश करे। फिर दूसरे अनुवाककी १७ वीं और १८ वीं ऋचाओंसे अग्नि को प्रज्वालित करके वर हाथ पकड़ कर वधूका परिणयन करे। फिर दूसरे अनुवाककी बीसवीं और छियालीसवीं ऋचाओंसे अग्नि सरस्वती सूर्यादेव मित्र और वरुणके लिये नमस्कार करती हुई पत्नीका अनुमन्त्रण करे। दूसरे अनुवाककी इक्कीसवीं ऋचासे कोई रोहितचर्मको लावे। फिर २। २३ से उस बिछे हुएके ऊपर बगईको बिछा देय उस पर वधूको चढ़ावे और बैठावे। २। २४ से वधू दक्खिन उत्तरकी ओर गोद करके बैठे तब ब्राह्मणके घरके किसी शुभ नाम वाले बालकको उसकी गोदीमें बैठावे। फिर २। २५ से कुमारको मोदक आदि देकर उठावे। फिर वर और वधू दूसरे अनुवाककी पहिलीसे पाँचवीं तककी और पैंतालीसवीं ऋचाओंसे क्रमशः आहुति देवें। फिर २। ४५ से सम्पातोंको लावे, जलपूर्ण पात्रमें उत्तर सम्पातोंको लावे, जलपूर्ण पात्रको वर वधूकी अञ्जलिमें देय। फिर तेन भूतेनसे सम्पातित करके उनको और स्थालीपाकको जायापतीके पास लेजावे। फिर पति एक स्थानमें अपने कुटुम्ब वालोंके साथ बैठ कर मिष्टान्नका भक्षण करे। फिर इसी सूक्तसे घृतमिश्रित जौंकी पूर्णाहुति देवे॥ यह उद्वाह हुआ॥

अब चतुर्थीकर्म चलता है, कि—वर "सप्तमर्यादा" इस पञ्चम काण्डके प्रथम सूक्तकी छठी ऋचासे विवाहाग्निमें धानोंका होम करे। "अक्ष्यौनाविति" इस सप्तमकाण्डके सैंतीसवें सूक्तसे वर वधू परस्परके नेत्रोंमें सुर्मा डालें। "महीमूषु" इस सप्तमकाण्डके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छठे सूक्तकी दूसरी ऋचासे आचार्य वर वधूको खट्वाका स्पर्श करावे। और २। अ० ३१ से खट्वा पर चढ़ावे। फिर द्वितीय अनुवाककी तेईसवीं ऋचासे वधूको उस खट्वा पर बैठावे। २ अ० ३२ से भली प्रकार बैठनेको कहे। फिर ७ का० ३८ से उन दोनोंको वस्त्रसे आच्छादित कर देय २। अ० ३७ से उनको अभिमुख करे। फिर इहेमाविति इस २ अ० ६४ से वर वधूको तीन वार प्रेरणा करे। फिर दूसरे अनुवाककी इकहत्तरवीं और बहत्तरवीं ऋचासे (प्रथम काण्डके चौंतीसवें सूक्तमें वर्णित) मदुघमणिको पीसकर औत्तमें डाल कर वर वधू परस्पर संगमन करें। चतुर्थकाण्डके प्रथम मन्त्र "ब्रह्मजज्ञानम्" से वर अंगुष्ठके द्वारा प्रजननप्रदेशका स्पर्श करे। २ अ० ४३ से वर वधूको खट्वासे उठाता है। प्रथम अनुवाककी ४५ वीं, ५३ वीं और पचपंनवीं ऋचाओं से आचार्य विना फटे वस्त्र को वर वधूको आच्छादित करे। प्रथम अनुवाककी ५५ वीं और ५६ वीं ऋचाओंसे वर वधूके सीमन्तमें शष्पको रक्खे फिर वर विना मंत्र पढ़े हुए ही वधूके सीमन्तमें धान और जौंको रक्खे। कुशाओंकी मुट्ठीसे सीमन्तका स्पर्श करे। सनके टुकड़े से वधूके केशोंको बाँधे वर सब काण्डसे घृतकी आहुति देय। यह प्रायश्चित्त है। प्रथम अनुवाककी बत्तीसवीं ऋचासे शुल्क-द्रव्यको पृथक् करे, कि—यह तेरा है और यह मेरा है। प्रथम अनुवाककी २५ वीं से तीसवीं तककी पाँच ऋचाओंसे वधूके वस्त्र को देते हुए वरका अनुमन्त्रण करे। द्वितीय अनुवाककी ४१ वीं और ४२वीं ऋचाओंसे आचार्य उसको ग्रहण करे। २ अ० ४८ से उसको स्थाणु पर रक्खे। द्वितीय अनुवाककी ४९ वीं ऋचासे उसको लेकर जावे। द्वितीय अनुवाककी ५० वीं ऋचासे उससे वृत्तको ढ़के। फिर २ अ० ४५ से सब स्नान करते हैं। द्वितीय अनु-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाककी इक्यानवीं ऋचासे उस वाधूय वस्त्रसे आचार्य अपनेको आच्छादित करे। "नवं वसानः" इस द्वितीय अनुवाककी चौवालीसवीं ऋचाको जपता हुआ आचार्य अपने घरको प्रस्थान करे। कुमारीके लेजाते समय पितृगृहमें रोदन होने पर "जीवं रुदन्ति" इस प्रथम अनुवाकी छियालीसवीं ऋचासे और "यदीमे केशिनः" इन द्वितीय अनुवाककी उनसठवींसे बासठवीं तककी चार ऋचाओं से घृतकी आहुति देय। यह प्रायश्चित्त है ॥ इति चतुर्थीकर्म ॥

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः ।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः १

सत्येन । उत्तभिता । भूमिः । सूर्येण । उत्तभिता । द्यौः ।
ऋतेन । आदित्याः । तिष्ठन्ति । दिवि । सोमः । अधि । श्रितः १

सत्यसे ही पृथ्वी स्थित है, सूर्यसे द्यौ स्थित है, सत्यसे ही सूर्य स्थित हैं और द्युलोकमें सोम भी सत्यसे ही स्थित है ॥१॥

सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही ।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ॥ २ ॥

सोमेन । आदित्याः । बलिनः । सोमेन । पृथिवी । मही ।
अथो इति । नक्षत्राणाम् । एषाम् । उपऽस्थे । सोमः । आऽहितः ।

सोमसे आदित्य बलवान् हैं, सोमसे ही यह पृथिवी पूजनीय है, इसी लिये नक्षत्रोंके समीपमें यह सोम स्थित हैं ॥ २ ॥

सोमं मन्यते पपिवान् यत् संपिंषन्त्योषधिम् ।
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति पार्थिवः ॥३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सोमम् । मन्यते । पपिऽवान् । यत् । सम्ऽपिंषन्ति । ओषधिम् ।
सोमम् । यम् । ब्रह्माणः । विदुः । न । तस्य । अश्नाति । पार्थिवः ३

जो रासायनिक सोमरूप औषधिको पीस कर पान करते हैं वे समझते हैं, कि-मैंने सोमका पान कर लिया यह अधिदैवत सोमयज्ञ सोम नहीं है, परन्तु मन्त्रवेत्ता जिस सोमको जानते हैं उसको यह साधारण पार्थिव पुरुष नहीं जानते ॥ ३ ॥

यत् त्वा सोम प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः ।
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः ॥४॥

यत् । त्वा । सोम । प्रऽपिबन्ति । ततः । आ । प्यायसे । पुनः ।
वायुः । सोमस्य । रक्षिता । समानाम् । मासः । आऽकृतिः ॥४॥

हे सोम ! पुरुष आपका पान करते हैं और आप फिर बढ़ जाते हैं सम्बत्सरोंमें मासरूप आकृति वाला अर्थात् सम्बत्सरके प्रत्येक मासमें चलने वाला वायु सोमका रक्षक है ॥ ४ ॥

आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः ।
ग्राव्णामिच्छृण्वन् तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः ५

आच्छत्ऽविधानैः । गुपितः । बार्हतैः । सोम । रक्षितः ।
ग्राव्णाम् । इत् । शृण्वन् । तिष्ठसि । न । ते । अश्नाति । पार्थिवः

हे सोम ! आप आच्छद्विधानोंसे और बृहती छन्दोंसे होने वाले कर्मोंसे रक्षित हैं और सोमाभिषवणके पत्थरसे सुनते हुए ठहरते हैं साधारण पार्थिव प्राणी आपका प्राशन नहीं कर सकता ५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम् ।
द्यौर्भूमिः कोश आसीद् यदयात् सूर्या पतिम् ॥६॥

चित्तिः । आः । उपऽबर्हणम् । चक्षुः । आः । अभिऽअञ्जनम् ।
द्यौः । भूमिः । कोशः । आसीत् । यत् । अयात् । सूर्या । पतिम्

जिससमय सूर्या पतिके पास गई थी उस समय ज्ञान उपबर्हण हुआ और चक्षु अभ्यञ्जन हुआ था और द्यौ तथा भूमि कोश हुए थे ॥ ६ ॥

रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी ।
सूर्याया भद्रमिद् वासो गाथयैति परिष्कृता ॥ ७ ॥

रैभी । आसीत् । अनुऽदेयी । नाराशंसी । निऽओचनी ।
सूर्यायाः । भद्रम् । इत् । वासः । गाथया । एति । परिष्कृता ७

मनुष्योंकी प्रशंसा करने वाली न्योचिनी रैभ्या उस समय सूर्याके साथ २ दी गई थी वह गाथाके द्वारा परिष्कृत होकर सूर्या के कल्याणमय वस्त्रको लेकर चलती थी ॥ ७ ॥

स्तोमा आसन् प्रतिधयः कुरीरम् छन्द ओपशः ।
सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत् पुरोगवः ॥ ८ ॥

स्तोमाः । आसन् । प्रतिऽधयः । कुरीरम् । छन्दः । ओपशः ।
सूर्यायाः । अश्विना । वरा । अग्निः । आसीत् । पुरःऽगवः ॥८॥

उस समय स्तुतियें प्रतिधि थे, छन्द स्त्रीत्वव्यञ्जचिन्ह केश-जाल थे, अश्विनीकुमार सूर्याके वर थे और अग्नि पुरोगव था ८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा ।
सूर्यां यत् पत्ये शंसन्तीं मनसा सविताददात् ॥९॥

सोमः । वधूऽयुः । अभवत् । अश्विना । आस्ताम् । उभा । वरा ।
सूर्याम् । यत् । पत्ये । शंसन्तीम् । मनसा । सविता । अददात् ९

मनसे पतिके लिये प्रार्थना करती हुई सूर्याको जब सूर्यदेव दे रहे थे उस समय सोम वधूयु हुए और अश्विनीकुमार वर थे ९

मनो अस्या अन आसीद् द्यौरासीदुत च्छदिः ।
शुक्रावनड्वाहावास्तां यदयात् सूर्या पतिम् ॥१०॥

मनः । अस्याः । अनः । आसीत् । द्यौः । आसीत् । उत । छदिः ।
शुक्रौ । अनड्वाहौ । आस्ताम् । यत् । अयात् । सूर्या । पतिम्

जिस समय सूर्या पतिको प्राप्त हुई उस समय मन रथ था और द्यौ घर था और बैल श्वेत थे ॥ १० ॥ (१)

ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावैताम् ।
श्रोत्रे ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचरः ॥ ११ ॥

ऋक्सामाभ्याम् । अभिऽहितौ । गावौ । ते । सामनौ । ऐताम् ।
श्रोत्रे इति । ते । चक्रे इति । आस्ताम् । दिवि । पन्थाः । चराचरः

ऋक् और सामसे अभिहित दो गो-साम आये थे, द्युलोकका जो चराचर मार्ग है उसने उनको तेरे श्रोत्ररूपमें कल्पित किया था ११

शुभ्रे ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनो मनस्मयं सूर्यारोहत् प्रयती पतिम् ॥ १२ ॥

शुची इति । ते । चक्रे इति । यात्याः । विऽआनः । अक्षः । आऽहतः ।

अनः । मनस्मयम् । सूर्या । आ । अरोहत् । प्रऽयती । पतिम् १२

हे सूर्ये ! तुझ गमन करने वालीके लिये दमकने वाले सूर्य और चन्द्रमाको चक्र बनाया गया था और व्यानको अक्ष बनाया गया था, तब पतिके घर जाती हुई सूर्या मनस्मय रथमें चढ़ी थी १२

सूर्याया वहतुः प्रागात् सविता यमवासृजत् ।

मघासु हन्यन्ते गावः फल्गुनीषु व्युह्यते ॥ १३ ॥

सूर्यायाः । वहतुः । प्र । अगात् । सविता । यम् । अवऽसृजत् ।

मघासु । हन्यन्ते । गावः । फल्गुनीषु । वि । उह्यते ॥ १३ ॥

सविताने जिस पदार्थको दिया था वह सूर्याके दहेजके रूपमें गया था । बैल मघा नक्षत्रमें चलाये जाते हैं और फल्गुनी नक्षत्र उनसे रथ खिचवाया जाता है ॥ १३ ॥

यदश्विना पृच्छमानावयातं त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायाः

कैकं चक्रं वामासीत् क्व देष्ट्राय तस्थथुः ॥ १४ ॥

यत् । अश्विना । पृच्छमानौ । अयातम् । त्रिऽचक्रेण । वहतुम् ।

सूर्यायाः ।

क्व । एकम् । चक्रम् । वाम् । आसीत् । क्व । देष्ट्राय । तस्थथुः

हे अश्विनीकुमारों ! आपके विषयमें बूझा गया था उस समय जब आप त्रिचक्र रथसे सूर्याका वहन करनेके लिये आये थे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तब तुम्हारा एक चक्र कहाँ था और तुम अपने २ व्यापारमें प्रवृत्त कराने वाले व्यक्तिके पास कहाँ ठहरे थे ॥ १४ ॥

यदयातं शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप ।
विश्वे देवा अनु तद् वामजानन् पुत्रः पितरमवृणीत पूषा ॥ १५ ॥

यत् । अयातम् । शुभः । पती इति । वरेऽयम् । सूर्याम् । उप ।
विश्वे । देवाः । अनु । तत् । वाम् । अजानन् । पुत्रः । पितरम् ।
अवृणीत । पूषा ॥ १५ ॥

हे शुभ कार्मोंके पालक अश्विनीकुमारो ! जब तुम सूर्याको श्रेष्ठ समझ कर उसके पास वरण करनेके लिये आये उस समय विश्वेदेवताओंने तुमको जाना था और पुंनामक नरकसे रक्षा करने वाले सूर्यने पालकका वरण किया था ॥ १५ ॥

द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदुः ।
अथैकं चक्रं यद् गुहा तदद्धातय इद् विदुः ॥१६॥

द्वे इति । ते । चक्रे इति । सूर्ये । ब्रह्माणः । ऋतुऽथा । विदुः ।
अथ । एकम् । चक्रम् । यत् । गुहा । तत् । अद्धातयः । इत् । विदुः

हे सूर्ये ! ब्राह्मण तेरे दोनों चक्रोंको ऋतुके अनुसार जानते हैं, जो तेरा एक चक्र गूढ़ है उसको विद्वान् ही जानते हैं ॥१६॥ (यह सूर्याविवाह साधारण दृष्टिसे देखने पर विचित्र ही मालूम होता है, परन्तु यह गूढार्थक है साधारण विवाहसे इसकी तुलना नहीं की जासकती इसमें कोई आध्यात्मिक तत्त्व छिपा हुआ है) ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्यमणं यजामहे सुबन्धुं पतिवेदनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनात् प्रेतो मुञ्चामि नामुतः ।१७।

अर्यमणम् । यजामहे । सुऽबन्धुम् । पतिऽवेदनम् ।
उर्वारुकम्ऽइव । बन्धनात् । प्र । इतः । मुञ्चामि । न । अमुतः ॥

हम पतिको प्राप्त कराने वाले शोभन बांधवोंसे सम्पन्न रखने वाले अर्यमा देवताकी पूजा करते हैं जैसे ऊर्वारुक (ककड़ी) डण्ठलसे अलग होजाती है, इसी प्रकार मैं इस कन्याको यहाँसे अलग करता हूँ। किंतु पतिकुलसे अलग नहीं करता हूँ ॥ १७॥

प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम् ।
यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति ॥ १८ ॥

प्र । इतः । मुञ्चामि । न । अमुतः । सुऽबद्धाम् । अमुतः । करम् ।
यथा । इयम् । इन्द्र । मीढ्वः । सुऽपुत्रा । सुऽभगा । असति १८

मैं (पुरोहित) इसको इस पितृकुलसे अलग करता हूँ पतिकुलसे अलग नहीं करता हूँ, किंतु भली प्रकार सम्बद्ध करता हूँ, हे सेचक इन्द्र ! जिस प्रकार यह सौभाग्यवती और सुपुत्रा हो (तैसा अनुग्रह करिये) ॥ १८ ॥

प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवाः ।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके स्योनं ते अस्तु सहसंभलायै ॥ १९ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र । त्वा । मुञ्चामि । वरुणस्य । पाशात् । येन । त्वा । अबध्नात् ।
सविता । सुऽशेवाः ।
ऋतस्य । योनौ । सुऽकृतस्य । लोके । स्योनम् । ते । अस्तु ।
सहऽसंभलायै ॥ १९ ॥

सुन्दर सुख देने वाले सूर्यदेवने जिससे तुझको बाँध रक्खा था उस वरुणके पाशसे मैं तुझको मुक्त करता हूँ तुझ मिष्टभाषिणी के लिये सत्यके कारण मिलने वाले सुकृतलोकमें सुख प्राप्त हो १९

भगस्त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन ।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा
वदासि ॥ २० ॥

भगः । त्वा । इतः । नयतु । हस्तऽगृह्य । अश्विना । त्वा । प्र ।
वहताम् । रथेन ।
गृहान् । गच्छ । गृहऽपत्नी । यथा । असः । वशिनी । त्वम् ।
विदथम् । आ । वदासि ॥ २० ॥

सौभाग्यप्रद भग देवता तुझको हाथ पकड़ कर लेजावें अर्थात् तुझको सौभाग्य देवें अश्विनीकुमार रथमें तुझको ले जावें, तू घरको इस प्रकार जावे, कि—तू घरका पालन करने वाली और घरको वशमें रखने वाली रहे और अपने घरमें भाषण करती रहे ॥ २० ॥ (२)

इह प्रियं प्रजायै ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय
जागृहि ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एना पत्या तन्वं सं स्पृशस्वाथ जिर्विर्विदथमा वदासि ॥ २१ ॥

इह । प्रियम् । प्रऽजायै । ते । सम् । ऋध्यताम् । अस्मिन् । गृहे । गार्हऽपत्याय । जागृहि ।

एना । पत्या । तन्वम् । सम् । स्पृशस्व । अथ । जिर्विः । विदथम् । आ । वदासि ॥ २१ ॥

यहाँ पर तेरी प्रजाके लिये प्रिय वस्तुओंकी वृद्धि होती रहे तू इस घरमें गार्हपत्य अग्निके लिये सावधान रह, इस पतिसे अपने शरीरका स्पर्श कर और तू घरमें आयुकी समाप्ति तक बोलती रह २१

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ ॥ २२ ॥

इह । एव । स्तम् । मा । वि । यौष्टम् । विश्वम् । आयुः । वि । अश्नुतम् ।

क्रीडन्तौ । पुत्रैः । नप्तृऽभिः । मोदमानौ । सुऽअस्तकौ ॥ २२ ॥

तुम दोनों यहाँ ही रहो, वियुक्त न होओ, सारी आयु भर अनेक प्रकारके भोजन करो, पुत्र और पोतोंके साथ खेलते रहो, प्रसन्न होते रहो और कल्याणसम्पन्न रहो ॥ २२ ॥

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम् विश्वान्यो भुवना विचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायसे नवः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्वऽअपरम् । चरतः । मायया । एतौ । शिशू इति । क्रीडन्तौ ।

परि । यातः । अर्णवम् ।

विश्वा । अन्यः । भुवना । विऽचष्टे । ऋतून् । अन्यः । विऽदधत् ।

जायसे । नवः ॥ २३ ॥

यह सूर्य और चन्द्रमा बालककी समान क्रीड़ा करते हुए पूर्व पश्चिम समुद्रमें जाते हैं, इनमेंसे एक भुवनोंको देखता है और दूसरा ऋतुओंको करता हुआ नवीनरूपमें प्रादुर्भूत होता है २३

नवोनवो भवसि जायमानोह्नां केतुरुषसामेष्यग्रम् ।
भागं देवेभ्यो वि दधास्यायन् प्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः ॥ २४ ॥

नवःऽनवः । भवसि । जायमानः । अह्नाम् । केतुः । उषसाम् ।

एषि । अग्रम् ।

भागम् । देवेभ्यः । वि । दधासि । आऽयन् । प्र । चन्द्रमः ।

तिरसे । दीर्घम् । आयुः ॥ २४ ॥

हे चन्द्रदेव ! आप प्रतिमासमें होकर नवीन ही नवीन होते हैं आप अपनी कलाओंके ह्रास वृद्धिके कारण प्रतिपदा द्वितीया आदि दिनोंके ज्ञापक हैं और आप उषःकालके समय (सूर्यके) आगे आते हैं और आप आते समय देवताओंको भाग देते हैं और हे चन्द्र ! आप दीर्घायु प्रदान करते हैं ॥ २४ ॥

परा देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृत्यैषा पद्वती भूत्वा जाया विशते पतिम् ॥ २५ ॥

परा । देहि । शामुल्यम् । ब्रह्मऽभ्यः । वि । भज । वसु ।

कृत्या । एषा । पत्ऽवती । भूत्वा । आ । जाया । विशते । पतिम् ।

यह कृत्या पैरों वाली कृत्यासी पतिमें प्रवेश करती है (अतः हे वर!) आप इस शामुल्यको दीजिये और ब्राह्मणोंको धन दीजिये

नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते ।

एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्बन्धेषु बध्यते ॥ २६ ॥

नीलऽलोहितम् । भवति । कृत्या । आसक्तिः । वि । अज्यते ।

एधन्ते । अस्याः । ज्ञातयः । पतिः । बन्धेषु । बध्यते ॥ २६ ॥

यह वस्त्र नीललोहित होता है इसमें कृत्याकी आसक्ति प्रकट होती है (यदि इस वस्त्रको नहीं दिया जाता है तो) इस वधूके समान जाति वाले बांधव तो बढ़ते हैं और पति बंधनमें पड़ता चला जाता है ॥ २६ ॥

अश्लीला तनूर्भवति रुशती पापयामुया ।

पतिर्यद् वध्वो३ वाससः स्वमङ्गमभ्यूर्णुते ॥ २७ ॥

अश्लीला । तनूः । भवति । रुशती । पापया । अमुया ।

पतिः । यत् । वध्वः । वाससः । स्वम् । अङ्गम् । अभिऽऊर्णुते २७

जो पति इस वधूके वस्त्रसे अपने अंगको ढकता है तो इस पापमय कृतिसे उसका शरीर अश्लील होजाता है ॥ २७ ॥

आशसनं विशसनमथो अधिविकर्तनम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मोत शुम्भति २८

आऽशसनम् । विऽशसनम् । अथो इति । अधिऽविकर्तनम् ।

सूर्यायाः । पश्य । रूपाणि । तानि । ब्रह्मा । उत । शुम्भति २८

आशसन विशसन और विकर्तन-सूर्याके इन रूपोंको देखो इनको ब्रह्मा ही सुशोभित कर सकता है ॥ २८ ॥

तृष्टमेतत् कटुकमपाष्ठवद् विषवन्नैतदत्तवे ।

सूर्यां यो ब्रह्मा वेद स इद् वाधूयमर्हति ॥ २९ ॥

तृष्टम् । एतत् । कटुकम् । अपाष्ठऽवत् । विषऽवत् । न । एतत् । अत्तवे ।

सूर्याम् । यः । ब्रह्मा । वेद । सः । इत् । वाधूऽयम् । अर्हति २९

यह वस्त्र तृषा लगाने वाला है, कटुक है अपाष्ठवद् है, और अत्ताके लिये विषकी समान है, जो ब्रह्मा सूर्याको जानता है वह वाधूय वस्त्रके योग्य है ॥ २९ ॥

स इत् तत् स्योनं हरति ब्रह्मा वासः सुमङ्गलम् ।

प्रायश्चित्तिं यो अध्येति येन जाया न रिष्यति ३०

सः । इत् । तत् । स्योनम् । हरति । ब्रह्मा । वासः । सुऽमङ्गलम् ।

प्रायश्चित्तिम् । यः । अधिऽएति । येन । जाया । न । रिष्यति ।

जिससे प्रायश्चित्त होता है और जिससे जाया नहीं मरती है उस ही मंगलमद्र सुखप्रद वस्त्रको ब्रह्मा धारण करता है ३० (३)

युवं भगं सं भरतं समृद्धमृतं वदन्तावृतोद्येषु ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्रह्मणस्पते पतिमस्यै रोचय चारु संभलो वदतु वाचमेताम् ॥ ३१ ॥

युवम् । भगम् । सम् । भरतम् । सम्ऽऋद्धम् । ऋतम् । वदन्तौ । ऋतऽउद्येषु ।

ब्रह्मणः । पते । पतिम् । अस्यै । रोचय । चारु । सम्ऽभलः । वदतु । वाचम् । एताम् ॥ ३१ ॥

तुम दोनों सत्य बोलनेके अवसरों पर सत्य बोलते हुए समृद्धि-सम्पन्न भाग्यको सम्पादित करो, हे ब्रह्मणस्पते ! आप इसके लिये पतिको पसन्द करिये और वह इस (स्वीकृतिरूपा) वाणी को अच्छी प्रकार भाषण करता हुआ बोले ॥ ३१ ॥

इहेदसाथ न परो गमाथेमं गावः प्रजया वर्धयाथ । शुभं यतीरुस्रियाः सोमवर्चसो विश्वे देवाः क्रन्निह वो मनांसि ॥ ३२ ॥

इह । इत् । असाथ । न । परः । गमाथ । इमम् । गावः । प्रऽजया । वर्धयाथ ।

शुभम् । यतीः । उस्रियाः । सोमऽवर्चसः । विश्वे । देवाः । क्रन् । इह । वः । मनांसि ॥ ३२ ॥

तुम यहाँ बैठो, आगे न जाओ, यह वस्तु है, यह गौएँ हैं, तुम दोनों प्रजासे बढ़ो, ये कल्याण करने वाली धेनु हैं, विश्वेदेवता तुम सबके मनोंको सोमकी समान कान्ति वाला करें ॥ ३२ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इमं गावः प्रजया सं विशाथायं देवानां न मिनाति भागम् ।
अस्मै वः पूषा मरुतश्च सर्वे अस्मै वो धाता सविता सुवाति ॥ ३३ ॥

इमम् । गावः । प्रऽजया । सम् । विशाथ । अयम् । देवानाम् । न । मिनाति । भागम् ।
अस्मै । वः । पूषा । मरुतः । च । सर्वे । अस्मै । वः । धाता । सविता । सुवाति ॥ ३३ ॥

ये गौएँ इसको प्राप्त होवें, यह देवताओंका भाग है इसका बाँट नहीं होसकता, इसके लिये तुमको पूषा और सब मरुत् तथा धाता और सविता देवता भी प्रेरित करें ॥ ३३ ॥

अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्थानो येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम् ।
सं भगेन समर्यम्णा सं धाता सृजतु वर्चसा ३४

अनृक्षराः । ऋजवः । सन्तु । पन्थानः । येभिः । सखायः । यन्ति । नः । वरेऽयम् ।
सम् । भगेन । सम् । अर्यम्णा । सम् । धाता । सृजतु । वर्चसा

जिन वरणीय मार्गसमूहोंसे हमारे मित्र जाते हैं, वे मार्ग तुम्हारे लिये सरल और निष्कण्टक होवें, धाता देवता तुमको सौभाग्य, तेज और सूर्यसे भली प्रकार सम्पन्न रक्खें ॥ ३४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यच्च वर्चो अक्षेषु सुरायां च यदाहितम् ।
यद् गोष्वश्विना वर्चस्तेनेमां वर्चसावतम् ॥ ३५ ॥

यत् । च । वर्चः । अक्षेषु । सुरायाम् । च । यत् । आऽहितम् ।
यत् । गोषु । अश्विना । वर्चः । तेन । इमाम् । वर्चसा । अवतम्

जो वर्च फाँसोंमें और सुरामें स्थापित किया गया है और जो वर्च गौओंमें है, हे अश्विनीकुमारों ! उस वर्चसे तुम इसकी रक्षा करो ॥ ३५ ॥

येन महानघ्न्या जघनमाश्विना येन वा सुरा ।
येनाक्षा अभ्यषिच्यन्त तेनेमां वर्चसावतम् ॥३६॥

येन । महाऽनघ्न्याः । जघनम् । अश्विना । येन । वा । सुरा ।
येन । अक्षाः । अभिऽअसिच्यन्त । तेन । इमाम् । वर्चसा ।
अवतम् ॥ ३६ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! जिस वर्चसे जघन महानघ्न्या है जिस वर्चसे सुरा और अक्षोंका अभिषेचन हुआ है उस वर्चसे तुम मेरी रक्षा करो ॥ ३६ ॥

यो अनिध्मो दीदयदप्स्वन्तर्यं विप्रास ईडते अध्वरेषु ।
अपां नपान्मधुमतीरपो दा याभिरिन्द्रो वावृधे वीर्यावान्

यः । अनिध्मः । दीदयत् । अप्ऽसु । अन्तः । यम् । विप्रासः ।
ईडते । अध्वरेषु ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपाम् । नपात् । मधुऽमतीः । अपः । दाः । याभिः । इन्द्रः । वृधे । वीर्यऽवान् ॥ ३७ ॥

जो प्रज्वलित न होने पर भी जलोंके भीतर हिंसा करता है और ब्राह्मण यज्ञमें जिसकी स्तुति करते हैं जो जलोंका रक्षक है ऐसे हे लोष्ट ! तू मधुमय जलको दे कि-जिससे वीर्यवान् इन्द्र बढ़ता है ॥ ३७ ॥

इदमहं रुशन्तं ग्राभं तनूदूषिमपोहामि ।
यो भद्रो रोचनस्तमुदचामि ॥ ३८ ॥

इदम् । अहम् । रुशन्तम् । ग्राभम् । तनूऽदूषिम् । अप । ऊहामि । यः । भद्रः । रोचनः । तम् । उत् । अचामि ॥ ३८ ॥

मैं जो ग्राहक हिंसक शरीरको दूषित करने वाला (मल) है उसको दूर करता हूँ और जो कल्याणप्रद कान्ति देने वाला पदार्थ है उसको प्राप्त करता हूँ ॥ ३८ ॥

आस्यै ब्राह्मणाः स्नपनीर्हरन्त्ववीरघ्नीरुदजन्त्वापः ।
अर्यम्णो अग्निं पर्येतु पूषन् प्रतीक्षन्ते श्वशुरो देवरश्च

आ । अस्यै । ब्राह्मणाः । स्नपनीः । हरन्तु । अवीरऽघ्नीः । उत् । अजन्तु । आपः ।

अर्यम्णः । अग्निम् । परि । एतु । पूषन् । प्रति । ईक्षन्ते । श्वशुरः । देवरः । च ॥ ३९ ॥

ब्राह्मण इसके लिये स्नान कराने वाले जल लावें और वीरों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का हनन न करने वाले जल इसको प्राप्त होवें, हे पूषन् ! यह अर्यमासे अग्निको प्राप्त हो इसके श्वशुर और देवर इसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥ ३९ ॥

शं ते हिरण्यं शमु सन्त्वापः शं मेथिर्भवतु शं युगस्य तर्द्म ।
शं त आपः शतपवित्रा भवन्तु शमु पत्या तन्वं सं स्पृशस्व ॥ ४० ॥

शम् । ते । हिरण्यम् । शम् । ऊं इति । सन्तु । आपः । शम् । मेथिः । भवतु । शम् । युगस्य । तर्द्म ।

शम् । ते । आपः । शतऽपवित्राः । भवन्तु । शम् । ऊं इति । पत्या । तन्वम् । सम् । स्पृशस्व ॥ ४० ॥

सुवर्ण तेरे लिये सुखकारी हो, जल तेरे लिये सुखदायक हों आक्रोश तेरे लिये सुखप्रद हो, और युगका तर्द्म तेरे लिये सुखप्रद हो, सैंकड़ोंको पवित्र करने वाले जल तेरे लिये सुखप्रद हों और तू कल्याण पाती हुई अपने पतिसे शरीरका स्पर्श कर ॥ ४० ॥ (४)

खे रथस्य खेनसः खे युगस्य शतक्रतो ।
अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्वाकृणोः सूर्यत्वचम् ॥ ४१ ॥

खे । रथस्य । खे । अनसः । खे । युगस्य । शतक्रतो इति शतऽक्रतो ।

अपालाम् । इन्द्र । त्रिः । पूत्वा । अकृणोः । सूर्यऽत्वचम् ॥४१॥

हे शतक्रतो इन्द्र ! रथके आकाशमें, गाड़ीके आकाशमें, मैंने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपालाको तीन वार पवित्र करके सूर्यकी समान त्वचा वाली कर दिया है ॥ ४१ ॥

आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम् ।
पत्युरनुव्रता भूत्वा सं नह्यस्वामृताय कम् ॥ ४२ ॥

आऽशासाना । सौमनसम् । प्रऽजाम् । सौभाग्यम् । रयिम् ।
पत्युः । अनुऽव्रता । भूत्वा । सम् । नह्यस्व । अमृताय । कम् ४२

तू मनकी प्रसन्नताको प्रजाको सौभाग्यको और धनको चाहती हुई पतिके अनुकूल रह अमृतत्वके इस सुखको बाँध ॥ ४२ ॥

यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा ।
एवा त्वं सम्राज्ञ्येधि पत्युरस्तं परेत्य ॥ ४३ ॥

यथा । सिन्धुः । नदीनाम् । साम्ऽराज्यम् । सुसुवे । वृषा ।
एव । त्वम् । सम्ऽराज्ञी । एधि । पत्युः । अस्तम् । पराऽइत्य ४३

जैसे रत्नोंकी वर्षा करने वाला समुद्र नदियोंके साम्राज्यको भोगता है, इसी प्रकार तू भी पतिके घरमें जाकर सम्राज्ञी बन कर रह ॥ ४३ ॥

सम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु सम्राज्ञ्युत देवृषु ।
ननान्दुः सम्राज्ञ्येधि सम्राज्ञ्युत श्वश्र्वाः ॥ ४४ ॥

सम्ऽराज्ञी । एधि । श्वशुरेषु । सम्ऽराज्ञी । उत । देवृषु ।
ननान्दुः । सम्ऽराज्ञी । एधि । सम्ऽराज्ञी । उत । श्वश्र्वाः ४४

तू श्वशुरोंमें साम्राज्ञी बन कर रह, तू देवरोंमें साम्राज्ञी बन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर रह, तू नन्दोंमें साम्राज्ञी बनकर रह और तू सासोंमें साम्राज्ञी बन कर रह ॥ ४४ ॥

या अकृन्तन्नवयन् याश्च तत्निरे या देवीरन्ताँ अभितोददन्त ।
तास्त्वा जरसे सं व्ययन्त्वायुष्मतीदं परि धत्स्व वासः

याः । अकृन्तन् । अवयन् । याः । च । तत्निरे । याः । देवीः । अन्तान् । अभितः । अददन्त ।

ताः । त्वा । जरसे । सम् । व्ययन्तु । आयुष्मती । इदम् । परि । धत्स्व । वासः ॥ ४५ ॥

जिन स्त्रियोंने इस वस्त्रको काता है बुना है फैलाया है और इनको पूर्ण किया है, वे देवियें तुझको बुढ़ापे तक पहुँचावें, हे आयुष्मति ! तू इस वस्त्रको पहिर ॥ ४५ ॥

जीवं रुदन्ति वि नयन्त्यध्वरं दीर्घामनु प्रसितिं दीध्युर्नरः ।
वामं पितृभ्यो य इदं समीरिरे मयः पतिभ्यो जनये परिष्वजे ॥ ४६ ॥

जीवम् । रुदन्ति । वि । नयन्ति । अध्वरम् । दीर्घाम् । अनु । प्रऽसितिम् । दीध्युः । नरः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वामम् । पितृऽभ्यः । ये । इदम् । समूऽईरिरे । मयः । पतिऽभ्यः । जनये । परिऽस्वजे ॥ ४६ ॥

जब पुरुष कन्यारूप यज्ञको लेजाते हैं तो पुरुष विशाल सन्तान-तन्तुरूप कन्याका शोक करने लगता है उस समय इसके घरके प्राणी उस जीवके लिये रोते हैं, हे वधू ! जो इसको करते हैं वे पितरोंके लिये वाम करते हैं अत एव तू पालक श्वशुर आदिके लिये और उत्पादक मातृकुलके लिये आलिंगन कर ॥ ४६ ॥

स्योनं ध्रुवं प्रजायै धारयामि तेश्मानं देव्याः पृथिव्या उपस्थे ।
तमा तिष्ठानुमाद्या सुवर्चा दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥ ४७ ॥

स्योनम् । ध्रुवम् । प्रऽजायै । धारयामि । ते । अश्मानम् । देव्याः । पृथिव्याः । उपऽस्थे ।
तम् । आ । तिष्ठ । अनुऽमाद्या । सुऽवर्चाः । दीर्घम् । ते । आयुः । सविता । कृणोतु ॥ ४७ ॥

मैं इस सुखप्रद ध्रुव पत्थरको पृथ्वीदेवीकी गोदमें स्थापित करता हूँ, तू सुन्दर कान्ति वाली और प्रसन्न करती हुई इस पत्थर पर बैठ सविता देवता तेरी आयुको बड़ी करें ॥ ४७ ॥

येनाग्निरस्य भूम्या हस्तं जग्राह दक्षिणम् ।
तेन गृह्णामि ते हस्तं मा व्यथिष्ठा मया सह प्रजया च धनेन च ॥ ४८ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

येन । अग्निः । अस्याः । भूम्याः । हस्तम् । जग्राह । दक्षिणम् ।

तेन । गृह्णामि । ते । हस्तम् । मा । व्यथिष्ठाः । मया । सह । प्रऽजया । च । धनेन । च ॥ ४८ ॥

जिस आशयसे अग्निदेवने इस भूमिके दाहिने हाथको पकड़ा है उसी भावसे मैं तेरे हाथको पकड़ता हूँ, तू व्यथित न हो मेरे साथ प्रजा और धनके साथ रह ॥ ४८ ॥

देवस्ते सविता हस्तं गृह्णातु सोमो राजा सुप्रजसं कृणोतु अग्निः सुभगां जातवेदाः पत्ये पत्नीं जरदष्टिं कृणोतु

देवः । ते । सविता । हस्तम् । गृह्णातु । सोमः । राजा । सुऽप्रजसम् । कृणोतु ।

अग्निः । सुऽभगाम् । जातऽवेदाः । पत्ये । पत्नीम् । जरत्ऽअष्टिम् । कृणोतु ॥ ४९ ॥

सविता देवता तेरे हाथको ग्रहण करें अर्थात् सविता देवताकी समान मैं तेरे हाथको पकड़ता हूँ, राजा सोम तुझको सुन्दर प्रजा वाली करें, जातवेदा अग्नि तुझको सौभाग्यवती और पतिके साथ बुढ़ापे तक रहने वाली करें ॥ ४९ ॥

गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः भगो अर्यमा सविता पुरंधिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः

गृह्णामि । ते । सौभगऽत्वाय । हस्तम् । मया । पत्या । जरत्ऽअष्टिः । यथाः । असः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भगः । अर्यमा । सविता । पुरम्ऽधिः । मह्यम् । त्वा । अदुः ।
गार्हऽपत्याय । देवाः ॥ ५० ॥

हे कन्ये ! जिस प्रकार तू मुझ पतिके साथ बुढ़ापे तक रहे इस प्रकार मैं तेरे हाथको सौभाग्यके लिये ग्रहण करता हूँ, । भगदेवता अर्यमा देवता सवितादेवता और लक्ष्मीने तुझको गृहस्थाश्रमके लिये मुझको दिया है ॥ ५० ॥ (५)

भगस्ते हस्तमग्रहीत् सविता हस्तमग्रहीत् ।
पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव ॥ ५१ ॥

भगः । ते । हस्तम् । अग्रहीत् । सविता । हस्तम् । अग्रहीत् ।
पत्नी । त्वम् । असि । धर्मणा । अहम् । गृहऽपतिः । तव ॥ ५१ ॥

भगदेवताने तेरे हाथको पकड़ा है, सविता देवताने तेरे हाथको पकड़ा है अर्थात् मेरे रूपमें इन देवताओंने ही तुझ पर अनुग्रह किया है, तू धर्मपूर्वक मेरी पत्नी है और मैं तेरा गृहपति हूँ ५१

ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः ।
मया पत्या प्रजावति सं जीव शरदः शतम् ॥५२॥

मम । इयम् । अस्तु । पोष्या । मह्यम् । त्वा । अदात् । बृहस्पतिः ।
मया । पत्या । प्रजाऽवति । सम् । जीव । शरदः । शतम् ॥५२॥

यह मेरी पोष्या हो, बृहस्पति देवताने तुझको मुझे दिया है, मुझ पतिके साथ तू प्रजासे सम्पन्न रहती हुई सौ वर्ष तक जीवित रह

त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्यामिव परि धत्तां प्रजया

त्वष्टा । वासः । विः । अदधात् । शुभे । कम् । बृहस्पतेः । प्रऽशिषा । कवीनाम् ।

तेन । इमाम् । नारीम् । सविता । भगः । च । सूर्याम्ऽइव । परि । धत्ताम् । प्रऽजया ॥ ५३ ॥

हे शुभे ! बृहस्पतिदेवकी और बुद्धिमानोंकी आज्ञानुसार त्वष्टाने इस सुखप्रद वस्त्रको बनाया है सविता देवता और भग देवता सूर्याकी समान इस वस्त्रसे इस नारीको प्रजाके द्वारा पुष्ट करें ॥ ५३ ॥

इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा ।

बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु ५४

इन्द्राग्नी इति । द्यावापृथिवी इति । मातरिश्वा । मित्रावरुणा । भगः । अश्विना । उभा ।

बृहस्पतिः । मरुतः । ब्रह्म । सोमः । इमाम् । नारीम् । प्रऽजया । वर्धयन्तु ॥ ५४ ॥

इन्द्र अग्नि द्यावापृथिवी वायु मित्र वरुण भग दोनों–अश्विनीकुमार बृहस्पति मरुद्गण ब्रह्म और सोम देवता इस नारीको प्रजासे बढ़ावें ॥ ५४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बृहस्पतिः प्रथमः सूर्यायाः शीर्षे केशाँ अकल्पयत् ।
तेनेमामश्विना नारीं पत्ये सं शोभयामसि ॥५५॥

बृहस्पतिः । प्रथमः । सूर्यायाः । शीर्षे । केशान् । अकल्पयत् ।
तेन । इमाम् । अश्विना । नारीम् । पत्ये । सम् । शोभयामसि

हे अश्विनीकुमारों ! देवताओंमें प्रथम बृहस्पतिने सूर्याके शिर में केशोंको ठीक किया था, हम वस्त्रके द्वारा और बृहस्पतिके उस कृत्यके अनुसार उस नारीको पतिके लिये सुशोभित करते हैं

इदं तद्रूपं यदवस्त योषा जायां जिज्ञासे मनसा चरन्तीम्
तामन्वर्तिष्ये सखिभिर्नवग्वैः क इमान् विद्वान् वि चचर्त पाशान् ॥ ५६ ॥

इदम् । तत् । रूपम् । यत् । अवस्त । योषा । जायम् । जिज्ञासे ।
मनसा । चरन्तीम् ।
ताम् । अनु । अर्तिष्ये । सखिऽभिः । नवऽग्वैः । कः । इमान् ।
विद्वान् । वि । चचर्त । पाशान् ॥ ५६ ॥

यह वह रूप है जिसको योषा धारण करती है मैं इस मनमें विचार करती हुई योषाको जानता हूँ, मैं इसकी नवीन गति वाली सखियोंके अनुकूल चलूँगा, किस विद्वान्ने इन केशोंको गूँथा है ॥ ५६ ॥

अहं विष्यामि मयि रूपमस्या वेदादित् पश्यन् मनसः कुलायम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये स्वयं श्रथ्नानो वरुणस्य पाशान् ॥ ५७ ॥

अहम् । वि । स्यामि । मयि । रूपम् । अस्याः । वेदत् । इत् । पश्यन् । मनसः । कुलायम् ।

न । स्तेयम् । अद्मि । मनसा । उत् । अमुच्ये । स्वयम् । श्रथ्नानः । वरुणस्य । पाशान् ॥ ५७ ॥

मैं इसके मनके घरको जानता हुआ और इसके रूपको देखता हुआ उसको अपनेमें बाँधता हूँ मैं चोरीका उपभोग नहीं करता हूँ मन लगाकर स्वयं गूँथता हुआ वरुणके पाशोंको खोलता हूँ ५७

प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवाः ।

उरुं लोकं सुगमत्र पन्थां कृणोमि तुभ्यं सहपत्न्यै वधु

प्र । त्वा । मुञ्चामि । वरुणस्य । पाशात् । येन । त्वा । अबध्नात् । सविता । सुऽशेवाः ।

उरुम् । लोकम् । सुऽगम् । अत्र । पन्थाम् । कृणोमि । तुभ्यम् । सहऽपत्न्यै । वधु ॥ ५८ ॥

सविता देवताने जिस वरुणपाशसे तुझको बाँध दिया था उस वरुणके पाशसे सुखको देने वाला मैं तुझको छुड़ाता हूँ । हे वधू ! मैं तुझ पत्नीके साथ विशाल लोकके मार्गको सुगम करता हूँ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उद्यच्छध्वमप रक्षो हनाथेमां नारीं सुकृते दधात ।
धाता विपश्चित् पतिमस्यै विवेद भगो राजा पुरएतु
प्रजानन् ॥ ५९ ॥

उत् । यच्छध्वम् । अप । रक्षः । हनाथ । इमाम् । नारीम् ।
सुऽकृते । दधात ।
धाता । विपःऽचित् । पतिम् । अस्यै । विवेद । भगः । राजा ।
पुरः । एतु । प्रऽजानन् ॥ ५९ ॥

जलप्रदान करिये, राक्षसोंका संहार करिये और इस नारीको पुण्यमें स्थापित करिये, विद्वान् धाताने इसको पति प्राप्त कराया है विद्वान् राजा भग इसके सामने आवें ॥ ५९ ॥

भगस्ततक्ष चतुरः पादान् भगस्ततक्ष चत्वार्युष्पलानि ।
त्वष्टा पिपेश मध्यतोनु वर्ध्रान्त्सा नो अस्तु सुमङ्गली ६०

भगः । ततक्ष । चतुरः । पादान् । भगः । ततक्ष । चत्वारि ।
उष्पलानि ।
त्वष्टा । पिपेश । मध्यतः । अनु । वर्ध्रान् । सा । नः । अस्तु ।
सुऽमङ्गली ॥ ६० ॥

भग देवताने इसके चारों पादोंको और चारों उष्पलोंको तयार किया है और मध्यमें वर्ध्रोंको तयार किया है वह हमें सुमंगल देने वाली हो ॥ ६० ॥

सुकिंशुकं वहतुं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पतिभ्यो वहतुं कृणु त्वम् ॥ ६१ ॥

सुऽकिंशुकम् । वहतुम् । विश्वऽरूपम् । हिरण्यऽवर्णम् । सुऽवृतम् । सुऽचक्रम् ।

आ । रोह । सूर्ये । अमृतस्य । लोकम् । स्योनम् । पतिऽभ्यः । वहतुम् । कृणु । त्वम् ॥ ६१ ॥

हे सूर्ये-वधू ! मनुष्योंको भली प्रकार दमकाने वाले अनेक प्रकारके वर्णसे सम्पन्न, सुखपूर्वक वरण करने योग्य, सुदीप्ति-सम्पन्न दहेज पर तू आरोहण करे और इस जलस्थानकी समान विशाल दहेजको तू श्वशुर सास पति आदि पालकोंके लिये सुखप्रद कर ॥ ६१ ॥

अभ्रातृघ्नीं वरुणापशुघ्नीं बृहस्पते ।
इन्द्रापतिघ्नीं पुत्रिणीमास्मभ्यं सवितर्वह ॥ ६२ ॥

अभ्रातृऽघ्नीम् । वरुण । अपशुऽघ्नीम् । बृहस्पते ।

इन्द्र । अपतिऽघ्नीम् । पुत्रिणीम् । आ । अस्मभ्यम् । सवितः । वह ॥ ६२ ॥

हे वरुण ! हे बृहस्पते ! हे इन्द्र ! और हे सविता देव ! आप इस वधूको भ्राता पशु और पतिको क्षति न पहुँचाने वाली और पुत्रोंसे सम्पन्न होने वालीके रूपमें प्राप्त हमें कराइये ॥ ६२ ॥

मा हिंसिष्टं कुमार्यं१ स्थूणे देवकृते पथि ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शालाया देव्या द्वारं स्योनं कृण्मो वधूपथम् ॥ ६३ ॥

मा । हिंसिष्टम् । कुमार्यम् । स्थूणे इति । देवऽकृते । पथि ।

शालायाः । देव्याः । द्वारम् । स्योनम् । कृण्मः । वधूऽपथम् ६३

हे देव ! देवकृत स्थूण मार्गमें कुमारीका वहन करने वाले रथ को क्षति न पहुँचाइये, हम शालादेवीके द्वार पर वधूके मार्गको सुखदायक बनाते हैं ॥ ६३ ॥

ब्रह्मापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं ब्रह्मान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः अनाव्याधां देवपुरां प्रपद्य शिवा स्योना पतिलोके वि राज ॥ ६४ ॥

ब्रह्म । अपरम् । युज्यताम् । ब्रह्म । पूर्वम् । ब्रह्म । अन्ततः । मध्यतः । ब्रह्म । सर्वतः ।

अनाव्याधाम् । देवऽपुराम् । प्रऽपद्य । शिवा । स्योना । पतिऽलोके । वि । राज ॥ ६४ ॥

प्रथमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

इति प्रथमोनुवाकः ॥

ब्राह्मण (वा मंत्र) आगे पीछे भीतर मध्यमें और सब ओर रहें, तू व्याधियोंसे रहित और जिसमें पहिले देवता रहते हैं ऐसी शालाको प्राप्त होकर पतिके घरमें कल्याण करती हुई और सुख देती हुई दमकती रह ॥ ६४ ॥ (६)

प्रथम अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (५११)

प्रथम अनुवाक समाप्त ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह ।
स नः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥ १ ॥

तुभ्यम् । अग्ने । परि । अवहन् । सूर्याम् । वहतुना । सह ।
सः । नः । पतिऽभ्यः । जायाम् । दाः । अग्ने । प्रऽजया । सह १

हे अग्निदेव ! आपके लिये ही पहिले समयमें दहेजके साथ सूर्याको लाये थे, वह आप हम पालकोंको प्रजाके साथ जाया दीजिये ॥ १ ॥

पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा ।
दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥ २ ॥

पुनः । पत्नीम् । अग्निः । अदात् । आयुषा । सह । वर्चसा ।
दीर्घऽआयुः । अस्याः । यः । पतिः । जीवाति । शरदः । शतम् २

अग्निने हमको आयु और वर्चके साथ पत्नी दी है अब इसका जो पति है वह दीर्घायु हो और सौ वर्ष तक जीवित रहे ॥ २ ॥

सोमस्य जाया प्रथमं गन्धर्वस्तेपरः पतिः ।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥ ३ ॥

सोमस्य । जाया । प्रथमम् । गन्धर्वः । ते । अपरः । पतिः ।
तृतीयः । अग्निः । ते । पतिः । तुरीयः । ते । मनुष्यऽजाः ॥ ३ ॥

तू पहिले सोमकी जाया हुई फिर गंधर्व तेरा दूसरा रक्षक हुआ अग्नि तेरा तीसरा रक्षक हुआ चौथा मनुष्यसे उत्पन्न हुआ मैं तेरा चौथा पति हूँ ॥ ३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सोमो ददद् गन्धर्वाय गन्धर्वो दददग्नये ।
रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ॥ ४ ॥

सोमः । ददत् । गन्धर्वाय । गन्धर्वः । ददत् । अग्नये ।
रयिम् । च । पुत्रान् । च । अदात् । अग्निः । मह्यम् । अथो इति ।
इमाम् ॥ ४ ॥

सोमने गंधर्वको दिया, गंधर्वने तुमको अग्निके अर्पण किया अग्निदेवने मुझको इसको तथा धन और पुत्रोंको दिया है ॥ ४ ॥

आ वामगन्त्सुमतिर्वाजिनीवसू न्यश्विना हृत्सु कामा अरंसत ।
अभूतं गोपा मिथुना शुभस्पती प्रिया अर्यम्णो दुर्यां अशीमहि ॥ ५ ॥

आ । वाम् । अगन् । सुऽमतिः । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू ।
नि । अश्विना । हृत्ऽसु । कामाः । अरंसत ।
अभूतम् । गोपा । मिथुना । शुभः । पती इति । प्रियाः । अर्यम्णः ।
दुर्यान् । अशीमहि ॥ ५ ॥

हे उषःकालके धनसे सम्पन्न अश्विनीकुमारों ! जो कामनाएँ तुम्हारे हृदयमें रमण करती रहती हैं वह और तुम्हारी अनुग्रहात्मिका शुभ बुद्धि हमको प्राप्त हो, हे शुभस्पती अश्विनीकुमारों ! तुम हमारे रक्षक बनो और प्रिय बनो हम सूर्यदेवके प्रतापसे घरोंको भोगें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सा मन्दसाना मनसा शिवेन रयिं धेहि सर्ववीरं वचस्यम् ।
सुगं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती स्थाणुं पथिष्ठामप दुर्मतिं हतम् ॥ ६ ॥

सा । मन्दसाना । मनसा । शिवेन । रयिम् । धेहि । सर्वऽवीरम् । वचस्यम् ।
सुऽगम् । तीर्थम् । सुऽप्रपानम् । शुभः । पती इति । स्थाणुम् । पथिऽस्थाम् । अप । दुःऽमतिम् । हतम् ॥ ६ ॥

वह तू कल्याणमय प्रसन्न मनसे सब वीरोंसे सम्पन्न बलप्रद धनको पुष्ट कर हे शोभन अलंकारको धारण करने वाले अश्विनीकुमारों ! तुम इस सुप्रपान तीर्थको सुगम करो मार्गमें स्थित स्थाणु को और दुर्मतिको नष्ट करो ॥ ६ ॥

या ओषधयो या नद्यो३ यानि क्षेत्राणि या वना ।
तास्त्वा वधु प्रजावतीं पत्ये रक्षन्तु रक्षसः ॥ ७ ॥

या । ओषधयः । याः । नद्यः । यानि । क्षेत्राणि । या । वना ।
ताः । त्वा । वधु । प्रजाऽवतीम् । पत्ये । रक्षन्तु । रक्षसः ॥ ७ ॥

हे वधु ! जो औषधियें नदियें क्षेत्र और वन हैं वे तुझको प्रजा से सम्पन्न करें और पतिके लिये राक्षससे रक्षित रक्खें ॥ ७ ॥

एमं पन्थामरुक्षाम सुगं स्वस्तिवाहनम् ।
यस्मिन् वीरो न रिष्यत्यन्येषां विन्दते वसु ॥ ८ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आ । इमम् । पन्थाम् । अरुक्षाम । सुऽगम् । स्वस्तिवाहनम् ।

यस्मिन् । वीरः । न । रिष्यति । अन्येषाम् । विन्दते । वसु ८

कल्याणमय वाहन वाले हम इस सुगम मार्गमें चढ़ते हैं, इस मार्गमें वीर मारा नहीं जाता और दूसरोंके धनको पाता है॥८॥

इदं सु मे नरः शृणुत ययाशिषा दंपती वाममश्नुतः।
ये गन्धर्वा अप्सरसश्च देवीरेषु वानस्पत्येषु येधि तस्थुः।
स्योनास्ते अस्यै वध्वै भवन्तु मा हिंसिषुर्वहतुमुह्यमानम्

इदम् । सु । मे । नरः । शृणुत । यया । आऽशिषा । दंपती इति ।

दम्ऽपती । वामम् । अश्नुतः ।

ये । गन्धर्वाः । अप्सरसः । च । देवीः । एषु । वानस्पत्येषु ।

ये । अधि । तस्थुः ।

स्योनाः । ते । अस्यै । वध्वै । भवन्तु । मा । हिंसिषुः । वहतुम् ।

उह्यमानम् ॥ ९ ॥

हे मनुष्यों ! तुम मेरी इस वाणीको सुनो, कि-जिस आशीर्वाद से दम्पति श्रेष्ठ पदार्थोंको भोग सकेंगे कि-जो इन वनस्पतियोंमें गंधर्व अप्सरा देवी हैं वे इस वधूके लिये सुखप्रद हों और इस ले जाये जाते हुए दहेजको नष्ट न करें ॥ ९ ॥

ये वध्वश्चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनाँ अनु ।
पुनस्तान् यज्ञिया देवा नयन्तु यत आगताः १०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ये । वध्वः । चन्द्रम् । वहतुम् । यक्ष्माः । यन्ति । जनान् । अनु ।

पुनः । तान् । यज्ञियाः । देवाः । नयन्तु । यतः । आऽगताः । १०

जो नाशक कारण वधूको चन्द्रमाकी समान आल्हाद देने वाले दहेजके लिये मनुष्योंकी ओर आरहे हैं, यज्ञिय देवता फिर उनको तहाँ लेजावें, कि–जहाँसे वे आरहे हैं ॥ १० ॥ (७)

मा विदन् परिपन्थिनो य आसीदन्ति दंपती ।

सुगेन दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातयः ॥ ११ ॥

मा । विदन् । परिऽपन्थिनः । ये । आऽसीदन्ति । दंपती इति

दम्ऽपती ।

सुऽगेन । दुःऽगम् । अति । इताम् । अप । द्रान्तु । अरातयः ११

जो डाँकू दम्पतिके पास आना चाहते हैं वे दम्पतीको न पा सकें हम सुगमतासे इस दुर्गम मार्गको लाँघ जावें हमारे शत्रु कुत्सित गतिको प्राप्त होवें ॥ ११ ॥

सं काशयामि वहतुं ब्रह्मणा गृहैरघोरेण चक्षुषा मित्रियेण ।

पर्याणद्धं विश्वरूपं यदस्ति स्योनं पतिभ्यः सविता तत् कृणोतु ॥ १२ ॥

सम् । काशयामि । वहतुम् । ब्रह्मणा । गृहैः । अघोरेण । चक्षुषा ।

मित्रियेण ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिऽआनद्धम् । विश्वऽरूपम् । यत् । अस्ति । स्योनम् । पतिऽभ्यः । सविता । तत् । कृणोतु ॥ १२ ॥

मैं मंत्रके द्वारा ग्रहोंके द्वारा और घोरतारहित मित्रकी समान स्निग्धता भरे नेत्रके द्वारा दहेजको दीप्त करता हूँ, इसमें जो अनेक वर्णके पदार्थ हैं सविता देवता उनको पालकोंके लिये सुखप्रद करें

शिवा नारीयमस्तमागन्निमं धाता लोकमस्यै दिदेश।
तामर्यमा भगो अश्विनोभा प्रजापतिः प्रजया वर्धयन्तु ॥ १३ ॥

शिवा । नारी । इयम् । अस्तम् । आ । अगन् । इमम् । धाता । लोकम् । अस्यै । दिदेश ।

ताम् । अर्यमा । भगः । अश्विना । उभा । प्रजाऽपतिः । प्रऽजया । वर्धयन्तु ॥ १३ ॥

यह कल्याणकारिणी नारी गृहमें आगई है धाताने इसके लिये यह घररूपलोक निर्दिष्ट किया है ऐसी वधूको अर्यमा अश्विनीकुमार भग और प्रजापति देवता प्रजासे बढ़ावें ॥१३॥

आत्मन्वत्युर्वरा नारीयमागन् तस्यां नरो वपत बीजमस्याम् ।
सा वः प्रजां जनयद् वक्षणाभ्यो बिभ्रती दुग्धमृषभस्य रेतः ॥ १४ ॥

आत्मन्ऽवती । उर्वरा । नारी । इयम् । आ । अगन् । तस्याम् । नरः । वपत । बीजम् । अस्याम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सा । वः । प्रऽजाम् । जनयत् । वक्षणाभ्यः । बिभ्रती । दुग्धम् ।

ऋषभस्य । रेतः ॥ १४ ॥

यह आत्मन्वती उर्वरा नारी आगई है, हे नर! तू इसमें बीज को बो, यह ऋषभकी समान तेरे वीर्य और दुग्धको धारण करती हुई वक्षणाओंसे तुम्हारे लिये प्रजाको उत्पन्न करे ॥ १४ ॥

प्रति तिष्ठ विराडसि विष्णुरिवेह सरस्वति ।

सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् ॥१५॥

प्रति । तिष्ठ । विऽराट् । असि । विष्णुःऽइव । इह । सरस्वति ।

सिनीवालि । प्र । जायताम् । भगस्य । सुऽमतौ । असत् ॥१५॥

हे सरस्वति ! तू प्रतिष्ठित हो तू विष्णुकी समान विराट् है, हे सिनीवालि ! तू भग देवताकी सुमतिमें रह और तुझमें सन्तान उत्पन्न होवे ॥ १५ ॥

उद् वः ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत ।

मादुष्कृतौ व्येनसावघ्न्यावशुनमारताम् ॥ १६ ॥

उत् । वः । ऊर्मिः । शम्याः । हन्तु । आपः । योक्त्राणि । मुञ्चत ।

मा । अदुःऽकृतौ । विऽएनसौ । अघ्न्यौ । अशुनम् । आ । अरताम्

हे जलों ! जो तुम्हारी कर्मकी लहर है उसको अब शान्त करो, लगामोंको छोड़ दो, ये दुष्कृत रहित और विपाप अतएव न पीटने योग्य वाहन अशुनका आरंभ न करें ॥ १६ ॥

अघोरचक्षुरपतिघ्नी स्योना शग्मा सुशेवा सुयमा गृहेभ्यः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वीरसूर्देवृकामा सं त्वयैधिषीमहि सुमनस्यमाना १७

अघोरऽचक्षुः । अपतिऽघ्नी । स्योना । शग्मा । सुऽशेवा । सुऽयमा । गृहेभ्यः ।

वीरऽसूः । देवृऽकामा । सम् । त्वया । एधिषीमहि । सुऽमनस्यमाना

हे वधु ! तू मनमें प्रसन्न होती हुई, वीर पुत्रोंको उत्पन्न करने के लिये, देवृकामा और स्निग्ध दृष्टि रखती हुई, पतिको क्षति न पहुँचाती हुई सबको वशमें रखती हुई सुखदायिनी बन कर गृहको प्राप्त हो हम तुझसे वृद्धिको प्राप्त होवें ॥ १७ ॥

अदेवृघ्न्यपतिघ्नीहैधि शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः ।
प्रजावती वीरसूर्देवृकामा स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य

अदेऽवृघ्नी । अपतिऽघ्नी । इह । एधि । शिवा । पशुऽभ्यः । सुऽयमा । सुऽवर्चाः ।

प्रजाऽवती । वीरऽसूः । देवृऽकामा । स्योना । इमम् । अग्निम् । गार्हऽपत्यम् । सपर्य ॥ १८ ॥

तू देवर और पतिको क्षति न पहुँचाती हुई, पशुओंके लिये कल्याणकारिणी रहती हुई, सुन्दर कांतिसे सम्पन्न रहती हुई, नियममें रहती हुई प्रजासे सम्पन्न रहती हुई वीरोंको उत्पन्न करती हुई, सुखदायिनी बनती हुई देवरका हित चाहती हुई इस अग्निकी पूजा कर ॥ १८ ॥

उत्तिष्ठतः किमिच्छन्तीदमागा अहं त्वेडे अभिभूः स्वाद् गृहात् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शून्यैषी निर्ऋते याजगन्धोत्तिष्ठाराते प्र पत मेह रंस्थाः ॥ १९ ॥

उत् । तिष्ठ । इतः । किम् । इच्छन्ती । इदम् । आ । अगाः । अहम् । त्वा । ईडे । अभिऽभूः । स्वात् । गृहात् ।

शून्यऽएषी । निःऽऋते । या । आऽजगन्थ । उत् । तिष्ठ । अराते । प्र । पत । मा । इह । रंस्थाः ॥ १९ ॥

हे निर्ऋते ! तू यहाँसे उठ, तू किस वस्तुकी चाहनासे यहाँ आई है, अपने घरसे तिरस्कार करता हुआ मैं तेरा सत्कार करता हूँ; तू शून्यकी इच्छा करती हुई जो आई है, सो हे शत्रुरूपिणी ! तू उठ, यहाँ रमण न कर ॥ १९ ॥

यदा गार्हपत्यमसपर्यैत् पूर्वमग्निं वधूरियम् ।
अधा सरस्वत्यै नारि पितृभ्यश्च नमस्कुरु ॥ २० ॥

यदा । गार्हऽपत्यम् । असपर्यैत् । पूर्वम् । अग्निम् । वधूः । इयम् । अध । सरस्वत्यै । नारि । पितृभ्यः । च । नमः । कुरु ॥ २० ॥

गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेसे पहिले यह वधू अग्निकी पूजा कर रही है, अब हे नारि ! तू सरस्वती देवीके लिये और पितरोंके लिये प्रणाम कर ॥ २० ॥ (८)

शर्म वर्मैतदा हरास्यै नार्या उपस्तरे ।
सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् ॥ २१ ॥

शर्म । वर्म । एतत् । आ । हर । अस्यै । नार्यै । उपऽस्तरे ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिनीवालि । प्र । जायताम् । भगस्य । सुऽमतौ । असत् ॥२१॥

इस नारीके लिये आसनरूप मृगचर्ममें कल्याण और रक्षाको ला, यह भग देवताकी प्रसन्तामें रहे अर्थात् सौभाग्यसे सम्पन्न रहे, हे सिनीवालि ! यह सन्तानको उत्पन्न करती रहे ॥ २१ ॥

यं बल्बजं न्यस्यथ चर्म चोपस्तृणीथन ।
तदा रोहतु सुप्रजा या कन्या विन्दते पतिम् २२

यम् । बल्बजम् । निऽअस्यथ । चर्म । च । उपऽस्तृणीथन ।
तत् । आ । रोहतु । सुऽप्रजाः । या । कन्या । विन्दते । पतिम् २२

तुम जिस तृणको रख रहे हो और मृगचर्मको रख रहे हो, उस पर सुन्दर प्रजासे सम्पन्न होने वाली और पतिको प्राप्त होने वाली कन्या आरोहण करे ॥ २२ ॥

उप स्तृणीहि बल्बजमधि चर्मणि रोहिते ।
तत्रोपविश्य सुप्रजा इममग्निं सपर्यतु ॥ २३ ॥

उप । स्तृणीहि । बल्बजम् । अधि । चर्मणि । रोहिते ।
तत्र । उपऽविश्य । सुऽप्रजाः । इमम् । अग्निम् । सपर्यतु ॥२३॥

रोहितमृगके चर्म पर बल्बजको फैलाओ, उसके ऊपर बैठ कर यह सुप्रजा नारी अग्निकी पूजा करे ॥ २३ ॥

आ रोह चर्मोप सीदाग्निमेष देवो हन्ति रक्षांसि सर्वा
इह प्रजां जनय पत्ये अस्मै सुज्यैष्ठ्यो भवत् पुत्रस्त एषः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आ । रोह । चर्म । उप । सीद । अग्निम् । एषः । देवः । हन्ति ।
रक्षांसि । सर्वा ।
इह । प्रऽजाम् । जनय । पत्ये । अस्मै । सुऽज्यैष्ठ्यः । भवत् ।
पुत्रः । ते । एषः ॥ २४ ॥

तू मृगचर्म पर आरोहण कर और इन अग्निदेवके समीप बैठ। यह देव सब राक्षसोंका संहार करते हैं, तू इस घरमें पतिके लिये सन्तानको उत्पन्न कर, यह तेरा पुत्र ज्येष्ठ होगा ॥ २४ ॥

वि तिष्ठन्तां मातुरस्या उपस्थान्नानारूपाः पशवो जायमानाः ।
सुमङ्गल्युप सीदेममग्निं संपत्नी प्रति भूषेह देवान् २५

वि । तिष्ठन्ताम् । मातुः । अस्याः । उपऽस्थात् । नानाऽरूपाः ।
पशवः । जायमानाः ।
सुऽमङ्गली । उप । सीद । इमम् । अग्निम् । सम्ऽपत्नी । प्रति ।
भूष । इह । देवान् ॥ २५ ॥

इस माताकी गोदीसे अनेक प्रकारके जीव प्रकट होकर इसमें बैठें, हे सुमंगली ! तू इन अग्निदेवके समीप बैठ और इन सब देवताओंको अलंकृत कर ॥ २५ ॥

सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुराय शंभूः
स्योना श्वश्र्वै प्र गृहान् विशेमान् ॥ २६ ॥

सुऽमङ्गली । प्रऽतरणी । गृहाणाम् । सुऽशेवा । पत्ये । श्वशुराय ।
शम्ऽभूः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्योना । श्वश्र्वै । प्र । गृहान् । विश । इमान् ॥ २६ ॥

तू सुमंगली और घरको चलाने वाली, पतिके लिये सुख देने वाली और श्वशुरके लिये कल्याणकारिणी और सासको सुख देने वाली रहती हुई उस घरमें प्रवेश कर ॥ २६ ॥

स्योना भव श्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः ।
स्योनास्यै सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टायैषां भव ।२७।

स्योना । भव । श्वशुरेभ्यः । स्योना । पत्ये । गृहेभ्यः ।
स्योना । अस्यै । सर्वस्यै । विशे । स्योना । पुष्टाय । एषाम् । भव

तू श्वशुरोंके लिये कल्याणकारिणी रह, पतिके लिये और घरके लिये सुखद रह, सब प्रजाको सुख देती रह और इनकी पुष्टिके लिये इनको सुखदायिनी हो ॥ २७ ॥

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वा दौर्भाग्यैर्विपरेतन ॥ २८ ॥

सुऽमङ्गलीः । इयम् । वधूः । इमाम् । सम्ऽएत । पश्यत ।
सौभाग्यम् । अस्यै । दत्त्वा । दौःऽभाग्यैः । विऽपरेतन ॥ २८ ॥

यह वधू सुमंगली है, मिल कर आओ, इसको देखो, इसको सौभाग्य देकर दौर्भाग्योंको ले जाओ ॥ २८ ॥

या दुर्हार्दो युवतयो याश्चेह जरतीरपि ।
वर्चो न्वस्यै सं दत्ताथास्तं विपरेतन ॥ २९ ॥

याः । दुःहार्दः । युवतयः । याः । च । इह । जरतीः । अपि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्चः । नु । अस्यै । सम् । दत्त । अथ । अस्तम् । विऽपरेतन२९

जो दूषित हृदय वाली स्त्रियें हैं और जो बूढ़ी स्त्रियें हैं वे इसके लिये तेज देकर अपने घरको लौट जावें ॥ २९ ॥

रुक्मप्रस्तरणं वह्यं विश्वा रूपाणि बिभ्रतम् ।
आरोहत् सूर्या सावित्री बृहते सौभगाय कम् ३०

रुक्मऽप्रस्तरणम् । वह्यम् । विश्वा । रूपाणि । बिभ्रतम् ।

आ । अरोहत् । सूर्या । सावित्री । बृहते । सौभगाय । कम् ३०

मनको रुचने वाले बिछौने वाले अनेक प्रकारके रूपोंको धारण करने वाले इस विशाल (पलंग) पर सूर्यकी पुत्री सूर्याने सुख पानेके लिये आरोहण किया था ॥ ३० ॥ (९)

आ रोह तल्पं सुमनस्यमानेह प्रजां जनय पत्ये अस्मै ।
इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि ॥ ३१ ॥

आ । रोह । तल्पम् । सुऽमनस्यमाना । इह । प्रऽजाम् । जनय । पत्ये । अस्मै ।

इन्द्राणीऽइव । सुऽबुधा । बुध्यमाना । ज्योतिःऽअग्राः । उषसः । प्रति । जागरासि ॥ ३१ ॥

तू प्रसन्न मनसे इस शय्या पर आरोहण कर और इस पतिके लिये यहाँ प्रजाको उत्पन्न कर तू इन्द्राणीकी समान बुद्धिसे सम्पन्न रहकर समझती रह और प्रत्येक उषःकालमें जागती रह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवा अग्रे न्यपद्यन्त पत्नीः समस्पृशन्त तन्वस्तनूभिः।
सूर्येव नारि विश्वरूपा महित्वा प्रजावती पत्या सं भवेह ॥ ३२ ॥

देवाः। अग्रे। नि। अपद्यन्त। पत्नीः। सम्। अस्पृशन्त।
तन्वः। तनूभिः।
सूर्याऽइव। नारि। विश्वऽरूपा। महिऽत्वा। प्रजाऽवती। पत्या।
सम्। भव। इह ॥ ३२ ॥

देवताओंने भी पहिले (इसी प्रकार पर्यंक पर) आरोहण किया था और अपने अंगोंको पत्नीके अंगोंसे स्पर्श कराया था, हे नारी! तू विश्वरूपा सूर्याकी समान अपनी महिमासे पतिके साथ रह और प्रजासम्पन्न रह ॥ ३२ ॥

उत्तिष्ठतो विश्वावसो नमसेडामहे त्वा।
जामिमिच्छ पितृषदं न्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि ॥ ३३ ॥

उत्। तिष्ठ। इतः। विश्ववसो इति विश्वऽवसो। नमसा। ईडामहे। त्वा।
जामिम्। इच्छ। पितृऽसदम्। निऽअक्ताम्। सः। ते। भागः।
जनुषा। तस्य। विद्धि ॥ ३३ ॥

हे विश्ववसो! यहाँसे उठ, हम प्रणामके द्वारा तेरा सत्कार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करते हैं, पिताके घर जाती हुई जामिनकी इच्छा कर वही तेरा भाग है उसके प्रादुर्भावको तू जान ॥ ३३ ॥

अप्सरसः सधमादं मदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च। तास्ते जनित्रमभि ताः परेहि नमस्ते गन्धर्वर्तुना कृणोमि ॥ ३४ ॥

अप्सरसः। सधऽमादम्। मदन्ति। हविःऽधानम्। अन्तरा। सूर्यम्। च।

ताः। ते। जनित्रम्। अभि। ताः। परा। इहि। नमः। ते गन्धर्वऽऋतुना। कृणोमि ॥ ३४ ॥

अप्सरायें, जहाँ प्राणी साथ २ प्रसन्न होते हैं उस स्थानमें हविर्धानके समय और सूर्यके समय हर्षमें भर जाती हैं, वह तेरे प्रकट होनेका स्थान है उनको ही तू प्राप्त हो, तेरे लिये प्रणाम है मैं तुझे गंधर्वोंके गमनके साथ भेजता हूँ ॥ ३४ ॥

नमो गन्धर्वस्य नमसे नमो भामाय चक्षुसे च कृण्मः विश्वावसो ब्रह्मणा ते नमोभि जाया अप्सरसः परेहि

नमः। गन्धर्वस्य। नमसे। नमः। भामाय। चक्षुषे। च। कृण्मः। विश्वावसो इति विश्वऽवसो। ब्रह्मणा। ते। नमः। अभि। जायाः। अप्सरसः। परा। इहि ॥ ३५ ॥

गंधर्वकी हविके लिये प्रणाम है और हम उनके क्रोधमें भरे हुए नेत्रके लिये भी प्रणाम करते हैं, हे विश्वावसो! आप मंत्रशक्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के कारण और प्रणामोंके कारण इस स्त्रीको अप्सराओंसे दूर रखिये ॥ ३५ ॥

राया वयं सुमनसः स्यामोदितो गन्धर्वमावीवृताम ।
अगन्त्स देवः परमं सधस्थमगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः

राया । वयम् । सुऽमनसः । स्याम । उत् । इतः । गन्धर्वम् । आ । अवीवृताम ।

अगन् । सः । देवः । परमम् । सधऽस्थम् । अगन्म । यत्र । प्रऽतिरन्ते । आयुः ॥ ३६ ॥

हम प्रसन्नाके देने वाले होवें; यहाँसे हम गंधर्वोंको ऊपरको भेजते हैं, वह देव परम सधस्थको प्राप्त होगया है और हम भी जहाँ आयु विस्तीर्ण होती है उस स्थान पर पहुँच गए हैं ॥३६॥

सं पितरावृत्विये सृजेथां माता पिता च रेतसो भवाथः
मर्य इव योषामधिरोहयैनां प्रजां कृण्वाथामिह पुष्यतं
रयिम् ॥ ३७ ॥

सम् । पितरौ । ऋत्विये इति । सृजेथाम् । माता । पिता । च । रेतसः । भवाथः ।

मर्यःऽइव । योषाम् । अधि । रोहय । एनाम् । प्रऽजाम् । कृण्वाथाम् । इह । पुष्यतम् । रयिम् ॥ ३७ ॥

तुम दोनों माता पिता बननेके लिये ऋतुकालमें सक्त हुआ करना, तुम वीर्यके द्वारा माता पिता बनो, जैसे मनुष्य स्त्री पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आरोहण करते है इस प्रकार आप इस स्त्री पर आरोहण करिये, तुम दोनों प्रजाको उत्पन्न करो और धनको पुष्ट करो ॥ ३७ ॥

तां पूषं छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या३ वपन्ति
या न ऊरू उशती विश्रयाति यस्यामुशन्तः प्रहरेम शेपः

ताम् । पूषन् । शिवऽतमाम् । आ । ईरयस्व । यस्याम् । बीजम् ।
मनुष्याः । वपन्ति ।

या । नः । ऊरू इति । उशती । विऽश्रयाति । यस्याम् । उशन्तः । प्रऽ-
हरेम । शेपः ॥ ३८ ॥

हे पूषन् ! जिसमें मनुष्य बीजका वपन करते हैं उस कल्याण-कारिणी स्त्रीको प्रेरित करिये, जो कामना करती हुई ऊरुओंका विश्रयण करे और हम भी कामना करते हुए जिसमें शेपका प्रहार करें ॥ ३ ॥

आ रोहोरुमुप धत्स्व हस्तं परिष्वजस्व जायां सुमन-
स्यमानः ।
प्रजां कृण्वाथामिह मोदमानौ दीर्घं वामायुः सविता
कृणोतु ॥ ३९ ॥

आ । रोह । ऊरुम् । उप । धत्स्व । हस्तम् । परि । स्वजस्व ।
जायाम् । सुऽमनस्यमानः ।

प्रऽजाम् । कृण्वाथाम् । इह । मोदमानौ । दीर्घम् । वाम् । आयुः ।
सविता । कृणोतु ॥ ३९ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तू ऊरु पर आरोहण कर, हाथको पकड़ और मनमें प्रसन्न होता हुआ जायाका आलिंगन कर। तुम दोनों मोदमें भर कर प्रजाको करो, सविता देवता तुम दोनोंकी आयुको बड़ी करें ३९

आ वां प्रजां जनयतु प्रजापतिरहोरात्राभ्यां समनक्त्वर्यमा ।
अदुर्मङ्गली पतिलोकमा विशेमं शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ ४० ॥

आ । वाम् । प्रऽजाम् । जनयतु । प्रजाऽपतिः । अहोरात्राभ्याम् । सम् । अनक्तु । अर्यमा ।
अदुःऽमङ्गली । पतिऽलोकम् । आ । विश । इमम् । शम् । नः । भव । द्विऽपदे । शम् । चतुःऽपदे ॥ ४० ॥

प्रजापति तुम दोनोंके लिये प्रजाको प्रकट करें और अर्यमा देवता तुमको दिन और रात्रिसे मिलाते रहें, हे वधू! तू दुर्मंगलों से रहित रहती हुई पतिके घरमें प्रवेश कर तू दो पैर वाले भृत्य संबंधी आदिके लिये और चौपाये गौ आदिके लिये सुख देने वाली हो ॥ ४० ॥ (१०)

देवैर्दत्तं मनुना साकमेतद् वाधूयं वासो वध्वश्च वस्त्रम् ।
यो ब्रह्मणे चिकितुषे ददाति स इद् रक्षांसि तल्पानि हन्ति ॥ ४१ ॥

देवैः । दत्तम् । मनुना । साकम् । एतत् । वाधूऽयम् । वासः । वध्वः । च । वस्त्रम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यः । ब्रह्मणे । चिकितुषे । ददाति । सः । इत् । रक्षांसि ।
तल्पानि । हन्ति ॥ ४१ ॥

मनुजीसहित देवताओंने इस वाधूय वस्त्रको दिया था, जो विद्वान् ब्राह्मणके लिये इस वधूके वस्त्रको देता है, वह खट्वा-संबंधी राक्षसोंका संहार करता है ॥ ४१ ॥

यं मे दत्तो ब्रह्मभागं वधूयोर्वाधूयं वासो वध्वश्च वस्त्रम् ।
युवं ब्रह्मणेनुमन्यमानौ बृहस्पते साकमिन्द्रश्च दत्तम् ४२

यम् । मे । दत्तः । ब्रह्मऽभागम् । वधूऽयोः । वाधूऽयम् । वासः ।
वध्वः । च । वस्त्रम् ।
युवम् । ब्रह्मणे । अनुऽमन्यमानौ । बृहस्पते । साकम् । इन्द्रः ।
च । दत्तम् ॥ ४२ ॥

जो वरका वाधूय वस्त्र और वधूका वस्त्र ब्रह्मभाग समझ कर मुझको दिया गया है, सो हे बृहस्पते ! तुम और इन्द्र दोनों ही ब्रह्माकी अनुमतिसे मुझे इसको दे चुके हो ॥ ४२ ॥

स्योनाद्योनेरधि बुध्यमानौ हसामुदौ महसा मोदमानौ
सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो जीवावुषसो विभातीः ४३

स्योनात् । योनेः । अधि । बुध्यमानौ । हसामुदौ । महसा । मोद-
मानौ ।
सुगू इति सुऽगू । सुऽपुत्रौ । सुऽगृहौ । तराथः । जीवौ । उषसः ।
विऽभातीः ॥ ४३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हम दोनों सुखप्रद कारणसे बोधको प्राप्त हों, हास्यसे मोदको प्राप्त होवें, महत्वसे मोदको प्राप्त होवें, सुन्दर चालसे चलते रहें, सुन्दर पुत्रसे सम्पन्न रहें, हम दोनों जीव दमकती हुई उषाओं को तरते रहें ॥ ४३ ॥

नवं वसानः सुरभिः सुवासा उदागां जीव उषसो विभातीः ।
आण्डात् पतत्रीवामुक्षि विश्वस्मादेनसस्परि ॥४४॥

नवम् । वसानः । सुरभिः । सुऽवासाः । उत्ऽआगाम् । जीवः । उषसः । विऽभातीः ।

आण्डात् । पतत्रीऽइव । अमुक्षि । विश्वस्मात् । एनसः । परि४४

नवीन सुगंधित सुन्दर वस्त्रको धारण करता हुआ मैं दमकते हुए उषःकालोंको जीवित रहता हुआ प्राप्त करूँ, जैसे अण्डेसे पक्षी छूट जाता है इसी प्रकार मैं सकल पापसे मुक्त हो जाऊँ ४४

शुम्भनी द्यावापृथिवी अन्तिसुम्ने महिव्रते ।
आपः सप्त सुस्रुवुर्देवीस्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ४५ ॥

शुम्भनी इति । द्यावापृथिवी इति । अन्तिसुम्ने इत्यन्तिऽसुम्ने । महिव्रते इति महिऽव्रते ।

आपः । सप्त । सुस्रुवुः । देवीः । ताः । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ४५

द्यावापृथिवी परमशोभायुक्त हैं, उनके मध्यमें चेतन और अचेतन अज्ञानावृत प्राणी रहते हैं, इनका कर्म विशाल है, ये तथा बहने वाले सात प्रकारके जल हमको पापसे मुक्त करें ॥ ४५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi.

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च ।
ये भूतस्य प्रचेतसस्तेभ्य इदमकरं नमः ॥ ४६ ॥

सूर्यायै । देवेभ्यः । मित्राय । वरुणाय । च ।
ये । भूतस्य । प्रऽचेतसः । तेभ्यः । इदम् । अकरम् । नमः ॥४६॥

सूर्याके लिये देवताओंके लिये, मित्रके लिये, वरुणके लिये, जो भूतसंघके जानने वाले हैं, उनके लिये मैं यह प्रणाम करता हूँ

य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।
संधाता संधिं मघवा पुरूवसुर्निष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥

यः । ऋते । चित् । अभिऽश्रिषः । पुरा । जत्रुऽभ्यः । आऽतृदः ।
सम्ऽधाता । सम्ऽधिम् । मघऽवा । पुरुऽवसुः । निःऽकर्ता ।
विऽह्रुतम् । पुनः ॥ ४७ ॥

जो अभिश्रिष्के विना पहिले जत्रुओंके निमित्त आतर्दन कर देता है जो मघवा संधिको जोड़ने वाला है, पुरूवसु है विह्रुतका फिर निष्करण करने वाला है ॥ ४७ ॥

अपास्मत् तम उच्छतु नीलं पिशङ्गमुत लोहितं यत्
निर्दहनी या पृषातक्यस्मिन् तां स्थाणावध्या संजामि

अप । अस्मत् । तमः । उच्छतु । नीलम् । पिशङ्गम् । उत । लोहितम् । यत् ।
निःऽदहनी । या । पृषातकी । अस्मिन् । ताम् । स्थाणौ । अधि ।
आ । सजामि ॥ ४८ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो नील पिशंग और लोहित धूम्र है वह हमारे पाससे दूर होजावे, जो भस्म करने वाली पृषातकी है उसको हम स्थाणुमें संपृक्त करते हैं ॥ ४८ ॥

यावतीः कृत्या उपवासने यावन्तो राज्ञो वरुणस्य पाशाः व्यृद्धयो या असमृद्धयो या अस्मिन् ता स्थाणावधि सादयामि ॥ ४९ ॥

यावतीः । कृत्याः । उपऽवासने । यावन्तः । राज्ञः । वरुणस्य । पाशाः ।

विऽऋद्धयः । याः । असम्ऽऋद्धयः । याः । अस्मिन् । ताः । स्थाणौ । अधि । सादयामि ॥ ४९ ॥

उपवासनमें जितनी कृत्याएँ हैं और राजा वरुणके जितने पाश हैं और व्यृद्धि वा असमृद्धि हैं उनको हम स्थाणुमें स्थापित करते हैं

या मे प्रियतमा तनूः सा मे बिभाय वाससः ।
तस्याग्रे त्वं वनस्पते नीविं कृणुष्व मा वयं रिषाम॥

या । मे । प्रियऽतमा । तनूः । सा । मे । बिभाय । वाससः ।

तस्य । अग्रे । त्वम् । वनस्पते । नीविम् कृणुष्व । मा । वयम् । रिषाम ॥ ५० ॥

जो मेरा प्रिय शरीर है वह वस्त्रसे दमकता रहे, हे वनस्पते! तू उसके आगे नीविको कर, हम नष्ट न होवें ॥ ५० ॥ (११)

ये अन्ता यावतीः सिचो य ओतवो ये च तन्तवः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वासो यत् पत्नीभिरुतं तन्नः स्योनमुप स्पृशात् ५१

ये । अन्ताः । यावतीः । सिचः । ये । ओतवः । ये । च । तन्तवः ।

वासः । यत् । पत्नीभिः । उतम् । तत् । नः । स्योनम् । उप ।

स्पृशात् ॥ ५१ ॥

जो किनारे हैं, जितने सिच् हैं, जितने ओतु और तन्तु हैं और जिस वस्त्रको पत्नियोंने बुना है वह सुखदायक होता हुआ हमारा स्पर्श करे ॥ ५१ ॥

उशतीः कन्यला इमाः पितृलोकात् पतिं यतीः ।

अव दीक्षामसृक्षत स्वाहा ॥ ५२ ॥

उशतीः । कन्यलाः । इमाः । पितृऽलोकात् । पतिम् । यतीः ।

अव । दीक्षाम् । असृक्षत । स्वाहा ॥ ५२ ॥

पिताके घरसे पतिके यहाँ जाती हुई ये कामना करती हुई कन्याएँ दीक्षाको छोड़ती हैं, यह आहुति स्वाहुत हो ॥ ५२ ॥

बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।

वर्चो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥५३॥

बृहस्पतिना । अवऽसृष्टाम् । विश्वे । देवाः । अधारयन् ।

वर्चः । गोषु । प्रऽविष्टम् । यत् । तेन । इमाम् । सम् । सृजामसि ॥

बृहस्पतिके द्वारा छोड़ी हुई इस औषधिको विश्वेदेवताओंने पुष्ट किया है उसको हम गौओंमें प्रविष्ट वर्चके द्वारा संयुक्त करते हैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बृहस्पतिना० ।

तेजो गोषु प्रविष्टं यत् तेन० ॥ ५४ ॥

०॥ तेजः । गोषु । प्रऽविष्टम् । यत् । तेन ।० ॥ ५४ ॥

बृहस्पतिके द्वारा अवसृष्ट इस औषधिको विश्वेदेवताओंने पुष्ट किया है उसको हम गौओंमें प्रविष्ट तेजके द्वारा संयुक्त करते हैं ५४

बृहस्पतिना० ।

भगो गोषु प्रविष्टो यस्तेन० ॥ ५५ ॥

०॥ भगः । गोषु । प्रऽविष्टः । यः । तेन ।० ॥ ५५ ॥

बृहस्पतिके द्वारा अवसृष्ट इस औषधिको विश्वेदेवताओंने पुष्ट किया है उसको हम गोओंमें प्रविष्ट सौभाग्यके द्वारा पुष्ट करते हैं

बृहस्पतिना० ।

यशो गोषु प्रविष्टं यत् तेन० ॥ ५६ ॥

०॥ यशः । गोषु । प्रऽविष्टम् । यत् । तेन ।० ॥ ५६ ॥

बृहस्पतिके द्वारा अवसृष्ट इस औषधिको विश्वेदेवताओंने पुष्ट किया है उसको हम गौओंमें प्रविष्ट यशके द्वारा संयुक्त करते हैं ५६

बृहस्पतिना० ।

पयो गोषु प्रविष्टं यत् तेन० ॥ ५७ ॥

०॥ पयः । गोषु । प्रऽविष्टम् । यत् । तेन ।० ॥ ५७ ॥

बृहस्पतिके द्वारा अवसृष्ट इसको विश्वेदेवताओंने पुष्ट किया है इसको हम गौओंमें प्रविष्ट पयके द्वारा संयुक्त करते हैं ॥ ५७ ॥

बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रसो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५८ ॥

बृहस्पतिना । अवऽसृष्टाम् । विश्वे । देवाः । अधारयन् ।

रसः । गोषु । प्रऽविष्टः । यः । तेन । इमाम् । सम् । सृजामसि ॥

बृहस्पतिके द्वारा अवसृष्ट इसको विश्वेदेवताओंने पुष्ट किया है इसको गौओंमें हम प्रविष्ट रसके द्वारा संयुक्त करते हैं ॥ ५८ ॥

यदीमे केशिनो जना गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वन्तोऽघम् ।

अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥५९॥

यदि । इमे । केशिनः । जनाः । गृहे । ते । सम्ऽअनर्तिषुः । रोदेन । कृण्वन्तः । अघम् ।

अग्निः । त्वा । तस्मात् । एनसः । सविता । च । प्र । मुञ्चताम् ॥

यह जो केश वाले पुरुष तेरे घरमें (कन्यागमनसे अघ करते हुए अर्थात् दुःख पाते हुए रोकर घूमे हैं, उस पापसे अग्निदेवता तुझको मुक्त करें ॥ ५९ ॥

यदीयं दुहिता तव विकेश्यरुदद् गृहे रोदेन कृण्वत्यघम् ।

अग्निष्ट्वा० ॥ ६० ॥

यदि । इयम् । दुहिता । तव । विऽकेशी । अरुदत् । गृहे । रोदेन । कृण्वती । अघम् ॥० ॥ ६० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह जो तेरी पुत्री केशोंको बखेर कर रोदनके द्वारा दुःखको फैलाती हुई रोई है उस पापसे अग्निदेवता और सवितादेवता तुझको मुक्त करें ॥ ६० ॥ (१२)

यज्जामयो यद्युवतयो गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वतीरघम् ।
अग्निष्ट्वा० ॥ ६१ ॥

यत् । जामयः । यत् । युवतयः । गृहे । ते । सम्ऽअनर्तिषु । रोदेन । कृण्वतीः । अघम् ॥० ॥ ६१ ॥

जो तेरी बहिनें और युवतियें रोदनके द्वारा घरमें दुःख फैलाती हुई घूमी हैं उस पापसे अग्निदेव और सविता-देव तुझको मुक्त करें

यत् ते प्रजायां पशुषु यद्वा गृहेषु निष्ठितमघकृद्भिरघं कृतम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ।६२।

यत् । ते । प्रऽजायाम् । पशुषु । यत् । वा । गृहेषु । निऽस्थितम् । अघकृत्ऽभिः । अघम् । कृतम् ।
अग्निः । त्वा । तस्मात् । एनसः । सविता । च । प्र । मुञ्चताम्

दुःख फैलाने वालोंने तेरे घरमें प्रजामें और पशुओंमें जो दुःख भर दिया है उस पापसे सवितादेवता और अग्नि देवता तुझको मुक्त करें ॥ ६२ ॥

इयं नार्युप ब्रूते पूल्यान्यावपन्तिका ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दीर्घायुरस्तु मे पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥ ६३ ॥

इयम् । नारी । उप । ब्रूते । पूल्यानि । आऽवपन्तिका ।

दीर्घऽआयुः । अस्तु । मे । पतिः । जीवाति । शरदः । शतम् ॥

यह खीलोंकी आहुति देती हुई नारी कहती है, कि—मेरा पति दीर्घायु हो और सौ वर्ष तक जीवित रहे ॥ ६३ ॥

इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दंपती ।

प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यश्नुताम् ॥ ६४ ॥

इह । इमौ । इन्द्र । सम् । नुद । चक्रवाकाऽइव । दंपती इति

दम्ऽपती ।

प्रऽजया । एनौ । सुऽअस्तकौ । विश्वम् । आयुः । वि । अश्नुताम्

हे इन्द्रदेव ! इन दोनों दम्पतियोंको आप चक्रवाककी समान प्रेरित रखिये, इनको प्रजासे सुन्दर घर वाले रखिये ये सारी आयु भोग भोगते रहें ॥ ६४ ॥

यदासन्द्यामुपधाने यद् वोपवासने कृतम् ।

विवाहे कृत्यां यां चक्रुरास्नाने तां नि दध्मसि ६५

यत् । आऽसन्द्याम् । उपऽधाने । यत् । वा । उपऽवासने । कृतम् ।

विऽवाहे । कृत्याम् । याम् । चक्रुः । आऽस्नाने । ताम् । नि । दध्मसि

आसन्दीमें उपधानमें वा उपवासनमें जो (पाप) बन गया है और विवाहमें जिन पुरुषोंने कृत्याकी है इन सबको स्नान करने के स्थानमें स्थापित करते हैं ॥ ६५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यत् दुष्कृतं यच्छमलं विवाहे वहतौ च यत् ।
तत् संभलस्य कम्बले मृज्महे दुरितं वयम् ॥ ६६ ॥

यत् । दुःऽकृतम् । यत् । शमलम् । विऽवाहे । वहतौ । च । यत् ।
तत् । सम्ऽभलस्य । कम्बले । मृज्महे । दुःऽइतम् । वयम् ॥६६॥

जो विवाह वा दहेजमें पाप और अपराध बन गया है उस पापको हम मिष्टभाषण करने वालेके कम्बलमें निक्षिप्त करते हैं ६६

संभले मलं सादयित्वा कम्बले दुरितं वयम् ।
अभूम यज्ञिया शुद्धाः प्र ण आयूंषि तारिषत् ६७

सम्ऽभले । मलम् । सादयित्वा । कम्बले । दुःऽइतम् । वयम् ।
अभूम । यज्ञियाः । शुद्धाः । प्र । नः । आयूंषि । तारिषत् ६७

हम यज्ञिय पुरुष संभलमें मलको स्थापित करके कम्बलमें दुरितको स्थापित करके शुद्ध होगए हैं वह देव हमारी आयुको पूर्ण करें ॥ ६७ ॥

कृत्रिमः कण्टकः शतदन् य एषः ।
अपास्याः केश्यं मलमप शीर्षण्यं लिखात् ॥ ६८ ॥

कृत्रिमः । कण्टकः । शतऽदन् । यः । एषः ।
अप । अस्याः । केश्यम् । मलम् । अप । शीर्षण्यम् । लिखात् ॥

यह सैंकड़ों दाँतों वाला कृत्रिम कंटक (कंघा) है, यह इसके शिरके मलको दूर करके शीर्षस्थानका स्पर्श करे ॥ ६८ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अङ्गादङ्गाद् वयमस्या अप यक्ष्मं नि दध्मसि ।
तन्मा प्रापत् पृथिवीं मोत देवान् दिवं मा प्रापदुर्वन्तरिक्षम् ।
अपो मा प्रापन्मलमेतदग्ने यमं मा प्रापत् पितॄंश्च सर्वान् ॥ ६९ ॥

अङ्गात्ऽअङ्गात् । वयम् । अस्याः । अप । यक्ष्मम् । नि । दध्मसि ।
तत् । मा । प्र । आपत् । पृथिवीम् । मा । उत । देवान् ।
दिवम् । मा । प्र । आपत् । उरु । अन्तरिक्षम् ।
अपः । मा । प्र । आपत् । मलम् । एतत् । अग्ने । यमम् । मा ।
प्र । आपत् । पितॄन् । च । सर्वान् ॥ ६९ ॥

हम इसके प्रत्येक अंगमेंसे संहारक दोषको दूर करते हैं, वह दोष मुझको प्राप्त न हो, पृथिवीको प्राप्त न हो देवताओंको प्राप्त न हो द्यौको और अन्तरिक्षको भी प्राप्त न हो जलको भी प्राप्त न हो और हे अग्ने ! यह पितरोंको और उनके अधिष्ठात्री देवता यमको भी प्राप्त न होवे ॥ ६९ ॥

सं त्वा नह्यामि पयसा पृथिव्याः सं त्वा नह्यामि पयसौषधीनाम् ।
सं त्वा नह्यामि प्रजया धनेन सा संनद्धा सनुहि वाजमेमम् ॥ ७० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम् । त्वा नह्यामि । पयसा । पृथिव्याः । सम् । त्वा । नह्यामि ।
पयसा । ओषधीनाम् ।
सम् । त्वा । नह्यामि । प्रऽजया । धनेन । सा । सम्ऽनद्धा । सनुहि ।
वाजम् । आ । इमम् ॥ ७० ॥

मैं तुझको पृथिवीके दुग्धकी समान सार तत्त्वसे और औषधियोंके सारतत्वसे प्रजासे और धनसे सम्पन्न रखनेके लिये बाँधता हूँ सो तू सन्नद्ध होती हुई धनको दे ॥ ७० ॥ (१३)

अमोहमस्मि सा त्वं सामाहमस्म्यृक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम् ।
तावि॒ह सं भवाव प्रजामा जनयावहै ॥ ७१ ॥

अमः । अहम् । अस्मि । सा । त्वम् । साम । अहम् । अस्मि ।
ऋक् । त्वम् । द्यौः । अहम् । पृथिवी । त्वम् ।
तौ । इह । सम् । भवाव । प्रऽजाम् । आ । जनयावहै ॥ ७१ ॥

मैं विष्णु हूँ तू लक्ष्मी है, मैं साम हूँ तू ऋक् है, मैं द्यौ हूँ तू पृथिवी है, ये दोनों हम यहाँ एक साथ रहें और प्रजाको उत्पन्न करें

जनियन्ति नावग्रवः पुत्रियन्ति सुदानवः ।
अरिष्टासू सचेवहि बृहते वाजसातये ॥ ७२ ॥

जनिऽयन्ति । नौ । अग्रवः । पुत्रिऽयन्ति । सुऽदानवः ।
अरिष्टासू इत्यरिष्टऽअसू । सचेवहि । बृहते । वाजऽसातये ॥७२॥

नदियें हम दोनोंको प्रादुर्भूत रक्खें, कल्याणमय दान देने वाले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुत्रको प्राप्त होते हैं, हम दोनों अहिंसित प्राण वाले रहते हुए विशाल अन्नकी प्राप्तिके लिये परस्पर संयुक्त रहें ॥ ७२ ॥

ये पितरो वधूदर्शा इमं वहतुमागमन् ।
ते अस्यै वध्वै संपत्न्यै प्रजावच्छर्म यच्छन्तु ॥७३॥

ये । पितरः । वधूऽदर्शाः । इमम् । वहतुम् । आ । अगमन् ।
ते । अस्यै । वध्वै । सम्ऽपत्न्यै । प्रजाऽवत् । शर्म । यच्छन्तु ७३

जो पितर वधूको देखनेकी इच्छासे इस दहेजके पास आये हैं, वे इस सुशीला पत्नी वधूके लिये प्रजासम्पन्न कल्याणको दें ७३

येदं पूर्वागन् रशनायमाना प्रजामस्यै द्रविणं चेह दत्त्वा ।
तां वहन्त्वगतस्यानु पन्थां विराडियं सुप्रजा अत्यजैषीत् ॥ ७४ ॥

या । इदम् । पूर्वा । अगन् । रशनाऽयमाना । प्रऽजाम् । अस्यै ।
द्रविणम् । च । इह । दत्त्वा ।
ताम् । वहन्तु । अगतस्य । अनु । पन्थाम् । विऽराट् । इयम् ।
सुऽप्रजाः । अति । अजैषीत् ॥ ७४ ॥

जो स्त्री रस्सीकी तरह बन्धनमें डालनेके लिये पहिले इस मार्गको प्राप्त हुई थी, (तो उसके सब सम्बन्धी) यहाँ इस वधू के लिये प्रजा और धनके द्वारा उसको पहिले न चले हुए मार्गमें लेजावें और यह विशाल महिमा वाली उससे बढ़ती हुई रहे ७४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र बुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना दीर्घायुत्वाय शतशारदाय गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥ ७५ ॥

प्र । बुध्यस्व । सुऽबुधा । बुध्यमाना । दीर्घायुऽत्वाय । शतऽशारदाय गृहान् । गच्छ । गृहऽपत्नी । यथा । असः । दीर्घम् । ते । आयुः । सविता । कृणोतु ॥ ७५ ॥

द्वितीयेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

द्वितीयोनुवाकः ॥

इति चतुर्दशं काण्डं समाप्तम् ॥

हे सुन्दर बुद्धि वाली ! तू जगाई जाती हुई सौ वर्षकी दीर्घायु पानेके लिये जाग तू घरको चल कि—जिस प्रकार तू गृहपत्नी बन सके, सविता देवता तेरी आयुको बड़ी करें ॥ ७५ ॥ (१४)

द्वितीय अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (५१२)

द्वितीय अनुवाक समाप्त

इति श्री अथर्ववेदसंहिताका चतुर्दश काण्ड ऋषिकुमार

प० रामस्वरूपशर्मात्मज सनातनधर्मपताका

संपादक ऋ० कु० प० रामचन्द्रशर्माकृत

भाषानुवादसहित

समाप्त.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

❀ श्रीहरिः ❀

अथर्ववेदसंहिता

पञ्चदशं-काण्डम्

सायणभाष्य तथा अनुवादसहित

अत्र काण्डे व्रात्यमहिमा प्रपञ्च्यते। व्रात्यो नाम उपनयनादि-संस्कारहीनः पुरुषः। सोऽर्थाद् यज्ञादिवेदविहिताः क्रियाः कर्तुं नाधिकारी। न स व्यवहारयोग्यश्चेत्यादि जनमतं मनसिकृत्य व्रात्योधिकारी व्रात्यो महानुभावो व्रात्यो देवप्रियो व्रात्यो ब्राह्मण-क्षत्रिययोर्वर्चसो मूलं किंबहुना व्रात्यो देवाधिदेव एवेति प्रतिपाद्यते। यत्र व्रात्यो गच्छति विश्वं जगद् विश्वे च देवास्तत्र तमनुगच्छन्ति तस्मिन् स्थिते तिष्ठन्ति तस्मिंश्चलति ते चलन्ति। यदा स गच्छति राजवत् स गच्छतीत्यादि। न पुनरेतत् सर्वव्रात्यपरं प्रतिपादनम् अपि तु कंचिद्विद्वत्तमं महाधिकारं पुण्यशीलं विश्व-संमान्यं कर्मपरैर्ब्राह्मणैर्विद्विष्टं व्रात्यम् अनुलक्ष्य वचनम् इति मन्तव्यम्

इस काण्डमें व्रात्यकी महिमाका वर्णन किया गया है। उपनयन आदि संस्कारोंसे हीन पुरुषका नाम व्रात्य है, अर्थात् वह यज्ञ आदि वेदविहित क्रियाओंके करनेका अधिकारी नहीं होता और वह व्यवहारके योग्य भी नहीं होता, इस जनमतको मनमें विचार कर इस काण्डमें इसका वर्णन किया है, कि-"व्रात्य अधिकारी है व्रात्य महानुभाव है व्रात्य देवप्रिय है और व्रात्य ब्राह्मण और क्षत्रियके तेजका मूल होता है अधिक क्या व्रात्य देवाधिदेव होता है। जहाँ व्रात्य जाता है तहाँ सम्पूर्ण जगत् और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सकल देवता उसके पीछे २ जाते हैं, उसके ठहरने पर ठहरते हैं और उसके चलने पर चलते हैं। जब वह चलता है तो राजाकी समान चलता है।" यह बात सब व्रात्योंके लिये नहीं लिखी है किंतु किसी महाधिकारी पुण्यात्मा विश्व महाविद्वान् भरको समदृष्टिसे देखने वाले विश्वमान्य कर्मपरायण ब्राह्मणोंके द्वारा उपेक्षित व्रात्यको लक्ष्य करके वर्णन किया है। यही समझना चाहिये॥

व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समैरयत् १

व्रात्यः। आसीत्। ईयमानः। एव। सः। प्रजाऽपतिम्। सम्। ऐरयत्॥ १॥

व्रात्यने चलते हुए ही अर्थात् व्रात्य अवस्थाको प्राप्त होते ही प्रजापतिको प्रेरित किया॥ १॥

स प्रजापतिः सुवर्णमात्मन्नपश्यत् तत् प्राजनयत् २

सः। प्रजाऽपतिः। सुऽवर्णम्। आत्मन्। अपश्यत्। तत्। प्र। अजनयत्॥ २॥

उन प्रजापतिने अपनेमें सुवर्णको देखा और उसको प्रकट किया २

तदेकमभवत् तल्ललामभवत् तन्महदभवत् तज्ज्येष्ठमभवत् तद् ब्रह्माभवत् तत् तपोभवत् तत् सत्यमभवत् तेन प्राजायत॥ ३॥

तत्। एकम्। अभवत्। तत्। ललामम्। अभवत्। तत्। महत्। अभवत्। तत्। ज्येष्ठम्। अभवत्। तत्। ब्रह्म। अभवत्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तत् । तपः । अभवत् । तत् । सत्यम् । अभवत् । तेन । प्र । अजायत ॥ ३ ॥

वह एक हुआ ललाम हुआ महत् हुआ ज्येष्ठ हुआ और वही ब्रह्मा हुआ वही तप हुआ वही सत्य हुआ और उससे ही यह प्रकट हुआ है ॥ ३ ॥

सोऽवर्धत स महानभवत् स महादेवोऽभवत् ॥ ४ ॥

सः । अवर्धत । सः । महान् । अभवत् । सः । महाऽदेवः अभवत्

वह बढ़ा वह महान् हुआ और वह महादेव हुआ ॥ ४ ॥

स देवानामीशां पर्यैत् स ईशानोभवत् ॥ ५ ॥

सः । देवानाम् । ईशाम् । परि । ऐत् । सः । ईशानः । अभवत्५

वह देवताओंका ईश हुआ और वह ईशान हुआ ॥ ५ ॥

स एकव्रात्योऽभवत् स धनुरादत्त तदेवेन्द्रधनुः ॥ ६ ॥

सः । एकऽव्रात्यः । अभवत् । सः । धनुः । आ । अदत्त । तत् । एव । इन्द्रऽधनुः ॥ ६ ॥

वह मुख्य व्रात्य हुआ और उसने धनुषको ग्रहण किया, वही इन्द्रधनुष है ॥ ६ ॥

नीलमस्योदरं लोहितं पृष्ठम् ॥ ७ ॥

नीलम् । अस्य । उदरम् । लोहितम् । पृष्ठम् ॥ ७ ॥

इसका उदर नील है और पीठ लाल है ॥ ७ ॥

नीलेनैवाप्रियं भ्रातृव्यं प्रोर्णोति लोहितेन द्विषन्तं विध्यतीति ब्रह्मवादिनो वदन्ति ॥ ८ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नीलेन । एव । अमियम् । भ्रातृव्यम् । प्र । ऊर्णोति । लोहितेन ।

द्विषन्तम् । विध्यति । इति । ब्रह्मऽवादिनः । वदन्ति ॥ ८ ॥

इति प्रथमेनुवाके प्रथमं पर्यायसूक्तम् ॥

यह नीलसे अमिय शत्रुको ढक देता है और लोहितसे द्वेष करने वालेको वींध डालता है इस बातको ब्रह्मवादी कहते हैं ८

प्रथम अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (५१३)

स उदतिष्ठत् स प्राचीं दिशमनु व्यचलत् ॥ १ ॥

सः । उत् । अतिष्ठत् । सः । प्राचीम् । दिशम् । अनु । वि । अचलत् ॥ १ ॥

वह उठा और उसने पूर्वदिशाकी ओर गमन किया ॥ १ ॥

तं बृहच्च रथंतरं चादित्याश्च विश्वे च देवा अनुव्यचलन्

तम् । बृहत् । च । रथम्ऽतरम् । च । आदित्याः । च । विश्वे । च । देवाः । अनुऽव्यचलन् ॥ २ ॥

उसके पीछे बृहत् और रथंतर साम और आदित्य तथा सब देवता चले ॥ २ ॥

बृहते च वै स रथंतराय चादित्येभ्यश्च विश्वेभ्यश्च देवेभ्य आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति

बृहते । च । वै । सः । रथम्ऽतराय । च । आदित्येभ्यः । च । विश्वेभ्यः । च । देवेभ्यः । आ । वृश्चते । यः । एवम् । विद्वांसम् । व्रात्यम् । उपऽवदति ॥ ३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो पुरुष ऐसे विद्वान् ब्राह्मणकी निन्दा करता है तो वह बृहत् रथन्तर आदित्य और विश्वेदेवताओंके लिये काट करता है अर्थात् उनका ही अपराध करता है ॥ ३ ॥

बृहतश्च वै स रथंतरस्य चादित्यानां च विश्वेषां च देवानां प्रियं धाम भवति तस्य प्राच्यां दिशि ४

बृहतः । च । वै । सः । रथम्ऽतरस्य । च । आदित्यानाम् । च । विश्वेषाम् । च । देवानाम् । प्रियम् । धाम । भवति । तस्य । प्राच्याम् । दिशि ॥ ४ ॥

(जो उसका सत्कार करता है) वह पूर्व दिशामें बृहत्का रथन्तरका आदित्योंका और सकल देवताओंका और उसका प्रिय धाम होता है ॥ ४ ॥

श्रद्धा पुंश्चली मित्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥ ५ ॥

श्रद्धा । पुंश्चली । मित्रः । मागधः । विऽज्ञानम् । वासः । अहः । उष्णीषम् । रात्री । केशाः । हरितौ । प्रऽवर्तौ । कल्मलिः । मणिः

(उसकी) श्रद्धा पुंश्चली, मित्र मागध, विज्ञान वस्त्र, दिन पगड़ी रात्रि केश, और हरित प्रवर्त कल्मलि मणि (होती है) ॥ ५ ॥

भूतं च भविष्यच्च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ॥ ६ ॥

भूतम् । च । भविष्यत् । च । परिऽस्कन्दौ । मनः । विऽपथम् ६

भूत और भविष्यत परिष्कन्द होते हैं मन विपथ होता है ६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः ॥ ७ ॥

मातरिश्वा । च । पवमानः । च । विपथऽवाहौ । वातः । सारथिः । रेष्मा । प्रऽतोदः ॥ ७ ॥

मातरिश्वा और पवमान विपथवाह होते हैं, वायु सारथी होता है और रेष्मा कोड़ा होता है ॥ ७ ॥

कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद ॥ ८ ॥

कीर्तिः । च । यशः । च । पुरःऽसरौ । आ । एनम् । कीर्तिः । गच्छति । आ । यशः । गच्छति । यः । एवम् । वेद ॥ ८ ॥

कीर्ति और यश पुरःसर आते हैं, इसको कीर्ति प्राप्त होती है और यश प्राप्त होता है (यह सब उसको प्राप्त होता है जो व्रात्यके विषयमें) इस प्रकार जानता है ॥ ८ ॥

स उदतिष्ठत् स दक्षिणां दिशमनु व्यचलत् ॥ ९ ॥

०सः । दक्षिणाम् । दिशम् ।० ॥ ९ ॥

वह उठा और दक्षिण दिशाकी ओर चल दिया ॥ ९ ॥

तं यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च यज्ञश्च यजमानश्च पशवश्चानुव्यचलन् ॥ १० ॥

तम् । यज्ञायज्ञियम् । च । वामऽदेव्यम् । च । यज्ञः । च । यजमानः । च । पशवः । च । अनुऽव्यचलन् ॥ १० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तब उसके पीछे यज्ञायज्ञिय और वामदेव्य साम तथा यज्ञ यजमान और पशु चले ॥ १० ॥

यज्ञायज्ञियाय च वै स वामदेव्याय च यज्ञाय च यजमानाय च पशुभ्यश्चा वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥ ११ ॥

यज्ञायज्ञियाय । च । वै । सः । वामऽदेव्याय । च । यज्ञाय । च । यजमानाय । च । पशुऽभ्यः । च । आ । वृश्चते ।० ११

जो पुरुष ऐसे व्रात्य विद्वान्‌की निन्दा करता है तो वह यज्ञायज्ञिय और वामदेव्य साम यज्ञ और यजमान तथा पशुओंके लिये ही काटता है अर्थात् इनका अपराध करता है ॥ ११ ॥

यज्ञायज्ञियस्य च वै स वामदेव्यस्य च यज्ञस्य च यजमानस्य च पशूनां च प्रियं धाम भवति तस्य दक्षिणायां दिशि ॥ १२ ॥

यज्ञायज्ञियस्य । च । वै । सः । वामऽदेव्यस्य । च । यज्ञस्य । च । यजमानस्य । च । पशूनाम् । च । प्रियम् । धाम । भवति । तस्य । दक्षिणायाम् । दिशि ॥ १२ ॥

(और जो उसके अनुकूल रहता है) वह यज्ञायज्ञियका वामदेव्य सामका यज्ञका यजमानका और उसका भी दक्षिण दिशा में प्रियधाम होता है ॥ १२ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उषाः पुंश्चली मन्त्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥१३॥

उषाः । पुंश्चली । मन्त्रः । मागधः । विऽज्ञानम् । वासः । अहः । उष्णीषम् । रात्री । केशाः । हरितौ । प्रऽवर्तौ । कल्मलिः । मणिः ॥

(उसकी) उषः पुंश्चली, मन्त्र मागध, विज्ञान वस्त्र, दिन उष्णीष रात्रि केश और हरित प्रवर्त और कल्मणि मणि होते हैं १३

अमावास्या च पौर्णमासी च परिष्कन्दौ मनो ०।० ॥

अमाऽवास्या । च । पौर्णऽमासी । च ।० ॥ १४ ॥

अमावास्या और पौर्णमासी उसके परिष्कन्द होते हैं ० १४

स उदतिष्ठत् स प्रतीचीं दिशमनु व्यचलत् ॥१५॥

०स । प्रतीचीम् । दिशम् ।० ॥ १५ ॥

वह उठा और पश्चिमदिशाकी ओर चला ॥ १५ ॥

तं वैरूपं च वैराजं चापश्च वरुणश्च राजानुव्यचलन्

तम् । वैरूपम् । च । वैराजम् । च । आपः । च । वरुणः । च । राजा । अनुऽव्यचलन् ॥ १६ ॥

तो उसके पीछे वैरूप वैराज जल और राजा वरुण चले १६

वैरूपाय च वै स वैराजाय चाद्भ्यश्च वरुणाय च राज्ञ आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति १७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैरूपाय । च । वै । सः । वैराजाय । च । अत्ऽभ्यः । च ।

वरुणाय । च । राज्ञे आ । वृश्चते ।० ॥१७॥

जो ऐसे विद्वान् व्रात्यकी निन्दा करता है वह वैरूप वैराज जल और राजा–वरुणका ही अपराध करता है ॥ १७ ॥

वैरूपस्य च वै स वैराजस्य चापां च वरुणस्य च राज्ञः प्रियं धाम भवति तस्य प्रतीच्यां दिशि ॥ १८ ॥

वैरूपस्य । च । वै । सः । वैराजस्य । च । अपाम् । च । वरुणस्य ।

च । राज्ञः । प्रियम् । धाम । भवति । तस्य । प्रतीच्याम् । दिशि ।

(और जो उसके अनुकूल व्यवहार करता है) वह वैरूप वैराज जल राजा वरुण और उस व्रात्यका पश्चिमदिशामें प्रियधाम होता है

इरा पुंश्चली हंसो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥ १९ ॥

इरा । पुंश्चली । हंसः । मागधः । विऽज्ञानम् । वासः । अहः ।

उष्णीषम् । रात्री । केशाः । हरितौ । प्रऽवर्तौ । कल्मलिः । मणिः

उसका पृथ्वी पुंश्चली, हंस मागध, विज्ञान वस्त्र, दिन उष्णीष, रात्रि केश, हरित पर्वत और कल्मणि मणि होती है ॥ १९ ॥

अहश्च रात्री च परिष्कन्दौ मनो०।० ॥ २० ॥

अहः । च । रात्री । च ।० ॥ २० ॥

दिन और रात्रि उसके परिष्कन्द होते हैं मन० ॥ २० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स उदतिष्ठत् स उदीचीं दिशमनु व्यचलत् ॥ २१ ॥

सः । उत् । अतिष्ठत् । सः । उदीचीम् । दिशम् । अनु । वि । अचलत् ॥ २१ ॥

वह उठा और उत्तर दिशाकी ओर चला ॥ २१ ॥

तं श्यैतं च नौधसं च सप्तर्षयश्च सोमश्च राजानु-व्यचलन् ॥ २२ ॥

तम् । श्यैतम् । च । नौधसम् । च । सप्तऽऋषयः । च । सोमः । च । राजा । अनुऽव्यचलन् ॥ २२ ॥

तब श्येत नौधस सप्तर्षि और राजा सोम उसके पीछे चले २२

श्यैताय च वै स नौधसाय च सप्तर्षिभ्यश्च सोमाय च राज्ञ आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति

श्यैताय । च । वै । सः । नौधसाय । च । सप्तर्षिऽभ्यः । च । सोमाय । च । राज्ञे । आ । वृश्चते । यः । एवम् । विद्वांसम् । व्रात्यम् । उपऽवदति ॥ २३ ॥

जो ऐसे विद्वान् व्रात्यकी निन्दा करता है, वह श्यैत नौधस सप्तर्षि राजा सोमका ही अपराध करता है ॥ २३ ॥

श्यैतस्य च वै स नौधसस्य च सप्तर्षीणां च सोमस्य च राज्ञः प्रियं धाम भवति तस्योदीच्यां दिशि २४

श्यैतस्य । च । वै । सः । नौधसस्य । च । सप्तऽऋषीणाम् । च ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सोमस्य । च । राज्ञः । प्रियम् । धाम । भवति । तस्य । उदीच्याम् । दिशि ॥ २४ ॥

(और जो उसके अनुकूल रहता है) वह उत्तर दिशामें श्यैत नौधस सप्तर्षि राजासोम और उसका प्रिय धाम होता है ॥२४॥

विद्युत् पुंश्चली स्तनयित्नुर्मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः २५

विऽद्युत् । पुंश्चली । स्तनयित्नुः । मागधः । विऽज्ञानम् । वासः । अहः । उष्णीषम् । रात्रीः । केशाः । हरितौ । प्रऽवर्तौ । कल्मलिः । मणिः ॥ २५ ॥

(उसकी) विद्युत् पुंश्चली, स्तनयित्नु मागध, विज्ञान वस्त्र, दिन उष्णीष, रात्रि केश, हरित प्रवर्त और कल्मलि मणि होती है

श्रुतं च विश्रुतं च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ॥ २६ ॥

श्रुतम् । च । विऽश्रुतम् । च । परिऽस्कन्दौ । मनः । विऽपथम् ॥

श्रुत और विश्रुत परिष्कन्द होते हैं और मन विपथ होता है२६

मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथीः रेष्मा प्रतोदः ॥ २७ ॥

मातरिश्वा । च । पवमानः । च । विपथऽवाहौ । वातः । सारथिः । रेष्मा । प्रऽतोदः ॥ २७ ॥

मातरिश्वा और पवमान विपथवाह होते हैं वात सारथी और रेष्मा कोड़ा होता है ॥ २७ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद ॥ २८ ॥

कीर्तिः । च । यशः । च । पुरःऽसरौ । आ । एनम् । कीर्तिः । गच्छति । आ । यशः । गच्छति । यः ।० ॥ २८ ॥

इति प्रथमेनुवाके द्वितीयं पर्यायसूक्तम् ॥

कीर्ति और यश इसके आगे २ चलते हैं और ऐसे ज्ञाताको कीर्ति और यश प्राप्त होता है ॥ २८ ॥

प्रथम अनुवाकमें द्वितीय पर्याय सूक्त समाप्त (५१४)

स संवत्सरमूर्ध्वोऽतिष्ठत् तं देवा अब्रुवन् व्रात्य किं नु तिष्ठसीति ॥ १ ॥

सः । सम्ऽवत्सरम् । ऊर्ध्वः । अतिष्ठत् । तम् । देवाः । अब्रुवन् । व्रात्य । किम् । नु । तिष्ठसि । इति ॥ १ ॥

वह वर्ष भर तक ऊपरको खड़ा रहा, तब देवताओंने उससे कहा, कि-हे व्रात्य तुम किस लिये अनुष्ठानको कर रहे हो ॥१॥

सोऽब्रवीदासन्दीं मे सं भरन्त्विति ॥ २ ॥

सः । अब्रवीत् । आऽसन्दीम् । मे । सम् । भरन्तु । इति ॥२॥

उसने कहा, कि-मेरे लिये आसन्दी बनाइये ॥ २ ॥

तस्मै व्रात्यायासन्दीं समभरन् ॥ ३ ॥

तस्मै । व्रात्याय । आऽसन्दीम् । सम् । अभरन् ॥ ३ ॥

तब उन्होंने उस व्रात्यके लिये आसन्दीको बनाया ॥ ३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तस्या ग्रीष्मश्च वसन्तश्च द्वौ पादावास्तां शरच्च वर्षाश्च द्वौ ॥ ४ ॥

तस्याः । ग्रीष्मः । च । वसन्तः । च । द्वौ । पादौ । आस्ताम् । शरत् । च । वर्षाः । च । द्वौ ॥ ४ ॥

ग्रीष्म और वसन्त नामक उसके दो पाद हुए तथा शरत् और वर्षा नामक दो पाद हुए ॥ ४ ॥

बृहच्च रथंतरं चानूच्ये ३ आस्तां यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च तिरश्च्ये ॥ ५ ॥

बृहत् । च । रथम्ऽतरम् । च । अनूच्ये ३ इति । आस्ताम् । यज्ञायज्ञियम् । च । वामऽदेव्यम् । च । तिरश्च्ये ३ इति ॥ ५ ॥

बृहत् और रथन्तर ये दो अनूच्य हुए, यज्ञायज्ञिय और वामदेव्य ये तिरश्च्य हुए ॥ ५ ॥

ऋचः प्राञ्चस्तन्तवो यजूंषि तिर्यञ्चः ॥ ६ ॥

ऋचः । प्राञ्चः । तन्तवः । यजूंषि । तिर्यञ्चः ॥ ६ ॥

ऋच् और प्राञ्च् तन्तु हुए और यजुः तिर्यक् हुए ॥ ६ ॥

वेद आस्तरणं ब्रह्मोपबर्हणम् ॥ ७ ॥

वेदः । आऽस्तरणम् । ब्रह्म । उपऽबर्हणम् ॥ ७ ॥

वेद आस्तरण हुआ और ब्रह्म उपबर्हण हुआ ॥ ७ ॥

सामासाद उद्गीथो पश्रयः ॥ ८ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साम । आऽसादः । उत्ऽगीथः । उपऽश्रयः ॥ ८ ॥

साम आसाद हुआ और उद्गीथ उपश्रय हुआ ॥ ८ ॥

तामासन्दीं व्रात्य आरोहत् ॥ ९ ॥

ताम् । आऽसन्दीम् । व्रात्यः । आ । अरोहत् ॥ ९ ॥

उस आसन्दी पर व्रात्यने आरोहण किया ॥ ९ ॥

तस्य देवजनाः परिष्कन्दा आसन्त्संकल्पाः प्रहाय्या३ विश्वानि भूतान्युपसदः ॥ १० ॥

तस्य । देवऽजनाः । परिऽस्कन्दाः । आसन् । सम्ऽकल्पाः । प्रऽहाय्याः । विश्वानि । भूतानि । उपऽसदः ॥ १० ॥

देवजन उसके परिष्कन्द हुए, सत्यसंकल्प प्रहाय्य हुए और सकल भूत उपसद् हुए ॥ १० ॥

विश्वान्येवास्य भूतान्युपसदो भवन्ति य एवं वेद ११

विश्वानि । एव । अस्य । भूतानि । उपऽसदः । भवन्ति । यः ।०

इति प्रथमेऽनुवाके तृतीयं पर्यायसूक्तम् ॥

जो इस बातको जानता है उसके सब भूत उपसद् होते हैं ११

प्रथम अनुवाकमें तृतीय पर्याय सूक्त समाप्त (५१५)

तस्मै प्राच्या दिशः ॥ १ ॥

तस्मै । प्राच्याः । दिशः ॥ १ ॥

वासन्तौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् बृहच्च रथंतरं चानुष्टातारौ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वासन्तौ । मासौ । गोप्तारौ । अकुर्वन् । बृहत् च । रथम्ऽतरम् । च । अनुऽस्थातारौ ॥ २ ॥

देवताओंने उसके लिये पूर्व दिशासे वसन्त ऋतुके दो मासों को रक्षक बनाया और बृहत तथा रथन्तरको अनुष्ठाता बनाया

वासन्तावेनं मासौ प्राच्या दिशो गोपायतो बृहच्च रथंतरं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ३ ॥

वासन्तौ । एनम् । मासौ । प्राच्याः । दिशः । गोपायतः । बृहत् । च । रथम्ऽतरम् । च । अनु । तिष्ठतः । यः ।० ॥ ३ ॥

जो ऐसा जानता है तो पूर्व दिशाकी ओरसे वसन्त ऋतुके दो मास उसकी रक्षा करते हैं और बृहत् तथा रथन्तर उसके अनुकूल रहते हैं ॥ ३ ॥

तस्मै दक्षिणाया दिशः ॥ ४ ॥

तस्मै । दक्षिणायाः । दिशः ॥ ४ ॥

ग्रैष्मौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं चानुष्ठातारौ ॥ ५ ॥

ग्रैष्मौ । मासौ । गोप्तारौ । अकुर्वन् । यज्ञायज्ञियम् । च । वामदेव्यम् । च ।० ॥ ५ ॥

देवताओंने उसके लिये दक्षिण दिशाकी ओरसे ग्रीष्म ऋतुके दो मासोंको रक्षक नियुक्त किया और यज्ञायज्ञिय तथा वामदेव्य को अनुष्ठाता नियुक्त किया ॥ ४ ॥ ५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रैष्मावेनं मासौ दक्षिणाया दिशो गोपायतो यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ।६।

ग्रैष्मौ । एनम् । मासौ । दक्षिणायाः । दिशः । गोपायतः । यज्ञायज्ञियम् । च । वामऽदेव्यम् । च ।० ॥ ६ ॥

जो ऐसा जानता है तो दक्षिणदिशाकी ओरसे ग्रीष्म ऋतुके मास इसकी रक्षा करते हैं और यज्ञायज्ञिय तथा वामदेव्य साम उसके अनुकूल रहते हैं ॥ ६ ॥

तस्मै प्रतीच्या दिशः ॥ ७ ॥

तस्मै । प्रतीच्याः । दिशः ॥ ७ ॥

वार्षिकौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् वैरूपं च वैराजं चानुष्ठातारौ ॥ ८ ॥

वार्षिकौ । मासौ । गोप्तारौ । अकुर्वन् । वैरूपम् । च । वैराजम् । च ।० ॥ ८ ॥

देवताओंने उसके लिये पश्चिम दिशाकी ओरसे वर्षा ऋतुके दो मासोंको रक्षक नियुक्त किया और वैरूप और वैराजको अनुष्ठाता किया ॥ ७ ॥ ८ ॥

वार्षिकावेनं मासौ प्रतीच्या दिशो गोपायतो वैरूपं च वैराजं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ९ ॥

वार्षिकौ । एनम् । मासौ । प्रतीच्याः । दिशः । गोपायतः । वैरूपम् । च । वैराजम् । च ।० ॥ ९ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो ऐसा जानता है तो पश्चिम दिशाकी ओरसे वर्षा ऋतुके दो मास उसकी रक्षा करते हैं और वैराज तथा वैरूप उसके अनुकूल रहते हैं ॥ ९ ॥

तस्मा उदीच्या दिशः ॥ १० ॥

तस्मै । उदीच्याः । दिशः ॥ १० ॥

शारदौ मासौ गोप्तारावकुर्वञ्छ्यैतं च नौधसं चानुष्ठातारौ ॥ ११ ॥

शारदौ । मासौ । गोप्तारौ । अकुर्वन् । श्यैतम् । च । नौधसम् । च ।० ॥ ११ ॥

देवताओंने उसके लिये उत्तर दिशाकी ओरसे शरद् ऋतुके दो मासोंको रक्षक नियुक्त किया और श्यैत तथा नौधसको अनुष्ठाता नियुक्त किया ॥ १० ॥ ११ ॥

शारदावेनं मासावुदीच्या दिशो गोपायतः श्यैतं च नौधसं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ १२ ॥

शारदौ । एनम् । मासौ । उदीच्याः । दिशः । गोपायतः । श्यैतम् । च । नौधसम् । च ।० ॥ १२ ॥

जो ऐसा जानता है तो उत्तरदिशाकी ओरसे शरद् ऋतुके दो मास उसकी रक्षा करते हैं और श्यैत तथा नौधस् उसके अनुकूल रहते हैं ॥ १२ ॥

तस्मै ध्रुवाया दिशः ॥ १३ ॥

तस्मै । ध्रुवायाः । दिशः ॥ १३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैमनौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् भूमिं चाग्निं चानुष्ठातारौ

हैमनौ । मासौ । गोप्तारौ । अकुर्वन् । भूमिम् । च । अग्निम् । च ।०

देवताओंने उसके लिये ध्रुवा दिशा (पृथ्वी) से हेमन्त ऋतुके दो मासोंको रक्षक नियुक्त किया और भूमि तथा अग्निको अनुष्ठाता किया ॥ १३ ॥ १४ ॥

हैमनावेनं मासौ ध्रुवाया दिशो गोपायतो भूमिश्चाग्निश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ १५ ॥

हैमनौ । एनम् । मासौ । ध्रुवायाः । दिशः । गोपायतः । भूमिः । च । अग्निः । च ।० ॥ १५ ॥

जो ऐसा जानता है तो ध्रुवा दिशाकी ओरसे हेमन्त ऋतुके दो मास इसकी रक्षा करते हैं और भूमि तथा अग्नि इसके अनुकूल रहते हैं ॥ १५ ॥

तस्मा ऊर्ध्वाया दिशः ॥ १६ ॥

तस्मै । ऊर्ध्वायाः । दिशः ॥ १६ ॥

शैशिरौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् दिवं चादित्यं चानुष्ठातारौ ॥ १७ ॥

शैशिरौ । मासौ । गोप्तारौ । अकुर्वन् । दिवम् । च । आदित्यम् । च । अनुऽस्थातारौ ॥ १७ ॥

देवताओंने उसके लिये ऊर्ध्वा दिशाकी ओरसे शिशिर ऋतुके दो मासोंको रक्षक बनाया और द्यौ तथा आदित्यको अनुष्ठाता बनाया ॥ १६ ॥ १७ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शैशिरावेनं मासावूर्ध्वाया दिशो गोपायतो द्यौश्चादित्यश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ १८ ॥

शैशिरौ । एनम् । मासौ । ऊर्ध्वायाः । दिशः । गोपायतः । द्यौः । च । आदित्यः । च । अनु । तिष्ठतः । यः ।० ॥१८॥

इति प्रथमेनुवाके चतुर्थं पर्यायसूक्तम् ॥

जो ऐसा जानता है तो शिशिर ऋतुके दो मास ऊर्ध्वा दिशा की ओरसे इसकी रक्षा करते हैं और द्यौ तथा आदित्य इसके अनुकूल रहते हैं ॥ १८ ॥

प्रथम अनुवाकमें चतुर्थ पर्याय सूक्त समाप्त (५१६)

तस्मै प्राच्या दिशो अन्तर्देशाद् भवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ १ ॥

तस्मै । प्राच्याः । दिशः । अन्तःऽदेशात् । भवम् । इषुऽआसम् । अनुऽस्थातारम् । अकुर्वन् ॥ १ ॥

देवताओंने उसके लिये पूर्वदिशाके कोणसे बाणका प्रक्षेप करने वाले भवको अनुष्ठाता नियुक्त किया ॥ १ ॥

भव एनमिष्वासः प्राच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥ २ ॥

भवः । एनम् । इषुऽआसः । प्राच्याः । दिशः । अन्तःऽदेशात् । अनुऽस्थाता । अनु । तिष्ठति । न । एनम् । शर्वः । न । भवः । न । ईशानः ॥ २ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्वदिशाके कोणसे अनुष्ठाता अस्त्रप्रक्षेपक भव इसके अनुकूल रहते हैं और भव शर्व तथा ईशान (इसका संहार नहीं करते) २

नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ।३।

न । अस्य । पशून् । न । समानान् । हिनस्ति । यः ।० ॥ ३ ॥

जो ऐसा जानता है तो उसके पशुओंका और समान पुरुषों का (रुद्र) संहार नहीं करते हैं ॥ ३ ॥

तस्मै दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशाच्छर्वमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ ४ ॥

तस्मै । दक्षिणायाः । दिशः । अन्तःऽदेशात् । शर्वम् । इषुऽआसम् ।०

देवताओंने उसके लिये दक्षिण दिशाके कोणसे बाणप्रक्षेपक शर्वको अनुष्ठाता नियुक्त किया ॥ ४ ॥

शर्व एनमिष्वासो दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं० ॥ ५ ॥

शर्वः । एनम् । इषुऽआसः । दक्षिणायाः । दिशः ।० ॥ ५ ॥

जो ऐसा जानता है तो अनुष्ठाता अस्त्रप्रक्षेपकशर्व दक्षिण दिशा के कोणमें इसके अनुकूल रहते है और इसका तथा इसके पशुओं का और इसके समान वयस्कोंका संहार नहीं करते हैं ॥ ५ ॥

तस्मै प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशात् पशुपतिमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ ६ ॥

तस्मै । प्रतीच्याः । दिशः । अन्तःऽदेशात् पशुऽपतिम् । इषुऽआसम् ।०

देवताओंने उसके लिये पश्चिम दिशाके कोणकी ओरसे बाणप्रक्षेपक पशुपतिको अनुष्ठाता बनाया ॥ ६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पशुपतिरेनमिष्वासः प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशादनु०

पशुऽपतिः । एनम् । इषुऽआसः । प्रतीच्याः । दिशः ।० ॥ ७ ॥

जो ऐसा जानता है तो अनुष्ठाता बाणप्रक्षेपक पशुपति दक्षिण दिशाके कोणमें इसके अनुकूल रहते हैं और इसके पशुओंका और इसके समान अवस्था वालोंका संहार नहीं करते हैं ॥७॥

तस्मा उदीच्या दिशो अन्तर्देशादुग्रं देवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ ८ ॥

तस्मै । उदीच्याः । दिशः । अन्तःऽदेशात् । उग्रम् । देवम् । इषुऽआसम्० ॥ ८ ॥

देवताओंने इसके लिये उत्तरदिशाके कोणसे अस्त्रप्रक्षेपक उग्रदेवको अनुष्ठाता नियुक्त किया ॥ ८ ॥

उग्र एनं देव इष्वास उदीच्या दिशो अन्तर्देशादनु०

उग्रः । एनम् । देवः । इषुऽआसः । उदीच्याः । दिशः ।० । ९॥

जो ऐसा जानता है तो अनुष्ठाता अस्त्रप्रक्षेपक उग्र उत्तर दिशाके कोणमें इसके अनुकूल रहते हैं तथा इसके पशुओंका और इसकी समान अवस्था वालोंका संहार नहीं करते हैं ॥९॥

तस्मै ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशाद् रुद्रमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ १० ॥

तस्मै । ध्रुवायाः । दिशः । अन्तःऽदेशात् । रुद्रम् । इषुऽआसम् ।०

देवताओंने उसके लिये ध्रुव दिशाके अन्तर्देशसे अस्त्रप्रक्षेपक रुद्रको अधिष्ठाता बनाया ॥ १० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रुद्र एनमिष्वासो ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशादनु० ११

रुद्रः । एनम् । इषुऽआसः । ध्रुवायाः । दिशः ।० ॥ ११ ॥

जो ऐसा जानता है तो अनुष्ठाता अस्त्रप्रक्षेपक रुद्र उसके अनुकूल रहते हैं और ध्रुव दिशाके कोणमें इसके पशुओंका तथा इसकी समान अवस्था वालोंका संहार नहीं करते हैं ॥ ११ ॥

तस्मा ऊर्ध्वाया दिशो अन्तर्देशान्महादेवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ १२ ॥

तस्मै । ऊर्ध्वायाः । दिशः । अन्तःऽदेशात् । महाऽदेवम् । इषुऽआसम् ।० ॥ १२ ॥

देवताओंने ऊर्ध्वादिशाके कोणमेंसे अस्त्रप्रक्षेपक महादेवको इसके लिये अनुष्ठाता किया ॥ १२ ॥

महादेव एनमिष्वास ऊर्ध्वाया दिशो अन्तर्देशादनु०

महाऽदेवः । एनम् । इषुऽआसः । ऊर्ध्वायाः । दिशः । अन्तःऽदेशात् । अनुऽस्थाता ।० ॥ १३ ॥

जो ऐसा जानता है तो अनुष्ठाता अस्त्रप्रक्षेपक महादेव ऊर्ध्वदिशाके कोणमें इसके अनुकूल रहते हैं और इसके पशुओंका तथा इसके समानवयस्कोंका संहार नहीं करते हैं ॥ १३ ॥

तस्मै सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्य ईशानमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ १४ ॥

तस्मै । सर्वेभ्यः । अन्तःऽदेशेभ्यः । ईशानम् । इषुऽआसम् । अनुऽस्थातारम् । अकुर्वन् ॥ १४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवताओंने सब दिशाओंके अन्तर्देशसे अस्त्रप्रक्षेपक ईशानको इसके लिये अनुष्ठाता किया ॥ १४ ॥

ईशान एनमिष्वासः सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्योनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥ १५ ॥

ईशानः । एनम् । इषुऽआसः । सर्वेभ्यः । अन्तःऽदेशेभ्यः । अनुऽस्थाता । अनु । तिष्ठति । न । एनम् । शर्वः । नः । भवः । नः । ईशानः ॥ १५ ॥

नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद १६

न । अस्य । पशून् । न । समानान् । हिनस्ति । यः ।० ॥१६॥

इति प्रथमेनुवाके पञ्चमं पर्यायसूक्तम् ॥

जो ऐसा जानता है तो अनुष्ठाता अस्त्रप्रक्षेपक ईशान सब दिशाओंकी अन्तर्दिशाओंसे इसके अनुकूल रहते हैं, भव शर्व और ईशान इसका संहार नहीं करते हैं और इसके पशुओंका तथा इसके समानवयस्कोंका भी संहार नहीं करते हैं ॥१५॥१६॥

प्रथम अनुवाकमें पञ्चम पर्याय सूक्त समाप्त (५१७) ॥

स ध्रुवां दिशमनु व्यचलत् ॥ १ ॥

सः । ध्रुवाम् । दिशम् । अनु । वि । अचलत् ॥ १ ॥

वह व्रात्य ध्रुव दिशाकी ओर चला ॥ १ ॥

तं भूमिश्चाग्निश्चौषधयश्च वनस्पतयश्च वानस्पत्याश्च वीरुधश्चानुव्यचलन् ॥ २ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तम् । भूमिः । च । अग्निः । च । ओषधयः । च । वनस्पतयः । च । वानस्पत्याः । च । वीरुधः । च । अनुऽव्यचलन् ॥ २ ॥

तब भूमि अग्नि औषधि वनस्पति, वनस्पतियोंमें होने वाली औषधियें भी उसके पीछे चलीं ॥ २ ॥

भूमेश्च वै सो३ऽग्नेश्चौषधीनां च वनस्पतीनां च वानस्पत्यानां च वीरुधां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥

भूमेः । च । वै । सः । अग्नेः । च । ओषधीनाम् । च । वनस्पतीनाम् । च । वानस्पत्यानाम् । च । वीरुधाम् । च । प्रियम् । धाम । भवति । यः ।० ॥ ३ ॥

जो इस बातको इस प्रकारसे जानता है वह भूमिका अग्निका वनस्पतियोंका औषधियोंका और वनस्पतिसे बनने वाले पदार्थों का प्रिय धाम होता है ॥ ३ ॥

स ऊर्ध्वां दिशमनु व्यचलत् ॥ ४ ॥

सः । ऊर्ध्वाम् । दिशम् ।० ॥ ४ ॥

वह ऊर्ध्व दिशाकी ओर चला ॥ ४ ॥

तमृतं च सत्यं च सूर्यश्च चन्द्रश्च नक्षत्राणि चानुव्यचलन् ॥ ५ ॥

तम् । ऋतम् । च । सत्यम् । च । सूर्यः । च । चन्द्रः । च । नक्षत्राणि । च ।० ॥ ५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust ŕeGangotri

तब ऋत सत्य सूर्य चन्द्रमा और नक्षत्र उसके पीछे २ चले ५

ऋतस्य च वै स सत्यस्य च सूर्यस्य च चन्द्रस्य च नक्षत्राणां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ६॥

ऋतस्य । च । वै । सः । सत्यस्य । च । सूर्यस्य । च । चन्द्रस्य । च । नक्षत्राणाम् । च ।० ॥ ६ ॥

जो इस बातको इस प्रकार जानता है वह ऋतु सत्य सूर्य चन्द्रमा और नक्षत्रोंका प्रिय-स्थान होता है ॥ ६ ॥

स उत्तमां दिशमनु व्यचलत् ॥ ७ ॥

सः । उत्ऽतमाम् । दिशम् ।० ॥ ७ ॥

वह उत्तम दिशाकी ओर चला ॥ ७ ॥

तमृचश्च सामानि च यजूंषि च ब्रह्म चानुव्यचलन् ८

तम् । ऋचः । च । सामानि । च । यजूंषि । च । ब्रह्म । च ।० ८

तब ऋचाएँ साम यजु और ब्रह्म उसके पीछे २ चले ॥ ८ ॥

ऋचां च वै स साम्नां च यजुषां च ब्रह्मणश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥

ऋचाम् । च । वै । सः । साम्नाम् । च । यजुषाम् । च । ब्रह्मणः । च ।० ॥ ९ ॥

जो ऐसा जानता है वह ऋक् साम यजु और ब्रह्मका प्रियधाम होता है ॥ ९ ॥

स बृहतीं दिशमनुव्यचलत् ॥ १० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सः । बृहतीम् । दिशम् ।० ॥ १० ॥

वह बृहती दिशाकी ओर चला ॥ १० ॥

तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन् ॥ ११ ॥

तम् । इतिहऽआसः । च । पुराणम् । च । गाथाः । च । नाराशंसीः । च ।० ॥ ११ ॥

तब इतिहास पुराण और नाराशंसी गाथा उसके पीछे२ चलीं११

इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥१२॥

इतिहऽआसस्य । च । वै । सः । पुराणस्य । च । गाथानाम् । च । नाराशंसीनाम् । च ।० ॥ १२ ॥

जो इस बातको जानता है वह इतिहास पुराण और नाराशंसी गाथाओंका प्रियधाम होता है ॥ १२ ॥

स परमां दिशमनु व्यचलत् ॥ १३ ॥

सः । परमाम् । दिशम् ।० ॥ १३ ॥

वह परम दिशाकी ओर चला ॥ १३ ॥

तमाहवनीयश्च गार्हपत्यश्च दक्षिणाग्निश्च यज्ञश्च यजमानश्च पशवश्चानुव्यचलन् ॥ १४ ॥

तम् । आऽहवनीयः । च । गार्हऽपत्यः । च । दक्षिणऽअग्निः । च । यज्ञः । च । यजमानः । च । पशवः । च ।० ॥ १४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तब आहवनीय गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि तथा यज्ञ यजमान और पशु उसके पीछे २ चले ॥ १४ ॥

आहवनीयस्य च वै स गार्हपत्यस्य च दक्षिणाग्नेश्च यज्ञस्य च यजमानस्य च पशूनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ १५ ॥

आऽहवनीयस्य । च । वै । सः । गार्हऽपत्यस्य । च । दक्षिणऽअग्नेः । च । यज्ञस्य । च । यजमानस्य । च । पशूनाम् । च ।०

जो इस बातको जानता है वह आहवनीय गार्हपत्य और दक्षिणाग्निका तथा यज्ञ यजमान और पशुओंका धाम अर्थात् उनके प्रादुर्भूत होनेका पात्र होता है ॥ १५ ॥

सोऽनादिष्टां दिशमनु व्यचलत् ॥ १६ ॥

सः । अनादिष्टाम् । दिशम् ।० ॥ १६ ॥

वह अनादिष्टा दिशाकी ओर चला ॥ १६ ॥

तमृतवश्चार्तवाश्च लोकाश्च लौक्याश्च मासाश्चार्धमासाश्चाहोरात्रे चानुव्यचलन् ॥ १७ ॥

तम् । ऋतवः । च । आर्तवाः । च । लोकाः । च । लौक्याः । च । मासाः । च । अर्धऽमासाः । च । अहोरात्रे इति । च ।०

तब बसन्त आदि ऋतुएँ, ऋतुके पदार्थ, लोक और दर्शनीय पदार्थ, मास, अर्धमास दिन और रात्रि उसके पीछे २ चले १७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऋतूनां च वै स आर्तवानां च लोकानां च लौक्यानां च मासानां चार्धमासानां चाहोरात्रयोश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ १८ ॥

ऋतूनाम् । च । वै । सः । आर्तवानाम् । च । लोकानाम् । च । लौक्यानाम् । च । मासानाम् । च । अर्धऽमासानाम् । च । अहोरात्रयोः । च ।० ॥ १८ ॥

जो इस बातको जानता है वह ऋतुओंका ऋतुओंके पदार्थों का, लोकोंका लौक्योंका, मासोंका पक्षोंका तथा दिन और रात्रि का प्रिय धाम होता है ॥ १८ ॥

सोनावृत्तां दिशमनु व्यचलत् ततो नावर्त्स्यन्नमन्यत॥

सः । अनावृत्ताम् । दिशम् । अनु । वि । अचलत् । ततः । न । आऽवर्त्स्यन् । अमन्यत ॥ १९ ॥

वह अनावृता दिशाकी ओर चला और तहाँ नहीं रहना चाहिये यह मानने लगा ॥ १९ ॥

तं दितिश्चादितिश्चेडा चेन्द्राणी चानुव्यचलन् २०

तम् । दितिः । च । अदितिः । च । इडा । च । इन्द्राणी । च । अनुऽव्यचलन् ॥ २० ॥

तब उसके पीछे दिति अदिति इडा और इन्द्राणी चलीं २०

दितेश्च वै सोदितेश्चेडायाश्चेन्द्राण्याश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ २१ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दितेः । च । वै । सः । अदितेः । च । इडायाः । च । इन्द्राण्याः । च । प्रियम् ।० ॥ २१ ॥

जो इस बातको जानता है वह दिति अदिति इडा और इन्द्राणी का प्रियधाम होता है ॥ २१ ॥

स दिशोनु व्यचलत् तं विराडनु व्यचलत् सर्वे च देवाः सर्वाश्च देवताः ॥ २२ ॥

सः । दिशः । अनु । वि । अचलत् । तम् । विऽराट् । अनु । वि । अचलत् । सर्वे । च । देवाः । सर्वाः । च । देवताः २२

वह दिशाओंके अनुकूल चला तब विराट् सकल देव और देवता इसके अनुकूल चले ॥ २२ ॥

विराजश्च वै स सर्वेषां च देवानां सर्वासां च देवतानां प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ २३ ॥

विऽराजः । च । वै । सः । सर्वेषाम् । च । देवानाम् । सर्वासाम् । च । देवतानाम् । प्रियम् ।० ॥ २३ ॥

जो इस प्रकार जानता है वह विराट्का सकल देवोंका और देवोंके सकल गण देवताओंका प्रियधाम होता है ॥ २३ ॥

स सर्वानन्तर्देशाननु व्यचलत् ॥ २४ ॥

सः । सर्वान् । अन्तःऽदेशान् । अनु । वि । अचलत् ॥ २४ ॥

वह सब अन्तर्देशोंके अनुकूल चला ॥ २४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्चानुव्यचलन् ॥ २५ ॥

तम् । प्रजाऽपतिः । च । परमेऽस्थी । च । पिता । च । पितामहः । च । अनुऽव्यचलन् ॥ २५ ॥

तब प्रजापति परमेष्ठी पिता और पितामह उसके अनुकूल चले

प्रजापतेश्च वै स परमेष्ठिनश्च पितुश्च पितामहस्य च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ २६ ॥

प्रजाऽपतेः । च । वै । सः । परमेऽस्थिनः । च । पितुः । च । पितामहस्य । च । प्रियम् । धाम । भवति । यः ।० ॥ २६ ॥

इति प्रथमेनुवाके षष्ठं पर्यायसूक्तम् ॥

जो इस प्रकार जानता है वह प्रजापतिका परमेष्ठीका पिता का और पितामहका प्रियधाम होता है ॥ २६ ॥

प्रथम अनुवाकमें छठा पर्याय सूक्त समाप्त (५१८)

स महिमा सद्वुर्भूत्वान्तं पृथिव्या अगच्छत् स समुद्रो भवत् ॥ १ ॥

सः । महिमा । सद्वुः । भूत्वा । अन्तम् । पृथिव्याः । अगच्छत् । सः । समुद्रः । अभवत् ॥ १ ॥

वह सद्वु महिमा बनकर पृथ्वीके अन्तमें गया और वह समुद्र होगया ॥ १ ॥

तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्चापश्च श्रद्धा च वर्षं भूत्वानुव्यवर्तयन्त ॥ २ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तम् । प्रजाऽपतिः । च । परमेऽस्थी । च । पिता । च । पितामहः ।

च । आपः । च । श्रद्धा । च । वर्षम् । भूत्वा । अनुऽव्यवर्तयन्त ।

प्रजापति परमेष्ठी पिता पितामह जल और श्रद्धा वर्षा बनकर उसके अनुकूल वर्ताव करने लगे ॥ २ ॥

एनमापो गच्छत्यैनं श्रद्धा गच्छत्यैनं वर्षं गच्छति य एवं वेद ॥ ३ ॥

आ । एनम् । आपः । गच्छति । आ । एनम् । श्रद्धा । गच्छति ।

आ । एनम् । वर्षम् । गच्छति । यः ।० ॥ ३ ॥

जो इस प्रकार जानता है उसको जल प्राप्त होता है, श्रद्धा प्राप्त होती है और वर्षा प्राप्त होती है ॥ ३ ॥

तं श्रद्धा च यज्ञश्च लोकश्चान्नं चान्नाद्यं च भूत्वाभिपर्यावर्तन्त ॥ ४ ॥

तम् । श्रद्धा । च । यज्ञः । च । लोकः । च । अन्नम् । च । अन्नऽ-

अद्यम् । च । भूत्वा । अभिऽपर्यावर्तन्त ॥ ४ ॥

श्रद्धा यज्ञ लोक अन्न और अन्नाद्य अपनी सत्तामें प्रकट होकर उसको घेर कर खड़े होगए ॥ ४ ॥

एनं श्रद्धा गच्छत्यैनं यज्ञो गच्छत्यैनं लोको गच्छत्यैनमन्नं गच्छत्यैनमन्नाद्यं गच्छति य एवं वेद ५

आ । एनम् । श्रद्धा । गच्छति । आ । एनम् । यज्ञः । गच्छति ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आ । एनम् । लोकः । गच्छति । आ । एनम् । अन्नम् ।

गच्छति । आ । एनम् । अन्नऽअद्यम् । गच्छति । यः ।० ५

प्रथमेनुवाके सप्तमं पर्यायसूक्तम् ॥

इति प्रथमोनुवाकः ॥

जो इस प्रकार जानता है उसको श्रद्धा प्राप्त होती है यज्ञ प्राप्त होता है लोक प्राप्त होता है अन्न और अन्नको पचानेका बल भी प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

प्रथम अनुवाकमें सप्तम पर्याय सूक्त समाप्त (५१९)

प्रथम अनुवाक समाप्त

सोऽरज्यत ततो राजन्योऽजायत ॥ १ ॥

सः । अरज्यत । ततः । राजन्यः । अजायत ॥ १ ॥

उसने रञ्जन किया तदनन्तर वह राजा हुआ ॥ १ ॥

सः विशः सबन्धूनन्नमन्नाद्यमभ्युदतिष्ठत् ॥ २ ॥

सः । विशः । सऽबन्धून् । अन्नम् । अन्नऽअद्यम् । अभिऽउदतिष्ठत् २

वह प्रजाओंके बंधुओंके अन्नके और अन्नको पचानेके बलके अनुकूल चला ॥ २ ॥

विशां च वै स सबन्धूनां चान्नस्य चान्नाद्यस्य च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥

विशाम् । च । वै । सः । सऽबन्धूनाम् । च । अन्नस्य । च ।

अन्नऽअद्यस्य । च । प्रियम् । धाम । भवति । यः ।० ॥ ३ ॥

इति द्वितीयेनुवाके प्रथमं पर्यायसूक्तम् ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो इस प्रकार जानता है वह प्रजाओंका बंधुओंका अन्नका और अन्नाद्यका प्रियधाम होता है ॥ ३ ॥

द्वितीय अनुवाकमें प्रथम पर्याय सूक्त समाप्त (५२०)

स विशोनु व्यचलत् ॥ १ ॥

सः । विशः । अनु । वि । अचलत् ॥ १ ॥

वह प्रजाओंके अनुकूल चला ॥ १ ॥

तं सभा च समितिश्च सेना च सुरा चानुव्यचलन् २

तम् । सभा । च । समऽइतिः । च । सेना । च । सुरा । च । अनुऽव्यचलन् ॥ २ ॥

तब सभा समिति सेना और सुरा उसके अनुकूल चले ॥२॥

सभायाश्च वै स समितेश्च सेनायाश्च सुरायाश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥

सभायाः । च । वै । सः । समऽइतेः । च । सेनायाः । च । सुरायाः । च । प्रियम् । धाम । भवति । यः । एवम् । वेद ३

इति द्वितीयेनुवाके द्वितीयं पर्यायसूक्तम् ॥

जो इस प्रकार जानता है वह सभा समिति सेना और सुरा का प्रिय होता है ॥ ३ ॥

द्वितीय अनुवाकमें द्वितीय पर्याय सूक्त समाप्त (५२१)

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो राज्ञोतिथिर्गृहानागच्छेत् १

तत् । यस्य । एवम् । विद्वान् । व्रात्यः । राज्ञः । अतिथिः । गृहान् । आऽगच्छेत् ॥ १ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसा विद्वान् व्रात्य जिस राजाके घरमें अतिथिरूपमें आवे १

श्रेयांसमेनमात्मनो मानयेत् तथा क्षत्राय ना वृश्चते तथा राष्ट्राय ना वृश्चते ॥ २ ॥

श्रेयांसम् । एनम् । आत्मनः । मानयेत् । तथा । क्षत्राय । न । आ । वृश्चते । तथा । राष्ट्राय । न । आ । वृश्चते ॥ २ ॥

तो इस श्रेष्ठ पुरुषका अपने (पुरुषोंसे वा आप) मान करे, ऐसा करनेसे वह राष्ट्र और क्षात्रशक्तिका नाश नहीं करता है अर्थात् उसका क्षात्रबल और राष्ट्र अक्षुण्ण रहता है ॥ २ ॥

अतो वै ब्रह्म च क्षत्रं चोदतिष्ठतां ते अब्रूतां कं प्र विशावेति ॥ ३ ॥

अतः । वै । ब्रह्म । च । क्षत्रम् । च । उत् । अतिष्ठताम् । ते इति । अब्रूताम् । कम् । प्र । विशाव । इति ॥ ३ ॥

इसके अनन्तर ब्रह्मबल और क्षत्रबल उठते हैं और कहते हैं, कि-हम किसमें प्रवेश करें ॥ ३ ॥

अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्रा विशत्विन्द्रं क्षत्रं तथा वा इति ॥ ४ ॥

०। बृहस्पतिम् । एव । ब्रह्म । प्र । विशतु । इन्द्रम् । क्षत्रम् । तथा । वै । इति ॥ ४ ॥

तब (किसीने कहा कि-) बृहस्पतिमें ब्रह्मबल प्रवेश करे और क्षात्रशक्ति इन्द्रमें प्रवेश करे ॥ ४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्राविशदिन्द्रं क्षत्रम् ॥५॥

अतः । वै । बृहस्पतिम् । एव । ब्रह्म । प्र । अविशत् । इन्द्रम् । क्षत्रम् ॥ ५ ॥

तब बृहस्पतिमें ब्रह्मबलने प्रवेश किया और क्षात्रशक्तिने इन्द्र में प्रवेश किया ॥ ५ ॥

इयं वा उ पृथिवी बृहस्पतिर्द्यौरेवेन्द्रः ॥ ६ ॥

इयम् । वै । ऊं इति । पृथिवी । बृहस्पतिः । द्यौः । एव । इन्द्रः ६

यह पृथिवी ही बहस्पति है और द्यौ ही इन्द्र है ॥ ६ ॥

अयं वा उ अग्निर्ब्रह्मासावादित्यः क्षत्रम् ॥ ७ ॥

अयम् । वै । ऊं इति । अग्निः । ब्रह्म । असौ । आदित्यः । क्षत्रम् ७

यह अग्नि ही ब्रह्मबल है और यह आदित्य ही क्षत्रबल है ७

एनं ब्रह्म गच्छति ब्रह्मवर्चसी भवति ॥ ८ ॥

आ । एनम् । ब्रह्म । गच्छति । ब्रह्मऽवर्चसी । भवति ॥ ८ ॥

यः पृथिवीं बृहस्पतिमग्निं ब्रह्म वेद ॥ ९ ॥

यः । पृथिवीम् । बृहस्पतिम् । अग्निम् । ब्रह्म । वेद ॥ ९ ॥

जो पृथिवीको बृहस्पति और अग्निको ब्रह्म जानता है तो उसको ब्रह्मबल प्राप्त होता है और वह ब्रह्मवर्चस्वी होता है ॥८॥९॥

एनमिन्द्रियं गच्छतीन्द्रियवान् भवति ॥ १० ॥

आ । एनम् । इन्द्रियम् । गच्छति । इन्द्रियऽवान् । भवति ॥१०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

य आदित्यं क्षत्रं दिवमिन्द्रं वेद ॥ ११ ॥

यः । आदित्यम् । क्षत्रम् । दिवम् । इन्द्रम् । वेद ॥ ११ ॥

इति द्वितीयेनुवाके तृतीयं पर्यायसूक्तम् ॥

जो आदित्यको क्षत्र और द्यौको इन्द्र जानता है तो इन्द्रियें उसके पास आती हैं अर्थात् अपने स्वरूपको प्रकट कर देती हैं और वह इन्द्रियवान् होता है ॥ १० ॥ ११ ॥

द्वितीय अनुवाकमें तृतीय पर्याय सूक्त समाप्त (५२२)

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्योतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥१॥

०व्रात्यः । अतिथिः ।०॥ १ ॥

जिसके घरमें ऐसा विद्वान् व्रात्य अतिथिके रूपमें आवे ॥१॥

स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्य क्वावात्सीर्व्रात्योदकं व्रात्य तर्पयन्तु व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्तु व्रात्य यथा ते वशस्तथास्तु व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति ॥ २ ॥

स्वयम् । एनम् । अभिऽउदेत्य । ब्रूयात् । व्रात्य । क्व । अवात्सीः । व्रात्य । उदकम् । व्रात्य । तर्पयन्तु । व्रात्य । यथा । ते । प्रियम् । तथा । अस्तु । व्रात्य । यथा । ते । वशः । तथा । अस्तु । व्रात्य । यथा । ते । निऽकामः । तथा । अस्तु । इति ॥ २ ॥

तब स्वयं इसको अभ्युत्थान देकर कहे, कि-व्रात्य ! तुम कहाँ रहते हो, हे व्रात्य ! यह जल है हे व्रात्य ! हमारे घरके पुरुष

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुमको तृप्त करें, हे व्रात्य ! जो बात तुमको प्रिय हो वह वैसे ही हो, हे व्रात्य ! जैसा तेरा वश है तैसा हो हे व्रात्य ! जैसा तेरा निकाम हो तैसा हो ॥ २ ॥

यदेनमाह व्रात्य क्वा वात्सीरिति पथ एव तेन देवयानानवं रुन्द्धे ॥ ३ ॥

यत् । एनम् । आह । व्रात्य । क्व । अवात्सीः । इति । पथः । एव । तेन । देवऽयानान् । अव । रुन्द्धे ॥ ३ ॥

जो इससे यह कहता है, कि–हे व्रात्य ! आप कहाँ रहोगे तो इससे देवयानके मार्गोंको ही खोल लेता है ॥ ३ ॥

यदेनमाह व्रात्योदकमित्यप एव तेनावं रुन्द्धे ॥४॥

०। व्रात्य । उदकम् । इति । अपः । एव । तेन । अव । रुन्द्धे ४

जो इससे कहता है, कि–हे व्रात्य ! यह जल है तो जलको ही खोल लेता है ॥ ४ ॥

यदेनमाह व्रात्य तर्पयन्त्विति प्राणमेव तेन वर्षीयांसं कुरुते ॥ ५ ॥

०। व्रात्य । तर्पयन्तु । इति । प्राणम् । एव । तेन । वर्षीयांसम् । कुरुते ॥ ५ ॥

जो कहता है, कि–हे व्रात्य ! यह हमारे पुरुष आपको तृप्त करें, उससे अपने प्राणको ही वर्षीयान् करता है ॥ ५ ॥

यदेनमाह व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्त्विति प्रियमेव तेनावं रुन्द्धे ॥ ६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यत् । एनम् । आह । व्रात्य । यथा । ते । प्रियम् । तथा । अस्तु ।

इति । प्रियम् । एव । तेन । अव । रुन्द्धे ॥ ६ ॥

जो इससे कहता है, कि—हे व्रात्य ! जैसा आपको प्रिय होगा तैसा ही होगा तो उससे अपने प्रिय कार्योंको ही (प्राप्त करता है) खोलता है ॥ ६ ॥

ऐनं प्रियं गच्छति प्रियः प्रियस्य भवति य एवं वेद

आ । एनम् । प्रियम् । गच्छति । प्रियः । प्रियस्य । भवति । यः । एवम् ।

वेद ॥ ७ ॥

जो ऐसा जानता है तो प्रिय पुरुषको प्राप्त होता है और प्रिय का प्रिय होता है ॥ ७ ॥

यदेनमाह व्रात्य यथा ते वशस्तथास्त्विति वशमेव

तेनाव रुन्द्धे ॥ ८ ॥

० ते वशः । । तथा । अस्तु । इति । वशम् । एव ।० ॥ ८ ॥

जो कहता है, कि—हे व्रात्य ! जैसा तेरा वश है तैसा ही हो तो उससे वशको ही खोलता है—पाता है ॥ ८ ॥

ऐनं वशो गच्छति वशी वशिनां भवति य एवं वेद ९

आ । एनम् । वशः । गच्छति । वशी । वशिनाम् । भवति ।० ९

जो इस प्रकार जानता है तो वश इसको प्राप्त होता है और यह वशियोंको भी वशमें रखने वाला होता है ॥ ९ ॥

यदेनमाह व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति निकाम-

मेव तेनाव रुन्द्धे ॥ १० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यत् । एनम् । आह । व्रात्य । यथा । ते । निऽकामः । तथा ।

अस्तु । इति । निऽकामम् । एव । तेन । अव । रुन्द्धे ॥१०॥

जो इससे कहता है, कि-हे व्रात्य ! जैसा तुम्हारा निकाम (अभिलाषा) हो तैसा ही हो तो उससे अपने लिये निकामको ही खोल लेता है ॥ १० ॥

एनं निकामो गच्छति निकामे निकामस्य भवति य एवं वेद ॥ ११ ॥

आ । एनम् । निऽकामः । गच्छति । निऽकामे । निऽकामस्य ।

भवति । यः । एवम् । वेद ॥ ११ ॥

इति द्वितीयेनुवाके चतुर्थं पर्यायमूक्तम् ॥

जो इस प्रकार जानता है, निकाम उसको प्राप्त होता है ११

द्वितीय अनुवाकमें चतुर्थ पर्याय सूक्त समाप्त (५२३)

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्य उद्धृतेष्वग्निष्वधिश्रितेग्निहोत्रेतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥ १ ॥

०। व्रात्यः । उद्धृतेषु । अग्निषु । अधिऽश्रिते । अग्निऽहोत्रे ।

अतिथिः । गृहान् । आऽगच्छेत् ॥ १ ॥

अग्नियोंके उद्धृत करने पर और अग्निहोत्रके अधिश्रित होने पर यदि ऐसा विद्वान् व्रात्य इस अग्निहोत्रीके घर पर आजावे१

स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्यातिसृज होष्यामीति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वयम् । एनम् । अभिऽउदेत्य । ब्रूयात् ! व्रात्य । अति । सृज ।
होष्यामि । इति !! २ ॥

तब इसको अपने आप अभ्युत्थान देकर कहे, कि-हे व्रात्य! आज्ञा दीजिये, मैं होम करूँगा ॥ २ ॥

स चातिसृजेज्जुहुयान्न चातिसृजेन्न जुहुयात ॥३॥

सः । च । अतिऽसृजेत् । जुहुयात् । न । च । अतिऽसृजेत् । न ।
जुहुयात् ॥ ३ ॥

वह आज्ञा देवे तो आहुति देय, आज्ञा न देय तो आहुति न देवे

स य एवं विदुषा व्रात्येनातिसृष्टो जुहोति ॥ ४ ॥

सः । यः । एवम् । विदुषा । व्रात्येन । अतिऽसृष्टः । जुहोति ४

जो वह ऐसे विद्वान् व्रात्यके कहने पर आहुति देता है ॥ ४ ॥

प्र पितृयाणं पन्थां जानाति प्र देवयानम् ॥ ५ ॥

प्र । पितृऽयानम् । पन्थाम् । जानाति । प्र । देवऽयानम् ॥ ५ ॥

तो पितृयानमार्गको और देवयानमार्गको जान जाता है ॥५॥

न देवेष्वा वृश्चते हुतमस्य भवति ॥ ६ ॥

न । देवेषु । आ । वृश्चते । हुतम् । अस्य । भवति ॥ ६ ॥

और इसकी आहुति देवताओंसे छिन्न नहीं होती है देवताओं को ही प्राप्त होती है ॥ ६ ॥

पर्यस्यास्मिँल्लोक आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा व्रात्येनातिसृष्टो जुहोति ॥ ७ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परि । अस्य । अस्मिन् । लोके । आऽयतनम् । शिष्यते । यः ।

एवम् । विदुषा । व्रात्येन । अतिऽसृष्टः । जुहोति ॥ ७ ॥

जो ऐसे विद्वान् व्रात्यके कहने पर आहुति देता है तो इसका आयतन संसारमें चारों ओर अवशिष्ट रहता है ॥ ७ ॥

अथ य एवं विदुषा व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति ।८।

अथ । यः । एवम् । विदुषा । व्रात्येन । अनतिऽसृष्टः । जुहोति८

और ऐसे विद्वान् व्रात्यके आज्ञा न देने पर भी आहुति देता है

न पितृयाणं पन्थां जानाति न देवयानम् ॥ ९ ॥

न । पितृऽयानम् । पन्थाम् । जानाति । न । देवऽयानम् ॥९॥

तो वह न पितृयानमार्गको जान पाता है और न देवयानमार्ग को जान पाता है ॥ ९ ॥

आ देवेषु वृश्चते अहुतमस्य भवति ॥ १० ॥

आ । देवेषु । वृश्चते । अहुतम् । अस्य । भवति ॥ १० ॥

नास्यास्मिँल्लोक आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति ॥ ११ ॥

न । अस्य । अस्मिन् । लोके । आऽयतनम् । शिष्यते । यः ।

एवम् । विदुषा । व्रात्येन । अनतिऽसृष्टः । जुहोति ॥ ११ ॥

इति द्वितीयेनुवाके पञ्चमं पर्यायसूक्तम् ॥

जो ऐसे विद्वान् व्रात्यके आज्ञा न देने पर आहुति देता है तो इसका हुत अहुत होजाता है और यह देवताओंमें काटा जाता है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् देवताओंके कोपका भाजन होता है और इस लोकमें इसका कोई आयतन (घर) भी बाकी नहीं रहता है ॥१०॥११॥

द्वितीय अनुवाकमें पञ्चमपर्याय सूक्त समाप्त (५२४)

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्य एकां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति

०। व्रात्यः । एकाम् । रात्रिम् । अतिथिः । गृहे । वसति ॥ १ ॥

ऐसा विद्वान् व्रात्य जिसके घरमें एक रात्रि तक अतिथिके रूप में वसता है ॥ १ ॥

ये पृथिव्यां पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥२॥

ये । पृथिव्याम् । पुण्याः । लोकाः । तान् । एव । तेन । अव । रुन्द्धे

तो उस फलसे पृथ्वीमें जितने पुण्यलोक हैं उनको जीत लेता है

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो द्वितीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥ ३ ॥

०। व्रात्यः । द्वितीयाम् । रात्रिम् ।० ॥ ३ ॥

और ऐसा विद्वान् व्रात्य जिसके घरमें अतिथिके रूपमें दूसरी रात्रि रहता है ॥ ३ ॥

येऽन्तरिक्षे पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥४॥

ये । अन्तरिक्षे । पुण्याः ।० ॥ ४ ॥

तो उसके फलसे वह अन्तरिक्षके पुण्यलोकों (के द्वार) को खोल लेता है ॥ ४ ॥

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यस्तृतीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति

०। व्रात्यः । तृतीयाम् । रात्रिम् ।० ॥ ५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और ऐसा विद्वान् व्रात्य जिसके घरमें अतिथिके रूपमें तीसरी रात्रिमें रहता है ॥ ५ ॥

ये दिवि पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥ ६ ॥

ये । दिवि । पुण्याः ।० ॥ ६ ॥

तो उसके फलसे वह वौके पुण्यलोकों (के द्वार) को खोल लेता है ॥ ६ ॥

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यश्चतुर्थीं रात्रिमतिथिर्गृहे वसति

०। व्रात्यः । चतुर्थीम् । रात्रिम् । अतिथिः ।० ॥ ७ ॥

और ऐसा विद्वान् व्रात्य जिसके घरमें अतिथिके रूपमें चौथी रात्रिमें रहता है ॥ ७ ॥

ये पुण्यानां पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥ ८ ॥

ये । पुण्यानाम् । पुण्याः ।० ॥ ८ ॥

तो उसके फलसे वह पुण्यात्माओंके पुण्यलोकों (के द्वार) को खोल लेता है ॥ ८ ॥

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्योपरिमिता रात्रीरतिथिर्गृहे वसति ॥ ९ ॥

तत् । यस्य । एवम् । विद्वान् । व्रात्यः । अपरिऽमिताः । रात्रीः । अतिथिः । गृहे । वसति ॥ ९ ॥

और ऐसा विद्वान् व्रात्य जिसके घरमें अतिथिके रूपमें अपरिमित रात्रियों तक रहता है ॥ ९ ॥

य एवापरिमिताः पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ये। एव। अपरिऽमिताः। पुण्याः। लोकाः। तान्। एव। तेन। अव। रुन्द्धे ॥ १० ॥

तो उसके फलसे वह अपरिमित पुण्यलोकोंके (द्वारको) खोल लेता है ॥ १० ॥

अथ यस्याव्रात्यो व्रात्यब्रुवो नामबिभ्रत्यतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥ ११ ॥

अथ। यस्य। अव्रात्यः। व्रात्यऽब्रुवः। नामऽबिभ्रती। अतिथिः। गृहान्। आऽगच्छेत् ॥ ११ ॥

और जिसके घरमें वास्तवमें अव्रात्य तथा अपनेको व्रात्य कहने वाला अतिथि आवे ॥ ११ ॥

कर्षेदेनं न चैनं कर्षेत् ॥ १२ ॥

कर्षेत्। एनम्। न। च। एनम्। कर्षेत् ॥ १२ ॥

तो उसको खदेड़ देय किंतु वास्तविक व्रात्यको न खदेड़े १२

अस्यै देवतायाउदकं याचामीमां देवतां वासय इमामिमां देवता परि वेवेष्मीत्येनं परि वेविष्यात् १३

अस्यै। देवतायै। उदकम्। याचामि। इमाम्। देवताम्। वासये। इमाम्। इमाम्। देवताम्। परि। वेवेष्मि। इति। एनम्। परि। वेविष्यात् ॥ १३ ॥

मैं इस देवतासे जलकी प्रार्थना करता हूँ, मैं इस देवताको वसाता हूँ और इस देवताको परोसता हूँ यह समझ कर परोसे१३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तस्यामेवास्य तद् देवतायां हुतं भवति य एवं वेद

तस्याम् । एव । अस्य । तत् । देवतायाम् । हुतम् । भवति । यः । एवम् वेद ॥ १४ ॥

इति द्वितीयेनुवाके षष्ठं पर्यायसूक्तम् ॥

जो इस बातको जानता है वा जो इस बातको प्राप्त करता है उसका इस देवतामें हुत ही हुत होता है ॥ १० ॥

द्वितीय अनुवाकमें छठा पर्याय सूक्त समाप्त (५२५)

स यत् प्राचीं दिशमनु व्यचलन्मारुतं शर्धो भूत्वानुव्यचलन्मनोन्नादं कृत्वा ॥ १ ॥

सः । यत् । प्राचीम् । दिशम् । अनु । विऽअचलत् । मारुतम् । शर्धः । भूत्वा । अनुऽव्यचलत् । मनः । अन्नऽअदम् । कृत्वा

वह जब पूर्वदिशाके अनुकूल चला तब बल (वान्) होकर वायुके अनुकूल चला और उसने मनको अन्नाद बनाया १

मनसान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ २ ॥

मनसा । अन्नऽअदेन । अन्नम् । अत्ति । यः ।० ॥ २ ॥

जो इस बातको प्राप्त कर लेता है वह अन्नाद मनके द्वारा अन्नका भक्षण करता है ॥ २ ॥

स यद् दक्षिणां दिशमनु व्यचलदिन्द्रो भूत्वानुव्यचलद् बलमन्नादं कृत्वा ॥ ३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

०। यत् । दक्षिणाम् । दिशम् । अनु । विऽअचलत् । इन्द्रः । भूत्वा । अनुऽव्यचलत् । बलम् । अन्नऽअदम् । कृत्वा ॥ ३ ॥

वह जब दक्षिण दिशाके अनुकूल चला तब बलको अन्नाद बना कर और स्वयं इन्द्र बन कर चला ॥ ३ ॥

बलेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ ४ ॥

बलेन । अन्नऽअदेन । अन्नम् । ०॥ ३ ॥

जो इस प्रकार जानता है वा जो इस बातको पा लेता है वह अन्नाद बलके द्वारा अन्नका भक्षण कर लेता है ॥ ४ ॥

स यत् प्रतीचीं दिशमनु व्यचलद् वरुणो राजा भूत्वानुव्यचलदपोऽन्नादीः कृत्वा ॥ ५ ॥

०। यत् । प्रतीचीम् । दिशम् । अनु । विऽअचलत् । वरुणः । राजा । भूत्वा । अनुऽव्यचलत् । अपः । अन्नऽअदीः । कृत्वा ५

वह जब पश्चिम दिशाके समान चला तब जलको अन्नाद (अन्न भक्षण करने वाला) कर राजा वरुण बन कर पश्चिम दिशाके अनुकूल चला ॥ ५ ॥

अद्भिरन्नादीभिरन्नमत्ति य एवं वेद ॥ ६ ॥

अत्ऽभिः । अन्नऽअदीभिः । अन्नम् ।०॥ ६ ॥

जो इस बातको जानता है वह अन्नभक्षक जलके द्वारा अन्न का भक्षण करता है ॥ ६ ॥

स यदुदीचीं दिशमनु व्यचलत् सोमो राजा भूत्वानुव्यचलत् सप्तर्षिभिर्हुत आहुतिमन्नादीं कृत्वा ॥७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

०। यत् । उदीचीम् । दिशम् । अनु । विऽअचलत् । सोमः । राजा । भूत्वा । अनुऽव्यचलत् । सप्तर्षिऽभिः । हुते । आऽहुतिम् । अन्नऽअदीम् । कृत्वा ॥ ७ ॥

वह जब उत्तर दिशाके अनुकूल चला तब सप्तर्षियोंसे होमी हुई आहुतिका अन्नका भक्षण करने वाली बना राजा सोमके अनुकूल चला ॥ ७ ॥

आहुत्यान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद ॥ ८ ॥

आऽहुत्या । अन्नऽअद्या । अन्नम् ।० ॥ ८ ॥

जो इस प्रकार जानता है वह अन्नका भक्षण करने वाली आहुतिके द्वारा अन्नका भक्षण करता है ॥ ८ ॥

स यद् ध्रुवां दिशमनु व्यचलद् विष्णुर्भूत्वानुव्यचलद् विराजमन्नादीं कृत्वा ॥ ९ ॥

०। यत् । ध्रुवाम् । दिशम् । अनु । विऽअचलत् । विष्णुः । भूत्वा । अनुऽव्यचलत् । विऽराजम् । अन्नऽअदीम् । कृत्वा ॥ ९ ॥

वह जब ध्रुवदिशाके अनुकूल चला तब विराट्को अन्नाद बना विष्णु बन कर चला ॥ ९ ॥

विराजान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद ॥ १० ॥

विऽराजा । अन्नऽअद्या । अन्नम् ।० ॥ १० ॥

जो इस बातको जानता है वह अन्नभक्षक विराट्के द्वारा अन्नका भक्षण करता है ॥ १० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स यत् पशूननु व्यचलद् रुद्रो भूत्वानुव्यचलदोषधीरन्नादीः कृत्वा ॥ ११ ॥

०। यत् । पशून् । अनु । विऽअचलत् । रुद्रः । भूत्वा । अनुऽव्यचलत् । ओषधीः । अन्नऽअदीः । कृत्वा ॥ ११ ॥

वह जब पशुओं (अज्ञानी जीवों) के अनुकूल चला तब औषधियोंको अन्नका भक्षण करनेवाली बना रुद्र बन कर अनुकूल चला ॥ ११ ॥

ओषधीभिरन्नादीभिरन्नमत्ति य एवं वेद ॥ १२ ॥

ओषधीभिः । अन्नऽअदीभिः । अन्नम् ।० ॥ १२ ॥

जो इस प्रकार जानता है वह अन्नका भक्षण करने वाली औषधियोंके द्वारा अन्नका भक्षण करता है ॥ १२ ॥

स यत् पितॄननु व्यचलद् यमो राजा भूत्वानुव्यचलत् स्वधाकारमन्नादं कृत्वा ॥ १३ ॥

०। यत् । पितॄन् । अनु । विऽअचलत् । यमः । राजा । भूत्वा । अनुऽव्यचलत् । स्वधाऽकारम् । अन्नऽअदम् । कृत्वा ॥१३॥

वह जब पितरोंके अनुकूल चला तब स्वधाकारको अन्नाद बना यम राजा बनकर अनुकूल चला ॥ १३ ॥

स्वधाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ १४ ॥

स्वधाऽकारेण । अन्नऽअदेन । अन्नम् ।० ॥ १४ ॥

जो इस प्रकार जानता है वह स्वधाकार अन्नादके द्वारा अन्न का भक्षण करता है ॥ १४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स यन्मनुष्या३ननु व्यचलदग्निर्भूत्वानुव्यचलत् स्वाहाकारमन्नादं कृत्वा ॥ १५ ॥

०। यत्। मनुष्यान्। अनु। विऽअचलत्। अग्निः। भूत्वा। अनुऽव्यचलत्। स्वाहाऽकारम्। अन्नऽअदम्।० ॥ १५ ॥

वह जब मनुष्योंके अनुकूल चला तब स्वाहाकारको अन्नाद बना स्वयं अग्नि होकर अनुकूल चला ॥ १५ ॥

स्वाहाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ १६ ॥

स्वाहाऽकारेण। अन्नऽअदेन।० ॥ १६ ॥

जो इस बातको जानता है वह अन्नाद स्वाहाकारके द्वारा अन्नका भक्षण करता है ॥ १६ ॥

स यदूर्ध्वां दिशमनु व्यचलद् बृहस्पतिर्भूत्वानुव्यचलद् वषट्कारमन्नादं कृत्वा ॥ १७ ॥

०। यत्। ऊर्ध्वाम्। दिशम्। अनु। विऽअचलत्। बृहस्पतिः। भूत्वा। अनुऽव्यचलत्। वषट्ऽकारम्। अन्नऽअदम्।० १७

वह जब ऊर्ध्वा दिशाके अनुकूल चला तब वषट्कारको अन्नाद बनाकर और बृहस्पति बन कर अनुकूल चला ॥ १७ ॥

वषट्कारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ १८ ॥

वषट्ऽकारेण। अन्नऽअदेन।० ॥ १८ ॥

जो इस बातको जानता है वह अन्नाद वषट्कारके द्वारा अन्न का भक्षण करता है ॥ १८ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स यद् देवाननु व्यचलदीशानो भूत्वानुव्यचलन्मन्युमन्नादं कृत्वा ॥ १९ ॥

०। यत् । देवान् । अनु । विऽअचलत् । ईशानः । भूत्वा । अनुऽऽव्यचलत् । मन्युम् । अन्नऽअदम् ।० ॥ १९ ॥

जब वह देवताओंके अनुकूल चला तब मन्यु (यज्ञ) को अन्नाद बनाकर और ईशान बनकर देवताओंके अनुकूल चला१९

मन्युनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ २० ॥

मन्युना । अन्नऽअदेन ।० ॥ २० ॥

जो इस प्रकार जानता है वह अन्नाद मन्युके द्वारा अन्नका भक्षण करता है ॥ २० ॥

स यत् प्रजा अनु व्यचलत् प्रजापतिर्भूत्वानुव्यचलत् प्राणमन्नादं कृत्वा ॥ २१ ॥

०। यत् । प्रऽजाः । अनु । विऽअचलत् । प्रजाऽपतिः । भूत्वा । अनुऽव्यचलत् । प्राणम् । अन्नऽअदम् ।० ॥ २१ ॥

वह जब प्रजाओंके अनुकूल चला तब प्राणको अन्नाद बना कर प्रजापति बन कर अनुकूल चला ॥ २१ ॥

प्राणेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ २२ ॥

प्राणेन । अन्नऽअदेन ।० ॥ २२ ॥

जो इस प्रकार जानता है वह अन्नाद प्राणके द्वारा अन्नका भक्षण करता है ॥ २२ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स यत् सर्वानन्तर्देशाननु वयचलत् परमेष्ठी भूत्वानु-
वयचलद् ब्रह्मान्नादं कृत्वा ॥ २३ ॥

सः । यत् । सर्वान् । अन्तःऽदेशान् । अनु । विऽअचलत् । परमेऽ-
स्थी । भूत्वा । अनुऽव्यचलत् । ब्रह्म । अन्नऽअदम् । कृत्वा ।

वह जब सब अन्तर्देशोंके अनुकूल चला तब तब ब्रह्मको अन्नाद बनाकर और प्रजापति बन कर अनुकूल चला ॥ २३ ॥

ब्रह्मणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ २४ ॥

ब्रह्मणा । अन्नऽअदेन । अन्नम् । अत्ति । यः । एवम् । वेद २४

इति द्वितीयेनुवाके सप्तमं पर्यायसूक्तम् ॥

जो इस प्रकार जानता है वह अन्नाद ब्रह्मके द्वारा अन्नका भक्षण करता है ॥ २४ ॥

द्वितीय अनुवाकमें सप्तम पर्याय सूक्त समाप्त (५२६)

तस्य व्रात्यस्य ॥ १ ॥

तस्य । व्रात्यस्य ॥ १ ॥

सप्त प्राणाः सप्तापानाः सप्त व्यानाः ॥ २ ॥

सप्त । प्राणाः । सप्त । अपानाः । सप्त । विऽआनाः ॥ २ ॥

उस व्रात्यके सात प्राण हैं, सात अपान हैं और सात व्यान हैं१।२

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमः प्राण ऊर्ध्वो नामायं
सो अग्निः ॥ ३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

०। यः । अस्य । प्रथमः । प्राणः । ऊर्ध्वः । नाम । अयम् । सः । अग्निः ॥ ३ ॥

इस व्रात्यका जो ऊर्ध्व नामक प्रथम प्राण है वह यह अग्नि है

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयः प्राणः प्रौढो नामासौ स आदित्यः ॥ ४ ॥

०। अस्य । द्वितीयः । प्राणः । प्रऽऊढः । नाम । असौ । सः । आदित्यः ॥ ४ ॥

इस व्रात्यका जो प्रौढ़ नामक दूसरा प्राण है वह आदित्य है ४

तस्य व्रात्यस्य । यो स्य तृतीयः प्राणो३ऽभ्यूढो नामासौ स चन्द्रमाः ॥ ५ ॥

०। अस्य । तृतीयः । प्राणः । अभिऽऊढः । नाम । असौ । सः । चन्द्रमाः ॥ ५ ॥

इस व्रात्यका जो अभ्यूढ नामक तृतीय प्राण है वह यह चन्द्रमा है ॥ ५ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थः प्राणो विभूर्नामायं स पवमानः ॥ ६ ॥

०। अस्य । चतुर्थः । प्राणः । विऽभूः । नाम । अयम् । सः । पवमानः ॥ ६ ॥

इस व्रात्यका जो विभू नामक चौथा प्राण है वह यह पवमान है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमः प्राणो योनिर्नाम ता इमा आपः ॥ ७ ॥

०। अस्य । पञ्चमः । प्राणः । योनिः । नाम । ताः । इमाः । आपः

इस व्रात्यका जो योनि नामक पञ्चम प्राण है वह यह जल है ७

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठः प्राणः प्रियो नाम त इमे पशवः ॥ ८ ॥

अस्य । षष्ठः । प्राणः । प्रियः । नाम । ते । इमे । पशवः ॥ ८ ॥

इस व्रात्यका जो प्रिय नामक छठा प्राण है वह ये पशु हैं ८

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमः प्राणोऽपरिमितो नाम ता इमाः प्रजाः ॥ ९ ॥

०। अस्य । सप्तमः । प्राणः । अपरिऽमितः । नाम । ताः । इमाः । प्रऽजाः ॥ ९ ॥

इति द्वितीयेनुवाके अष्टमं पर्यायसूक्तम् ॥

इस व्रात्यका जो अपरिमित नामक सातवाँ प्राण है वह ये प्रजा हैं

द्वितीय अनुवाकमें अष्टम पर्याय सूक्त समाप्त (५२७)

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमोऽपानः सा पौर्णमासी१

०। प्रथमः । अपानः । सा । पौर्णऽमासी ॥ १ ॥

इस व्रात्यका जो प्रथम अपान है वह पौर्णमासी है ॥ १ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयोऽपानः साष्टका ॥२॥

०। द्वितीयः । अपानः । सा । अष्टका ॥ २ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस व्रात्यका जो द्वितीय अपान है वह अष्टका है ॥ २ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयोऽपानः सामावास्या ३

०। तृतीयः । अपानः । सा । अमाऽवास्या ३

इस व्रात्यका जो तृतीय अपान है वह अमावास्या है ॥ ३ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थोऽपानः सा श्रद्धा ।४।

०। चतुर्थः । अपानः । सा । श्रद्धा ॥ ४ ॥

इस व्रात्यका जो चौथा अपान है वह श्रद्धा है ॥ ४ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमोऽपानः सा दीक्षा ॥५॥

०। पञ्चमः । अपानः । सा । दीक्षा ॥ ५ ॥

इस व्रात्यका जो पाँचवाँ अपान है वह दीक्षा है ॥ ५ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठोऽपानः स यज्ञः ॥ ६ ॥

०। षष्ठः । अपानः । सः । यज्ञः ॥ ६ ॥

इस व्रात्यका जो छठा अपान है वह यज्ञ है । ६ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमोऽपानस्ता इमा दक्षिणाः

सप्तमः । अपानः । ताः । इमाः । दक्षिणाः ॥ ७ ॥

इति द्वितीयेनुवाके नवमं पर्यायसूक्तम् ॥

इस व्रात्यका जो सप्तम अपान है वह ये दक्षिणा हैं । ७॥

द्वितीय अनुवाकमें नवम पर्याय सूक्त समाप्त (५२८) ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमो व्यानः सेयं भूमिः १

०। अस्य । प्रथमः । विऽआनः । सा । इयम् । भूमिः ॥ १ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस व्रात्यका जो प्रथम व्यान है वह यह भूमि है ॥ १ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयो व्यानस्तदन्तरिक्षम्

०। अस्य । द्वितीयः । विऽआनः । तत् । अन्तरिक्षम् ॥ २ ॥

इस व्रात्यका जो द्वितीय व्यान है वह अन्तरिक्ष है ॥ २ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयो वयानः सा द्यौः ३

०। अस्य । तृतीयः । विऽआनः । सा । द्यौः ॥ ३ ॥

इस व्रात्यका जो तृतीय व्यान है वह द्यौ है ॥ ३ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थो वयानस्तानि नक्षत्राणि

०। अस्य । चतुर्थः । विऽआनः । तानि । नक्षत्राणि ॥ ४ ॥

इस व्रात्यका जो चतुर्थ व्यान है वे नक्षत्र हैं ॥ ४ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमो वयानरत ऋतवः ५

०। अस्य । पञ्चमः । विऽआनः । ते । ऋतवः ॥ ५ ॥

इस व्रात्यका जो पञ्चम व्यान है वे ऋतुएँ हैं ॥ ५ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठो व्यानस्त आर्तवाः ६

०। अस्य । षष्ठः । विऽआनः । ते । आर्तवाः ॥ ६ ॥

इस व्रात्यका जो छठा व्यान है वे आर्तव हैं ॥ ६ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमो वयानः स संवत्सरः ७

०। यः । अस्य । सप्तमः । विऽआनः । सः । सम्ऽवत्सरः ॥७॥

इस व्रात्यका जो सप्तम व्यान है वह सम्वत्सर है ॥ ७ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तस्य व्रात्यस्य । समानमर्थं परि यन्ति देवा संवत्सरं वा एतदृतवोऽनुपरियन्ति व्रात्यं च ॥ ८ ॥

समानम् । अर्थम् । परि । यन्ति । देवाः । सम्ऽवत्सरम् । वै । एतत् । ऋतवः । अनुऽपरियन्ति । व्रात्यम् । च ॥ ८ ॥

देवता इस व्रात्यके समान अर्थको प्राप्त होते हैं सम्वत्सर और ऋतु भी इसका परिगमन करते हैं ॥ ८ ॥

तस्य व्रात्यस्य । यदादित्यमभिसंविशन्त्यमावास्यां चैव तत्पौर्णमासीं च ॥ ९ ॥

यत् । आदित्यम् । अभिऽसंविशन्ति । अमाऽवास्याम् । च । एव । तत् । पौर्णऽमासीम् । च ॥ ९ ॥

जो अमावास्या और पौर्णमासीको आदित्यमें प्रवेश करते हैं (वे इस व्रात्यके प्रशंसक ही प्रवेश करते हैं) ॥ ९ ॥

तस्य व्रात्यस्य । एकं तदेषाममृतत्वमित्याहुतिरेव १०

एकम् । तत् । एषाम् । अमृतऽत्वम् । इति । आऽहुतिः । एव १०

इति द्वितीयेनुवाके दशमं पर्यायसूक्तम् ॥

वह यह एक आहुति ही इनका अमृतत्व है ॥ १० ॥

द्वितीय अनुवाकमें दशमपर्याय सूक्त समाप्त (५२९)

तस्य व्रात्यस्य ॥ १ ॥

तस्य । व्रात्यस्य ॥ १ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यदस्य दक्षिणमक्ष्यसौ स आदित्यो यदस्य सव्यम-
क्ष्यसौ स चन्द्रमाः ॥ २ ॥

यत् । अस्य । दक्षिणम् । अक्षि । असौ । सः । आदित्यः । यत् ।
अस्य । सव्यम् । अक्षि । असौ । सः । चन्द्रमाः ॥ २ ॥

इस व्रात्यका जो दाहिना नेत्र है वह आदित्य है और बायाँ नेत्र है वह चन्द्रमा है ॥ १ ॥ २ ॥

योऽस्य दक्षिणः कर्णोयं सो अग्निर्योऽस्य सव्यः कर्णोयं
स पवमानः ॥ ३ ॥

यः । अस्य । दक्षिणः । कर्णः । अयम् । सः । अग्निः । यः ।
अस्य । सव्यः । कर्णः । अयम् । सः । पवमानः ॥ ३ ॥

और जो इसका दाहिना कान है वह अग्नि है और जो बाम कर्ण है वह पवमान है ॥ ३ ॥

अहोरात्रे नासिके दितिश्चादितिश्च शीर्षकपाले संवत्सरः
शिरः ॥ ४ ॥

अहोरात्रे इति । नासिके इति । दितिः । च । अदितिः । च ।
शीर्षकपाले इति शीर्षऽकपाले । सम्ऽवत्सरः । शिरः ॥ ४ ॥

दिन और रात्रि नासिका हैं दिति और अदिति शीर्षकपाल हैं और सम्वत्सर शिर है ॥ ४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अह्ना प्रत्यङ् व्रात्यो रात्र्या प्राङ् नमो व्रात्याय ।५।

अह्ना । प्रत्यङ् । व्रात्यः । रात्र्या । प्राङ् । नमः । व्रात्याय ५

द्वितीयेनुवाक एकादशं पर्यायसूक्तम् ॥

द्वितीयोनुवाकः ॥

इति पञ्चदशं काण्डं समाप्तम् ॥

व्रात्य दिनके द्वारा प्रत्येकका पूजनीय होता है और रात्रिसे प्रकृष्टरूपमें पूजाका पात्र होता है ऐसे व्रात्यके लिये प्रणाम है ५

द्वितीय अनुवाकमें एकादश पर्याय सूक्त समाप्त (५३०)

द्वितीय अनुवाक समाप्त

इति श्रीअथर्ववेदसंहिताका पञ्चदश काण्ड ऋ० कु०

प० रामस्वरूपशर्मात्मज सनातनधर्मपताका

सम्पादक ऋ० कु० प० रामचन्द्र

शर्मा कृत भाषानुवादसहित

समाप्त.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

❀ श्रीहरिः ❀

अथर्ववेदसंहिता

षोडशं-काण्डम्

भाषानुवाद सहित

कतिषुचित् कर्मसु शान्त्युदकं विहितम् । तेन हि आचमनप्रोक्षणावसेचनासेचनासावनानि कर्तव्यानि भवन्ति । तच्छान्त्युदकं कतिभिश्चच्छान्तिनामकैः सूक्तैः कर्तव्यं भवति । तत् कांस्यपात्रे कर्तव्यम् । तथाकरणात्पूर्वम् "अतिसृष्टो अपां वृषभः" इति सूक्तेन अपोतिसृज्य अवकरं विसर्जयति कांस्यपात्रे अपोवसिच्य ताभिस्तन्मध्यगतं मलं निर्गमयतीत्यर्थः । इति सांप्रदायिकाः । सूत्रितं हि । "अतिसृष्टो अपां वृषभ इत्यपोतिसृज्य" इति [कौ० १. ९]॥

कुछ कर्मोंमें शान्त्युदक करनेका विधान है । उससे आचमन प्रोक्षण अवसेचन और आसावन आदि किये जाते हैं । यह शान्त्युदक कुछ शान्ति नामक सूक्तोंसे किया जाता है उसको कांस्यपात्रमें करना चाहिये । ऐसा करनेसे पहिले "अतिसृष्टो अपां वृषभः" सूक्तसे जलका अतिसर्जन करके अवकरका विसर्जन करे । कांस्यपात्रमें जलका अवसेचन करके उससे कांस्यपात्रके भीतरके मलको दूर करे, यह साम्प्रदायिकोंका मत है । इस विषय में सूत्रका प्रमाण भी है, कि-"अतिसृष्टो अपां वृषभ इत्यपोऽतिसृज्य" इति (कौशिकसूत्र १ । ९) ॥

अतिसृष्टो अपां वृषभोतिसृष्टा अग्नयो दिव्याः ॥ १ ॥

अतिऽसृष्टः । अपाम् । वृषभः । अतिऽसृष्टाः । अग्नयः । दिव्याः १

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जलोंमें वृषभकी समान जल अतिसृष्ट होगया और दिव्य अग्नियें भी अतिसृष्ट होगईं ॥ १ ॥

रुजन् परिरुजन् मृणन् प्रमृणन् ॥ २ ॥

रुजन् । परिऽरुजन् । मृणन् । प्रऽमृणन् ॥ २ ॥

म्रोको मनोहा खनो निर्दाह आत्मदूषिस्तनूदूषिः ३

म्रोकः । मनःऽहा । खनः । निःऽदाहः । आत्मऽदूषिः । तनूऽदूषिः

इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ॥ ४ ॥

इदम् । तम् । अति । सृजामि । तम् । मा । अभिऽअवनिक्षि ४

तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः

तेन । तम् । अभिऽअतिसृजामः । यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यम् । वयम् । द्विष्मः ॥ ५ ॥

जो भंग करता हुआ विशेषरूपसे भंग करता हुआ नाशक (मल आदिको लेकर) जानेवाला, मनको दबाने वाला, खोदने से मिलने वाला, दाह उत्पन्न करने वाला, आत्मदूषि तनूदूषि जल है उसका अतिसर्जन करता हूँ, उसका मैं स्पर्श नहीं करूँगा उससे मैं उसको संयुक्त करता हूँ जो हमसे द्वेष करता है और हम जिससे द्वेष करते हैं ॥ २–५ ॥

अपामग्रमसि समुद्रं वोभ्यवसृजामि ॥ ६ ॥

अपाम् । अग्रम् । असि । समुद्रम् । वः । अभिऽअवसृजामि ।६।

तू जलोंका श्रेष्ठ भाग है मैं तुझको समुद्रकी ओर छोड़ता हूँ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यो३प्स्व१ग्निरति तं सृजामि म्रोकं खनिं तनूदूषिम् ७

यः । अप्ऽसु । अग्निः । अति । तम् । सृजामि । म्रोकम् । खनिम् । तनूऽदूषिम् ॥ ७ ॥

जो जलोंके भीतर शरीरके बलको अपहरण करके लेजाने वाला और कुरेदने वाला शरीरदूषक अग्नि है उसका मैं अतिसर्जन करता हूँ ॥ ७ ॥

यो व आपोऽग्निराविवेश स एष यद् वो घोरं तदेतत् ८

यः । वः । आपः । अग्निः । आऽविवेश । सः । एषः । यत् । वः । घोरम् । तत् । एतत् ॥ ८ ॥

हे जलों ! तुममें जिस अग्निने प्रवेश किया है वह यह तुम्हारा घोर अंश ही है ॥ ८ ॥

इन्द्रस्य व इन्द्रियेणाभि षिञ्चेत् ॥ ९ ॥

इन्द्रस्य । वः । इन्द्रियेण । अभि । सिञ्चेत् ॥ ९ ॥

तुम्हारा जो परमैश्वर्यसम्पन्न भाग है उसका इन्द्रियोंके द्वारा अभिषिञ्चन करे ॥ ९ ॥

अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत् ॥ १० ॥

अरिप्राः । आपः । अप । रिप्रम् । अस्मत् ॥ १० ॥

जल पापको दूर करदें पाप हमसे दूर होजावे ॥ १० ॥

प्रास्मदेनो वहन्तु प्र दुष्वप्न्यं वहन्तु ॥ ११ ॥

प्र । अस्मत् । एनः । वहन्तु । प्र । दुःऽस्वप्न्यम् । वहन्तु ॥ ११ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह हमसे पापको बहाकर लेजावें, दुःष्वप्नको प्रकृष्टरूपसे बहा कर लेजावें ॥ ११ ॥

शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे ॥ १२ ॥

शिवेन । मा । चक्षुषा । पश्यत । आपः । शिवया । तन्वा । उप । स्पृशत । त्वचम् । मे ॥ १२ ॥

हे जलो ! आप मुझको कृपादृष्टिसे देखिये और अपने कल्याणकारी शरीर–भाग–से मेरी त्वचाका स्पर्श करिये ॥ १२ ॥

शिवानग्नीनप्सुषदो हवामहे मयि क्षत्रं वर्च आ धत्त देवीः ॥ १३ ॥

शिवान् । अग्नीन् । अप्सुऽसदः । हवामहे । मयि । क्षत्रम् । वर्चः । आ । धत्त । देवीः ॥ १३ ॥

इति प्रथमेनुवाके प्रथमं पर्यायसूक्तम् ॥

हम जलमें रहने वाले कल्याणकारक अग्नियोंका आह्वान करते हैं, यह दिव्य जल मुझमें क्षात्रशक्ति और बलको स्थापित करें

प्रथम अनुवाकमें प्रथम पर्याय सूक्त समाप्त (५३१)

मरणं व्यसनं चैव बन्धनं च विशेषतः ।
प्रणिपातोन्मत्तता वा दैवोपहतिरेव च ।
पुत्रादिधननाशश्च गृहे दोषान् बहूनपि ।

एतानि सर्वाणि कानिचिद्वा तेषां मध्ये यथा शत्रोर्भवन्ति तथोद्देशेन यत् कर्म तद् अभिचारकर्म । एतन्नामकः कर्मविशेषः । तादृशस्याभिचारकर्मणः समाप्तौ अवभृथं स्नात्वा "निर्दुरर्मण्यः"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इति सूक्तेन सर्वौषधिभिर्नाम कैश्चिदोषधिविशेषैरात्मानम् अभिमृशति । तद् उक्तं कौशिकेन । "निर्दुरर्मण्य इति संधाव्याभिमृशति" इति [कौ० ६. ३] अभिचारं कृत्वा कर्ता शान्तिमिमां करोतीत्यर्थः ॥

तथा उपनयनकर्मणि अनेन सूक्तेन कुङ्कुमचन्दनसर्वौषध्यादिना शरीरं समालभ्य आत्मानम् अभिमन्त्रयत आयुष्कामः । सूत्रितं हि । "निर्दुरर्मण्य इति संधाव्य" इति [कौ० ७. ९] ॥

तथा चक्षुरादीन्द्रियदार्ढ्यकामः अरण्ये गत्वा अनेन सूक्तेन सर्वौषधिम् अभिमन्त्र्य अनुलोमं प्रलिम्पति । तथा च सूत्रम् । "निर्दुरर्मण्य इति सर्वसुरभिचूर्णैररण्येऽप्रतीहारं प्रलिम्पति" इति [कौ० ७. ९] ॥

श्रोत्रं वाग् मनश्चक्षुर्दन्ता नासिका अन्यच्च सर्वं विकलेन्द्रियं दृढं भवति । यो विकलेन्द्रियस्तस्येदं कर्म ॥

जिस प्रकार शत्रुके यहाँ मरण व्यसन और विशेषतः बंधन, पतन, उन्मत्तता, प्रारब्धकी मार, पुत्र आदिका और धनका नाश इत्यादि घरके बहुतसे दोषोंमेंसे सब दोष या कुछ दोष होजावें, इस उद्देश्य से किया जाने वाला कर्म अभिचार कर्म कहलाता है। ऐसे अभिचारकर्मकी समाप्तिमें अवभृथस्नानको करके "निर्दुरर्मण्यः" सूक्त से सर्वौषधियोंके द्वारा अर्थात् कुछ औषधिविशेषोंके द्वारा अपना अभिमर्शन करे। इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि—"निर्दुरर्मण्य इति संधाव्याभिमृशति" (कौशिकसूत्र ६ । ३) अर्थात् कर्ता अभिचारको करके इस शान्तिको करे ॥

तथा आयुको चाहने वाला पुरुष उपनयन कर्ममें इस सूक्तसे कुङ्कुम चन्दन सर्वौषधि आदिसे शरीरका समालभन करके अपना अभिमन्त्रण करे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"निर्दुरर्मण्य इति संधाव्य" (कौशिकसूत्र ७ । ९) ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा नेत्र आदि इन्द्रियोंमें दृढ़ता चाहने वाला वनमें जाकर इस सूक्तसे सर्वौषधिका अभिमन्त्रण करके अनुलोम (ऊपरसे नीचेको) लेप करे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि– "निर्दुरर्मण्य इति सर्वसुरभिचूर्णैरण्येऽमतीहारं प्रलिम्पति" (कौशिकसूत्र ७। ९) ॥

ऐसा करनेसे कान वाणी मन नेत्र दाँत तथा नासिका और भी सब विकल इन्द्रियें दृढ़ हो जाती हैं। जो विकलेन्द्रिय होता है उसका यह कर्म है ॥

निर्दुरर्मण्य ऊर्जा मधुमती वाक् ॥ १ ॥

निः। दुःऽअर्मण्यः। ऊर्जा। मधुऽमती। वाक् ॥ १ ॥

मैं दूषित अक्षिरोग अर्मसे पूर्णरूपसे रहित रहूँ, मेरी वाणी बलसम्पन्न और मधुर रहे ॥ १ ॥

मधुमती स्थ मधुमतीं वाचमुदेयम् ॥ २ ॥

मधुऽमतीः। स्थ। मधुऽमतीम्। वाचम्। उदेयम् ॥ २ ॥

हे औषधियों! तुम मधुमती हो मैं मधुमती वाणीको प्राप्त करूँ २

उपहूतो मे गोपा उपहूतो गोपीथः ॥ ३ ॥

उपऽहूतः। मे। गोपः। उपऽहूतः। गोपीथः ॥ ३ ॥

मैं इन्द्रियोंके रक्षक मनका आह्वान करता हूँ और सोमपान करने वाले (मुख वा कण्ठ) का आह्वान करता हूँ ॥ ३ ॥

सुश्रुतौ कर्णौ भद्रश्रुतौ कर्णौ भद्रं श्लोकं श्रूयासम् ॥

सुऽश्रुतौ। कर्णौ। भद्रऽश्रुतौ। कर्णौ। भद्रम्। श्लोकम्। श्रूयासम् ४

मेरे कान भली प्रकार सुन सकने वाले और कल्याणकी बातों को सुनने वाले होवें, मैं कल्याणकी और प्रशंसाकी बातोंको सुनूँ ४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुश्रुतिश्च मोपश्रुतिश्च मा हासिष्टां सौपर्णं चक्षुरजस्रं ज्योतिः ॥ ५ ॥

सुऽश्रुतिः । च । मा । उपऽश्रुतिः । च । मा । हासिष्टाम् । सौपर्णम् । चक्षुः । अजस्रम् । ज्योतिः ॥ ५ ॥

भली प्रकार सुनना और पाससे सुनना मेरा त्याग न करे, मेरा नेत्र सुपर्ण—गरुड़—के नेत्रकी समान हो, निरन्तर ज्योतिसे सम्पन्न रहे ॥ ५ ॥

ऋषीणां प्रस्तरोऽसि नमोऽस्तु दैवाय प्रस्तराय ॥६॥

ऋषीणाम् । प्रऽस्तरः । असि । नमः । अस्तु । दैवाय । प्रऽस्तराय ६

इति प्रथमेनुवाके द्वितीयं पर्यायसूक्तम् ॥

तू ऋषियोंका प्रस्तर है दैव प्रस्तरके लिये प्रणाम प्राप्त हो ६

प्रथम अनुवाकमें द्वितीय पर्याय सूक्त समाप्त (५३२)

उपनयने "मूर्धाहं" "नाभिरहम्" इति सूक्ताभ्याम् आयुरभिवृद्ध्यर्थं माणवक उद्यन्तम् आदित्यम् उपतिष्ठते । तद् उक्तं कौशिकेन । "मूर्धाहम् [१६. ३] विषासहिम् [१७. १] इत्युद्यन्तम् उपतिष्ठते" इत्यादि [कौ० ७. ९] ॥

बालक आयुकी वृद्धिके लिये उपनयनमें "मूर्धाहम्" और "नाभिरहम्" इन दो सूक्तोंसे उदय होते हुए सूर्यका उपस्थान करे । इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि—"मूर्धाऽहम् (१६ ३) विषासहिम् (१७ । १) इत्युद्यन्तं उपतिष्ठते" (कौशिकसूत्र ७ । ९) ॥

मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम् ॥ १ ॥

मूर्धा । अहम् । रयीणाम् । मूर्धा । समानानाम् । भूयासम् ॥१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मैं धनोंका मूर्धा रहूँ अर्थात् मूर्धाका वियोग होने पर मूर्धा वालेका नाश अवश्य होजाता है अतः धनोंको मैं मूर्धाकी समान परमप्रयोजनीय रहूँ, समान पुरुषोंमें मैं मस्तक रूप रहूँ ॥ १ ॥

रुजश्च मा वेनश्च मा हासिष्टां मूर्धा च मा विधर्मा च मा हासिष्टाम् ॥ २ ॥

रुजः । च । मा । वेनः । च । मा । हासिष्टाम् । मूर्धा । च । मा । विऽधर्मा । च । मा । हासिष्टाम् ॥ २ ॥

रुज और यज्ञ मेरा त्याग न करें मूर्धा और विधर्मा भी मेरा त्याग न करें ॥ २ ॥

उर्वश्च मा चमसश्च मा हासिष्टां धर्ता च मा धरुणश्च मा हासिष्टाम् ॥ ३ ॥

उर्वः । च । मा । चमसः । च । मा । हासिष्टाम् । धर्ता । च । मा । धरुणः । च ।० ॥ ३ ॥

उर्व और चमस मेरा त्याग न करें, धरुण और धर्ता मेरा त्याग न करें ॥ ३ ॥

विमोकश्च मार्द्रपविश्च मा हासिष्टामार्द्रदानुश्च मा मातरिश्वा च माहासिष्टाम् ॥ ४ ॥

विऽमोकः । च । मा । आर्द्रऽपविः । च । मा । हासिष्टाम् । आर्द्रऽदानुः । च । मा । मातरिश्वा । च । मा । हासिष्टाम् ४

विमोक और आर्द्रपवि मेरा त्याग न करें आर्द्रदानु और मातरिश्वा मेरा त्याग न करें ॥ ४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बृहस्पतिर्म आत्मा नृमणा नाम हृद्यः ॥ ५ ॥

बृहस्पतिः । मे । आत्मा । नृऽमनाः । नाम । हृद्यः ॥ ५ ॥

हृदयको प्रसन्न करने वाले, भक्त मनुष्योंमें अनुग्रहप्रद मन को लगाने वाले बृहस्पति मेरी आत्मा हैं ॥ ५ ॥

असंतापं मे हृदयमुर्वी गव्यूतिः समुद्रो अस्मि विधर्मणा

असम्ऽतापम् । मे । हृदयम् । उर्वी । गव्यूतिः । समुद्रः । अस्मि । विऽधर्मणा ॥ ६ ॥

इति प्रथमेनुवाके तृतीयं पर्यायसूक्तम् ॥

मेरा हृदय सन्तापरहित रहे, गव्यूति (दो कोस की) पृथिवी मेरी हो मैं, विधर्मा—विशेष धारक शक्तिके कारण समुद्रकी समान गंभीर रहूँ ॥ ६ ॥

प्रथम अनुवाकमें तृतीय पर्याय सूक्त समाप्त (५३३) ॥

"नाभिरहम्" इति सूक्तस्य पूर्वसूक्तेन सह उक्तोविनियोगः ॥

इस सूक्तका पूर्वसूक्तके साथ विनियोग कह दिया है

नाभिरहं रयीणां नाभिः समानानां भूयासम् ॥ १ ॥

नाभिः । अहम् । रयीणाम् । नाभिः । समानानाम् । भूयासम् १

मैं धनोंकी नाभि रहूँ, समान पुरुषोंकी नाभि रहूँ अर्थात् नाभिसे जैसे सारा शरीर बँधा रहता है इसी प्रकार मैं इनको घेरे बैठा रहूँ १

स्वासदसि सूषा अमृतो मर्त्येष्वा ॥ २ ॥

सुऽआसत् । असि । सुऽउषाः । अमृतः । मर्त्येषु । आ ॥ २ ॥

सुन्दर उषा मरणधर्मी मनुष्योंमें अमृतरूप है भली प्रकार प्रतिष्ठित होने वाली है ॥ २ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मा मां प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहाय परा गात् ३

मा । माम् । प्राणः । हासीत् । मो इति । अपानः । अवऽहाय । परा । गात् ॥ ३ ॥

प्राण मेरा त्याग न करे, अपान मुझको त्याग कर दूर न जावे

सूर्यो माह्नः पात्वग्निः पृथिव्या वायुरन्तरिक्षाद् यमो मनुष्येभ्यः सरस्वती पार्थिवेभ्यः ॥ ४ ॥

सूर्यः । मा । अह्नः । पातु । अग्निः । पृथिव्याः । वायुः । अन्तरिक्षात् । यमः । मनुष्येभ्यः । सरस्वती । पार्थिवेभ्यः ॥ ४ ॥

सूर्य देवता दिनसे मेरी रक्षा करें, अग्निदेव पृथिवीसे मेरी रक्षा करें, वायुदेव अन्तरिक्षसे मेरी रक्षा करें यम मनुष्योंसे मेरी रक्षा करें और सरस्वतीदेवी पार्थिव पदार्थोंसे मेरी रक्षा करें ४

प्राणापानौ मा मा हासिष्टं मा जने प्र मेषि ॥ ५ ॥

प्राणापानौ । मा । मा । हासिष्टम् । मा । जने । प्र । मेषि ॥५॥

प्राण और अपान मेरा त्याग न करें मैं प्रकट रहूँ नष्ट न होऊँ

स्वस्त्य१द्योषसो दोषसश्च सर्व आपः सर्वगणो अशीय

स्वस्ति । अद्य । उषसः । दोषसः । च । सर्वः । आपः । सर्वऽगणः । अशीय ॥ ६ ॥

आज उषः कालसे और रात्रिसे मेरा कल्याण हो मैं सब प्रकारके जलोंका और सर्वगणका उपभोग करूँ ॥ ६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शक्वरी स्थ पशवो मोप स्थेषुर्मित्रावरुणौ मे प्राणापानावग्निर्मे दक्षं दधातु ॥ ७ ॥

शक्वरीः । स्थ । पशवः । मा । उप । स्थेषुः । मित्रावरुणौ । मे । प्राणापानौ । अग्निः । मे । दक्षम् । दधातु ॥ ७ ॥

प्रथमेनुवाके चतुर्थं पर्यायसूक्तम् ॥

इति प्रथमोनुवाकः ॥

हे पशुओं ! तुम भुजासम्पन्न हो, मेरे समीप स्थित हो, मित्र और वरुण देवता मेरे प्राणापानोंको पुष्ट करें और अग्निदेव मेरे बलको पुष्ट करें ॥ ७ ॥

प्रथम अनुवाकमें चतुर्थ पर्याय सूक्त समाप्त (५३४)

दुःस्वप्नदर्शने शान्तावेतत् पर्यायसूक्तं विनियुज्यते । तद्यथा । "विद्म ते स्वप्न" इत्येकेन पर्यायेण दुःस्वप्नं दृष्ट्वा मुखं विमार्ष्टि ॥

तथा अतिघोरं दुःस्वप्नं दृष्ट्वा अनेन सूक्तेन मैश्रधान्यं पुरोडाशं जुहोति ॥

तथा "विद्म ते स्वप्न" इति सूक्तेन दुःस्वप्नं दृष्ट्वा पार्श्वेन द्वितीयेन भूयते। येन पार्श्वेन दुःस्वप्नो दृष्टस्ततोन्येन पार्श्वेन शेत इत्यर्थः

तथा अनेन सूक्तेन अन्नं स्वप्ने दृष्ट्वा निरीक्षते ॥

तद्व उक्तं कौशिकेन । "विद्म ते स्वप्नेति सर्वेषाम् अप्ययः" इति [कौ० ५. १०] ॥

दुःस्वप्नदर्शनकी शान्तिमें इस पर्यायसूक्तका विनियोग किया जाता है । यथा "विद्म ते स्वप्न" इस एक पर्यायसे दुःस्वप्नको देखकर मुखको शुद्ध करे ।

तथा दुःस्वप्नको देखकर इस सूक्तको पढ़ दूसरी करवटसे सोजावे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा अतिघोर दुःस्वप्नको देख कर इस सूक्तसे मैश्रधान्य पुरोडाशकी आहुति देवे ।

तथा स्वप्नमें अन्नको देख कर इस सूक्तसे देखे ॥

इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि–"विद्म ते स्वप्नेति सर्वेषां अप्ययः" (कौशिकसूत्र ५ । १०) ॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रं ग्राह्याः पुत्रोसि यमस्य करणः १

विद्म । ते । स्वप्न । जनित्रम् । ग्राह्याः । पुत्रः । असि । यमस्य । करणः ॥ १ ॥

हे स्वप्न ! हम तेरी उत्पत्तिको जानते हैं तू ग्राह्या पिशाचीका पुत्र है और यमका करण है ॥ १ ॥

अन्तकोसि मृत्युरसि ॥ २ ॥

अन्तकः । असि । मृत्युः । असि ॥ २ ॥

तू अन्तक है, मृत्यु है ॥ २ ॥

तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ३

तम् । त्वा । स्वप्न । तथा । सम् । विद्म । सः । नः । स्वप्न । दुःऽस्वप्न्यात् । पाहि ॥ ३ ॥

हे स्वप्न ! ऐसे आपको हम जानते हैं वह आप दुःस्वप्नसे हमारी रक्षा करिये ॥ ३ ॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्ऋत्याः पुत्रोसि यमस्य करणः ।०।० ॥ ४ ॥

०। जनित्रम् । निःऽऋत्याः । पुत्रः ।० ॥ ४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे स्वप्नके अधिष्ठात्री देवता ! हम आपकी उत्पत्तिको जानते हैं आप निर्ऋतिके पुत्र हैं यमके करण हैं ॥ ४ ॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रमभूत्याः पुत्रोऽसि ०।०।० ५

०। जनित्रम् । अभूत्याः । पुत्रः ।० ॥ ५ ॥

हे स्वप्नके अधिष्ठात्री देवता ! हम आपकी उत्पत्तिको जानते हैं आप अभूतिके पुत्र हैं यमके करण हैं ॥ ५ ॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्भूत्याः पुत्रोऽसि ०।०।० ६

०।जनित्रम् । निःऽभूत्याः । पुत्रः ।० ॥ ६ ॥

हे स्वप्न ! हम आपकी उत्पत्तिको जानते हैं आप निर्भूतिके पुत्र हैं, यमके करण हैं ० ॥ ६ ॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रं पराभूत्याः पुत्रोऽसि ०।०।० ७

०। जनित्रम् । पराऽभूत्याः । पुत्रः ।० ॥ ७ ॥

हे स्वप्नके अधिष्ठातृ देव ! हम आपकी उत्पत्तिको जानते हैं आप पराभूतिके पुत्र हैं ० ॥ ७ ॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥ ८ ॥

विद्म । ते । स्वप्न । जनित्रम् । देवऽजामीनाम् । पुत्रः । असि । यमस्य । करणः ॥ ८ ॥

हे स्वप्न ! हम आपकी उत्पत्तिको जानते हैं आप देवजामियों के पुत्र हैं, यमके करण हैं ॥ ८ ॥

अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥ ९ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्तकः । असि । मृत्युः । असि ॥ ९ ॥

अन्तक हैं, मृत्यु हैं ॥ ९ ॥

तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ॥ १० ॥

तम् । त्वा । स्वप्न । तथा । सम् । विद्म । सः । नः । स्वप्न । दुःऽस्वप्न्यात् । पाहि ॥ १० ॥

इति द्वितीयेनुवाके प्रथमं पर्यायसूक्तम् ॥

हे स्वप्नके अधिष्ठात्री देवता ! ऐसे आपको हम भली प्रकार जानते हैं, आप हमको दुःस्वप्नसे बचाइये ॥ १० ॥

द्वितीय अनुवाकमें प्रथम पर्याय सूक्त समाप्त (५३५)

अभिचारकर्मणि "अजैष्म" इत्यादिपर्यायसूक्तचतुष्टयेन शत्रुषु पाशान् बद्ध्वाभिमन्त्र्य निखनति ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन पर्यायचतुष्टयेन "अगन्म स्वः" इति अवसानद्वयवर्जितेन पदेपदे पाशान् वृश्चति ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन अवसानद्वयवर्जितेन अधिपाशान् बाधकान् शङ्कून् संचुद्य भ्रष्ट्रेभ्यस्यति ॥

तथा तत्रैव कर्मणि एतैश्चतुर्भिः पर्यायैः "अगन्म स्वः" इत्यवसानद्वयवर्जितै रक्तशालिक्षीरौदनम् अभिमन्त्र्य ददाति ॥

तथा तत्रैव कर्मणि उक्तैरेव पर्यायैर्वृषभं संपातवन्तं कृत्वा शत्रुगृहान् अभि सृजति ॥

तथा तत्रैव कर्मणि उक्तैः पर्यायैर्गर्तेध्मावन्तरेणावलेखनीं स्थाणौ निबध्य द्वादशरात्रं संपातान् आनयति ॥

सूत्रितं हि "अजैष्मेत्यधिपाशान् आदधाति । पदेपदे पाशान् वृश्चति । अधिपाशान् बाधकां छङ्कूंस्तान् संचुद्य संनह्य भ्रष्ट्रेभ्य-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्यति । अशिशिषोः क्षीरौदनादीनि त्रीणि । गर्तेध्मावन्तरेणावलेखनीं स्थाणौ निबध्य द्वादशरात्रं संपातान् अभ्यतिनयति" इति [कौ० ६. ३] ॥

"अगन्म स्वः" इत्यवसानद्वयेन आदित्यम् ईक्षते सर्वेषु तन्त्रेषु। तदुक्तं कौशिकेन। "अगन्म स्वरित्यादित्यमीक्षते" इति[कौ०१.६]॥

अभिचारकर्ममें "अजैष्म" इत्यादि चार पर्याय सूक्तोंसे शत्रुओं में पाशोंको बाँध अभिमन्त्रित करके निखनन करे ।

तथा तहाँ ही कर्ममें "अगन्म स्वः" इस अवसानद्वयवर्जित पर्यायचतुष्टयसे पद २ में पाशोंका छेदन करे ।

तथा तहाँ ही कर्ममें अवसानद्वयवर्जितसे अधिपाश बाधक शङ्कुओंको संक्षुदन करके भ्रष्ट्रमें अभ्यसन करे ।

तथा तहाँ ही कर्ममें "अगमन् स्वः" इन दो अवसानोंसे वर्जित इन चार पर्यायसूक्तोंसे लाल सट्टीके चावलोंके दूध भात को अभिमन्त्रित करके देदेय ।

तथा तहाँ ही कर्ममें इन ही पर्यायोंसे वृषभको सम्पातित करके शत्रुके घरकी ओर छोड़े ।

तथा तहाँ ही कर्ममें उक्त पर्यायोंसे गड्ढेके ईंधनमें अन्तरसे अवलेखनीको स्थाणुमें बाँध कर द्वादशरात्र सम्पातोंको लावे ।

सूत्रमें भी कहा है, कि–"अजैष्मेत्यधिपाशान् आदधाति। पदे पदे पाशान् वृश्चति । अधिपाशान् बाधकांश्छंकूंस्तान् संक्षुद्य संनह्य भ्रष्ट्रेऽभ्यस्यति । अशिशिषोः क्षीरौदनादीनि त्रीणि । गर्तेध्मावन्तरेणावलेखनीं स्थाणौ निबध्य द्वादशरात्रं सम्पातान् अभ्यतिनयति" (कौशिकसूत्र ६ । ३) ॥

सब तन्त्रोंमें "अगन्म स्वः" इन दो अवसानोंसे आदित्यको देखे । इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि–"अगन्म स्वरित्यादित्यमीक्षते"–(कौशिकसूत्र १ । ६) ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अजैष्माद्यासनामाद्याभूमानागसो वयम् ॥ १ ॥

अजैष्म । अद्य । असनाम । अद्य । अभूम । अनागसः । वयम् १

हम अब जीतें, (भूमिको) प्राप्त करें और निष्पाप हों ॥१॥

उषो यस्माद् दुष्वप्न्यादभैष्माप तदुच्छतु ॥ २ ॥

उषः । यस्मात् । दुःऽस्वप्न्यात् । अभैष्म । अप । तत् । उच्छतु

विनाशन करने वाले दुःस्वप्न्यसे हम डर गए हैं वह भय दूर होजावे ॥ २ ॥

द्विषते तत् परा वह शपते तत् परा वह ॥ ३ ॥

द्विषते । तत् । परा । वह । शपते । तत् । परा । वह ॥ ३ ॥

जो हमसे द्वेष करता है, हे मन्त्रशक्तिके अधिष्ठाता देव ! उसके पास आप इस भयको लेजाइये, जो हमको कोसा करता है उसके पास इस भयको लेजाइये ॥ ३ ॥

यं द्विष्मो यच्च नो द्वेष्टि तस्मा एनद् गमयामः ४

यम् । द्विष्मः । यत् । च । नः । द्वेष्टि । तस्मै । एनत् । गमयामः ४

जो हमसे द्वेष करता है और हम जिससे द्वेष करते हैं उसके पास हम इस भयको भेजते हैं ॥ ४ ॥

उषा देवी वाचा संविदाना वाग् देव्युषसा संविदाना ५

उषाः । देवी । वाचा । सम्ऽविदाना । वाक् । देवी । उषसा । सम्ऽविदाना ॥ ५ ॥

उषादेवी वाणीसे एकमति–सम्मति–रखती हुई और वाणी उषासे सम्मति रखती हुई ॥ ५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उषस्पतिर्वाचस्पतिना संविदानो वाचस्पतिरुषस्पतिना संविदानः ॥ ६ ॥

उषः । पतिः । वाचः । पतिना । सम्ऽविदानः । वाचः । पतिः । उषः । पतिना । सम्ऽविदानः ॥ ६ ॥

उषस्पति वाचस्पतिसे एकमत होते हुए और वाचस्पति उषपतिसे एकमत होते हुए ॥ ६ ॥

ते३मुष्मै परा वहन्त्वरायान् दुर्णाम्नः सदान्वाः ।७।

ते । अमुष्मै । परा । वहन्तु । अरायान् । दुःऽनाम्नः । सदान्वाः ७

कुम्भीका दूषीकाः पीयकान् ॥ ८ ॥

कुम्भीका । दूषीकाः । पीयकान् ॥ ८ ॥

वे इस शत्रुके लिये दूषित नाम वाली सदा दुःख देने वालीके अदानोंको, कुम्भीकोंको दूषीकोंको और पीयकोंको प्रेरित करें । ७ । ८ ।

जाग्रद्दुष्वप्न्यं स्वप्नेदुष्वप्न्यम् ॥ ९ ॥

जाग्रत्ऽदुस्वप्न्यम् । स्वप्नेऽदुस्वप्न्यम् ॥ ९ ॥

अनागमिष्यतो वरानवित्तेः संकल्पानमुच्या द्रुहः पाशान् ॥ १० ॥

अनागमिष्यतः । वरान् । अवित्तेः । सम्ऽकल्पान् । अमुच्याः । द्रुहः । पाशान् ॥ १० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मैं जागते समयके, दुःस्वप्नोंसे मिलने वाले फलोंको, सोने समयके, दुःस्वप्नसे मिलने वाले फलोंको, अवित्तिके भूतकालके श्रेष्ठ २ संकल्पोंको और शत्रुके पाशोंको खोलता हूँ ॥९॥१०॥

तदमुष्मा अग्ने देवाः परा वहन्तु वध्रिर्यथासद् विथुरो न साधु ॥ ११ ॥

तत् । अमुष्मै । अग्ने । देवाः । परा । वहन्तु । वध्रिः । यथा । असत् । विथुरः । न । साधुः ॥ ११ ॥

इति द्वितीयेनुवाके द्वितीयं पर्यायसूक्तम् ॥

हे अग्ने ! इन सबको देवता शत्रुके लिये लेजावें जिससे वह षण्ढ होजावे, भयभीत रहे, साधु न रह सके ११

द्वितीय अनुवाकमें द्वितीय पर्याय सूक्त समाप्त (५३६) ॥

तेनैनं विध्याम्यभूत्यैनं विध्यामि निर्भूत्यैनं विध्यामि पराभूत्यैनं विध्यामि ग्राह्यैनं विध्यामि तमसैनं विध्यामि ॥ १ ॥

तेन । एनम् । विध्यामि । अभूत्या । एनम् । विध्यामि । निःऽभूत्या । एनम् । विध्यामि । पराऽभूत्या । एनम् । विध्यामि । ग्राह्या । एनम् । विध्यामि । तमसा । एनम् । विध्यामि ॥१॥

मैं उस अभिचारकर्मसे इसको वींधता हूँ, अभूतिसे इसको वींधता हूँ निर्भूतिसे इसको वींधता हूँ, पराभूतिसे इसको वींधता हूँ, ग्राह्यासे इसको वींधता हूँ, और मृत्युरूप तमसे इसको वींधता हूँ ॥ १ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवानामेनं घोरैः क्रूरैः प्रैषैरभिप्रेष्यामि ॥ २ ॥

देवानाम् । एनम् । घोरैः । क्रूरैः । प्रऽएषैः । अभिऽप्रेष्यामि २

मैं इसको देवताओंकी भयंकर क्रूर घोर आज्ञाओंके अभिमुख प्रेषित करता हूँ ॥ २ ॥

वैश्वानरस्यैनं दंष्ट्रयोरपि दधामि ॥ ३ ॥

वैश्वानरस्य । एनम् । दंष्ट्रयोः । अपि । दधामि ॥ ३ ॥

मैं इसको वैश्वानरकी डाढ़ोंमें रखता हूँ ॥ ३ ॥

एवानेवाव सा गरत् ॥ ४ ॥

एव । अनेव । अव । सा गरत् ॥ ४ ॥

वह इसको अनकी समान निगल जावे ॥ ४ ॥

योऽस्मान् द्वेष्टि तमात्मा द्वेष्टु यं वयं स द्विष्मः स आत्मानं द्वेष्टु ॥ ५ ॥

यः । अस्मान् । द्वेष्टि । तम् । आत्मा । द्वेष्टु । यम् । वयम् । द्विष्मः । सः । आत्मानम् । द्वेष्टु ॥ ५ ॥

जो हमसे द्वेष करता है उससे आत्मा द्वेष करे और जिससे हम द्वेष करते हैं वह आत्मासे द्वेष करे । ५ ॥

निर्द्विषन्तं दिवो निः पृथिव्या निरन्तरिक्षाद् भजाम

निः । द्विषन्तम् । दिवः । निः । पृथिव्याः । निः । अन्तरिक्षात् । भजाम ॥ ६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हम द्वेष करने वालेको द्युलोकसे बाहर, पृथिवीलोकसे बाहर और अन्तरिक्षलोकसे बाहर भेजते हैं ॥ ६ ॥

सुयामंश्चाक्षुष ॥ ७ ॥

सुऽयामन् । चाक्षुष ॥ ७ ॥

इदमहमामुष्यायणेऽमुष्याः पुत्रे दुष्वप्न्यं सृजे ॥८॥

इदम् । अहम् । आमुष्यायणे । अमुष्याः । पुत्रे । दुःऽस्वप्न्यम् । सृजे

हे सुयामन् चाक्षुष ! यह मैं अमुक गोत्र वाले अमुकीके पुत्रमें दुःस्वप्न देखनेसे मिलने वाले कुफलको उतारता हूँ ॥७॥८॥

यददोऽअदो अभ्यगच्छन् यद् दोषा यत् पूर्वां रात्रिम् ९

यत् । अदःऽअदः । अभिऽगच्छन् । यत् । दोषा । यत् । पूर्वाम् । रात्रिम् ॥ ९ ॥

यज्जाग्रद् यत् सुप्तो यद् दिवा यन्नक्तम् ॥ १० ॥

यत् । जाग्रत् । यत् । सुप्तः । यत् । दिवा । यत् । नक्तम् ॥१०॥

यदहरहरभिगच्छामि तस्मादेनमव दये ॥ ११ ॥

यत् । अहःऽअहः । अभिऽगच्छामि । तस्मात् । एनम् । अव । दये

जो पूर्व रात्रिमें अमुक २ कर्मको मैं प्राप्त हो चुका हूँ, जो जागतेमें सोतेमें दिनमें वा रातमें वा प्रतिदिन (पापको) प्राप्त होता हूँ उससे मैं इसको मारता हूँ ॥ ९ ॥ ११ ॥

तं जहि तेन मन्दस्व तस्य पृष्टीरपि शृणीहि ॥१२॥

तम् । जहि । तेन । मन्दस्व । तस्य । पृष्टीः । अपि शृणीहि १२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे देव ! आप उस शत्रुको मारिये, उससे हर्षमें भरिये और इसकी पसलियोंको भी तोड़ डालिये ॥ १२ ॥

स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥ १३ ॥

सः । मा । जीवीत् । तम् । प्राणः । जहातु ॥ १३ ॥

इति द्वितीयेनुवाके तृतीयं पर्यायसूक्तम् ॥

वह जीवित न रहे प्राण उसको त्याग देय ॥ १३ ॥

द्वितीय अनुवाकमें तृतीय पर्याय सूक्त समाप्त (५३७)

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥ १ ॥

जितम् । अस्माकम् । उत्ऽभिन्नम् । अस्माकम् । ऋतम् । अस्माकम् । तेजः । अस्माकम् । ब्रह्म । अस्माकम् । स्वः । अस्माकम् । यज्ञः । अस्माकम् । पशवः । अस्माकम् । प्रऽजा । अस्माकम् । वीराः । अस्माकम् ॥ १ ॥

जीता हुआ पदार्थसमूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थसमूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है, ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और प्रजा हमारी है और वीर हमारे हैं ॥ १ ॥

तस्मादमुं निर्भजामोमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥ २ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तस्मात् । अमुम् । निः । भजामः । अमुम् । आमुष्यायणम् ।
अमुष्याः । पुत्रम् । असौ । यः ॥ २ ॥

अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र है उसको हम इस लोक से दूर करते हैं ॥ २ ॥

स ग्राह्याः पाशान्मा मोचि ॥ ३ ॥

सः । ग्राह्याः । पाशात् । मा । मोचि ॥ ३ ॥

वह ग्राह्याके पाशसे न छूट सके ॥ ३ ॥

तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ४ ॥

तस्य । इदम् । वर्चः । तेजः । प्राणम् । आयुः । नि । वेष्टयामि ।
इदम् । एनम् । अधराञ्चम् । पादयामि ॥ ४ ॥

मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥ ४ ॥

जितम् ०।० । स निर्ऋत्याः पाशान्मा मोचि ।० ५

०। सः । निःऽऋत्याः । पाशात् ।० ॥ ५ ॥

जीता हुआ पदार्थसमूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थसमूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है, ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं और प्रजा हमारी है और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह निर्ऋतिके पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥ ५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जितम् ०।० । सोभूत्याः पाशान्मा मोचि ।० ॥६॥

०। सः । अभूत्याः । पाशात् ।० ॥ ६ ॥

जीता हुआ पदार्थसमूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थसमूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है ब्रह्म हमारा है स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं और प्रजा हमारी है और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह अभूति पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥ ६ ॥

जितम् ०।० । स निर्भूत्याः पाशान्मा मोचि ।० ७

०। सः । निःऽभूत्याः । पाशात् ।० ॥ ७ ॥

जीता हुआ पदार्थसमूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थसमूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है, ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं और प्रजा हमारी और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह निर्भूति के पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥ ७ ॥

जितम् ०।० । स पराभूत्याः पाशान्मा मोचि ।० ८

०। सः । पराऽभूत्या । पाशात् ।० ॥ ८ ॥

जीता हुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है, ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं और प्रजा हमारी है और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह पराभूति के पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥ ८ ॥

जितम् ०।० । स देवजामीनां पाशान्मा मोचि ।० ९

०। सः । देवऽजामीनाम् । पाशात् ।० ॥ ९ ॥

जीता हुआ पदार्थ समूह हमारा है शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है, ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं और प्रजा हमारी है और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह देव-जामिके पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयु को लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥ ९

जितम् ०।०।स बृहस्पतेः पाशान्मा मोचि ।० ॥१०॥

०। सः । बृहस्पतेः । पाशात् ।० ॥ १० ॥

जीता हुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है, ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और प्रजा हमारी है और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह बृहस्पति के पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥ १० ॥

जितम् ०।० । स प्रजापतेः पाशान्मा मोचि ।० ११

०। सः । प्रजाऽपतिः । पाशात् ।० ॥ ११ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीता हुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है, ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और प्रजा हमारी है, और वीर हमारे हैं, अमुक गोत्रका अमुकी का जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह प्रजापतिके पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥११॥

जितम् ०।० । स ऋषीणां पाशान्मा मोचि ।० १२

०। सः । ऋषीणाम् । पाशात् ।० ॥ १२ ॥

जीताहुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और प्रजा हमारी है और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह ऋषियों के पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥ १२ ॥

जितम् ०।० । स आर्षेयाणां पाशान्मा मोचि ।०

०। आर्षेयाणाम् । पाशात् ।० ॥ १३ ॥

जीताहुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं. और प्रजा हमारी है और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह आर्षेयोंके पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥ १३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जितम् ०।० । सोङ्गिरसां पाशान्मा मोचि ।० १४

०। सः । अङ्गिरसाम् । पाशात् ।० ॥ १४ ॥

जीता हुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और प्रजा हमारी है और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह अंगिराओं के पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥ १४ ॥

जितम् ०।० । स आङ्गिरसानां पाशान्मा मोचि।०

०। सः । आङ्गिरसानाम् । पाशात् ।० ॥ १५ ॥

जीता हुआ पदार्थसमूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है, ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और प्रजा हमारी है, और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकी का जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं, वह आंगिरसोंके पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥१५॥

जितम् ०।० । सोथर्वणां पाशान्मा मोचि ।० १६

०। सः । अथर्वणाम् । पाशात् ।० ॥ १६ ॥

जीता हुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है, ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और प्रजा हमारी है, और वीर हमारे हैं, अमुक गोत्रका अमुकी का जो यह पुत्र है, उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं, वह अथर्वाओंके पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥१६॥

जितम् ०।०। स आथर्वणानां पाशान्मा मोचि ।०

०। सः । आथर्वणानाम् । पाशात् ।० ॥ १७ ॥

जीता हुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है. सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है, ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और प्रजा हमारी है, और वीर हमारे हैं, अमुक गोत्रका अमुकी का जो यह पुत्र है, उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं, वह आथर्वणोंके पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥१७॥

जितम् ०।० । स वनस्पतीनां पाशान्मा मोचि ।०

०। सः । वनस्पतीनाम् । पाशात् ।० ॥ १८ ॥

जीता हुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है, ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और प्रजा हमारी है, और वीर हमारे हैं, अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र है, उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं, वह वनस्पतियोंके पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ १८

जितम् ०।० । स वानस्पत्यानां पाशान्मा मोचि ।०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

०। सः। वानस्पत्यानाम्। पाशात्।० ॥ १९ ॥

जीताहुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और प्रजा हमारी है और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र हैं उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह वानस्पत्यों के पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥ १९ ॥

जितम् ०।० । स ऋतूनां पाशान्मा मोचि।० २०

०। सः। ऋतूनाम्। पाशात् ० ॥ २० ॥

जीताहुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और प्रजा हमारी है और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र हैं उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह ऋतुओं के पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥ २० ॥

जितम् ०।० ।स आर्तवानां पाशान्मा मोचि।० २१

०। सः। आर्तवानाम्। पाशात्।० । २१ ॥

जीताहुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और प्रजा हमारी है और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह ऋतुमें होने वाले पदार्थोंके पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ२१

जितम् ०।०।स मासानां पाशान्मा मोचि ।० २२

०। सः । मासानाम् । पाशात् ।० ॥ २२ ॥

जीताहुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और प्रजा हमारी है और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह मासोंके पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥ २२ ॥

जितम् ०।०।सोऽर्धमासानां पाशान्मा मोचि ।० २३

०। सः । अर्धमासानाम् । पाशात् ।० ॥ २३ ॥

जीताहुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और प्रजा हमारी है और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह अर्धमासों के पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥ २३ ॥

जितम् ०।०।सोऽहोरात्रयोः पाशान्मा मोचि ।० २४

०। सः । अहोरात्रयोः । पाशात् ।० ॥ २४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीताहुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और प्रजा हमारी है और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह दिन और रातके पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजकी वर्चको और आयु को लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥ २४ ॥

जितम् ०।० । सोह्नोः संयतोः पाशान्मा मोचि ।०

०। सः । अह्नोः । सम्ऽयतोः । पाशात् ।० ॥ २५ ॥

जीताहुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और प्रजा हमारी है और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह रात दिन के दोनों संयत भागोंके पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ

जितम् ०।०। स द्यावापृथिव्योः पाशान्मा मोचि ।०

०। सः । द्यावापृथिव्योः । पाशात् ।० ॥ २६ ॥

जीता हुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है, ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और प्रजा हमारी है और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह द्यावापृथिवी के पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥ २६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जितम् ०।०। स इन्द्राग्न्योः पाशान्मा मोचि ।० २७

०। सः । इन्द्राग्न्योः । पाशात् ।० ॥ २७ ॥

जीता हुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है, ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और और प्रजा हमारी है वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह इन्द्र और अग्निके पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयु को, लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥ २७ ॥

जितम् ०।०।स मित्रावरुणयोः पाशान्मा मोचि ।०

०। सः । मित्रावरुणयोः । पाशात् ।० ॥ २८ ॥

जीता हुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है, ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं और प्रजा हमारी है वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह मित्र और वरुण के पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥ २८ ॥

जितम् ०।०।स राज्ञो वरुणस्य पाशान्मा मोचि ।०

०। सः । राज्ञः । वरुणस्य । पाशात् ।० ॥ २९ ॥

जीता हुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है, ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रजा हमारी है और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह राजा वरुणके पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥ २९ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥ ३० ॥

०। अस्माकम्। ऋतम्। अस्माकम्। तेजः। अस्माकम्। ब्रह्म। अस्माकम्। स्वः। अस्माकम्। यज्ञः। अस्माकम्। पशवः। अस्माकम्। प्रऽजाः। अस्माकम्। वीराः। अस्माकम् ॥३०॥

जीता हुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है, ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और प्रजा हमारी है और वीर हमारे हैं ॥ ३० ॥

तस्मादमुं निर्भजामोमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥ ३१ ॥

तस्मात्। अमुम्। निः। भजामः। अमुम्। आमुष्यायणम्। अमुष्याः। पुत्रम्। असौ। यः ॥ ३१ ॥

अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र है उसको हम इस लोक से दूर करते हैं ॥ ३१ ॥

स मृत्योः पड्वीशात् पाशान्मा मोचि ॥ ३२ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सः । मृत्योः । पड्वीशात् । पाशात् । मा । मोचि ॥ ३२ ॥

वह मृत्युके पादबन्धक पाशोंसे न छूटे ॥ ३२ ॥

तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ३३ ॥

तस्य । इदम् । वर्चः । तेजः । प्राणम् । आयुः । नि । वेष्टयामि । इदम् । एनम् । अधराञ्चम् । पादयामि ॥ ३३ ॥

इति द्वितीयेनुवाके चतुर्थं पर्यायसूक्तम् ॥

उसके इस वर्च तेज और आयुको मैं लपेटता हूँ और इसको औंधे मुख गिराता हूँ ॥ ३३ ॥

द्वितीय अनुवाकमें चतुर्थ पर्याय सूक्त समाप्त (५३८) ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमग्न्यष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः ॥ १ ॥

जितम् । अस्माकम् । उत्ऽभिन्नम् । अस्माकम् । अभिः । अस्थाम् । विश्वाः । पृतनाः । अरातीः ॥ १ ॥

जीता हुआ पदार्थसमूह हमारा है, विदारण करके लाया हुआ पदार्थसमूह हमारा है मैं शत्रुओंकी सम्पूर्ण सेनाओं पर प्रतिष्ठित होऊँ ॥ १ ॥

तदग्निराह तदु सोम आह पूषा मा धात् सुकृतस्य लोके

तत् । अग्निः । आह । तत् । ऊं इति । सोमः । आह । पूषा । मा । धात् । सुऽकृतस्य । लोके ॥ २ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसी बातको अग्निदेव कह रहे हैं, इसी बातको सोमदेव कह रहे हैं, पूषा देवता मुझको पुण्यलोकमें स्थापित करें ॥ २ ॥

अगन्म स्व१ः स्व१रगन्म सं सूर्यस्य ज्योतिषागन्म ३

अगन्म । स्व१ः । स्व१ः । अगन्म । सम् । सूर्यस्य । ज्योतिषा । अगन्म ॥ ३ ॥

हम स्वर्गको प्राप्त हों, हम स्वर्गको प्राप्त हों, हम सूर्यकी ज्योति से भली प्रकार स्वर्गको प्राप्त हों ॥ ३ ॥

वस्योभूयाय वसुमान् यज्ञो वसु वंशिषीय वसुमान् भूयासं वसु मयि धेहि ॥ ४ ॥

वस्यःऽभूयाय । वसुऽमान् । यज्ञः । वसु । वंशिषीय । वसुऽमान् । भूयासम् । वसु । मयि । धेहि ॥ ४ ॥

द्वितीयेनुवाके पञ्चमं पर्यायसूक्तम् ॥

द्वितीयोनुवाकः ॥

इति षोडशं काण्डं समाप्तम् ॥

सत्कार पानेके योग्य धनवान् मैं परमधनी होनेके लिये धन को वशमें करूँ, धनवान् होऊँ, हे देव ! आप मुझमें धनको पुष्ट करिये ॥ ४ ॥

द्वितीय अनुवाकमें पञ्चम पर्याय सूक्त समाप्त (५३९)

द्वितीय अनुवाक समाप्त ॥

इति श्रीअथर्ववेदसंहिताका षोडश काण्ड ऋषिकुमार प० रामस्वरूपशर्मात्मज सनातनधर्मपताका संपादक ऋ० कु० प० रामचन्द्रशर्माकृत भाषानुवादसहित

समाप्त.

३६६४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

❀ श्रीहरिः ❀

अथर्ववेदसंहिता

सप्तदशं-काण्डम्

सायणभाष्य तथा अनुवादसहित

यस्य निश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योखिलं जगत् ।
निर्ममे तम् अहं वन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम् ॥१॥

वेद जिनके निःश्वासरूप हैं और जिन्होंने वेदोंके अनुसार सम्पूर्ण जगत्की रचना की है, उन विद्यातीर्थ महेश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥

सप्तदशे काण्डे एकोऽनुवाकः । तत्र त्रीणि सूक्तानि । अयं "विषासहिम्" इत्यनुवाकः सलिलगणमध्ये पठितः । अतः "सलिलैः क्षीरौदनम् अश्नाति । मन्थान्तानि" इति [कौ० ३.१] "सलिलैः सर्वकामः" [कौ० ३. ७] इत्यादौ चास्य विनियोगः॥

उपनयनकर्मणि आचार्यः ब्रह्मचारिणो नाभिदेशं संस्पृश्य अमुम् अनुवाकं जपेत् । तद् उक्तं कौशिकेन । "दक्षिणेन पाणिना नाभिदेशं संस्तभ्य जपति अस्मिन् वसु वसवो धारयन्तु"[१.९] इत्यादि "प्राणाय नमः [११. ६] विषासहिम् [१७. १] इत्यनुमन्त्रयते" इत्यन्तम् [कौ० ७. ६] ॥

उपनयनकर्मण्येव ऋषिहस्ते "कर्मणे वाम्" इति हस्तप्रक्षालनानन्तरम् आचार्यो माणवकम् अनेनानुवाकेन अभिमन्त्रयते । "ऋषिहस्तस्य कर्मणे वां वेशाय वाम्" इति प्रक्रम्य सूत्रितम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"आ रभस्व [८. २] प्राणाय नमः [११. ६] विषासहिम् [१७. १] इत्यभिमन्त्रयते" इति [कौ० ७. ९]॥

उपनयन एव आयुरभिवृद्ध्यर्थम् अनेनानुवाकेन माणवकस्त्रिकालम् आदित्यम् उपतिष्ठेत । सूत्रितं हि । "उदस्य केतवः [१३. २] मूर्धाहम् [१६. ३] विषासहिम् [१७. १] इत्युद्यन्तम् उपतिष्ठते मध्यन्दिने अस्तं यन्तम्" इति [कौ० ७. ९]॥

तथा आदित्यग्रहणरूपाद्भुते तच्छान्त्यर्थम् अनेनानुवाकेन आज्यं जुहुयात् । "अथ यत्रैतद् आदित्यं तमो गृह्णाति तत् जुहुयात्" इति प्रक्रम्य सूत्रितम् । "विषासहिं सहमानम् इत्येतेन सूक्तेन जुहुयात् । सा तत्र प्रायश्चित्तिः" इति [कौ० १३. ७]। सूक्तेन । अर्थसूक्तेनेत्यर्थः । अतः कृत्स्नस्याप्यनुवाकस्य ग्रहणशान्तौ विनियोग इत्यवसीयते ॥

तथा चन्द्रग्रहणरूपाद्भुते तच्छान्त्यर्थम् अनेनानुवाकेन उपस्थानं कुर्यात् । "अथ यदेतच्चन्द्रमसम् उपसरति" इति [कौ० १३. ८] प्रक्रम्य सूत्रितम् । "रोहितैरुपतिष्ठते" इति ॥

अस्यानुवाकस्य आयुष्यगणे पाठाद् उपाकर्मणि अनेनानुवाकेन आज्यं जुहुयात् । "अभिजिति शिष्यान् उपनीय" इति प्रक्रम्य कौशिकेन सूत्रितम् । "विश्वकर्मभिरायुष्यैः स्वस्त्ययनैराज्यं जुहुयात्" इति [कौ० १४. ३] ॥

अस्य सूक्तस्य सलिलगणे पाठात् "आदित्यां श्रुततेजोधनायुष्कामस्य" इति [न० क० १७] विहितायाम् आदित्याख्यायां महाशान्तौ अस्यानुवाकस्य विनियोगः । तद् उक्तं नक्षत्रकल्पे । "सलिलगण आदित्यायाम्" इति [न० क० १८] ॥

तथा कोटिहोमे अस्यानुवाकस्य विनियोगः । कोटिहोमं प्रक्रम्य उक्तम् अथर्वपरिशिष्टे ।

जुहुयुः शान्तवृक्षस्य समिधो घृतसंयुताः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वयं चापि यजेद् ब्रह्मा सवितारं दिनेदिने ॥
पाकयज्ञविधानेन मन्त्राश्च स्युर्विषासहिः ॥
शान्तिकामो यवैः कुर्यात् तिलैः पापापनुत्तये। इत्यादि [प० ३१. ६] ॥

तथा भास्करप्रीत्यर्थं क्रियमाणे आदित्यमण्डलदाने अस्यानुवाकस्य मण्डलाकारापूपाभिमन्त्रणे विनियोगः । तद् उक्तम् अथर्वपरिशिष्टे । "अथ यः कामयेत सर्वेषां नृणाम् उत्तमः स्याम् इति स भास्करायापूपं दद्यात् । तस्य कल्पः ।" इत्यादि "सुवर्णशकलं चोपरिष्टान्निधायार्चयेद् रक्तकुसुमैर्विषासहिम् इत्यभिमन्त्र्य ब्राह्मणाय निवेदयेत्" इति [प० १२. १] ।

अत्र "त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रः" इत्यनेन मन्त्रेण दर्शेष्टौ माहेन्द्रं हविरनुमन्त्रयेत । तद् उक्तं वैताने । "सांनाय्यस्यैन्द्रं माहेन्द्रं वा इन्द्रेमम् [६. ५. २] त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रः [१७. १८]" इति [वै० १. ३] ॥

सत्रहवें काण्डमें एक अनुवाक है। उसमें तीन सूक्त हैं। "अयं विषासहिम्" इस अनुवाकका सलिलगणमें पाठ है। अतः "सलिलैः क्षीरौदनं अश्नाति। मन्थान्तानि" (कौशिकसूत्र ३ । १) और "सलिलैः सर्वकामः" (कौशिकसूत्र ३ । ७) इत्यादिमें इसका विनियोग होता है।

आचार्य उपनयनकर्ममें ब्रह्मचारीके नाभिदेशका स्पर्श करके इस अनुवाकका जप करे। इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि–'दक्षिणेन पाणिना नाभिदेशं संस्तभ्य जपति अस्मिन् वसु वसवो धारयन्तु' (१ । ९) इत्यादि "प्राणाय नमः (११ । ६) विषासहिम् (१७ । १) इत्यनुमन्त्रयते' इत्यन्तम् (कौशिकसूत्र ७ । ६) ॥

आचार्य उपनयनकर्ममें ही ऋषिहस्तसे "कर्मणे वाम्" प्रत्ता-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लनके अनन्तर बालकका इस अनुवाकसे अभिमन्त्रण करे। सूत्र में 'ऋषिहस्तस्य कर्मणे वां वेशाय वाम्' का आरंभ करके कहा है, कि-"आ रभस्व (८ । २) प्राणाय नमः (११ । ६) विषासहिम् (१७ । १) इत्यभिमन्त्रयते" (कौशिकसूत्र ७ । ९) ॥

बालक उपनयनमें ही आयुकी वृद्धिके लिये इस अनुवाकसे त्रिकालमें आदित्यका उपस्थान करे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-"उदस्य केतवः (१३ । २) मूर्धाहम् (१६ । ३) विषासहिम् (१७ । १) इत्युद्यन्तं उपतिष्ठते मध्यन्दिने अस्तं यन्तम्" (कौशिकसूत्र ७ । ९) ॥

तथा सूर्यग्रहणरूप अद्भुतमें उसकी शांतिके लिये इस अनुवाक से घृतकी आहुति देय। "अथ यत्रैतद्ध आदित्यं तमो गृह्णाति तत्र जुहुयात् ।-जब यह राहु सूर्यको ग्रहण करे उस समय आहुति देय" का आरम्भ करके सूत्रमें कहा है, कि-"विषासहिं सहमानं इत्येतेन सूक्तेन जुहुयात् सा तत्र प्रायश्चित्तिः ।-विषासहिं सहमानं सूक्तसे आहुति देय यही तहाँ प्रायश्चित्त है" (कौशिकसूत्र १३ । ७) ॥ अत एव इस पूर्णसूक्तका ग्रहणकी शांतिमें विनियोग होता है। यह निश्चित है।

तथा चन्द्रग्रहणरूप अद्भुतमें उसकी शांतिके लिये इस अनुवाकसे उपस्थान करे। "अथ यत्रैतद्ध चन्द्रमसं उपसवति" का आरम्भ करके कौशिकसूत्र १३ । ८ में कहा है, कि-"रोहितैरुपतिष्ठते" ॥

इस अनुवाकका आयुष्यगणमें पाठ है अत एव उपाकर्म में इस अनुवाकसे घृतकी आहुति देय "अभिजिति शिष्यानुपनीय" का आरंभ करके कौशिकसूत्र १४ । ३ में कहा है, कि-"विश्वकर्मभिरायुष्यैः स्वस्त्ययनैराज्यं जुहुयात्" ॥

इस सूक्तका सलिलगणमें पाठ है, अत एव "आदित्यां श्रुत-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तेजोधनायुष्कामस्य ।–श्रुत तेज धन और आयुको चाहने वालेके लिये आदित्या शान्तिको करे" इस नक्षत्रकल्प १७ से विहित आदित्या नाम वाली महाशान्तिमें इस अनुवाकका विनियोग होता है। इसी बातको नक्षत्रकल्प १८ में कहा है, कि–"सलिलगण आदित्यायाम्" ॥

तथा कोटिहोममें भी इस अनुवाकका विनियोग होता है। कोटिहोमका आरंभ करके परिशिष्टमें कहा है, कि–"शान्तवृक्षकी घृतमें भीगी हुई समिधाओंकी आहुति देवें, और ब्रह्मा अपने आप भी प्रतिदिन सवितादेवताका यजन करे। पाकयज्ञविधानके अनुसार विषासहि आदि मन्त्र यहाँ पढ़े जावेंगे। शान्ति चाहने वाला पुरुष पापको दूर करनेके लिये यव और तिलोंसे होम करे" (अथर्वपरिशिष्ट ३१ । ६) ॥

सूर्यदेवकी प्रीतिके लिये किये जाने वाले आदित्यमण्डलदानके मण्डलाकार अपूपके अभिमन्त्रणमें भी इस अनुवाकका विनियोग होता है। इसी बातको अथर्वपरिशिष्टमें कहा है, कि–"जो यह कामना करे, कि–मैं सब पुरुषोंमें उत्तम होजाऊँ वह सूर्यदेवके लिये अपूपको देवे। उसका कल्प यह है" इत्यादि "सुवर्णके टुकड़ेको ऊपरसे रख कर लाल पुष्पोंसे पूजन करे और विषासहिम्से अभिमन्त्रण करके ब्राह्मणको देदेय"॥ (अथर्वपरिशिष्ट १२ । १) ॥

यहाँ "त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रः" इस मन्त्रसे दर्शेष्टिमें माहेन्द्र हविका अनुमन्त्रण करे। इसी बातको वैतानसूत्र १ । ३ में कहा है, कि–"सांनाय्यस्यैन्द्रं माहेन्द्रं वा इन्द्रेमं (६ । ५ । २) त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रः (१७. १८)" ॥

तत्र प्रथमा ॥

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम्।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रमायुष्मान् भूयासम् ॥ १ ॥

विऽससहिम्। सहमानम्। ससहानम्। सहीयांसम्।
सहमानम्। सहःऽजितम्। स्वःऽजितम्। गोऽजितम्। संधनऽजितम्।
ईड्यम्। नाम। ह्वे। इन्द्रम्। आयुष्मान्। भूयासम् ॥ १ ॥

अत्र सूर्यादित्यादिपदलिङ्गानाम् अश्रवणेपि कृत्स्नस्याप्यनुवाकस्य उक्तप्रकारेण कृत्स्नेषु सौर्येषु कर्मसु प्रायेण विनियोगात् सूर्यपरतया मन्त्रा व्याख्येयाः। अथ वा परमैश्वर्ययोगात् "इन्द्र इरां दृणातीति वा इरां दारयतीति वा इरां धारयतीति वा" [नि० १०. ८] इत्यादिनिरुक्तकारोक्तानाम् अवयवार्थानां वृष्टिद्वारा सर्वेषां भूतानाम् आत्मत्वात् सूर्ये संभवाच्च ईड्यं नाम ह्व इन्द्रम् इति इन्द्रशब्द आदित्यम् अभिधत्ते। अथ वा "विवस्वदिन्द्रयुताः" इति "इन्द्रश्च विवस्वांश्चेत्येते" इति [तै० आ० १. १३. ३] च द्वादशादित्यमध्ये इन्द्रस्यापि श्रुतत्वात् स्मृतत्वाच्च इन्द्रः साक्षाद् आदित्य एव। तथा तैत्तिरीयश्रुतिः। "ऐन्द्रीम् आवृतम् अन्वावर्ते। असौ वा आदित्य इन्द्रः। तस्यैवावृतम् अनु पर्यावर्तते" इति [तै० सं० १. ७. ६. ३]। अतः उक्तरीत्या आदित्येन्द्रयोरेकत्वेन "सपत्नानां विषासहिम्" [ऋ० १०.१६६.१] "अषाढम् उग्रं सहमानम्" [तै० ब्रा० २. ८. ५. ८] इत्यादिषु इन्द्रविशेषणतया प्रसिद्धानि विषासहिम् इत्यादीनि सूर्येपि अविरुद्धानि। ईड्यम् स्तुत्यम् आरोग्याद्यर्थिभिः सर्वैः प्राणिभिः सर्वदा स्तोतव्यं नाम सर्वेषां नामकम्। अथ वा नामेति प्रसिद्धौ। ईड्यत्वेन प्रसिद्धम् इन्द्रम् आदित्यं ह्वे हुवे इति संग्रहार्थः। ❀ ह्वयतेर्लोट "बहुलं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छन्दसि" इति संप्रसारणम् । छान्दसो यण् ❀ । कीदृशम् इन्द्रम् इति तं विशिनष्टि विषासहिम् इत्यादिना । विषासहिम् विशेषेण सोढारम् । यथा शत्रवो न पुनरुद्भवन्ति तथा नाशयितारम् इत्यर्थः । ❀ षह अभिभवे । अस्माद् यङन्तात् "सहिवहिचलिपतिभ्यो यङन्तेभ्यः क्विनौ वक्तव्यौ" इति क्विप्रत्ययः ❀ । तदेव उपपादयति सहमानम् इति । सहनशीलम् । "इन्द्रो यातूनाम् अभवत् पराशरः" [८. ४. २१] इत्यादिश्रुतिभ्य इन्द्रस्य सहनशीलं प्रसिद्धम् । यस्य यादृक् स्वभावः स तादृशं करोतीति प्रसिद्धम् । अतः शत्रुहननस्वाभाव्याद् विषासहित्वं तस्य युक्तम् इत्यर्थः । ❀ सहेर्लटश्चानश् ❀ । न केवलम् इदानीमेव तच्छीलत्वं प्रागपि तथेत्याह । सासहानम् पूर्वमपि अभिभवितारम् । अतः शत्रुहननस्वभावता सिद्धा । ❀ लिटः कानच् । एत्वाभ्यासलोपयोरभावश्छान्दसः ❀ । ननु सन्त्यन्ये सोढारः कोस्यातिशय इति तत्राह सहीयांसम् इति । सोढॄणां मध्ये अतिशयेन सोढारम् । ❀ सोढॄशब्दात् "तुश्छन्दसि" इति ईयसुन् । "तुरिष्ठेमेयःसु" इति तृलोपः ❀ । उक्तविशेषणचतुष्टयसिद्धम् अर्थं पुनरनुवदति क्रियासंबन्धाय सहमानम् इति । उक्तोस्यार्थः । ❀ सहेश्चानश् ❀ । एवंमहानुभावम् इन्द्रशब्दाभिधेयम् आदित्यं हुवे । इत्थं शत्रुसहनद्वारेण इन्द्रं प्रशस्य अथ तेषां सह आदिजेतृत्वद्वारेणापि प्रशंसति । सहोजितम् सहः परेषाम् अभिभावुकं तस्य जेतारं शत्रुतेजः बलापहर्तारम् । स्वर्जितम् । स्वर् इति सुखनाम । शत्रूणां यत् सुखं तस्य जेतारं नाशयितारम् स्वर्गस्य वा जेतारम् । तथा गोजितम् गोशब्दो महिष्यजाविकरितुरगोष्ट्रादेरुपलक्षकः । शत्रूणां ये गवाद्याः सन्ति तेषां जेतारम् । यद्वा गावः उदकानि तेषां जेतारम् । तथा संधनजितम् सम्यग्धनस्य सुवर्णरजतमणिमुक्तादिलक्षणस्य जेतारम् । यद्वा सहआदिजयः स्वोपासकार्थो द्रष्टव्यः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वभक्तेभ्यः सहःस्वर्गगोधनानां लम्भकम् इत्यर्थः। "अर्वाञ्चम् इन्द्रम् अमुतो हवामहे यो गोजिद् धनजिद् अश्वजिद् यः" [५. ३. ११] इत्यादिमन्त्रान्तरेषु इन्द्रस्य गवादिजेतृत्वं प्रसिद्धम्। ❀ संधनाजितम् इति। सांहितिको दीर्घः ❀। उक्तगुणविशिष्टस्येन्द्रस्य आह्वाने प्रयोजनम् आह। आयुष्मान् भूयासम् इति। आह्वानोपलक्षितैस्त्रैकालिकोपस्थानादिलक्षणैः कर्मभिः परितुष्टस्य इन्द्रशब्दवाच्यस्य भगवतः सूर्यस्य प्रसादाद् अहम् आयुष्मान् शतसंवत्सरलक्षणेन आयुष्येण उपेतो भवेयम्। अत एव आयुष्मत्प्रार्थनालिङ्गाद् अस्यानुवाकस्य आयुरभिवृद्ध्यर्थं माणवकस्य त्रिकालम् आदित्योपस्थाने विनियोग उक्तः॥

[यहाँ सूर्य आदित्य आदि पदलिंगोंका श्रवण न होने पर भी, सकल अनुवाकका पूर्वोक्तरीतिसे प्रायः सूर्यसम्बन्धी सकल कर्मों में विनियोग होनेसे मन्त्रोंकी सूर्यपरक ही व्याख्या करनी चाहिये। अथवा परमैश्वर्यके योगसे "इन्द्र इरां दृणाति वा इरां दारयति वा इरां धारयति" इत्यादि निरुक्त १०। ८ में कहे हुए अवयवार्थोंका वृष्टिके द्वारा, और सब भूतोंकी आत्मा होनेके कारण सूर्यमें संभव होनेसे भी 'ईड्यं ह नाम इन्द्रम्' आदिमें इन्द्रशब्द सूर्यको ही कहता है॥ अथवा–"विवस्वदिन्द्रयुताः" और "इन्द्रश्च विवस्वांश्चेत्येते" (तैत्तिरीय आरण्यक) १। १३। ३ में बारह आदित्योंके मध्यमें इन्द्रका भी श्रवण होनेसे और स्मृत होनेसे भी इन्द्र साक्षात् आदित्य ही है। इसी बातको तैत्तिरीयश्रुतिमें कहा है, कि–"ऐन्द्रीं आवृतं अन्वावर्ते। असौ वा आदित्य इन्द्रः। तस्यैवावृतं अनु पर्यावर्तते" तैत्तिरीय संहिता १। ७। ६। ३) अत एव उक्तरीतिसे आदित्य और इन्द्रके एक होनेसे "सपत्नानां विषासहिम्" (ऋग्वेदसंहिता १०। १६६। १ और "अषाढं उग्रं सहमानम्" (तैत्तिरीय ब्राह्मण २। ८। ५। ८) आदिमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन्द्रके विशेषणरूपसे प्रसिद्ध विषासहिम् आदि पद सूर्यमें भी अविरुद्ध हैं, अत एव] आरोग्य आदिकी प्रार्थना करने वाले सब प्राणियोंसे सदा स्तुति पाने वाले सबको नमाने वाले सूर्यदेवका मैं आह्वान करता हूँ, वह सूर्यदेव विशेषरूपसे सोढा हैं अर्थात् जिस प्रकार शत्रु फिर न उठ सकें तिस प्रकार दबाने वाले हैं। और यह इन्द्र सहनशील हैं "इन्द्रो यातूनाम्" (८ । ४ । २१) आदि श्रुतियोंमें इनका सहनशील अर्थात् दबानेका स्वभाव प्रसिद्ध है और जिसका जैसा स्वभाव होता है वह तैसा करता है अत एव शत्रुहननका स्वभाव होनेसे उनका विषासहित्व ठीक ही है। उनका स्वभाव अब ही ऐसा नहीं होगया है किन्तु यह पहिले भी शत्रुओंको बारम्बार दबाते रहते थे अतः शत्रुहननस्वभाव सिद्ध ही है। दूसरोंकी समान यह साधारण दबाने वाले नहीं हैं किंतु दबाने वालोंमें परमोत्तम हैं। ऐसे धर्षणशील सूर्यका मैं आह्वान करता हूँ, दूसरोंको दबाने वाले तेजका नाम सह है उस को शत्रुओंमेंसे खेंचने वाले शत्रुओंके सुख वा स्वर्गके जीतने वाले शत्रुओंके गौ भैंस बकरी भेड़ घोड़े आदिको जीतने वाले अथवा जलके जेता अथवा इन सबको वशमें करके अपने भक्तों को देने वाले सूर्यको मैं त्रैकालिक उपस्थानादि रूप आह्वानोंके द्वारा आह्वान करता हूँ, उन भगवान् सूर्यदेवके प्रसादसे मैं आयुष्मान् होऊँ ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियो देवानां भूयासम् ॥ २ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विऽससहिम् । सहमानम् । ससहानम् । सहीयांसम् ।

सहमानम् । सहःऽजितम् । स्वःऽजितम् । गोऽजितम् । संधनऽजितम्

ईड्यम् । नाम । हे । इन्द्रम् । प्रियः । देवानाम् । भूयासम् ॥२॥

पूर्ववद् व्याख्येयम् । आयुष्मान् इत्यस्य स्थान प्रियो देवानाम् इति विशेषः । इन्द्रस्य सर्वदेवाधिपतित्वात् तदात्मकस्य सूर्यस्यापि "एकैव वा महान् आत्मा देवता । स सूर्य इत्याचक्षते सर्वभूतात्मा" इति प्रतिज्ञाय अनुक्रमणिकाकारेण स्वोक्तेर्थे "सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च" इति [ऋ० १. ११५. १] उदाहृतत्वात् तथा "तद्विभूतयोन्या देवताः" इति प्रतिज्ञाय "तदप्येतद् ऋषिणोक्तम् । इन्द्रं मित्रं वरुणम् अग्निम् आहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् । एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानम् आहुः" [ऋ० १. १६४. ४६] इति [स० अ० परि० २] प्रदर्शितत्वाच्च एकस्यैव भगवतः सूर्यस्य सर्वदेवतामयत्वात् तस्मिन् एकस्मिन् प्रीते इतरेषां देवानां प्रियो भवतीत्यभिप्रायः । इतरथा येषां प्रियभावः प्रार्थनीयस्त एव पृथक्पृथग् उपास्याः स्युः । न च वाच्यम् एकेनैव प्रीतेनादित्येनालम् किम् इतरदेवानां प्रियभावप्रार्थनयेति । फलानभिघाताय इतरेषां स्वाधीनी करणस्यापि अपेक्षितत्वात् । यथा लोके प्रीतेपि राजनि तत्परतन्त्राणामपि अमात्यादीनां प्रीत्यर्थम् उपाधावनदर्शनात् ॥

मैं विषासहि सहमान सासहान सहीयान् सहोजित् स्वर्जित् गोजित् संधनजित् (इन प्रथममन्त्रमें वर्णित अर्थ वाले) पूजनीय सर्वदेवाधिपति इन्द्रात्मक सूर्यका आह्वान करता हूँ, मैं उन भगवान् सूर्यदेवके प्रसादसे देवताओंका प्रिय होऊँ । [अनुक्रमणिकाकारने कहा है, कि-"एकैव वा महान् आत्मा देवता । स सूर्य इत्याचक्षते सर्वभूतात्मा ।-आत्मा ही एक महान् देवता है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनको सूर्य कहते हैं" इस बातकी प्रतिज्ञा करनेके अनन्तर ऋग्वेदसंहिता १ । ११५ । १ का उदाहरण दिया है, कि-"सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।-सूर्यदेव जंगम और स्थावर जगत्की आत्मा हैं"। फिर प्रतिज्ञा की है, कि-"तद्विभूतयोऽन्या देवता । और देवता उनकी विभूतियें हैं ।" इसके अनन्तर ऋग्वेदसंहिता १ । १६४ । ४६ का प्रमाण दिया है, कि-"तदप्येतद् ऋषिणोक्तम् इन्द्रं मित्रं वरुणं अग्निं आहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् । एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निम् यमं मातरिश्वानमाहुः ।- इसी बातको मन्त्रद्रष्टा ऋषिने कहा है, कि-जिनको इन्द्र मित्र वरुण और अग्नि कहते हैं वह दिव्य सुपर्ण गरुत्मान् आत्मा है। उनके एक होने पर भी ब्राह्मण उनको अग्नि यम वायु कहते हैं" (सर्वानुक्रमणिकापरिभाषा ऋग्वेदसंहिता २) इस प्रकार एक ही भगवान् सूर्यके सर्वदेवमय होनेसे उन एकके ही प्रसन्न होने पर दूसरे देवताओंका प्रिय होजाता है । और जिनके प्रियभाव की प्रार्थना करनी हो उनकी पृथक् २ भी उपासना कर सकते हैं । यहाँ पर यह शंका नहीं करनी चाहिये कि-एक सूर्यदेवके प्रसन्न होने पर दूसरोंके प्रसन्न होनेकी प्रार्थना करनेकी क्या आवश्यकता है ? क्योंकि-फलमें अभिघात न पड़े इस लिये दूसरों को भी अपना बनानेकी आवश्यकता है । जैसे, कि-संसारमें राजाके प्रसन्न होने पर भी उसके आधीन रहने वाले मन्त्री आदिको प्रसन्न करनेके लिये मनुष्य दौड़ते फिरते हुए दीखते हैं] २

तृतीया ॥

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः प्रजानां भूयासम् ॥ ३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विऽससहिम् । सहमानम् । ससहानम् । सहीयांसम् ।

सहमानम् । सहःऽजितम् । स्वःऽजितम् । गोऽजितम् । संधनऽजितम् ।

ईड्यम् । नाम । ह्वे । इन्द्रम् । प्रियः । प्रऽजानाम् । भूयासम् ३

प्रकर्षेण जायन्त इति प्रजाः पुत्राद्या भृत्यादयश्च । तासां प्रियो भूयासम् । ता यथा विधेयाः सत्यः स्वात्मानं पूजयन्ति तथाविधो भूयासम् इति आशास्ते ॥

विषासहि सहमान सासहान सहीयान् सहोजित स्वर्जित् गोजित् और संधनजित् पूजनीय सबोंसे स्तुत्य इन्द्रात्मक सूर्यदेव का मैं प्रकृष्टतासे होने वाले पुत्र भृत्य आदिका प्रिय बननेके लिये आह्वान करता हूँ अर्थात् वह जिस प्रकार मेरा सत्कार करें मैं तैसा होजाऊँ ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः पशूनां भूयासम् ॥ ४ ॥

विऽससहिम् । सहमानम् । ससहानम् । सहीयांसम् ।

सहमानम् । सहःऽजितम् । स्वःऽजितम् । गोऽजितम् । संधनऽजितम् ।

ईड्यम् । नाम । ह्वे । इन्द्रम् । प्रियः । पशूनाम् । भूयासम् ।४।

पशवो गोमहिष्यजाविकाद्याः करितुरगोष्ट्रादयश्च । "चतुष्पादाः पशवः" इति श्रुतेः [ऐ० ब्रा० ५. १९] । सत्सु तेषु तेषां प्रियभावप्रार्थनौचित्यात् तल्लाभं तदानुकूल्यं चाशास्ते ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मैं विषासहि सहमान सासहान सहीयान् सहोजित स्वर्जित गोजित् संधनजित्, पूजनीय और जिनको सब नमन करते हैं सूर्यदेवका आह्वान करता हूँ मैं (ऐतरेय ब्राह्मण ५ । १९ की श्रुतिमें वर्णित चतुष्पादाः पशवः ।–चार पैर वाले गौ भैंस बकरी भेड़ हाथी घोड़ा ऊँट आदि") पशुओंका प्रिय होजाऊँ । अर्थात् उनके होने पर उनके प्रियभावकी प्रार्थना करना उचित है अत एव उनके लाभ और अनुकूलताकी प्रार्थना की है ॥ ४ ॥

इत्थम् आयुष्याभावे कृत्स्नस्यापि लाभस्य वैयर्थ्यात् प्रथमम् आयुष्यम् आशास्य तत्सिद्धये देवतानुकूल्यमपि आशास्य पुत्राद्यभावे स्वात्मन एव अकार्त्स्न्यात् प्रजासमृद्धिम् आशास्य तदनन्तरं पशुलाभं प्रार्थ्य अथ तैः सर्वैः संपन्नः स्वसमानेषु श्रेष्ठभावम् आशास्ते ॥

इस प्रकार आयुके अभावमें सब वस्तुओंका लाभ निष्फल है पहिले आयुकी प्रार्थना की, फिर उसकी सिद्धिके लिये देवताओंके अनुकूल रहनेकी प्रार्थना की फिर पुत्र आदिके अभावमें पुरुष स्वयं भी अधूरा रहता है अतः प्रजासमृद्धिकी प्रार्थना की तदनन्तर पशुप्राप्तिकी प्रार्थना कर अब उनसे सम्पन्न रहते हुए अपनी समान पुरुषोंमें श्रेष्ठताकी प्रार्थना करते हैं, कि–

पञ्चमी ॥

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः समानानां भूयासम् ॥५॥

विऽससहिम् । सहमानम् । ससहानम् । सहीयांसम् ।
सहमानम् । सहःऽजितम् । स्वःऽजितम् । गोऽजितम् संधनऽजितम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ईड्यम् । नाम । ह्वे । इन्द्रम् । प्रियः । समानानाम् । भूयासम् ५

कुलजातिवयोधनविद्याकर्मादिभिः स्वसदृशाः समानाः । तेषां प्रियो भूयासम् । तेषामपि श्रेष्ठत्वेन उपजीव्यो भूयासम् इत्यर्थः । सत्सु स्वसदृशेषु अन्येषु स्वस्य श्रैष्ठ्याभावाद् "अहं भूयासम् उत्तमः समानानाम्" [तै० सं० ३. ५. ५. १]। "समानानाम् उत्तमश्लोको अस्तु" [तै० सं० ५. ७. ४. ३] इत्यादिश्रुतिषु तेषामपि श्रैष्ठ्यप्रार्थनादर्शनात् । इत्थम् आयुष्यादिसर्वकामप्रार्थनालिङ्गाद् अस्यानुवाकस्य च सलिलगणे पाठात् "सलिलैः सर्वकामः" इत्यादिको गणप्रयुक्तो विनियोग उक्त इति द्रष्टव्यम् । अत एव प्रियः प्रजानां भूयासम् प्रियः समानानां भूयासम् इति लिङ्गाद् भास्करप्रीतिकरापूपदाने "अथ यः कामयेत सर्वेषां नृणाम् उत्तमः स्याम्" इति प्रक्रम्य "विषासहिम् इति अभिमन्त्र्य ब्राह्मणाय निवेदयेत्" इति अस्यानुवाकस्य विनियोग उक्त इति ज्ञातव्यम्

मैं विषासहि सहमान सासहान सहीयान् सहमान सहोजित् स्वर्जित् गोजित् संधनजित् पूजनीय प्रणम्य सूर्यका आह्वान करता हूँ, कि-मैं समान पुरुषोंमें प्रिय होऊँ [कुल जाति अवस्था धन विद्या कर्म आदिमें जो पुरुष अपने सदृश होते हैं वे समान कहलाते हैं, उनका प्रिय होनेका अभिप्राय यह है, कि-उनमें श्रेष्ठ होनेसे मैं उनका उपजीव्य होऊँ । अब यह शंका होती है, कि-अपनी सदृश दूसरोंके होने पर अपनी श्रेष्ठताका अभाव ही होना चाहिये तो कहते हैं, कि-"अहं भूयासम् उत्तमः समानानाम् ।-मैं समान पुरुषोंमें उत्तम होऊँ" (तैत्तिरीयसंहिता ३ । ५ । ५ । १) "समानानां उत्तमश्लोको अस्तु ।-समान पुरुषोंमें उत्तम कीर्ति वाला हो" (तैत्तिरीयसंहिता ५ । ७ । ५ । ३) इत्यादि श्रुतियों में भी श्रेष्ठताकी प्रार्थना दीखती है अत एव श्रेष्ठता होसकती है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार आयु आदि सब कामनाओंकी प्रार्थनाओंके लिङ्गसे इस अनुवाकका सलिलगणमें पाठ होनेसे "सलिलैः सर्वकामः ।– सलिलगणके सूक्तोंसे सर्वकाम प्रार्थना करे" इत्यादि गणप्रयुक्त विनियोग कहा है, यह समझना चाहिये। अतएव "प्रियः प्रजानां भूयासम् । प्रियः समानानां भूयासम् ।" इस लिंगसे सूर्यदेवको प्रसन्न करने वालोंके अपूपदानमें इस अनुवाकका विनियोग कहा है, कि–"अथ यः कामयेत सर्वेषां नृणामुत्तमः स्यां" इति प्रक्रम्य "विषासहिम् इत्यभिमन्त्र्य ब्राह्मणाय निवेदयेत्" ॥] ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि ।
द्विषंश्च मह्यं रध्यतु मा चाहं द्विषते रधं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ ६॥

उत् । इहि । उत् । इहि । सूर्य । वर्चसा । मा । अभिऽउदिहि ।
द्विषन् । च । मह्यम् । रध्यतु । मा । च । अहम् । द्विषते । रधम् ।
तव । इत् । विष्णो इति । बहुऽधा । वीर्याणि ।
त्वम् । नः । पृणीहि । पशुऽभिः । विश्वऽरूपैः । सुऽधायाम् । मा ।
धेहि । परमे । विऽओमन् ॥ ६ ॥

सरति गच्छति संततम् इति वा सुवति प्रेरयति स्वोदयेन सर्वं प्राणिजातं स्वस्वव्यापारे इति वा सूर्यः । ❀ सर्तेः सुवतेर्वा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्यपि "राजसूयसूर्य०" इत्यादिना निपातितः। तस्य संबोधनम् ❀। हे सूर्य त्वम् उदिहि उदिहि। वीप्सया उदयविषया त्वरा द्योत्यते। स्वयमेव उदेष्यतः सूर्यस्य उदयविषयप्रार्थेनं मन्देहाद्य सुरकृतोदयप्रतिबन्धम् अन्तरेण उदयाशंसनार्थम्। तथा च तैत्तिरीयश्रुतिः सूर्यस्य राक्षसकृतम् उदयप्रतिबन्धं तत्परिहारं च दर्शयति। "तस्माद् उत्तिष्ठन्तं हवा तानि रक्षांस्यादित्यं योधयन्ति यावद् अस्तम् अन्वगात्। तानि हवा एतानि रक्षांसि गायत्रियाभिमन्त्रितेनाम्भसा शाम्यन्ति। तदु हवा एते ब्रह्मवादिनः पूर्वाभिमुखाः संध्यायां गायत्र्याभिमन्त्रिता अप ऊर्ध्वं विक्षिपन्ति। ता एता आपो वज्रीभूत्वा तानि रक्षांसि मन्देहारुणे द्वीपे प्रक्षिपन्ति" इति [तै० आ० २. २. १]। उदिह्येव तव राक्षसकृत उदयप्रतिबन्धो मा भूद् इत्यभिप्रायः। उदयं विशिनष्टि। वर्चसा सर्वस्य आवर्जकेन तेजसा सह मा मां प्रति अभ्युदिहि। अनेन नीहारादितिरोधानाभावः प्रार्थितः। अथ वा वर्चसा हेतुना मम वर्चोलाभाय अभ्युदिहि। सूर्ये उदिते सर्वस्यापि पदार्थस्य वर्चःप्राप्तिः सुप्रसिद्धैव। यद्यपि सर्वं भूतजातं प्रति उदेति तथापि उपासकस्य स्वस्य अभिमतप्राप्तिलक्षणप्रयोजनसद्भावात् माभ्युदिहि इति प्रार्थयते। श्रुतिश्च भवति। "तस्मात् सर्व एव मन्यते मां प्रत्युदगाद् इति" इति [तै० सं० ६. ५. ४. २]। उदयप्रार्थनायाः प्रयोजनम् आह द्विषंश्चेत्यादिना! हे सूर्य अप्रतिबन्धेन उदितस्य तव अनुग्रहात् द्विषन् मयि द्वेषं कुर्वन् शत्रुः। ❀ "द्विषोऽमित्रे" इति शतृप्रत्ययः ❀। मह्यं रध्यतु मम वशं प्राप्नोतु। मम पादाक्रान्तो भवतु। ❀ रध हिंसासंराद्धयोः। दिवादित्वात् श्यन् ❀। यथा मद्द्वेषी स्वाधीनो भविष्यति एवं स्वयमपि तदाधीनः कदाचिदपि स्याम् इत्याशङ्क्य व्यतिरेकाभावम् आशास्ते मा चाहं द्विषते रधम्। अहं त्वदुपासकस्त्वत्प्रसादाद् द्विषते मयि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वेषं कुर्वते शत्रवे रधम् वशो मा भूवम् । अयम् अर्थो मन्त्रान्तरेपि स्पष्टम् उक्तः ।

उद्गाद् अयम् आदित्यो विश्वेन सहसा सह ।

द्विषन्तं मम रन्धयन् मो अहं द्विषतो रधम् । [तै० ब्रा० ३. ७. ६. २३] इति । द्विषंश्च मा चाहम् इति चकारौ परस्परसमुच्चयार्थौ । सत्यपि भोग्ये शत्रुसद्भावे भोगासंभवात् तत्स्वाधीनीकरणलक्षणं फलम् आशास्य इदानीम् ऐहिकामुष्मिकलोकसाधनलक्षणं फलम् आशास्ते तवेद् विष्णो बहुधेत्यादिना । आदौ भोगदानसामर्थ्यसद्भावं दर्शयति तवेद् इति । हे विष्णो व्याप्नोति स्वरश्मिभिः सर्वं ब्रह्माण्डान्तरालम् इति विष्णुरादित्यः । अथवा द्वादशादित्यमध्ये "दिवाकरो मित्रो विष्णुश्च" इति श्रुतौ स्मृतौ च विष्णोरपि परिगणनाद् विष्णुरादित्यः । तादृशविष्णुशब्दाभिधेयादित्य तवेत् तवैव वीर्याणि बहुधा बहुप्रकाराणि नान्यस्य देवतान्तरस्य । यतस्त्वं विष्णुः अतस्तव वीर्याणि अनन्तानीत्यभिप्रायः । विष्णुत्वोपाधौ तु

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि ॥

यो अस्कभायद् उत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ।

[ऋ० १. १५४. १] इत्यादिमन्त्रश्रुतिषु पुराणेतिहासागमादिषु च प्रसिद्धानि । साक्षात् सूर्यस्य भगवतो वीर्याण्यपि जगदन्धकारनिर्हरणसकलपदार्थप्रकाशननिखिललौकिकवैदिककर्मनिर्वर्तनसमय-वृष्टिप्रदानारोग्यकरणमोक्षप्रदानादीनि लोकप्रसिद्धान्येव । यतस्तव सर्वप्राण्युपकारकाणि बहुविधानि वीर्याणि सन्ति अतस्त्वं नः अस्मान् विश्वरूपैः गोमहिष्यजाविकस्तुरगोष्ट्रादिलक्षणैः पशुभिः पृणीहि पूरय । ❀ क्र्यादित्वात् श्ना । "प्वादीनां ह्रस्वः" इति ह्रस्वत्वम् ❀ । तथा मा माम् एतद् हाव-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साने परमे निरतिशये व्योमन् व्योमनि विशेषेण अवतीति व्योम तस्मिन् ब्रध्नस्य विष्टपे स्थाने ।

यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिंल्लोके स्वर्हितम् ।
तस्मिन् मां धेहि पवमानामृते लोक अक्षिते ।

इति [ऋ० ९. ११३. ७] मन्त्रोक्तलक्षण इत्यर्थः । तथाविधे लोके स्वधायाम् । अन्ननामैतत् । यत्सेवया क्षुत्तृष्णाशोकमोहजरामरणादयो न भवन्ति तथाविधे अन्ने अमृते मा मां धेहि स्थापय । तद्भोगार्हं कुर्वित्यर्थः । उक्तलक्षणे स्थाने स्वधासद्भावो मन्त्रान्तरे । "स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र माम् अमृतं कृधि" इति [ऋ० ९. ११३. १०] । ❀ धेहीति । दधातेर्लोटि "घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च" इति एत्वाभ्यासलोपौ ❀ ।

निरन्तर सरण (गमन) करने वाले वा अपने उदयसे सब प्राणियोंको अपने २ कर्ममें प्रवृत्त करने वाले सूर्यदेव! आप उदय हूजिये उदय हूजिये [वारम्वार कहनेसे उदयविषयक त्वरा प्रकट की है, सूर्यदेव स्वयं ही उदय होरहे थे फिर भी सूर्यके उदयकी प्रार्थना मन्देह आदि असुरोंके किये हुए उदयविघ्नके विना ही उदय होनेके लिये है । तैत्तिरीयश्रुतिने सूर्यके राक्षस कृत उदयप्रतिबन्ध और उसके परिहारको दिखाया है, कि—"तस्माद् उत्तिष्ठन्तं ह वा तानि रक्षांसि आदित्यं योधयन्ति यावद् अस्तं अन्वगात् । तानि ह वा एतानि रक्षांसि गायत्रियाभिमन्त्रितेनाम्भसा शाम्यन्ति । तदु ह वा एते ब्रह्मवादिनः पूर्वाभिमुखाः सन्ध्यायां गायत्र्याभिमन्त्रिता अप ऊर्ध्वं विक्षिपन्ति । ता एता आपो वज्रीभूत्वा तानि रक्षांसि मन्देहारुणे द्वीपे प्रक्षिपन्ति—अर्थात् तैत्तिरीय—आरण्यक २ । २ । १ में कहा है, कि—उठते हुए सूर्यदेवसे राक्षस उनके अस्त होने तक लड़ते रहते हैं । ये राक्षस गायत्रीसे अभिमन्त्रित जलसे शान्त होजाते हैं । ये जो ब्रह्मवादी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्वाभिमुख होकर संध्यामें गायत्रीसे अभिमन्त्रित जलको ऊपर को फेंकते हैं तो यह जल वज्ररूप होकर उन राक्षसोंको मन्देहारुणद्वीपमें फेंक देता है।" तात्पर्य यह है, कि–आप उदय हूजिये, राक्षसोंका किया हुआ प्रतिबंध काम न कर सके। अब उदय की विशिष्टता दिखाते हैं, कि–] सबको दबाने वाले अपने तेज के साथ आप मेरे सामने उदय हूजिये (इससे नीहार आदिसे तिरोधनाके अभावकी प्रार्थनाकी है) अथवा मुझको वर्च प्राप्त करानेके लिये उदित हूजिये [सूर्यके उदित होने पर सकल पदार्थों की वर्चःप्राप्ति सुप्रसिद्ध ही है, यद्यपि सूर्यदेव सब प्राणियोंके प्रति उदित होते हैं तथापि उपासकको अपने अभिमतका प्राप्तिका प्रयोजन होनेसे मेरी ओर उदय हूजिये, यह प्रार्थनाकी है। इस विषय में श्रुतिका प्रमाण भी है, कि–"तस्मात् सर्व एव मन्यते मां प्रत्युदगात्।—इस कारण सब यही मानते हैं, कि–यह मेरी ओर उदय होवें" (तैत्तिरीयसंहिता ६।५।४।२) अब उदय होने की प्रार्थना करनेके प्रयोजनको कहते हैं, कि–] हे सूर्य! अप्रतिबंधभावसे उदय हुए आपके अनुग्रहके कारण मुझसे द्वेष रखने वाला शत्रु मेरे वशमें होजाय, [जैसे मेरा द्वेषी मेरे आधीन हो जावेगा इसी प्रकार मैं भी कभी उसके आधीन न होजाऊँ इस लिये प्रार्थना करता है, कि–मैं आपका उपासक आपके प्रसादसे अपने शत्रुके आधीन कभी न होऊँ [यही बात दूसरे मन्त्रमें भी स्पष्टरूपसे कही है, कि–"उदगात् अयं आदित्यो विश्वेन सहसा सह। द्विषन्तं मम रन्धयन् मो अहं द्विषतो रधम्।–यह सूर्यदेव अपने पूर्णधर्षक बलके साथ मेरे शत्रुको मेरे वशमें करते हुए उदय होरहे हैं, मैं शत्रुके वशमें कभी न पड़ूँ" (तैत्तिरीयब्राह्मण ३।७।६।२३)। भोग्यके होने पर भी शत्रुके होनेसे भोग असंभव होजाता है अत एव उसको वशमें करनेके फलकी प्रार्थना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करके अब इस लोक और परलोकके साधनरूप फलकी प्रार्थना करते हैं, और उसमें पहिले भोगप्रदान करनेकी शक्तिको दिखाते हैं, कि—] हे अपनी किरणोंसे सब ब्रह्माण्डको व्याप्त करने वाले विष्णो आदित्य ! [वा बारह आदित्योंमें, "दिवाकरो मित्रो वरुणश्च।-दिवाकर मित्र और वरुण" इस प्रकार विष्णुकी भी गिनती है अत एव हे ऐसे विष्णोः।] आपके ही अनेक प्रकारके पराक्रम हैं दूसरे देवतामें ऐसे प्रभाव नहीं होसकते। तात्पर्य यह है, कि—आप विष्णु हैं अत एव आपके वीर्य अनन्त हैं [विष्णुत्वोपाधिके लिये "विष्णोर्नुकम् वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि वि ममे रजांसि। यो अस्कभायद् उत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः।" (ऋग्वेदसंहिता १।१५४।१) इत्यादि मन्त्रश्रुतियों और पुराण इतिहास शास्त्र आदिमें भी विष्णुके अनन्त पराक्रम प्रसिद्ध हैं। साक्षात् सूर्य भगवान्के भी, जगत्के अन्धकारको दूर करना, सब पदार्थोंको प्रकाशित करना सम्पूर्ण लोकोंके वैदिककर्मको पूर्ण करना, सामयिक वृष्टि प्रदान करना, आरोग्य देना और मोक्ष देना, आदि कर्म लोकमें प्रसिद्ध ही हैं] जब आपके सब प्राणियोंका उपकार करने वाले अनेक प्रकारके पराक्रम हैं अतः आप हमको सब प्रकारके रूप वाले गौ भैंस भेड़ बकरी घोड़े और ऊँट आदि पशुओंसे पूरित करिये तथा मुझको इह देहके अन्तमें विशेषरूपसे रक्षा करने वाले ["यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिन्लोके स्वर्हितम्। तस्मिन् मां धेहि पवमानामृते लोके अक्षिते॥—जहाँ ज्योति निरन्तर रहती है और जिसमें स्वर्ग स्थित है, उस पवमान अमृत अक्षुण्ण लोकमें मुझको स्थापित करिये" ऋग्वेदसंहिता ९।११३।७ इत्यादि मन्त्रोंमें प्रसिद्ध] लोकमें और जिसका सेवन करनेसे क्षुधा तृष्णा शोक मोह जरा मरण आदि नहीं होते हैं ऐसे स्वधारूप अन्नमें हमको स्थापित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करिये अर्थात् हमको उसका उपभोग करने योग्य करिये। ऋग्वेदसंहिता ९। ११३। १० में भी कहा है, कि–"स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र मां अमृतं कृधि।—जहाँ स्वधा और तृप्ति है तहाँ मुझको अमृत करिये] ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि।
यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ ७ ॥

उत्। इहि। उत्। इहि। सूर्य। वर्चसा। मा। अभिऽउदिहि।
यान्। च। पश्यामि। यान्। च। न। तेषु। मा। सुऽमतिम्।
कृधि। तव। इत्। विष्णो इति। बहुऽधा। वीर्याणि।
त्वम्। नः। पृणीहि। पशुऽभिः। विश्वऽरूपैः। सुऽधायाम्।
मा। धेहि। परमे। विऽओमन् ॥ ७ ॥

उदिह्युदिहीति मन्त्रभागः पूर्ववद् व्याख्येयः। यान् प्राणिनः पश्यामि चक्षुषा विषयीकरोमि देशादिभिरव्यवहितान् यांश्च प्राणिनः देशादिव्यवधानवतो न पश्यामि तेषु द्विविधेषु प्राणिषु विषयभूतेषु मा मां सुमतिम् शोभनबुद्धियुक्तं कृधि कुरु। तेषु द्रोहरहितचित्तं कुर्वित्यर्थः। ❀ "बहुलं छन्दसि" इति विकरणस्य लुक्। "श्रुशृणुपॄकृवृभ्यश्छन्दसि" इति हेर्धिरादेशः ❀। तादृशी बुद्धिः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वात्मशत्रुमित्रेषु समदर्शिन एव जायते। तथाविधा दृष्टिः परमेश्वरप्रीतये भवति।

समत्वम् आराधनम् अच्युतस्य ॥
सममतिरात्मसुहृद्विपक्षपक्षे।
न हरति न च हन्ति किंचिद् उच्चैः।
[वि० ३. ७. २०] ॥

इति स्मरणात्। किं च अद्रोह एव पुरुषार्थसाधनेषु प्रथमतो निर्दिष्टः "अहिंसा सत्यम् अस्तेयम्" [भा० ११. १७. २०] इति। ईदृशीं बुद्धिं मन्त्रान्तरे महर्षिर्विष्णुं प्रार्थयामास। "त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्याम् अप्रयुताम् एवयावो मतिं दाः" इति [ऋ० ७. १००. २]। हे विष्णो तवेद् इत्यादि गतम्। यतस्तव वीर्याणि बहुधा अतो मां सुमतिं कुरु ॥

हे सूर्यदेव! आप उदय हूजिये उदय हूजिये, मुझको सब दबाने वाले तेजसे सम्पन्न करते हुए उदय हूजिये, मैं जिन प्राणियों को देश आदि रुकावटसे रहित होनेके कारण चक्षुसे देखता हूँ और देश आदिके व्यवधान (रुकावट) के कारण जिनको नहीं देखता हूँ उन दोनों प्रकारके प्राणियोंमें आप मुझको शोभन बुद्धि वाला करिये अर्थात् उनमें द्रोहरहित चित्त वाला करिये [ऐसी बुद्धि, अपनी आत्मा शत्रु और मित्रोंमें समान दृष्टि रखने वाले समदर्शीकी ही होती है, और वह परमेश्वरको प्रसन्न करने वाली होती है। विष्णुपुराण ३। ७। २० में कहा है, कि— "समत्व ही विष्णुका आराधन है एकसी बुद्धि रखने वाला पुरुष अपने लिये मित्रोंके लिये और शत्रुके लिये न किसी वस्तुका हरण करता है और न किसीको मारता है" और भागवत एकादशस्कंध ११। १७। २० में अद्रोह ही पुरुषार्थसाधनोंमें पहिले निर्दिष्ट किया गया है, कि—"अहिंसा सत्यम् अस्तेयम्—अहिंसा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्य और अस्तेय" ऐसी बुद्धिकी ही महर्षिने दूसरे मन्त्रमें विष्णुसे प्रार्थना की है, कि–"त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्याम् अप्रयुतां एवयावो मतिं दाः" (ऋग्वेदसंहिता ७ । १००।२) हे विष्णो! आपके ही अनेक प्रकारके प्रभाव हैं दूसरे देवताओंमें ऐसे प्रभाव नहीं हैं, आप मुझको अनेक रूपों वाले पशुओंसे पूर्ण करिये और मुझको परम व्योममें स्वधामें स्थापित करिये ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

मा त्वा दभन्त्सलिले अप्स्व१न्तर्ये पाशिन उपतिष्ठन्त्यत्र ।
हित्वाशस्तिं दिवमारुक्ष एतां स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ ८ ॥

मा । त्वा । दभन् । सलिले । अप्ऽसु । अन्तः । ये । पाशिनः । उपऽतिष्ठन्ति । अत्र ।

हित्वा । अशस्तिम् । दिवम् । आ । अरुक्षः । एताम् । सः । नः । मृड । सुऽमतौ । ते । स्याम । तव । इत् । विष्णो इति । बहुऽधा । वीर्याणि ।

त्वम् । नः । पृणीहि । पशुऽभिः । विश्वऽरूपैः । सुऽधायाम् । मा । धेहि । परमे । विऽओमन् ॥ ८ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सलिले सलिलम् अन्तरिक्षम् तस्मिन् अप्स्वन्तः अन्तरिक्षस्थानाम् अपां मध्ये हे सूर्य त्वा त्वां मा दभन् दम्भनं हिंसां मा कार्षुः प्रच्छन्नचारिणो राक्षसाः। ❀ दन्भु दम्भे। माङि लुङि "दम्भेश्चेति वक्तव्यम्" इति च्लेः अङ् ❀। अप्सु सूर्यस्य हिंसकानां कः प्रसङ्ग इति तत्राह ये पाशिन इति। अत्र अप्सु ये पाशिनः पाशहस्ता गतिनिरोधसाधनवन्त उपतिष्ठन्ति मायाविनो राक्षसाः। "उत्तिष्ठन्तं हवा तानि रक्षांस्यादित्यं योधयन्ति यावद् अस्तम् अन्वगात्" [तै० आ० २. २. १] इत्यादिना गतिप्रतिबन्धकसद्भावः प्रदर्शितः प्राक्॥ इत्थं गतिप्रत्यूहाभावम् आशास्य सुखेन द्याम् आरूढं दृष्ट्वा आह हित्वेति। हे सूर्य एताम् अशस्तिम्। अशस्तिर्निन्दा। पराख्यब्रह्मणः सगुणमूर्तिभूतस्य भगवतः सूर्यस्य राक्षसा गतिं प्रत्यबध्नन् किल इत्येवंरूपा निन्दां हित्वा तैरप्रतिबद्धो भूत्वा दिवम् द्याम् अन्तरिक्षम् आरुक्षः आरूढवान् असि। ❀ "शल इगुपधाद् अनिटः क्सः" इति क्सप्रत्ययः ❀। स तादृशस्त्वत्काशस्तिस्त्वं नः अस्मान् मृड सुखय। ते सुमतौ शोभनायाम् अनुग्रहबुद्धौ स्याम भवेम। देवताया अनुग्रहबुद्धौ सत्यां यद् अभीष्टं प्रार्थयते तत् सु तभं भवतीत्यभिप्रायेण आदौ सैव प्रार्थ्यते॥ तवेद् इत्यादि पूर्ववत्॥

हे सूर्यदेव! जलोंके भीतर पाशको धारण करके आपकी गति को रोकने वाले ‡ प्रच्छन्नचारी राक्षस आपको अन्तरिक्षके जलों में हिंसित न कर सकें। [इस प्रकार गतिविघ्नके अभावकी प्रार्थना करके सूर्यदेवको सुखपूर्वक द्युलोकमें चढ़ा हुआ देखकर

‡ "उत्तिष्ठन्तं ह वा तानि रक्षांस्यादित्यं योधयन्ति यावद् अस्तं अन्वगात्।—उठते हुए सूर्यदेवसे अस्त होने तक राक्षस लड़ते रहते हैं" (तैत्तिरीय आरण्यक २। २। १) इत्यादिसे सूर्य की गतिको रोकनेका वर्णन पहिले दिखाया जा चुका है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहता है, कि–] हे सूर्य! आप अपनी निन्दाको त्याग कर अन्तरिक्षमें आरूढ़ हुए हैं अर्थात् परब्रह्म जब सगुणमूर्तिमें सूर्यके रूप में आये तब उनकी गतिको राक्षसोंने रोक लिया उस निन्दाको त्याग कर अर्थात् उनसे प्रतिबद्ध न होकर अन्तरिक्षमें चढ़ गए हैं, हे ऐसे त्यक्तनिन्द सूर्यदेव! आप हमको सुख दीजिये हम आपकी अनुग्रहात्मिका शोभना बुद्धिमें रहें [देवताकी अनुग्रह बुद्धि होने पर जो अभीष्टकी प्रार्थना की जाती है वह सुलभ होती है, इस अभिप्रायसे आदिमें उसकी ही प्रार्थनाकी है] हे सूर्य! आपके ही अनेक प्रकारके प्रभाव हैं आप हमको अनेक रूपों वाले पशुओंसे पूर्ण करिये और मरणके अनन्तर परमव्योममें और स्वधामें हमको स्थापित करिये ॥ ८ ॥

नवमी ॥

त्वं न इन्द्र महते सौभगायादब्धेभिः परि पाह्यक्तुभिस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ ९ ॥

त्वम् । नः । इन्द्र । महते । सौभगाय । अदब्धेभिः । परि । पाहि ।
अक्तुऽभिः । तव । इत् । विष्णो इति । बहुऽधा । वीर्याणि ।
त्वम् । नः । पृणीहि । पशुऽभिः । विश्वऽरूपैः । सुऽधायाम् । मा ।
धेहि । परमे । विऽओमन् ॥ ९ ॥

हे इन्द्र परमेश्वर सूर्य त्वं नः अस्माकं महते निरतिशयाय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सौभगाय शोभनो भगो यस्य स सुभगः सुभगस्य भावः सौभगं सौभगाय सौभाग्याय ।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ।
[वि० ६. ५. ७०] ॥

इत्युक्तलक्षणाख्यभूतस्य ऐश्वर्यादेः सिद्ध्यर्थम् इत्यर्थः । तदर्थम् । अदब्धेभिः अदब्धैः अहिंस्यैर्व्याधिसर्पाग्नितस्करादिजनितहिंसारहितैः अक्तुभिः । रात्रिनामैतत् । रात्र्युपलक्षितैर्बहुभिर्दिवसैर्निमित्तभूतैः परि पाहि सर्वतो रक्ष । अथ वा प्रायेण रात्रावेव व्याधितस्करभूतरक्षःपिशाचादिपीडासंभवाद् विशेषेण रात्रिषु रक्षा प्रार्थ्यते ॥ तवेद् इत्यादि गतम् ॥

हे परमैश्वर्यसम्पन्न सूर्य देव ! विष्णुपुराण ६ । ५ । ७० में कहे हुए "ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः । ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥–पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्य इन छः का नाम भग है" परम शोभन भग–सौभाग्य-ऐश्वर्य की सिद्धिके लिये आप व्याधि सर्प अग्नि तस्कर आदिकी हिंसासे शून्य रात्रि और दिनोंके द्वारा हमारी रक्षा करिये, हे सूर्य ! आपके ही अनन्त प्रकारके प्रभाव हैं, आप हमको सब आकृतियों वाले पशुओंसे पूर्ण करिये और मुझको रक्षाके परमस्थान परमव्योम स्वर्गमें क्षुधा तृषा आदिको दूर करने वाले अन्न स्वधामें स्थापित करिये ॥ ९ ॥

दशमी ॥

त्वं न इन्द्रोतिभिः शिवाभिः शंतमो भव ।
आरोहंस्त्रिदिवं दिवो गृणानः सोमपीतये प्रियधामा
स्वस्तये तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १० ॥

त्वम् । नः । इन्द्र । ऊतिऽभिः । शिवाभिः । शम्ऽतमः । भव । आऽरोहन् । त्रिऽदिवम् । दिवः । गृणानः । सोमऽपीतये । प्रियऽधामा । स्वस्तये । तव । इत् । विष्णो इति । बहुऽधा । वीर्याणि । त्वम् । नः । पृणीहि । पशुऽभिः । विश्वऽरूपैः । सुऽधायाम् । मा । धेहि । परमे । विऽओमन् ॥ १० ॥

हे इन्द्र त्वं नः अस्माकं शंतमो भव । शम् इति सुखनाम । सुखतमो भव । सुखयितृतमो भवेत्यर्थः । न हि असुखस्य सुखयितृत्वम् अस्ति । कैः साधनैरित्युच्यते । शिवाभिः मङ्गलाभिः ऊतिभी रक्षाभिः । याभी रक्षाभी रक्षितः पुनःपुनर्जननमरणादिक्लेशभाङ् न भवति तादृश्यो रक्षाः शिवा इत्युच्यन्ते । किं कुर्वन् । दिवः अन्तरिक्षस्य संबन्धिनं त्रिदिवम् । तिसृणां द्यावां समाहारस्त्रिदिवः । "तिस्रो द्यावो निहिता अन्तरस्मिन्" [ऋ० ७. ८७. ५] "तिस्रो भूमीर्धारयन् त्री रुत द्यून्" [ऋ० २. २७. ८] "त्रयो वा इमे त्रिवृतो लोकाः" [ऐ०ब्रा० २.१७] इत्यादिश्रुतिभ्यो द्युलोकस्य त्रैविध्यम् । अथ वा भूलोकापेक्षया तृतीया द्यौर्द्युलोकस्त्रिदिवः । तम् आरोहन् । तथा सोमपीतये सोमपानाय । सोमपानं तु सोमयागम् अन्तरेण न संभवति तं देवेभ्यो हुत्वा शेषभक्षणविधानात् अग्नौ हुतस्य सोमस्य पानाय वा अतो यागादिकर्मसिद्धये गृणानः अस्माभिः स्तूयमानः । ❀ कर्मणि कर्तृप्रत्ययः ❀ । आरोहणं किमर्थम् इति उच्यते । स्वस्तये जगतः क्षेमाय । उदयति सवितरि अन्धकारापगमेन सकलव्यवहारसिद्धेः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वप्राणिनां क्षेमं भवतीति सुप्रसिद्धम् । कीदृशस्त्वम् । प्रियधामा प्रियस्थानः । द्युस्थाने प्रीतिमान् इत्यर्थः । न हि सूर्यस्य इतरदेव-वद् यदृच्छया स्थानान्तरसंक्रमणम् अस्ति । अथ वा धाम तेजः । प्रियतेजा इत्यर्थः । न हि स्वतेजः स्वस्याप्रियम् अतः सह्यमेव । अथ वा यस्य धाम लोकस्य प्रियं स प्रियधामा । एवं कुर्वन् स्वस्तये भवेति शेषम् अध्याहृत्य वा योज्यम् । तवेत् इत्यादि पूर्ववत् ॥

इति प्रथमं सूक्तम् ।

हे परमैश्वर्यसम्पन्न सूर्य ! आप हमको बड़ा भारी सुख देने वाले बनिये [जिसके पास सुख नहीं है वह दूसरोंको किस प्रकार सुख देसकता है अतः सुखके साधनोंका वर्णन करते हैं, कि-] आप अपनी मङ्गलकारिणी रक्षाओंसे हमको सुख दीजिये, आप की उन रक्षाओंसे रक्षित पुरुष वारम्वार जन्म मरणके क्लेशको नहीं भोगता है अत एव वे रक्षायें शिवा—मङ्गलकारिणी—कह-लाती हैं । आप पृथ्वीकी अपेक्षा तीसरे द्युलोकमें आरोहण करते हुए अग्निमें हुत सोमका पान करते हुए और हमसे याग आदि कर्मकी सिद्धिके लिये स्तुति पाते हुए जगत्का कल्याण करते हुए अपनी कल्याणकारिणी रक्षाओंसे हमारी रक्षा करिये । आपको अपना स्थान द्युस्थान प्रिय है अर्थात् और देवताओंकी समान सूर्यदेव अन्य स्थानों पर संक्रमण नहीं करते हैं अथवा आपको अपना तेज प्रिय है, क्योंकि—किसीको भी अपना तेज अप्रिय नहीं होता है । हे सूर्यदेव ! आपके ही प्रभाव अपरिमित हैं, आप हमको अनेक आकृति वाले पशुओंसे पूर्ण करिये और मुझको इस देहके अन्तमें परमव्योममें स्थापित करिये और जिस का सेवन करनेसे क्षुधा तृष्णा शोक मोह जरा मरण आदि नहीं होते हैं उस स्वधान्नके भक्षण करनेका पात्र बनाइये १० (१)

प्रथम सूक्त समाप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वितीये सूक्ते प्रथमा ॥

त्वमिन्द्रासि विश्वजित् सर्ववित् पुरुहूतस्त्वमिन्द्र ।
त्वमिन्द्रेमं सुहवं स्तोममेरयस्व स नो मृड सुमतौ ते
स्याम तवद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे
व्योमन् ॥ ११ ॥

त्वम् । इन्द्र । असि । विश्वऽजित् । सर्वऽवित् । पुरुऽहूतः । त्वम् । इन्द्र ।
त्वम् । इन्द्र । इमम् । सुऽहवम् । स्तोमम् । आ । ईरयस्व । सः ।
नः । मृड । सुऽमतौ । ते । स्याम । तव । इत् । विष्णो इति ।
बहुऽधा । वीर्याणि ।
त्वम् । नः । पृणीहि । पशुऽभिः । विश्वऽरूपैः सुऽधायाम् । मा ।
धेहि । परमे । विऽओमन् ॥ ११ ॥

हे इन्द्र परमैश्वर्यविशिष्ट सूर्य । इन्द्र एव वा संबोध्यते सूर्यमूर्त्यन्तरभूतः । पुरुहूत इत्यसाधारणविशेषणात् । त्वं विश्वजित् विश्वस्य जेता वशीकर्ता अधिपतिरसीत्यर्थः । तथा सर्ववित् सर्वप्रेरकत्वात् सर्वात्मकत्वाच्च । तथात्वं च "असावादित्यो ब्रह्म" [तै० आ० २. २. २] "स त्रेधात्मानं व्यकुरुत । अग्निं तृतीयं वायुं तृतीयम् आदित्यं तृतीयम्" [बृ० आ० १. २. ३] इत्यादिश्रुतेः परमेश्वराद्ध अभिन्नत्वात् सिद्धम् । तथा हे इन्द्र त्वं पुरुहूतोऽसि पुरुभिर्बहुभिर्यजमानैः स्वस्वयागसिद्धये आहूतोसि । यत एवंरूपमहिमासि अतो हे इन्द्र त्वं इमम् इदानीं क्रियमाणमकारं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुहवम् शोभनाह्वानसाधनं स्तोमम् स्तवम् आ सर्वतः ईरयस्व प्रेरय। स्तोमेन तुष्टः सन् एवमेव स्तुहीति प्रेरयेत्यर्थः। अथ वा ईरयतिरत्र प्रेरणापूर्वके स्वीकारे वर्तते प्रेर्य स्वीकुर्वित्यर्थः। स नो मृलेति पूर्ववद् व्याख्येयम् ॥

हे परमैश्वर्यसम्पन्न सूर्यदेव! वा सूर्यकी ही दूसरी मूर्ति इन्द्रदेव! आप सम्पूर्ण विश्वको वशमें करने वाले विश्वजित् हैं, तथा सर्वप्रेरक सर्वात्मक होनेसे सर्ववित् हैं [और आपमें तथात्व भी है, क्योंकि-तैत्तिरीय आरण्यक २। २। २ में कहा है, कि-"असावादित्यो ब्रह्म-यह आदित्य ही ब्रह्म है" और बृहदारण्यक १। २। ३ में कहा है, कि-"स त्रेधात्मानं व्यकुरुत। अग्निं तृतीय वायुं तृतीयम् आदित्यम् तृतीयम्।-उन्होंने अपनेको तीन भागों में विभक्त किया तृतीय भागसे अपनेको अग्नि बनाया तिहाईसे वायु और तिहाईसे सूर्य बनाया" इत्यादि श्रुतियोंसे सूर्यदेवका परमेश्वरसे अभिन्नत्व सिद्ध है] तथा हे इन्द्र! आप पुरुहूत हैं अर्थात् बहुतसे यजमान अपने २ यागकी सिद्धिके लिये आपका आह्वान करते हैं, आप ऐसी महिमा वाले हैं अतः हे सूर्य! आप इस समय किये जाते हुए शोभन आह्वानसे सम्पन्न स्तोत्रको प्रेरित करके स्वीकृत करिये, ऐसे आप हमको सुख दीजिये हम आपकी अनुग्रहात्मिका बुद्धिमें रहें, हे सूर्य! आपके ही अपरिमित प्रभाव हैं आप हमको अनेक आकार वाले पशुओंसे पूर्ण करिये और देहपात होने पर परमव्योममें स्वधाका पात्र बना कर स्थापित करिये ॥ ११ ॥

द्वितीया ॥

अदब्धो दिवि पृथिव्यामुतासि न त आपुर्महिमानमन्तरिक्षे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अदब्धेन ब्रह्मणा वावृधानः स त्वं न इन्द्र दिवि षंछर्म यच्छ तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १२ ॥

अदब्धः । दिवि । पृथिव्याम् । उत । असि । न । ते । आपुः । महिमानम् । अन्तरिक्षे ।

अदब्धेन । ब्रह्मणा । ववृधानः । सः । त्वम् । नः । इन्द्र । दिवि । सन् । शर्म । यच्छ । तव । इत् । विष्णो इति । बहुऽधा । वीर्याणि । त्वम् । नः । पृणीहि । पशुऽभिः । विश्वऽरूपैः । सुऽधायाम् । मा । धेहि । परमे । विऽओमन् ॥ १२ ॥

हे इन्द्र त्वं दिवि द्युलोके अदब्धः केनापि राक्षसादिना अहिंसितोसि । उत अपि च पृथिव्याम् भुवि भूचरैः कैश्चदपि अदब्धः अहिंसितोसि । तथा अन्तरिक्षेपि ते तव महिमानं नापुः सोढुं शक्ता नाभवन् । अतिकठोरतेजस्त्वात् लोकत्रयेपि तव संतापलक्षणं महिमानम् आप्तुमपि अशक्ताः किल किमु वक्तव्यं तव हिंसां कर्तुम् अशक्ता इति इत्यभिप्रायः । ईदृशो महिम्नः प्राप्तौ कारणम् आह अदब्धेनेति यतस्त्वम् अदब्धेन अहिंस्येन अकुण्ठितसामर्थ्येन ब्रह्मणा मन्त्रेण गायत्रीलक्षणेन वावृधानः भृशं वर्धमानः । हिंसकानां रक्षसां गायत्र्यभिमन्त्रितेनोदकेन निरस्तत्वेन संकोचाभावाद् इति भावः । निरसनप्रकारः "तस्माद् उत्तिष्ठन्तं हवा तानि रक्षांस्यादित्यं योधयन्ति" [तै० आ० २. २. १]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इत्यादिना प्रदर्शितः। यद्वा ब्रह्मणा "त्रिषासहिं सहमानम्" इत्यादिकेन कृत्स्नेनानुवाकेन स्तुतिरूपेणेत्यर्थः। "भुवस्त्वम् इन्द्र ब्रह्मणा महान्" [ऋ० १०. ५०. ४] "एतेनाग्ने ब्रह्मणा वावृधस्व" [ऋ० १. ३१. १८] इत्यादिश्रुतेर्देवताया ब्रह्मणा महत्त्वप्राप्तिरभिवृद्धिश्च प्रसिद्धे। अथवा ब्रह्मणा परिवृढेन कर्मणा उपस्थानादिरूपेण वावृधानः। यतस्त्वं ब्रह्मणा वर्धसे अतस्त्वं सर्वत्र अदब्धः अन्यैरप्राप्तमाहात्म्यश्च भवसीत्यर्थः। स तादृशस्त्वम् हे इन्द्र नः अस्माकं दिवि द्युलोके शर्म सुखं यच्छ देहि। स्वधाया मा धेहि परमे व्योमन्निति ह्युक्तम्। तवेद् इत्यादि पूर्ववत् ॥

हे सूर्य देव! आप द्युलोकमें किसी राक्षस आदिसे हिंसित नहीं होते हैं और न पृथिवीमें किसी भूचरसे दबते हैं और अंतरिक्षमें भी कोई आपकी महिमाको प्राप्त नहीं होसकता, अर्थात् परम कठोर तेज वाले होनेसे तीन लोकोंमें भी आपकी सन्तापरूप महिमाको कोई नहीं छूसकता फिर आपकी हिंसा करना तो दूरकी बातहै। [ऐसी महिमाका कारण बताते हैं, कि—] क्योंकि-आप अकुण्ठित शक्ति वाले गायत्रीरूप मन्त्रसे बहुत बढ़ते रहते हैं ऐसे हे सूर्य! आप हमको द्युलोकमें कल्याण दीजिये, स्वधामें मुझको स्थापित करिये आपके ही अमित पराक्रम हैं, आप हमको अनेक आकृति वाले पशुओंसे पूर्ण करिये ॥ १२ ॥

तृतीया ॥

या त इन्द्र तनूरप्सु या पृथिव्यां यान्तरग्नौ या त इन्द्र पवमाने स्वर्विदि।

ययेन्द्र तन्वा३न्तरिक्षं व्यापिथ तया न इन्द्र तन्वा३ शर्म यच्छ तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १३ ॥

या । ते । इन्द्र । तनूः । अप्ऽसु । या । पृथिव्याम् । या । अन्तः । अग्नौ । या । ते । इन्द्र । पवमाने । स्वःऽविदि ।

यया । इन्द्र । तन्वा । अन्तरिक्षम् । विऽआपिथ । तया । नः । इन्द्र । तन्वा । शर्म । यच्छ । तव । इत् । विष्णो इति । बहुऽधा । वीर्याणि ।

त्वं । नः । पृणीहि । पशुऽभिः । विश्वऽरूपैः । सुऽधायाम् । मा । धेहि । परमे । विऽओमन् ॥ १३ ॥

इत्थं मण्डलाभिमानिनः सूर्यस्य माहात्म्यम् उपवर्ण्य बहुविधं स्वाभीष्टमपि अर्थयित्वा इदानीं पञ्चसु महाभूतेषु सूर्यस्य या मूर्तयः सन्ति तन्मुखादपि स्वाभीष्टम् अर्थयते । हे इन्द्र परमैश्वर्ययुक्त सूर्य प्रसिद्धेन्द्र वा या ते तव तनूः मूर्तिः अप्सु उदकेषु अस्ति तया तन्वा मूर्त्या अवधिष्ठितदेवतोपाधिनापि शर्म सुखम् अप्सु विद्यमानं तत्सारभूतामृतभैषज्यादिजन्यं सुखं यच्छ देहि । अप्सु अमृतभैषज्यादिसद्भावो मन्त्रान्तरेषु श्रूयते । "अप्स्वन्तरमृतम् अप्सु भेषजम्" [ऋ० १. २३. १९] "यो वः शिवतमो रसः" [ऋ० १०. ९. २] "अप्सु मे सोमो अब्रवीद् अन्तर्विश्वानि भेषजा" [ऋ० १०. ९. ६] इत्यादिना । तथा पृथिव्याम् हे इन्द्र या तव तनूरस्ति पृथिव्यभिमानिदेवतामूर्तिर्विद्यते तयापि तन्वा नः अस्माकं शर्म सुखं पृथिवीविकारभूतान्नादिसंभवं यच्छ । एवम् अन्तरग्नौ तेजसि या तव तनूः । "चत्वारि शृङ्गा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्रयो अस्य पादाः" [ऋ० ४. ५८. ३] इत्याद्युक्तलक्षणा तया तन्वा मूर्त्यापि नः शर्म यच्छ । दाहपाकप्रकाशादिजन्यं सुखं प्रयच्छेत्यर्थः । तथा स्त्रर्विदि स्वर्गस्य सुखस्य वा लम्भके ज्ञातरि वा पवमाने । ❀ पवतिर्गतिकर्मा ❀ । सर्वदा अनुपरतगते वायौ हे इन्द्र या [ते] तव तनूः मूर्तिरस्ति तयापि नः शर्म यच्छ । बहिरनुकूलस्पर्शजन्यम् अन्तःप्राणादिवायूनां चिरकालसंचारजन्यं च सुखं प्रयच्छेत्यर्थः । किं च हे इन्द्र यया तन्वा मूर्त्या अन्तरिक्षं व्यापिथ व्याप्तवान् असि तया अन्तरिक्षव्यापिन्या मूर्त्या शर्म सुखम् अन्तरिक्षजन्यं वृष्ट्यादिसाध्यं यच्छ । अनेन पञ्चभूतव्यतिरेकेण सुखसाधनवस्त्वन्तराभावात् सर्वविषयं सुखं प्रार्थितं भवति । तथा पञ्चमहाभूतव्यतिरेकेण अन्यस्य कस्यचिदपि पदार्थान्तरस्याभावात् तेषु व्याप्त्यभिधानेन इन्द्रशब्दाभिधेयस्य सूर्यस्य भगवतः सर्वात्मकत्वम् उक्तं भवति । अनेनैवाभिप्रायेण "सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च" [ऋ० १. ११५. १] इत्यादिका श्रुतिः सूर्यस्य सर्वात्मकताम् आह ॥ तवेत् इत्यादि पूर्ववत् ।

[इस प्रकार मण्डलाभिमानी सूर्य के माहात्म्यका वर्णन कर के और अनेक प्रकारके अपने अभीष्टकी प्रार्थना करके अब जो पञ्चमहाभूतोंमें सूर्यदेवकी मूर्तियें हैं उनसे भी अपने अभीष्ट की सिद्धिकी प्रार्थना करते हैं, कि-] हे परमैश्वर्यसम्पन्न सूर्यदेव ! (वा इन्द्र !) जलोंमें जो आपकी मूर्ति (अंश) है उस अपनी मूर्तिसे अर्थात् जलाधिष्ठित देवतोपाधिसे भी आप हमको सुख दीजिये जलोंमें विद्यमान उनके साररूप अमृत भैषज्य आदि से होने वाले सुखको हमें दीजिये [जलमें अमृत भैषज्य आदि का होना दूसरे मन्त्रोंमें भी प्रसिद्ध है, यथा-"अप्स्वन्तरममृतं अप्सु भेषजम् ।-जलोंके भीतर अमृत है जलमें भेषज है" (ऋग्वेदसंहिता १ । २३ । १९) "यो वः शिवतमो रसः ।-जो आपका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परम कल्याणमय रस है" (ऋग्वेदसंहिता १० । ९ । २) और "अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा ।–सोमदेवताने मुझसे कहा है, कि–जलमें सब औषधियें हैं" (ऋग्वेदसंहिता १० । ९ । ६)] तथा हे परमैश्वर्यविशिष्ट सूर्य ! पृथिवीमें भी जो आपकी पृथिव्यभिमानी देवतामूर्ति रहती है उस शरीरसे आप हमको पृथिवीके विकारसे होने वाले अन्न आदिका सुख दीजिये, और अग्निके भीतर भी आपका जो "चत्वारि शृंगा त्रयो अस्य पादाः" ऋग्वेदसंहिता ४ । ५८ । २ में प्रसिद्ध शरीर है उस शरीरसे भी आप हमको दाह पाक प्रकाश आदिसे होने वाला सुख दीजिये तथा सुखदायक सर्वदा अविश्रान्तभावसे चलने वाले वायुमें जो आपकी मूर्ति है उससे भी बाहरी स्पर्शसे मिलने वाले सुख, और भीतरी प्राण आदि वायुओंके चिरकाल तक संचालनसे होने वाले सुखको दीजिये । और हे परमैश्वर्यविशिष्ट सूर्य ! जिस मूर्तिसे आप अन्तरिक्षमें व्याप्त होरहे हैं उस अन्तरिक्षव्यापिनी मूर्तिसे अंतरिक्षसे होने वाले वृष्टि आदिसुखको हमको दीजिये [इन पञ्चभूतोंके अतिरिक्त सुखकी साधन दूसरी वस्तु का होना असंभव है अतः इस प्रकार सब विषयोंके सुखकी प्रार्थना कर ली । तथा पञ्चमहाभूतके अतिरिक्त और किसी पदार्थके न होनेसे उनमें व्याप्ति होनेसे इन्द्रशब्दाभिधेय सूर्य भगवान्का सार्वात्मकत्व कहकर दिखा दिया । इसी अभिप्रायसे "सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।–सूर्यदेव स्थावर और जंगम जगत्की आत्मा है" इस ऋग्वेदसंहिता १ । ११५ । १ में श्रुतिने सूर्यकी सर्वात्मकताका वर्णन किया है । हे व्यापक सूर्यदेव ! आपके अनेक प्रकारके प्रभाव हैं, इस लिये आप हमको सब आकारों वाले पशुओंसे पूर्ण करिये और देहपातके अनन्तर मुझको परमव्योममें स्थापित करिये और मुझको स्वधाका उपभोग करने योग्य बनाइये॥१३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुर्थी ॥

त्वामिन्द्र ब्रह्मणा वर्धयन्तः सत्त्रं निषेदुर्ऋषयो नाधमानास्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १४ ॥

त्वाम् । इन्द्र । ब्रह्मणा । वर्धयन्तः । सत्त्रम् । नि । सेदुः । ऋषयः । नाधमानाः । तव । इत् । विष्णो इति । बहुऽधा । वीर्याणि । त्वम् । नः । पृणीहि । पशुऽभिः । विश्वऽरूपैः । सुऽधायाम् । मा । धेहि । परमे । विऽओमन् ॥ १४ ॥

हे इन्द्र सूर्य त्वाम् ऋषयः पूर्वे अङ्गिरःप्रभृतयो नाधमानाः अभिमतं फलं याचमानाः ब्रह्मणा मन्त्रेण स्तोत्रशस्त्रादिरूपेण अथ वा परिवृढेन सोमपश्वादिरूपेण हविषा वर्धयन्तः अभिवृद्धं कुर्वन्तः सन्तः सत्त्रं गवामयनादिरूपं [निषेदुः] निषण्णा निष्पादयितुं नियमेन अवस्थिता आसन् । अन्वतिष्ठन्नित्यर्थः ॥ तवेत् इत्यादि पूर्ववत् ॥

हे परमैश्वर्यसम्पन्न सूर्यदेव ! अंगिरा आदि प्राचीन ऋषि अभीष्ट फलकी याचना करते हुए स्तोत्र शस्त्र आदि-रूप मन्त्र से आपको बढ़ाते हुए गवामयन आदि यज्ञको निष्पन्न करनेके लिये नियमपूर्वक बैठे थे, हे व्यापक सूर्यदेव ! अनेक प्रकारके प्रभाव हैं आप हमको नाना रूप वाले पशुओंसे पूर्ण रखिये और देहपातके अनन्तर परमव्योममें स्वधाका पात्र बना कर स्थापित करिये ॥ १४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पञ्चमी ॥

त्वं तृतं त्वं पर्येष्युत्सं सहस्रधारं विदथं स्वर्विदं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १५ ॥

त्वम् । तृतम् । त्वम् । परि । एषि । उत्सम् । सहस्रऽधारम् । विदथम् । स्वःऽविदम् । तव । इत् । विष्णो इति । बहुऽधा । वीर्याणि ।
त्वम् । नः । पृणीहि । पशुऽभिः । विश्वऽरूपैः । सुऽधायाम् । मा । धेहि । परमे । विऽओमन् ॥ १५ ॥

हे इन्द्र त्वं तृतम् विस्तीर्णम् अन्तरिक्षं पर्येषि व्याप्नोषि । अथ वा तृतम् आच्छन्नं मेघैरावृतम् उदकं पर्येषि । तत्रापि त्वम् उत्सम् उत्स्यन्दतीति उत्सः उदकनिष्यन्दस्तं पर्येषि । उत्सो विशेष्यते । सहस्रधारम् अपरिमिताभिर्धाराभिरुपेतम् विदथम् । विदथो यज्ञः । ओषधिवनस्पत्यभिवृद्धिद्वारा यज्ञसाधनत्वाद् उत्सो विदथ इत्युच्यते । अथ वा विदथं ज्ञानम् "विदथानि प्रचोदयन्" इत्यादिदर्शनात् [ऋ० ३. २७. ७] । सर्वेषां प्रज्ञापयितारम् इत्यर्थः । सत्यां वृष्टौ सर्वेषां पदार्थानाम् अभिव्यक्तेः । तथा स्वर्विदम् स्वर्गस्य सुखस्य वा लम्भयितारम् ॥ तवेत् इत्यादि पूर्ववत् ॥

हे परमैश्वर्यसम्पन्न सूर्यदेव ! आप विस्तीर्ण अन्तरिक्षमें व्याप्त होजाते हैं, तहाँ पर भी आप मेघको प्राप्त होते हैं यह मेघ अपरिमित धाराओं वाला है और औषधि वनस्पति आदिकी वृद्धि करने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के कारण यज्ञका साधन होनेसे यज्ञ ही है और यह सुखका साधन है। और हे व्यापक सूर्यदेव ! आपके ही अनेक प्रकारके प्रभाव हैं आप हमको सब प्रकारकी आकृति वाले पशुओंसे पूर्ण करिये और मुझको परमव्योममें स्वधा भक्षणका पात्र बना कर स्थापित करिये ॥ १५ ॥

षष्ठी ॥

त्वं रक्षसे प्रदिशश्चतस्रस्त्वं शोचिषा नभसी वि भासी।
त्वमिमा विश्वा भुवनानु तिष्ठस ऋतस्य पन्थामन्वेषि विद्वांस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १६ ॥

त्वम् । रक्षसे । प्रऽदिशः । चतस्रः । त्वम् । शोचिषा । नभसी इति । वि । भासि ।

त्वम् । इमा । विश्वा । भुवना । अनु । तिष्ठसे । ऋतस्य । पन्थाम् । अनु । एषि । विद्वान् । तव । इत् । विष्णो इति । बहुऽधा । वीर्याणि ।

त्वम् । नः । पृणीहि । पशुऽभिः । विश्वऽरूपैः । सुऽधायाम् । मा । धेहि । परमे । विऽओमन् ॥ १६ ॥

हे सूर्य त्वं प्रदिशः प्रकृष्टा दिशः प्रागाद्याश्चतस्रः रक्षसे रक्षसि पालयसि । विभजस इत्यर्थः । यत्रोदेति सा प्राची इत्येवं दिग्विभागकल्पनाहेतुत्वात् । अथ वा दिक्षु अवस्थितानां प्राणिनां रक्षैव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिशां रक्षेत्यभिप्रायेण एवम् उक्तम् । तथा त्वं शोचिषा रोचिषा प्रकाशेन नभसी अन्तरिक्षं दिवं च अथ वा द्यावापृथिव्यौ वि भासि प्रकाशयसि । अल्पं इदम् उच्यते । त्वम् इमा इमानि विश्वा विश्वानि भुवना भुवनानि अनुलक्ष्य तिष्ठसे प्रकाशसे । समस्तानां लोकानां भूतानां वा एकोऽएव प्रकाशसे । एवम् ऋतस्य यज्ञस्य उदकस्य वा पन्थाम् पन्थानं मार्गम् अन्वेषि अनुक्रमेण व्याप्नोषि । कीदृशः सन् । विद्वान् ऋतस्य अवस्थितिं जानन् । न हि कश्चित् कंचित् पदार्थम् अजानन् अजानन् तम् अन्वेतुम् अर्हति ॥ तथेत् इत्यादि पूर्ववत् ॥

हे सूर्यदेव ! आप पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण इन चारों श्रेष्ठ दिशाओंकी रक्षा करते हैं [अर्थात् उनका विभाग करते हैं, क्योंकि—जहाँ सूर्य उदित होते हैं वह पूर्व दिशा होती है इत्यादि— अथवा—दिशाओंमें स्थित प्राणियोंकी रक्षा करना ही दिशाओं की रक्षा करना है] तथा आप अपने प्रकाशसे द्युलोक और पृथिवी लोकको प्रकाशित किया करते हैं अधिक क्या ? इन सकल भुवनोंको ही प्रकाशित करते हैं, इस प्रकार आप यज्ञ वा जलको जानते हुए जल वा यज्ञके मार्गमें अनुक्रमसे व्याप्त होजाते हैं। हे व्यापक सूर्यदेव ! आपके ही अनेक प्रकारके प्रभाव हैं अतः आप हमको सब प्रकारकी आकृति वाले पशुओंसे पूर्ण करिये और मुझको परमव्योममें स्वधा प्राशनके योग्य बनाकर स्थापित करिये सप्तमी ॥

पञ्चभिः परांङ् तपस्येकयार्वाङ्शास्तिमेषि सुदिने बाधमानस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १७ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पञ्चऽभिः । पराङ् । तपसि । एकया । अर्वाङ् । अशस्तिम् । एषि ।

सुऽदिने । बाधमानः । तव । इत् । विष्णो इति । बहुऽधा । वीर्याणि

त्वम् । नः । पृणीहि । पशुऽभिः । विश्वऽरूपैः । सुऽधायाम् । मा ।

धेहि । परमे । विऽओमन् ॥ १७ ॥

हे सूर्य त्वं पञ्चभिः दीधितिभिर्मरीचिभिः पराङ् ऊर्ध्वमुखः सन् तपसि प्रकाशसे उपरितनान् लोकान् । तथा एकया दीधित्या अर्वाङ् अधोमुखः सन् तपसि । अन्तरिक्षस्थस्य सूर्यस्य उपरि प्रकाश्यानां स्वर्महर्जनस्तपःसत्याख्यानां लोकानां पञ्चसंख्याकत्वात् पञ्चभिरित्युक्तम् । तथा अन्तरिक्षस्थितस्य सूर्यस्य अधः प्रकाश्यस्य भूलोकस्य एकत्वात् एकयार्वाङ् इत्युक्तम् । एवं कुर्वन् सुदिने शोभनदिवसे नीहारमेघाद्युपद्रवरहिते दिवसे निमित्तभूते सति बाधमानः तदर्थं याच्यमानः सन् अशस्तिम् एकयैवार्वाङ्-तपसीत्येवंरूपां निन्दाम् एषि प्राप्नोषि ॥ अथ वा पञ्चभिरंशैः पराङ् तपसि एकेनैवांशेन अर्वाङ् तपसि । चक्षुर्गम्यं तेजः एकदेश एव उपरितनं तेजः निरवधिकम् इत्येवं स्तुतिं प्राप्नोषीत्यर्थः ॥ तवेत् इत्यादि पूर्ववत् ॥

हे सूर्यदेव ! आप पाँच किरणोंसे ऊर्ध्वमुख होकर ऊपरके लोकोंको प्रकाशित करते हैं तथा एक किरणसे नीचेको मुख करके प्रकाश फैलाते हैं [अन्तरिक्षमें स्थित सूर्यदेवके द्वारा ऊपरके प्रकाशित होने वाले स्वर् महर् जन तप और सत्य लोकोंके पाँच होने से पाँच किरणोंका वर्णन किया और अन्तरिक्षमें स्थित सूर्य देव से नीचेके प्रकाशित होने वाले भूलोकके एक होनेसे एक किरण का वर्णन किया] इस प्रकार करते हुए आप कुहरा मेघ आदिके उपद्रवसे रहित सुदिनमें प्रार्थित होकर इस निन्दाको पाते हैं, कि--

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एकसे ही नीचेके लोकको प्रकाशित करते हैं, तात्पर्य यह है, कि—चक्षुर्गम्य तेज एक देशमें ही होता है और उपरितन तेज निरवधिक होता है। हे व्यापक सूर्यदेव! आपके ही अनेक प्रकार के प्रभाव हैं, आप हमको सब प्रकारकी आकृति वाले पशुओंसे पूर्ण करिये और देहावसानमें परमव्योममें—स्वधामें स्थापित करिये ॥ १७ ॥

अष्टमी ॥

त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रस्त्वं लोकस्त्वं प्रजापतिः ।
तुभ्यं यज्ञो वि तायते तुभ्यं जुह्वति जुह्वतस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १८ ॥

त्वम् । इन्द्रः । त्वम् । महाऽइन्द्रः । त्वम् । लोकः । त्वम् । प्रजाऽपतिः
तुभ्यम् । यज्ञः । वि । तायते । तुभ्यम् । जुह्वति । जुह्वतः । तव ।
इत् । विष्णो इति । बहुऽधा । वीर्याणि ।
त्वम् । नः । पृणीहि । पशुऽभिः । विश्वऽरूपैः । सुऽधायाम् ।
मा । धेहि । परमे । विऽओमन् ॥ १८ ॥

हे सूर्य त्वम् इन्द्रः स्वर्गाधिपतिः "सहस्राक्षो गोत्रभिद् वज्रबाहुः" [तै० सं० २. ३. १४. ४] इत्यादिमन्त्रोक्तस्वरूप इन्द्रस्त्वमेव । तथा महेन्द्रस्त्वमेव महत्त्वगुणविशिष्ट इन्द्रोपि त्वमेव । वस्तुतो देवतैक्येपि विशेषणभेदाद् देवताभेदम् इच्छन्ति तान्त्रिकाः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"यद् अग्नये पवमानाय ❀ ❀ ❀ । यद् अग्नये पावकाय ❀ ❀ ❀ । यद् अग्नये शुचये ❀ ❀ ❀।" [तै० ब्रा० १. १. ५. १०] इत्यत्र यथा अग्नेरेकत्वेपि पवमानादिगुणभेदेन भेदः एवम् अत्रापि द्रष्टव्यम् । इन्द्रस्य महत्त्वगुणयोगः "इन्द्रो वै वृत्रं हत्वा महान् अभवत्" [ऐ० आ० १. १] इत्यादिश्रुतेर्वृत्रवधाद्यसाधारणपराक्रमजन्यः । तथा त्वमेव लोकः सुकृतिभिः प्राप्यो लोकः स्वर्गादिलक्षणस्त्वमेव । अथ वा परब्रह्मस्वरूपत्वात् सर्वलोकात्मकस्त्वमेव । एवं प्रजापतिः प्रजानां स्रष्टा देवस्त्वमेव । यत एवम् अतस्तुभ्यं तव प्रीतये यज्ञो ज्योतिष्टोमादिः वि तायते विस्तार्यते यजमानैः । तथा जुह्वतः होमं कुर्वन्तः सर्वेपि तुभ्यं त्वदर्थमेव जुह्वति होमं कुर्वन्ति । याज्यापुरोनुवाक्यापुरःसरं हूयमाना यागाः तद्रहिता होमाः इति तयोर्विवेकः ॥ तवेत् इत्यादि पूर्ववत् ॥

हे सूर्य ! आप स्वर्गाधिप इन्द्र हैं ["सहस्राक्षो गोत्रभिद् वज्रबाहुः" तैत्तिरीयसंहिता २ । ३ । १४ । ३ आदि मन्त्रमें कहे हुए इन्द्र आप ही हैं] तथा महत्त्वगुणसम्पन्न इन्द्र भी आप ही हैं [तान्त्रिक पुरुष वास्तवमें देवताके एक होने पर भी विशेषणभेदसे भिन्न भिन्न देवता मानते हैं तैत्तिरीय आरण्यक १ । १ । ५ । १० में कहा है, कि-"यद् अग्नये पवमानाय ❀ ❀ ❀ । यद् अग्नये पावकाय ❀ ❀ ❀ । यद् अग्नये शुचये ❀ ❀ ❀ ।" यहाँ अग्निके एक होने पर भी पवमान आदि गुणभेदसे भेद है ऐसे ही यहाँ पर भी समझना चाहिये । इन्द्रदेवके महत्त्वगुणका योग "इन्द्रो वै वृत्रं हत्वा महान् अभवत् । इन्द्रदेव वृत्रको मार कर महान् हुए" (ऐतरेय आरण्यक १ । १) आदि श्रुतियोंके अनुसार वृत्रवध आदि असाधारण पराक्रमोंके लिये है] और आप ही पुण्यात्माओंको मिलने वाले स्वर्ग आदि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोक हैं अथवा परब्रह्मस्वरूप होनेसे सर्वलोकात्मक आप ही हैं। इसी प्रकार प्रजाओंके स्रष्टा देव भी आप ही हैं। इसी कारण आपकी प्रीतिके लिये ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंको यजमान किया करते हैं। तथा होम करते हुए भी सब आपके लिये ही होम करते हैं [याज्यापुरोवाक्याके साथ जिनमें आहुति दीजाती है वे याग कहलाते हैं और याज्यापुरोवाक्यासे रहित होम कहलाते हैं] हे व्यापक सूर्यदेव ! आपके अनेक प्रकारके प्रभाव हैं, आप हमको सब प्रकारके आकार वाले पशुओंसे पूर्ण करिये और मरणके अनन्तर परम व्योममें स्वधाका पात्र बनाकर स्थापित करिये १८

नवमी ॥

असति सत् प्रतिष्ठितं सति भूतं प्रतिष्ठितम् ।
भूतं ह भव्य आहितं भव्यं भूते प्रतिष्ठितं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १९ ॥

असति । सत् । प्रतिऽस्थितम् । सति । भूतम् । प्रतिऽस्थितम् ।
भूतम् । ह । भव्ये । आऽहितम् । भव्यम् । भूते । प्रतिऽस्थितम् ।
तव । इत् । विष्णो इति । बहुऽधा । वीर्याणि ।
त्वम् । नः । पृणीहि । पशुऽभिः । विश्वऽरूपैः । सुऽधायाम् ।
मा । धेहि । परमे विऽओमन् ॥ १९ ॥

असति । अत्र असच्छब्देन नामरूपादिराहित्यात् असत्प्रायं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निरस्तसमस्तोपाधिकं सन्मात्रं ब्रह्म अभिधीयते। यथा दृश्यपदार्था नामरूपादिघटितत्वेन सद्व्यवहारम् अर्हन्ति एवं नामरूपाद्यभावेन चक्षुराद्यविषयत्वेन द्रष्टुम् अनर्हत्वाद् ब्रह्म असद् इत्युच्यते। सच्छब्देन च असतः प्रपञ्चस्य सत्त्वेनावभासकत्वात् स्वयं च तद्रूपेण सत्त्वेनावभासात् अनृतनीहारमायाद्यपरपर्यायम् अज्ञानम् अभिधीयते। यद्यपि वस्तुतः सच्छब्देन ब्रह्म अभिधातव्यम् "सदेव सोम्येदम् अग्र आसीत्" [छा० उ० ६ २. १] "सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म" [तै० आ० ८. १] इत्यादिश्रुतेः तथा असच्छब्देन अब्रह्म [अज्ञानम्] अभिधातव्यम् सद्विलक्षणत्वात् भ्रान्तिबाधयोर्विषयत्वाच्च "अतोन्यद् आर्तम्" इति [बृ० आ० ३. ५. १] श्रुतेः तथापि प्रतीत्यनुसारेण एवम् उक्तम्। तस्मिन्नसति ब्रह्मणि सत् अज्ञानं प्रतिष्ठितम् आश्रितम् अध्यस्तम्। यथा इदमंशे शुक्तौ रजतम् रज्ज्वां सर्पधारादि एवं ब्रह्मणि अज्ञानं प्रतिष्ठितम्। सति उक्तलक्षणे अज्ञाने चैतन्याप्रतिबिम्बवति अज्ञाने भूतम् भूतकालावच्छिन्नं पृथिव्यादिभूतपञ्चकं सकलसृष्ट्युपादानभूतं प्रतिष्ठितम् तद् आश्रित्य वर्तते। तत उत्पद्यत इत्यर्थः। यद्यपि "आत्मन आकाशः संभूतः" [तै० आ० ८. १] इत्यादिश्रुतेर्ब्रह्मतो भूतानाम् उत्पत्तिर्न मायातः तथापि अविक्रियस्य केवलस्य सन्मात्रस्य अकार्यत्वात् अकारणत्वात् मायात एव तेषाम् उत्पत्तिः। तदधिष्ठानत्वाद् ब्रह्मत उत्पत्त्यभिधानश्रुतिः।

भ्रमाधिष्ठानतास्माभिः प्रकृतित्वम् उपेयते।

इति हि स्मरन्ति। अथ वा असच्छब्देन सांख्यशास्त्रप्रसिद्धम् अनुद्भूतोद्भवाभिभवं गुणत्रयसाम्यावस्थालक्षणं प्रधानम् उच्यते। तस्य विकृतिरूपताऽभावात् असच्छब्दव्यवहारः। तस्मिन्नसति सत् उद्भूतोद्भवाभिभवम् अन्तरुदितत्रिभेदं महत्तत्त्वं प्रतिष्ठितम्। महत्तत्त्वस्य प्रधानविकारत्वात् सच्छब्देन व्यवहारः। तस्मिन् सति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महत्तत्त्वे भूतम् भूतपञ्चकं प्रतिष्ठितम् । तच्च भूतम् भूतपञ्चकं सर्वस्य कार्यप्रपञ्चस्य उपादानभूतं भव्ये कार्यजाते आहितम् अनुगतम् । तच्च भव्यम् कार्यजातं भूते स्वकारणभूते भूतपञ्चके प्रतिष्ठितम् नियतं वर्तते । कारणव्यतिरेकेण पृथगवस्थानाभातात् । एवमात्मनः प्रपञ्चावस्थानस्य परमेश्वरमहिमायत्तत्वात् तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणीत्युच्यते ॥ गतम् अन्यत् ॥

असत्में अर्थात् ब्रह्ममें सत् अर्थात् दृश्यप्रपञ्च प्रतिष्ठित है [तात्पर्य यह है, कि—नाम रूप आदि रहित होनेके कारण असत् प्राय समस्त उपाधियोंसे शून्य सन्मात्र ब्रह्मको यहाँ असत् शब्द से कहा है । जैसे दृश्य पदार्थ नामरूप आदिसे वर्णित होनेके कारण सत् कहलाते हैं इसी प्रकार नाम रूप आदिके अभावके कारण चक्षु आदिके विषयत्वसे देखने योग्य न होनेसे ब्रह्मको यहाँ असत् कहा है ॥ और सत्—शब्दसे भी असत् प्रपञ्चके सत्त्वसे अवभासक होनेसे अनृत कुहरा माया आदि पर्यायोंसे अभिहित होने वाले अज्ञानका ग्रहण किया है ॥ यद्यपि वास्तव में ब्रह्मको कहना चाहिये । क्योंकि-"सदेव सौम्येदमग्र आसीत् ।- हे सौम्य ! पहिले यह सब सत् ही था" (छान्दोग्य उपनिषत् ६ । २ । १) "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" (तैत्तिरीय आरण्यक ८ । १) आदि श्रुतियोंके अनुसार असत्-शब्दसे अब्रह्म (अज्ञान) लेना चाहिये, क्योंकि—यह सत्से विलक्षण और भ्रान्ति तथा बाध का विषय है तथा "अतोऽन्यद् आर्तम् ।—इससे भिन्न असार है" (बृहदारण्यक ३ । ५ । १) की श्रुतिसे भी यही बात सिद्ध होती है, तथापि प्रतीतिके अनुसार ऐसा कहा है ॥ ऐसे असत्-ब्रह्ममें सत् अर्थात् अज्ञान प्रतिष्ठित है अर्थात् अध्यस्त है । जैसे इदम्—अंश सीपीमें चाँदी और रस्सीमें सर्प प्रतिष्ठित होता है इसी प्रकार ब्रह्ममें अज्ञान प्रतिष्ठित है । पूर्वोक्त लक्षण वाले]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्में अर्थात् चैतन्याप्रतिबिम्ब वाले अज्ञानमें भूत प्रतिष्ठित है अर्थात् भूतकालावच्छिन्न पृथिवी आदि पाँच भूतोंका समूह जो सकल सृष्टिका उपादान कारण है वह प्रतिष्ठित है अर्थात् उससे उत्पन्न होता है। [यद्यपि "आत्मन आकाशः संभूतः।-आत्मा से आकाश प्रकट हुआ" (तैत्तिरीय आरण्यक ८। १) इत्यादि श्रुतियोंमें ब्रह्मसे भूतोंकी उत्पत्तिका वर्णन मिलता है मायासे भूतोंकी उत्पत्तिका वर्णन नहीं मिलता है, तथापि अविक्रिय केवल सन्मात्रके कार्यत्व और कारणत्वसे रहित होनेके कारण मायासे ही इनकी उत्पत्ति कही है और श्रुतिमें उस मायाका अधिष्ठान होनेसे ब्रह्मसे भूतोंकी उत्पत्ति कही है। कहा भी है, कि–भ्रमाधिष्ठानतास्माभिः प्रकृतित्वं उपेयते।" अथवा-असत् शब्दसे यहाँ साङ्ख्यशास्त्रमें प्रसिद्ध अनुद्भूत उद्भव अभिभव वाला, तीन गुणोंकी साम्यावस्थारूप प्रधानका ग्रहण करना चाहिये, उसमें विकृतिरूपताके अभावसे असत्–शब्दका व्यवहार हो सकता है। ऐसे असत्में सत्-अर्थात् जिसमें उद्भव और अभिभव उद्भूत होगए हैं और जिसमें भीतर तीन भेद उदित होगए हैं ऐसा–महत्तत्त्व प्रतिष्ठित है। महत्तत्त्वके प्रधान विकार होनेसे सत्–शब्दसे उसका व्यवहार किया है। ऐसे सत्–महत्तत्त्वमें पञ्चभूतोंका समूह प्रतिष्ठित है] वह भूत–समूह सब कार्यप्रपञ्चके उपादानभूत भव्य (आगेको होने वाले) कार्यसमूहमें अहित है और वह भव्य कार्यसमूह अपने कारणभूत भूतसमूहमें नियतरूपसे रहता है, क्योंकि–कारणके विना कोई भी अलग नहीं रह सकता। इस प्रकार प्रपञ्चावस्थान आत्माके परमेश्वरकी महिमाके आधीन होनेसे हे व्यापक सूर्यदेव! आपके ही अनेक प्रकारके प्रभाव हैं, ऐसे आप हमको सब प्रकारकी आकृति वाले पशुओंसे पूर्ण करिये और देहपातके अनन्तर मुझको परमव्योम में स्वधा भक्षण करने योग्य बना कर प्रतिष्ठित करिये॥ १९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दशमी ॥

शुक्रोसि भ्राजोसि ।

स यथा त्वं भ्राजता भ्राजोस्येवाहं भ्राजता भ्राज्यासम् ॥

शुक्रः । असि । भ्राजः । असि ।

सः । यथा । त्वम् । भ्राजता । भ्राजः । असि । एव । अहम् ।

भ्राजता । भ्राज्यासम् ॥ २० ॥

हे सूर्य त्वं शुक्रोसि शुक्रः अतिविशदः स्वच्छः प्रकाशः तद्रूपस्त्वम् असि । यद्वा शुक्रशब्दोत्र धर्मिपरः । शुक्रगुणयुक्तोसि । अत्यन्तनिर्मलस्वरूपोसीत्यर्थः । अनेन कलुषलेशेनापि असंस्पृष्टस्वरूपता उक्ता । तथा भ्राजोसि भ्राजते दीप्यत इति भ्राजः । ❀ पचाद्यच् ❀ । दीप्तोसि सकललौकिकप्रकाशकेन तेजसा युक्त इत्यर्थः । अस्तु किं तत इत्यत आह स यथा त्वम् इति । हे सूर्य स तादृशस्त्वं [यथा] भ्राजता सकललोकप्रकाशकेन तेजोमयेन रूपेण भ्राजोसि भ्राजनस्वभावो भवसि । "विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृशे" इति [ऋ० १०. १७०. ३] मन्त्रान्तरम् । एव एवम् अहम् उक्तस्वरूपोपासकः भ्राजता दीप्तेन रूपेण शरीरकान्त्या भ्राज्यासम् दीप्तो भूयासम् । तेजोगुणकस्य सूर्यस्य उपासनया उपासकस्यापि तेजोगुणयुक्तत्वं युक्तमेव ॥

इति सप्तदशकाण्डे द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे सूर्यदेव ! आप शुक्र हैं अर्थात् परमविशद स्वच्छ प्रकाशस्वरूप हैं वा ऐसे प्रकाशसे सम्पन्न हैं तथा आप दमकते रहते हैं, तथा आप दीप्त हैं अर्थात् सकल लौकिक प्रकाशक तेजोंसे सम्पन्न हैं, हे सूर्य ! ऐसे आप जैसे सकल लोकप्रकाशक तेजोमय रूपसे दमकते रहते हैं ऐसे ही उक्तस्वरूपका उपासक मैं भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दमकते हुए रूपसे दीप्ति वाला होजाऊँ [तेजोगुणक सूर्यदेवकी उपासनासे उपासकका भी तेजोगुणयुक्तत्व ठीक ही है] ॥ २० ॥

सत्रहवें काण्डमें द्वितीय सूक्त समाप्त

अथ तृतीयसूक्ते प्रथमा ॥

रुचिरसि रोचोसि ।

स यथा त्वं रुच्या रोचोस्येवाहं पशुभिश्च ब्राह्मणवर्चसेन च रुचिषीय ॥ २१ ॥

रुचिः । असि । रोचः । असि ।

सः । यथा । त्वम् । रुच्या । रोचः । असि । एव । अहम् । पशुऽभिः ।

च । ब्राह्मणऽवर्चसेन । च । रुचिषीय ॥ २१ ॥

हे सूर्य त्वं रुचिरसि रुचिर्दीप्तिस्तद्रूपस्त्वम् असि । यद्वा रुचिशब्देन रुचिमान् अभिधीयते। प्रकृष्टरुचिरसि । तथा रोचोसि रोचयति दीपयतीति रोचः । तादृशत्वम् असि । अत्र रुचिरसीत्यनेन दीप्तिमत्त्वमात्रम् उक्तम् । रोचीसीत्यनेन तु सकललोकदीपकत्वम् इति विवेकः । इत्थं स्वापेक्षितगुणविशिष्टत्वेन स्तुत्वा स्वाभिमतम् आशास्ते स यथा त्वम् इति। स तादृशस्त्वं रुच्या विश्वप्रकाशिकया दीप्त्या रोचोसि भवसि रोचको भवसि । ❀ पचाद्यच् ❀। एव एवं भवानिव अहमपि पशुभिश्च । चशब्दो वक्ष्यमाणब्रह्मवर्चसेन समुच्चयार्थः । पशवो गोमहिषाश्वादयः तैश्च ब्राह्मणवर्चसेन च । अत्र चशब्दः पशुभिः समुच्चयार्थः । ब्राह्मणनाम् उचितं श्रुताध्ययनतपआदिजन्यं तेजः ब्राह्मणवर्चसम् , उभाभ्यां रुचिषीय दीप्तो भवेयम् । यथा ब्रह्मवर्चसलक्षणेन तेजसा दीप्यते लोके एवं बहुभिः पश्वादि धनैरपि आढ्यः सन् दीप्यते इति पशूनां दीप्तिसाधन-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्वाभिधानम् । लोके धनाढ्यः प्रकाशत इति प्रसिद्धमेव । ❀ अत्र "ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः" इति विहितः समासान्तः अच् प्रत्ययो ब्राह्मणशब्दात् परस्यापि वर्चसो भवति ❀ ॥ अत्र ब्राह्मणवर्चसेन रुचिषीयेति ब्रह्मवर्चसप्रार्थनालिङ्गात् माणवकस्य ब्रह्मवर्चसापेक्षत्वाद् उपनयनकर्मणि माणवकस्य नाभिदेशं संस्पृश्य जपेत् । तस्मिन्नेव कर्मणि माणवकाभिमन्त्रणे च अस्यानुवाकस्य विनियोग उक्त इति मन्तव्यम् ॥

हे सूर्यदेव ! आप रुचि हैं अर्थात् दीप्तिरूप हैं वा दीप्ति वाले हैं, रोच हैं–दमकाने वाले हैं [पहिले पदसे दीप्तिमत्त्व मात्र कहा और दूसरे पदसे सकल लोकोंका दीपकत्व कहा, इस प्रकार अपने अभिलषितगुणसम्पन्नत्वसे स्तुति करके प्रार्थना करता है, कि-] जैसे आप विश्वप्रकाशिका दीप्ति से दमकते रहते हैं इसी प्रकार मैं गौ भैंस घोड़े आदि पशुओंसे, और ब्राह्मणोचित वेदाध्ययन तप आदिसे होने वाले तेजसे दमकता रहूँ [जैसे प्राणी संसारमें ब्रह्मतेजसे दमकता है इसी प्रकार पशु आदि धनसे धनाढ्य होकर भी दमकता है यह बात प्रसिद्ध ही है इस प्रकार दीप्तिसाधन होनेसे यहाँ पशुओंका वर्णन किया है॥ यहाँ "ब्राह्मणवर्चसेन रुचिषीय–ब्रह्मतेजसे दमकूँ" इस ब्रह्मवर्चसप्रार्थनालिंग से, माणवकके लिये ब्रह्मतेजकी आवश्यकताके कारण उपनयनकर्ममें आचार्यको चाहिये, कि–इस अनुवाकका बालककी नाभि का स्पर्श करके जप करे, इसी कर्ममें माणवकके अनुमन्त्रणमें भी इस अनुवाकका विनियोग होता है] ॥ २१ ॥

द्वितीया ॥

उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः ।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥ २२ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्ऽयते । नमः । उत्ऽआयते । नमः । उत्ऽइताय । नमः ।

विऽराजे । नमः । स्वऽराजे । नमः । सम्ऽराजे । नमः ॥ २२ ॥

हे सूर्य उद्यते उदयैकदेशं गच्छते तुभ्यं नमः नमस्कारोस्तु । तथा उदायते ऊर्ध्वम् ईषद्गच्छते । अर्धोदितायेत्यर्थः । तादृशाय तस्मै नमः । एवम् उदिताय ऊर्ध्वं सम्यक् प्राप्ताय संपूर्णोदयाय नमः । ❀ अत्र उद्यते उदायत इत्युभयत्र उत्पूर्वात् उदाङ्पूर्वाच्च इण् गतौ इत्यस्माल्लटः शत्रादेशे "इणो यण्" इति यण् आदेशः ❀ । अथ यथोक्तावस्थात्रयनिबन्धनास्तिस्रो मूर्तीः पृथक्पृथग् नमस्करोति विराजे नम इत्यादिना । उद्यते विराजे नमः विविधं राजत इति विराट् तस्मै एकदेशोदिताय विराडात्मकाय नमः । स्वराजे नमः स्वयं राजत इति स्वराट् स्वाधीनप्रकाशाय उदायदवस्थाय अर्धोदिताय स्वराण्मूर्तये नमः । सम्राजे नमः सम्यक् अतिशयेन राजमानाय उदितावस्थाय नमः ॥ अथ वा अवस्थानम् अन्तरेणैव विराट्स्वराट्सम्राजः परमेश्वरस्य सोपाधिकास्तिस्रो मूर्तयः । तासु विराड् नाम परमेश्वरस्य यत् सकललोकात्मकं स्थूलशरीरं तदभिमानी पुरुषशब्दवाच्यो देवः । तथा स्मर्यते ।

भूतैर्यदा पञ्चभिरात्मसृष्टैः पुरं विराजं विरचय्य तस्मिन् ।
स्वांशेन विष्टः पुरुषाभिधानम् अवाप नारायण आदिदेवः ॥

विराजम् असृजत् प्रभुः ।

इति च । स्वराड् नाम भूतपञ्चकसारात्मकं परमेश्वरस्य सर्वसमष्टिरूपं यत् सूक्ष्मशरीरं तदभिमानी "स ब्रह्मा । स शिवः । स हरिः । सोक्षरः परमः स्वराट्" [तै० आ० १०. ११. २] इत्यादिश्रुत्युक्तो हिरण्यगर्भः । सम्राड् नाम परमेश्वरः कारणशरीराभिमानी सकलभूतभौतिकप्रपञ्चस्रष्टा मायोपाधिकईश्वरः॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"ब्रह्म प्रपद्ये । ब्रह्मकोशं प्रपद्ये" [तै० आ० २. १९. १] "य एषोन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते" [छा० १. ६. ६] "हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम् । तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिः" [मु० २. २. ९] इत्यादिश्रुतेः सूर्यमण्डलाभिमानिनो देवस्य परमेश्वरत्वाद् विराडादयः सूर्यात्मकस्य देवस्य मूर्तय एव । अतस्ताभ्यः पृथक्पृथग् नमस्करोति ॥ यद्वा विराट्स्वराट्-सम्राजः अग्निवाय्वादित्याख्याः परमेश्वरस्य तिस्रो मूर्तयः ताभ्यः पृथक्पृथग् नमस्कारं करोति ॥

हे सूर्य ! उदयके एक देशको प्राप्त होते हुए आपके लिये प्रणाम है, कुछ उदय हुए अर्थात् आधे उदय हुए आपके लिये प्रणाम है और सम्पूर्णरूपसे उदित हुए आपके लिये प्रणाम है (अब इन तीनों अवस्थाओंकी मूर्तियोंको पृथक् २ प्रणाम करते हैं, कि) एकदेशोदित विराट्के लिये प्रणाम है, स्वाधीनप्रकाश अर्धोदित स्वराट्मूर्तिके लिये प्रणाम है, सम्पूर्णोदित स्वराट्मूर्ति के लिये प्रणाम है । अथवा अवस्थानके अतिरिक्त जो परमेश्वर की विराट् स्वराट् और सम्राट् नामकी सोपाधिक तीन मूर्तियें हैं उनके लिये प्रणाम है [इनमें परमेश्वरके सकल लोकात्मक स्थूलशरीरके अभिमानी पुरुष-शब्द-वाच्य देवका नाम विराट् है । भागवतमें कहा है, कि—"भूतैर्पदापञ्चभिरात्मसृष्टैः पुरं विराजं विरचय्य तस्मिन् । स्वांशेन विष्टः पुरुषाभिधानं अवाप नारायण आदिदेवः ॥—जब सबके कारणभूत नारायणने, अपने ही उत्पन्न किये हुए आकाश आदि पञ्चमहाभूतोंसे ब्रह्माण्डरूप देहको उत्पन्न करके उसमें अपने अंशसे प्रवेश किया तब वह पुरुष नामको प्राप्त हुए" (भागवत एकादश स्कन्ध चतुर्थ अध्याय तृतीय श्लोक) अन्यत्र भी सुना जाता है, कि—"विराजमसृजत् प्रभुः ।—प्रभुने विराट्की सृष्टि की" ॥ जो पञ्चभूतसारात्मक परमेश्वरके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वसमष्टिरूप सूक्ष्मशरीरका अभिमानी देवता है उसको स्वराट् कहते हैं। तैत्तिरीय आरण्यक १०।११।२ में कहा है, कि-"स ब्रह्मा स शिवः स हरिः सोक्षरः परमः स्वराट्।-वही ब्रह्मा है, वही शिव है, वही हरि है, वही परम अक्षर है, वही स्वराट् है" इत्यादि श्रुतियोंमें वर्णित हिरण्यगर्भ ही स्वराट् है सम्राट् नाम परमेश्वरका है वह कारणशरीरका अभिमानी है, सकल भूत भौतिक प्रपञ्चका स्रष्टा है और मायोपाधिक ईश्वर है॥-ब्रह्म प्रपद्ये। ब्रह्मकोशं प्रपद्ये॥-ब्रह्मकी शरण लेता हूँ, ब्रह्मकोश को प्राप्त होता हूँ" (तैत्तिरीय आरण्यक २।१९।१) "य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते।-यह जो सूर्यके भीतर हिरण्मय पुरुष दीखता है" (छान्दोग्य १।६।६) हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्। तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिः। हिरण्मय परकोशमें विरज निष्कल ब्रह्म है, वह शुभ्र है और ज्योतियोंकी भी ज्योति है" (मुण्डकोपनिषत् २।२।९) इत्यादि श्रुतियोंके अनुसार मण्डलाभिमानी देवके परमेश्वर होने से विराट् आदि सूर्यात्मक देवकी ही मूर्तियें हैं। अत एव उनको पृथक् २ नमस्कार किया है] अथवा-परमेश्वरकी विराट् स्वराट् और सम्राट् अर्थात् अग्नि वायु तथा आदित्य नामक जो तीन मूर्तियें उनको प्रणाम प्राप्त हो॥ २२॥

तृतीया॥

अस्तंयते नमोस्तमेष्यते नमोस्तमिताय नमः।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः॥ २३॥

अस्तम्ऽयते। नमः। अस्तम्ऽएष्यते। नमः। अस्तम्ऽइताय। नमः।
विऽराजे। नमः। स्वऽराजे। नमः। सम्ऽराजे। नमः॥ २३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अस्तंयते अस्तम् अस्ताचलं गच्छते । ईषदस्तमितायेत्यर्थः । एवम् अस्तमेष्यते गमिष्यते अर्धमस्तमिताय नमः । अस्तमिताय अस्तं संपूर्णं प्राप्ताय नमः । विराजे नम इत्याद्या पूर्ववद् व्याख्येयाः । अस्त गच्छतोपि सूर्यस्य उक्तलक्षणावस्थात्रयनिबन्धना विराडादिसंज्ञाः सन्ति । अस्तंयदवस्थायां किंचिदूनकृत्स्नप्रकाशसंभवाद् विराड् भवति । अर्धमस्तमितस्यापि अर्धोदितवत् स्वराट्त्वम् अस्त्येव । अस्तमितस्यापि "अग्निं वावादित्यः सायं प्रविशति । तस्माद् अग्निर्दूराक्तं ददृशे । उभे हि तेजसी संपद्येते [तै० ब्रा० २. १. २. ६] इति श्रुतेः अग्न्यात्मनावस्थानात् सम्राट्त्वं न हीयते ॥ अथ वा सर्वदा मेरुं परिभ्रमतः सूर्यस्य स्वत उदयास्तमयाभावाद् अस्मदादिदर्शनतिरोधानतास्तस्याद् उदयास्तमयव्यपदेशः । अतः उदयास्तमययोस्त्रैविध्येन विराडादिमूर्तयः उपासनार्थं शास्त्रे निर्दिष्टाः ॥ मध्यन्दिनस्यापि उदितावस्थायाम् अन्तर्भावात् उक्तलिङ्गेन माणवकस्य आयुरभिवृद्ध्यर्थं त्रिकालम् आदित्योपस्थाने अस्यानुवाकस्य विनियोग उक्तः ॥

अस्ताचलको जाते हुए अर्थात् कुछ अस्त हुए सूर्यदेवके लिये प्रणाम है । अस्तको प्राप्त होते हुए अर्थात् आधे अस्त हुए आदित्यदेवके लिये प्रणाम है, और पूर्णरूपसे अस्तको प्राप्त हुए अस्तमित सूर्यदेवके लिये प्रणाम है । कुछ अस्त हुए विराट् सूर्यदेवके लिये नमस्कार है आधे अस्त हुए स्वराट् भानुदेवके लिये प्रणाम है, पूर्णरूपसे अस्त हुए सम्राट् भानुदेवके लिये प्रणाम है [अस्तको प्राप्त होते हुए सूर्यदेवकी भी पूर्वोक्त तीनों अवस्थाओं के कारण विराट् आदि संज्ञायें होती हैं अस्तको प्राप्त होनेकी दशामें कुछ कम पूर्ण प्रकाश होनेसे यह विराट् होते हैं। अर्धस्तमित का भी अर्धोदितकी समान स्वराट्त्व है ही । और पूर्णरूपसे अस्त हुएका भी सम्राट्त्व क्षीण नहीं होता है, क्योंकि–तैत्तिरीय-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रीय ब्राह्मण २ । १ । २ । ९ में कहा है, कि-"अग्निं वावादित्यः सायं प्रविशति । तस्मादग्निर्दूरान्नक्तं ददृशे । उभे हि तेजसी संपद्येते ।-सूर्यदेव सायङ्कालके समय अग्निमें प्रवेश कर जाते हैं । इसी कारण रात्रिमें अग्नि दूरसे ही दीखती है, क्योंकि-दोनों तेज मिल जाते हैं" ॥ अथवा सदा मेरुकी परिक्रमा करने वाले सूर्यदेवका स्वतः उदय और अस्त नहीं होता है और हमारे दर्शन वा तिरोधानकी न्यूनाधिकतासे उदय और अस्तका व्यवहार चलता है अत एव उदय और अस्तके तीन प्रकारका होनेसे विराट् आदि मूर्तियोंका शास्त्रमें उपासनाके लिये वर्णन किया है । मध्यन्दिनका भी उदितावस्थामें अन्तर्भाव होनेसे उक्तलिंगसे माणवककी आयुर्वृद्धिके लिये तीनों समयके आदित्योपस्थानमें इस अनुवाकका विनियोग कहा है] ॥ २३ ॥

चतुर्थी ॥

उदगादयमादित्यो विश्वेन तपसा सह ।
सपत्नान् मह्यं रन्धयन् मा चाहं द्विषते रधं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ २४ ॥

उत् । अगात् । अयम् । आदित्यः । विश्वेन । तपसा । सह ।
सऽपत्नान् । मह्यम् । रन्धयन् । मा । च । अहम् । द्विषते । रधम् ।
तव । इत् । विष्णो इति । बहुऽधा । वीर्याणि ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्वम् । नः । पृणीहि । पशुऽभिः । विश्वऽरूपैः । सुऽधायाम् ।
मा । धेहि । परमे । विऽओमन् ॥ २४ ॥

अयं सर्वैः परिदृश्यमान आदित्यः उदगात् उदितवान् । कीदृशः सन् । विश्वेन कृत्स्नेन तपसा सकललोकसंतापकेन रश्मिनिचयेन सह । अप्रतिबद्धम् उदयतः सूर्यस्य रश्मीनां राक्षसादिकृतन्यूनताकरणाभावाद् विश्वेनेति विशेषितम् ॥ उद्यन्तम् आदित्यम् उपतिष्ठमान आह । मह्यं मदर्थं सपत्नान् शत्रून् रन्धयन् वशं प्रापयन् । उदयन्नेव सपत्नान् मम वशं गमयत्वित्यर्थः । अहं च द्विषते अप्रियं कुर्वते द्वेष्ट्रे मा रधम् तस्य वशो मा भूवम् । हे सूर्य उदयतस्तवानुग्रहाद् इति शेषः ॥ तवेद् विष्णो बहुधा इत्यादेर्मन्त्रशेषस्य व्याख्या पूर्ववद् द्रष्टव्या ॥

यह सूर्यदेव सकल लोकोंको भली प्रकार तपाने वाले अपने पूर्ण किरणजालके साथ मेरे शत्रुओंको मेरे वशमें करते हुए उदय होगए हैं अर्थात् यह उदय होते ही शत्रुओंको मेरे वशमें कर देते हैं । हे सूर्यदेव ! उदय होते हुए आपके अनुग्रहसे मैं द्वेष करने वाले शत्रुके वशमें न होऊँ, हे व्यापक सूर्यदेव आपके अनेक प्रकारके प्रभाव हैं, ऐसे आप हमको सब आकारों वाले पशुओंसे पूर्ण करिये और देहपातके अनन्तर मुझको परमव्योम में स्वधान्नके भक्षण करने योग्य बना कर स्थापित करिये २४

पञ्चमी ॥

आदित्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये ।
अहर्मात्यपीपरो रात्रिं सत्रातिं पारय ॥ २५ ॥

आदित्य । नावम् । आ । अरुक्षः । शतऽअरित्राम् । स्वस्तये ।
अहः । मा । अति । अपीपरः । रात्रिम् । सत्रा । अति । पारय २५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे आदित्य त्वं नावम् रथलक्षणाम् आरुक्षः आरूढोसि आकाशाख्यस्य समुद्रस्य तरणाय। नौर्विशेष्यते। शतारित्राम् उदकाकर्षणसाधनानि काष्ठानि अरित्राणीत्युच्यन्ते। अनेकैर्नौगतिसाधनैरुपेताम्। अत्र ग्रहमण्डलाकर्षका वायव एव अरित्राणि। आरोहणप्रयोजनम् आह। स्वस्तये सर्वेषां प्राणिनां क्षेमाय। अथ स्वाभिमतम् आशास्ते। एवंरूपां नावम् आरूढस्त्वं मा माम् अहरत्यपीपरः अत्यपारयः। आध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिकलक्षणत्रिविधापायपरिहारेण अह्नः पारं प्रापितवान् असि। एवमेव रात्रिमपि सत्रा सहैव अह्ना सह मध्ये व्यवधानम् अकृत्वा माम् अति पारय रात्रेः पारं गमय। अहोरात्रयोः संधौ मरणादिभयशङ्कया आह सत्रेति। अनेन ज्वरशिरोव्यथादिपरिहारेण आयुरभिवृद्धिः प्रार्थिता भवति॥ अथ वा एवं व्याख्येयम्। हे आदित्य नावम् त्वामेव नौरूपम् आरुक्षः आरुक्षम् आरोहम् आरूढश्च त्वया अह्नः पारं प्रापितवान् अस्मीति व्याख्येयम्। यथा नौः स्वस्मिन्नधिष्ठितं यथाभिमतदेशं गमयति एवं नयसीति [त्वं] नौः। ❀ आरुहेर्लुङि "शल इगुपधाद् अनिटः क्सः" इति क्सः ❀। तस्मिन् पक्षे शतारित्राम् इति शतशब्दः अपरिमितवचनः। अपरिमितरश्मिरूपारित्रोपेताम् इत्यर्थः किमर्थम् आरोहणम् इति। स्वस्तये क्षेमाय सर्वोपद्रवराहित्येन चिरकालजीवनाय। स्वस्तिशब्दार्थं विशिनष्टि। अहर्मात्यपीपर इत्यादिना। अहनि रात्रौ च सुखेन अवस्थानमेव क्षेमः। ❀ अपीपर इति। पारयतेर्लुङि चङि रूपम् ❀॥

हे सूर्यदेव! आप आकाशरूपी समुद्रको तरनेके लिये ग्रहमण्डलके आकर्षक वायुरूपी अनेक वल्ली पतवारोंके साथ रथरूपी नौकामें जगत्का कल्याण करनेके लिये चढ़ गए हैं। ऐसी नौका पर विराजमान आप मुझको आध्यात्मिक आधिदैविक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और आधिभौतिक इन तीनों प्रकारके विघ्नोंसे बचा कर दिनके पार उतार चुके हैं, इसी प्रकार दिनके साथ कुछ व्यवधान न रख कर साथ ही साथ रात्रिके भी पार पहुँचा दीजिये [दिन और रात्रिकी संधिमें मरण आदिकी आशङ्का होती है अत एव दिनके साथ ही कहा है। इस मन्त्रसे ज्वर शिरोव्यथा आदिको दूर करते हुए आयुर्वृद्धिकी प्रार्थना की है। अथवा इस प्रकार भी व्याख्या की जा सकती है, कि–हे आदित्य ! मैं नौकारूप आप पर ही आरूढ़ होगया और आरूढ़ होने पर आपने मुझको नौकाकी समान दिनके पार उतार दिया है आपमें वल्लीरूप अनन्त किरणें हैं; मैं सब उपद्रवोंसे रहित रह कर चिरकालतक जीवित रहनेके लिये आप पर आरूढ़ हुआ हूँ आप मुझको दिन के और रातके पार पहुँचा दीजिये] ॥ २५ ॥

षष्ठी ॥

सूर्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये ।
रात्रिं मात्यपीपरोहः सत्राति पारय ॥ २६ ॥

सूर्य । नावम् । आ । अरुक्षः । शतऽअरित्राम् । स्वस्तये ।
रात्रिम् । मा । अति । अपीपरः । अहः । सत्रा । अति । पारय ॥

पूर्ववदेव व्याख्या । अहरित्यस्य स्थाने रात्रिम् इति रात्रिम् इत्यस्य स्थाने अहरिति व्यत्ययमात्रं विशेषः । पूर्वमन्त्रे अहनि सूर्यानुग्रहेण सुखेन जीवनं सिद्धवत्कृत्य रात्रौ तद्विषये संदिहानो रात्रिं सत्राति पारयेति प्रार्थितवान् । अस्मिंस्तु मन्त्रे रात्रौ सूर्यानुग्रहेण रात्रेः पारं प्राप्य प्रबुद्धः सन् आह । हे सूर्य रात्रिं मा अत्यपीपरः रात्रिपारं प्रापितवान् असि । एवमेव अहः अहरपि सत्रा रात्र्या सह तयोर्मध्ये व्यवधानराहित्येन अति पारय । एवं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मन्त्रद्वयेन दिनद्वयेपि सांतत्येन सुखेन जीवनं प्रार्थितं भवति ॥ एवं प्रतिदिनं त्रिषु कालेषु अनेनानुवाकेन सूर्योपस्थानं कुर्वतो माणवकादेः शतसंवत्सरलक्षणं दीर्घम् आयुर्भवति । अतः एवमादिलिङ्गाद् आयुष्कामस्य कालत्रये सूर्योपस्थाने अस्यानुवाकस्य विनियोग उक्तः ॥ आदित्यसूर्ययोः पर्यायत्वं गमयितुम् उत्तरमन्त्रे सूर्य नावम् इति निर्दिष्टम् ॥

हे सूर्यदेव ! आप ग्रहमण्डलाकर्षक अनन्त वायुओंरूप पतवार वाली रथरूपी नौकामें आकाशरूपी समुद्रको तरनेके लिये जगत्का कल्याण करनेकी भावनासे बैठगए हैं। आपने मुझको रात्रिके पार पहुँचा दिया है इसके साथ ही आप मुझको दिनके पार पहुँचाइये [पूर्वमन्त्रमें दिनमें सूर्यके अनुग्रहसे सुखसे जीवनको सिद्धवत् कर के रात्रिमें आशंकासे रातके पार उतारनेकी प्रार्थना की थी और इस मन्त्रमें सूर्यके अनुग्रहसे रात्रिके पार पहुँचकर जागकर प्रार्थना की है, कि—हे सूर्य ! आपने मुझे रात्रिके पार उतार दिया अब दिनके भी पार उतारिये । इस प्रकार दो मन्त्रोंसे दोनों दिनोंमें अनवच्छिन्नरूपसे सुखसे जीवनकी प्रार्थना की । इस प्रकार प्रतिदिन त्रिकालमें आदित्योपस्थान करने वाले माणवक आदिकी सौ वर्ष तककी दीर्घायु होती है । इन ही चिह्नोंसे आयुष्कामके त्रिकालके सूर्योपस्थानमें इस अनुवाकका विनियोग कहा है । आदित्य और सूर्य पर्यायवाची शब्द हैं इस बातको जतानेके लिये पूर्वमन्त्रमें आदित्य और इस मन्त्रमें सूर्य शब्द दिया है]२६

सप्तमी ॥

प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।
जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम् २७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रजाऽपतेः । आऽवृतः । ब्रह्मणा । वर्मणा । अहम् । कश्यपस्य ।

ज्योतिषा । वर्चसा । च ।

जरत्ऽअष्टिः । कृतऽवीर्यः । विऽहायाः । सहस्रऽआयुः । सुऽकृतः ।

चरेयम् ॥ २७ ॥

प्रकाशवृष्ट्यादिना प्रजानां पालनात् प्रजापतिः आदित्यः । अथ वा संवत्सरकालनिर्वाहकत्वात् तस्य च प्रजापतिरूपत्वात् सूर्यः प्रजापतिः । तस्य ब्रह्मणा परिवृढेन रूपेण । कीदृशेन । वर्मणा । वर्म तनुत्रम् तद्वदेण सूर्यस्य तेजोमयेन स्वरूपेण आवृतः वेष्टितः । अथ वा प्रजापतिः प्रजानां स्रष्टा हिरण्यगर्भः । "स त्रेधात्मानं व्यकुरुत । अग्निं तृतीयं वायुं तृतीयम् आदित्यं तृतीयम्" इति [बृ० आ० १. २. ३] श्रुत्या प्रजापतेर्मूर्त्यन्तरभूत आदित्यः । स एव ब्रह्म "असावादित्यो ब्रह्म" इति [तै० आ० २. २. २] श्रुतेः । तदेव ब्रह्म स्वोपासकस्य वर्मवद् आच्छादकत्वाद् वर्म इत्युच्यते । तेन आवृतो वेष्टितोहम् । अथ वा प्रजापतेः आदित्यस्य ब्रह्मणा मन्त्रमयेन वर्मणा । तत्स्वरूपनिरूपकत्वेन संबन्धाद् ब्रह्मणो मन्त्रस्य तदीयत्वम् । तेन परिवृतः । रक्षित इत्यर्थः । किं च कश्यपस्य । "कश्यपः पश्यको भवति यत् सर्वं परिपश्यति" इति [तै० आ० १. ८. ८] श्रुतेः कश्यपः सूर्यस्य मूर्त्यन्तरभूतः । तथा च श्रुत्यन्तरम् । "आरोगो भ्राजः पटरः पतङ्गः । स्वर्णरो ज्योतिषीमान् विभासः । ते अस्मै सर्वे दिवम् आतपन्ति । ते सर्वे कश्यपाज्ज्योतिर्लभन्ते" इति [तै० आ० १. ७. २] । "कश्यपोष्टमः । स महामेरुं न जहाति" इति च [तै० आ० १. ७. १] । तादृशस्य कश्यपस्य प्रकाशमयस्य ज्योतिषा । द्योतत इति ज्योतिः । तेन प्रकाशेन । ❀ द्युत दीप्तौ इत्यस्माद् द्युतेरिसिन् आदेश्च जः [उ० २. १०९] इति इसिन् आदेर्जभा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धश्च ❀। तथा तस्य वर्चसा च ज्योतिरित्यस्य व्याख्यानम् वर्चसेति। वर्चः तमस आवर्जकं तेजः। ❀वर्च दीप्तौ इति धातुः❀। चकारो ब्रह्मणा सह समुच्चयार्थः। अथ वा ज्योतिः स्वरूपप्रकाशः। वर्चो रश्मिप्रकाशः। चशब्दो ज्योतिषा समुच्चयार्थः। ज्योतिषा आवृतो वर्चसा च आवृतोहम् इत्यर्थः। तथा च तैत्तिरीयकम्। "परीवृतो वरीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं तेजसा कश्यपस्य" [तै० आ० २. १९] इति॥ अथ वा एवं व्याख्येयम् कश्यपाद् उदिताः सूर्याः "कश्यपाज्ज्योतिर्लभन्ते" इत्यादिश्रुतेः। कश्यपः इतरेषां सूर्याणां मुख्यः। स एवात्र प्रजापतिशब्देनोच्यते। तस्य ब्रह्मणा वर्मणा आवृतः इत्यस्य व्याख्यानं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा चेति। अस्मिन् पक्षेपि चशब्दः अस्य ज्योतिषा सह समुच्चयार्थः॥ बाह्यापायपरिहाराय वर्मणा आवरणम् आशास्य अथ भोगम् आशास्ते जरदष्टिरित्यादिना। जरदष्टिः। ❀ जरत् इति। जीर्यतेर्भूतकालावच्छिन्नेर्थे अतृन् ❀। जीनः सन्नपि अष्टिः अशनं भोजनं यस्य स जरदष्टिः। अनेन अरोगदृढगात्रः सन् बहुविधान् भोगांश्चिरकालं भुञ्जानो भवेयम् इति प्रार्थना कृता भवति। तथा शतवीर्यः अपरिमितैर्वीर्यैः शारीरैर्बलैर्युक्तः अनेकपुत्राद्युत्पादनसामर्थ्योपेतो वा। विहायाः विविधगमनः। सर्वत्र अप्रतिबद्धगतिरित्यर्थः। ❀ओहाङ् गतौ। वहिहाधाञ्भ्यश्छन्दसि [उ० ४. २२०] इति असुन्। तत्र णिदित्यनुवृत्तेर्णिद्वद्भावाद् "आतो युक् चिण्०" इति युगागमः ❀। तथा सहस्रायुः अपरिमितायुष्यः। सुकृतः सुष्ठु संस्कृतः सर्वसंपूर्णः सन्। अथ वा लौकिकं वैदिकं च यत् कर्तव्यजातम् अस्ति तद् येन सुष्ठु कृतं स सुकृतः। कृतकृत्य इत्यर्थः। तादृशः सन्। यद्वा सुकृतः सुकृतवान् सुकृतं धर्मस्तद्वान् चरेयम् सर्वत्र पृथिव्यां गच्छेयम्। एतत् सर्वम् हे सूर्य तवानुग्रहात् संपादयामीति आशास्ते॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाश वृष्टि आदिसे प्रजाओंका पालन करने वाले प्रजापति आदित्य हैं, अथवा संवत्सरकालनिर्वाहक होनेसे प्रजापतिरूप सूर्य प्रजापति हैं, उनके दृढ़तेजोरूप कवचसे अर्थात् सूर्यके तेजोमय स्वरूपसे आच्छादित हुआ मैं [अथवा–"स त्रेधात्मानं व्यकुरुत । अग्निं तृतीयं वायुं तृतीयं आदित्यं तृतीयम् ।–उन प्रजापतिने अपनेको तीन रूपोंमें विभक्त किया, एक तृतीयभागको अग्नि बनाया, दूसरे तृतीयांशको वायु बनाया और तीसरे तृतीयांशको आदित्य बनाया" (बृहदारण्यक १ । २ । ३) इस श्रुति के अनुसार आदित्य प्रजापतिकी दूसरी मूर्तिरूप है । वही ब्रह्म है, क्योंकि–तैत्तिरीय आरण्यक २ । २ । २ की श्रुतिमें कहा है, कि–"असावादित्यो ब्रह्म ।–यह आदित्य ब्रह्म हैं" वही ब्रह्म अपने उपासकके कवचकी समान आच्छादक होनेसे वर्म (कवच) कहलाते हैं उनसे आवृत मैं, अथवा प्रजापति आदित्यके मन्त्रमय वर्मसे आच्छादित मैं] और तैत्तिरीय आरण्यक १ । ८ । ८ की श्रुतिमें कहा है, कि–"कश्यपः पश्यको भवति यत् सर्वं परिपश्यति । कश्यपका अर्थ द्रष्टा है जो सबको भली भाँति देखते हैं" इस श्रुति के अनुसार कश्यप सूर्यकी एक मूर्ति हैं। दूसरी श्रुतिमें भी कहा है, कि–"आरोगो भ्राजः पटरः पतङ्गः । स्वर्णरो ज्योतिषीमान् विभासः । ते अस्मै सर्वं दिवम् आतपन्ति । ते सर्वं कश्यपाज्ज्योतिर्लभन्ते । –आरोग भ्राज पटर पतङ्ग स्वर्णर ज्योतिषीमान् और विभास ये सब सूर्य इनके लिये द्युलोकको प्रकाशित करते हैं और ये सब कश्यपसे ज्योतिको पाते हैं" "कश्यपोऽष्टमः स महामेरुं न जहाति ।–इनमें कश्यप अष्टम हैं वह महामेरुको नहीं त्यागते हैं" (तैत्तिरीय आरण्यक १ । ७ । १) ऐसे प्रकाशमय कश्यपकी ज्योतिसे और धर्मके तेजसे ढका हुआ मैं वा स्वरूपप्रकाश ज्योतिसे और रश्मिप्रकाश वर्चसे आच्छादित मैं [तैत्ति-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रीय आरण्यक २ । १९ में कहा है, कि "परीवृतो वरीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं तेजसा कश्यपस्य ।-मैं कश्यप नामक सूर्यके मन्त्रात्मक कवचसे आच्छादित हूँ" इस प्रकार बाहरी विघ्नोंको दूर करनेके लिये कवचसे आवरण करनेकी प्रार्थना करके अब भोगकी प्रार्थना करते हैं, कि-] मैं जीर्ण होने पर भी रोगरहित दृढ़ अङ्गोंवाला रहता हुआ चिरकाल तक अनेक प्रकारके भोगोंको भोगता रहूँ अपरिमित शारीरिक बलोंसे सम्पन्न रहूँ वा बहुतसे पुत्रोंको उत्पन्न करनेकी शक्तिसे सम्पन्न रहूँ, मेरी गति कहीं न रुके, अपरिमित आयुको पाऊँ, लौकिक वैदिक सकल अनुष्ठानोंको भली प्रकार करके कृतकृत्य होऊँ, हे सूर्य ! इन सबको मैं आप के प्रसादसे प्राप्त करूँ यह मेरी प्रार्थना है ॥ २७ ॥

अष्टमी ॥

परीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च
मा मा प्रापन्निषवो दैव्या या मा मानुषीरवसृष्टा वधाय

परिऽवृतः । ब्रह्मणा । वर्मणा । अहम् । कश्यपस्य । ज्योतिषा ।
वर्चसा । च ।

मा । मा । प्र । आपन् । इषवः । दैव्याः । याः । मा । मानुषीः ।
अवऽसृष्टाः । वधाय ॥ २८ ॥

परीवृत इत्यादि वर्चसा च इत्यन्तं पूर्ववद् व्याख्येयम् । यतोहं ब्रह्मणा वर्मणा ज्योतिषा वर्चसा च परीवृतः अतो दैव्याः देवप्रेरिताः । ❀ "देवाद् यञञौ" इति प्राग्दीव्यतीयो यञ् प्रत्ययः ❀ । या इषवः बाणाः सन्ति ता मा मां मा प्रापन् । इषवो विशेष्यन्ते । वधाय मम हननाय अवसृष्टाः प्रेरिताः मा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रापन् । मा प्राप्नुयुः । एवं मानुषीः मानुष्यः मनुष्यैर्वधाय प्रेषिता अपि इषवो मा मां प्रापन् ॥

मैं "कश्यपाज्ज्योतिर्लभन्ते ।—कश्यपसूर्यसे अन्य सूर्य ज्योति को पाते हैं" इस श्रुतिके अनुसार मुख्य सूर्य कश्यपके मन्त्ररूप कवचसे तथा उनके स्वरूपप्रकाश और रश्मिप्रकाशसे रक्षित रहूँ अतएव मेरे वधके लिये छोड़े हुए देवताओंके बाण और मनुष्यों के बाण मुझ तक न पहुँच सकें ॥ २८ ॥

नवमी ॥

ऋतेन गुप्त ऋतुभिश्च सर्वैर्भूतेन गुप्तो भव्येन चाहम्
मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युरन्तर्दधेहं सलिलेन
वाचः ॥ २९ ॥

ऋतेन । गुप्तः । ऋतुऽभिः । च । सर्वैः । भूतेन । गुप्तः । भव्येन । च । अहम् ।

मा । मा । प्र । आपत् । पाप्मा । मा । उत । मृत्युः । अन्तः । दधे । अहम् । सलिलेन । वाचः ॥ २९ ॥

अहम् ऋतेन । ऋतम् यथार्थम् । सत्यम् इत्यर्थः । तेन गुप्तः रक्षितः । अथ वा ऋतं ब्रह्म आदित्याख्यम् तेन गुप्तः । तथा सर्वैः ऋतुभिः वसन्ताद्यैश्च रक्षितः । तथा भूतेन पूर्वकालम् उत्पन्नेन पदार्थजातेन गुप्तः । एवं भव्येन उत्पत्स्यमानेन च पदार्थजातेन गुप्तो रक्षितः । यत एवम् अतो हेतोः पाप्मा पापं नरकहेतुभूतं मा मां मा प्रापत् मा प्राप्नुयात् । उत अपि च मृत्युः मरणकर्ता देवोपि मा प्रापत् । अहं तु वाचो मन्त्रात्मिकायाः सलिलेन उदकेन रक्षाकामः अन्तर्दधे अन्तर्धानं करोमि । यथा लोके सलि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेनान्तर्हितः प्राणी न केनापि दृश्यते एवम् अहं मन्त्रमयेन सलिलेन पापादिबाधराहित्याय आत्मानं गोपयामीत्यर्थः ॥

मैं सत्यसे रक्षित रहूँ—आदित्यात्मक ब्रह्मसे रक्षित रहूँ, बसन्त आदि सब ऋतुओंसे रक्षित रहूँ, पूर्वकालमें उत्पन्न हुए सकल पदार्थोंसे रक्षित रहूँ और उत्पन्न होने वाले संपूर्ण पदार्थोंसे रक्षित रहूँ अत एव नरकका कारण पाप मुझको प्राप्त न होवे, और मरणकर्ता देव मृत्यु भी मुझको प्राप्त न होवें, मैं अपनेको मन्त्ररूपा वाणीके जलसे अन्तर्धान करता हूँ अत एव जैसे लोकमें जलमें छिपे हुए प्राणीको कोई नहीं देख पाता, इसी प्रकार पाप आदि की बाधासे रहित रहनेके लिये मैं मन्त्रमय जलसे अपनेको रक्षित करता हूँ ॥ २९ ॥

दशमी ॥

अग्निर्मा गोप्ता परि पातु विश्वत उद्यन्त्सूर्यो नुदतां मृत्युपाशान् ।
व्युच्छन्तीरुषसः पर्वता ध्रुवाः सहस्रं प्राणा मय्या यतन्ताम् ॥ ३० ॥

अग्निः । मा । गोप्ता । परि । पातु । विश्वतः । उत्ऽयन् । सूर्यः । नुदताम् । मृत्युऽपाशान् ।
विऽउच्छन्तीः । उषसः । पर्वताः । ध्रुवाः । सहस्रम् । प्राणाः । मयि । आ । यतन्ताम् ॥ ३० ॥

अग्निः अङ्गनादिविशिष्टो देवो गोप्ता स्वाश्रितरक्षकः अथवा मम भयेभ्यो गोप्ता सन् विश्वतः सर्वतः यतोयतो भयं भवति तेभ्यः सर्वेभ्योपि मा परि पातु परितो रक्षतु । तथा सूर्यो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवः उद्यन् उदयसमय एव मृत्युपाशान् मृत्योर्मारकस्य देवस्य ये पाशाः सर्पाग्निव्याघ्रकण्टकादिरूपा विततताः सन्ति तान् सर्वान् नुदताम् अपसारयतु । यथा ते मां न स्पृशन्ति तथा करोतु । अत्र उद्यन्सूर्यो नुदताम् इत्यभिधानात् अग्निर्मा गोप्ता परि पात्विति अग्निविषयपरिपालनप्रार्थना उदयात्पूर्वकालीनरात्रिविषया वेदितव्या । तथा व्युच्छन्तीः व्युच्छन्त्यः । ❀ उच्छी विवासे । विवासो वर्जनम् ❀ । नैशस्य तमसो निवारयित्र्य उषसः उषोदेवता उदयात् पूर्वकालाभिमानिन्यः । ❀ दिवसानां बाहुल्यम् अपेक्ष्य उषस इति बहुवचननिर्देशः ❀ । तथा ध्रुवाः निश्चलाः स्थिराः पर्वताः पर्ववन्तः शैला हिमवदादयश्च । मृत्युपाशान् नुदन्ताम् इति योज्यम् । माम् अनुगृह्णन्त्विति वा शेषोध्याहर्तव्यः । तेषाम् अग्न्यादीनाम् अनुग्रहात् सहस्रं प्राणाः । सहस्रम् इति अपरिमितनाम । प्राणस्य व्यापारभेदेन आनन्त्याद् अपरिमितत्वम् । ते मयि आयुष्कामे आ सर्वतो यतन्ताम् चेष्टां कुर्वन्तु । अथ वा प्राणसंवादश्रुतिषु इन्द्रियाणामपि प्राणशब्दव्यवहार्यत्वश्रवणात् "सप्त प्राणाः प्रभवन्ति" [तै० आ० १०.१०.१] "नव वै प्राणा नाभिर्दशमी" [तै० ब्रा० १. ३. ७. ४] इत्यादौ च चक्षुरादीन्द्रियाणामपि प्राणशब्दव्यवहारात् तेषामपि स्थैर्यस्य मुख्यप्राणवदेव आशास्यत्वात् तद्व्यापारबाहुल्यमपि अपेक्ष्य सहस्रं प्राणा मय्या यतन्ताम् इत्युक्तम् ॥

श्रीमद्राजाधिराजराज–परमेश्वर–श्रीवीरहरिहरमहाराजसाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण विरचिते अथर्ववेदार्थप्रकाशे सप्तदशकाण्डं समाप्तम् ॥

अग्निदेव अपने आश्रितकी रक्षा करने वाले हैं, वह जहाँ २ से भय प्राप्त होनेकी आशंका हो तहाँ चारों ओरसे मेरी रक्षा करें, और सूर्यदेव उदय होते समय ही मारक मृत्युदेवके सर्प अग्नि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्याघ्र कण्टक आदि फैले हुए पाशोंको दूर करदें [यहाँ उदय होते समय विशेषण होनेसे अग्निकी प्रार्थना उदयसे पहिले समय रात्रिकी समझनी चाहिये] रात्रिके अन्धकारको दूर करनेवाली उदयसे पूर्व, समयकी अभिमानिनी देवता उषा देवता, निश्चल हिमवान् आदि पर्वत मृत्युके पाशोंको दूर करें वा मुझ पर अनुग्रह करें, इन अग्नि आदिके अनुग्रहसे प्राण सहस्रों वार व्यापार करता हुआ मुझ आयुष्काममें चेष्टा करता रहे। अथवा-[प्राण-सम्वाद श्रुतियोंमें इन्द्रियोंका भी प्राण शब्दसे व्यवहार किया है, यथा-"सप्त प्राणाः प्रभवन्ति।-सात प्राण प्रकट होते हैं" (तैत्तिरीय आरण्यक १०।१०।१) और "नव वै प्राणा नाभिर्दशमी। प्राण नौ हैं नाभि दशमी है" (तैत्तिरीयब्राह्मण १।३।७।४) इत्यादिमें चक्षु आदि इन्द्रियोंका प्राण शब्दसे उल्लेख किया है और उनकी स्थिरताकी भी मुख्य प्राणकी समान ही आवश्यकता है अत एव उनके सहस्रों व्यापारोंको लक्ष्यमें रख कर कहा है, कि वे] इन्द्रियें सहस्रों वार मुझमें चेष्टा करती रहें ३०

तृतीय सूक्त समाप्त

प्रथम अनुवाक समाप्त (५४०)

इति श्रीअथर्ववेदसंहिताका सप्तदशकाण्ड ऋषिकुमार

प० रामस्वरूपशर्मात्मज सनातनधर्मपताका

संपादक ऋ० कु० प० रामचन्द्रशर्माकृत

भाषानुवादसहित

समाप्त.

इति सप्तदशं काण्डं समाप्तम् ॥

—*—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

❀ श्रीहरिः ❀

अथर्ववेदसंहिता

अष्टादशं-काण्डम्

सायणभाष्य तथा अनुवादसहित

यस्य निश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तम् अहं वन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम् ॥

वेद जिनके निःश्वासरूप हैं और जिन्होंने वेदोंके अनुसार सकल जगत्की सृष्टि की है, मैं उन विद्यातीर्थ महेश्वरको प्रणाम करता हूँ ॥

"ओ चित् सखायम्" इति अष्टादशकाण्डे चत्वारोऽनुवाकाः। तत् काण्डं सकलं पितृमेधे शवदाहे अग्निप्रदानानन्तरं सप्तनवैकादशादिविषमसंख्याका ब्राह्मणा पूर्वाभिमुखोपविष्टा जपेयुः ॥

तत्रैव कर्मणि सारस्वतहोमानन्तरं सर्वे बान्धवा अनेन काण्डेन सकलेन प्रेतम् उपतिष्ठेरन्। तथा च कौशिकेन सूत्रितम्। ["सर्वैरुपतिष्ठन्ति" इति। कौ० ११. २]

तत्र प्रथमेनुवाके षट् सूक्तानि। आदितश्चतुर्णां सूक्तानां काण्डप्रयुक्त एव विनियोगः। तेषु प्रथमेन सूक्तेन द्वितीये च सूक्ते "अधा कृणुष्व संविदं सुभद्राम्" इत्यन्तेन च वैवस्वतयोर्यमयम्योः संभोगार्थः संवादः प्रतिपादितः। तत्र यमी मिथुनार्थं स्वभ्रातरं यमं बहुप्रकारं प्रार्थितवती। स च स्वभगिनीगमनस्य अत्यन्तम् अनुचित्वाद् नानाविधाभिर्युक्तिभिस्तां प्रत्याचख्यौ। तयोर्यम-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यम्योः सरण्यां विवस्वतः सकाशाद् युगलभावेनोत्पत्तिः उपरिष्टात् "त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति" [५३] इत्याख्यायिकया प्रपञ्चयिष्यते ॥

"ओ चित् सखायम्" इस अष्टादश काण्डमें चार अनुवाक हैं। इस सारे कांडका पितृमेधके शवदाहमें अग्निप्रदानके अनन्तर सात नौ ग्यारह आदि विषम संख्याके ब्राह्मण पूर्वकी ओर मुख कर बैठ कर जप करें।

तहाँ ही कर्ममें सारस्वत होमके अनन्तर सब बांधव इस पूर्ण काण्डसे प्रेतके समीप बैठें। इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि- "सर्वैरुपतिष्ठन्ति" (कौशिकसूत्र ११ । २) ॥

इसके प्रथम अनुवाकमें छः सूक्त हैं। आरम्भसे चार सूक्तोंका काण्डप्रयुक्त विनियोग होता है। इनमें प्रथम सूक्तसे और दूसरे सूक्तमें "अधा कृणुष्व सम्विदं सुभद्राम्" मन्त्र तक विवस्वान्की सन्तान यम और यमीके संभोगार्थ सम्वादका वर्णन किया गया है। इनमें यमीने मिथुनभावके लिये अपने भ्राता यमसे अनेक प्रकारसे प्रार्थना की है। और उसने स्वभगिनीगमनके अत्यन्त अनुचित होनेसे अनेक प्रकारकी युक्तियोंसे उससे निषेध किया है उन यम यमीकी सरण्युमें विवस्वान्से युगुलभावमें उत्पत्ति "त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति" (५३) से कही जावेगी।

तत्र प्रथममूक्ते प्रथमा ॥

ओ चित् सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वान्।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः १

ओ इति। चित्। सखायम्। सख्या। ववृत्याम्। तिरः। पुरु। चित्। अर्णवम्। जगन्वान्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पितुः । नपातम् । आ । दधीत । वेधाः । अधि । क्षमि । प्रतरम् । दीध्यानः ॥ १ ॥

इदं यम्या वचनम् । अहं सखायम् समानख्यानं यमम् । यैव विवस्वत्पुत्रलक्षणा ख्यातिर्यमस्य सैव यम्या अपीति ख्यातेः समानत्वात् सखित्वं यमस्य । अथ वा गर्भवासप्रभृति युगलत्वेन अवस्थानात् सखित्वम् । तादृशं यमं सख्या सखित्वेन संभोगविषयैकमनस्कत्वलक्षणेन निमित्तेन ओ चित् । चिदिति पूरणः । आ उ इति निपातद्वयसमुदायात्मकम् ओ इत्येकं पदम् । आ वृत्याम् आवर्तयामि । अस्मदनुकूलं करोमीत्यर्थः । अथ वा स्वमनीषितस्य अविहितरूपत्वात् लज्जया स्वयं तम् आवर्तयितुम् अशक्नुवाना ब्रूते सख्या आह्वानोपायभूतया आ वृत्याम् इति । इदानीं संभोगोचितान्तर्हितप्रदेशप्रदर्शनपूर्वकं तत्संभोगम् आशास्ते तिरः पुरू विद्व इत्यादिना । तिरस्तिरोहितं पुरु विस्तीर्णम् अर्णवम् मेघं समुद्रं वा जगन्वान् गच्छन् । अत्र समुद्रशब्देन तन्मध्यवर्ती द्वीपो वा लक्षयितव्यः । संभोगस्य अन्तर्हितदेशाभावेन यमः प्रतिपेत्स्यतीति बुद्ध्या एवम् आह । एवं लब्धाभिमतप्रदेशो यमः पितुर्विवस्वतो नपातम् नप्तारं पौत्रं यम्याम् उत्पन्नः पुत्रस्तत्पितुर्विवस्वतो नप्ता भवति । अथ वा नपातम् न पातयितारं कुलस्य प्रवर्तकम् इत्यर्थः । तादृशं पुत्रं वेधाः विधाता पुत्रस्य उत्पादको यमो मयि आ दधीत गर्भं किम् आदध्यात् । गर्भम् आधातुं भ्रात्रैव भाव्यम् इति को निर्बन्ध इत्याशङ्क्य तस्यातिशयम् आह अधि क्षमीति । ❀ अधिः सप्तम्यर्थानुवादी ❀ । क्षमायाम् इत्यर्थः । प्रतरम् प्रकृष्टतरं दीध्यानः दीप्यमानः । न केवलं स्वकीय एव लोके तस्य प्रकाशः किं तु भूमावपि अतिशयितप्रकाश इत्यर्थः । सर्वप्राणिसंहाराधिकारावस्थितत्वाद् भूलोके तस्य ख्यातिः सर्व-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राणिप्रसिद्धां । यद्वा दीध्यानः मयि गर्भम् आधातुम् उपायं ध्यायन्निति व्याख्येयम् । ❀ ववृत्याम् इति । वृतु वर्तने । अस्मात् लिङ् । व्यत्ययेन परस्मैपदम् । "बहुलं छन्दसि" इति शपः श्लुः । यद्वा अस्माद् यङ्लुगन्तात् लिङि "चर्करीतं पदम् अदादिवच्च द्रष्टव्यम्" इति परस्मैपदम् । जगन्वान् । गमेर्लिटः क्वसुः । "विभाषा गमहनविदविशाम्" इति इटो विकल्पितत्वाद् अत्र इडभावः । "म्वोश्च" इति मकारस्य नत्वम् ❀ ॥

[यह यमीका वाक्य है] मैं समान ख्याति वाले सखा † यम को [संभोगविषयैकमनस्कत्वरूप] सखिभावसे अपने अनुकूल करती हूँ [अथवा-अपने मनोरथके अविहित होनेसे लज्जासे स्वयं उसको न कह सकती हुई आह्वानके उपायरूप मित्र शब्द का उच्चारण करती हूँ, अब संभोगोचित अन्तर्हित प्रदेशको दिखाती हूँ] कि-तिरोहित विस्तीर्ण समुद्रतटवर्ती द्वीपमें जाते हुए यम पिताका पतन करने वाले पुत्रको मुझमें स्थापित करें आपकी ख्याति अपने ही लोकमें नहीं है, किन्तु सर्वप्राणिसंहारकके अधिकार पर स्थित होनेसे भूमि पर भी है अत एव आप प्रकृष्टरूपसे दमकते रहते हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

न ते सखा सख्यं वष्ट्येतत् सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति ।
महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परि ख्यन् ॥ २ ॥

† विवस्वानके पुत्ररूपमें जो प्रसिद्धि यमकी है वही विवस्वत्पुत्री होनेसे यमीकी है । अथवा गर्भवास आदिमें युगलरूपसे अवस्थान के कारण सखित्व है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न । ते । सखा । सख्यम् । वष्टि । एतत् । सऽलक्ष्मा । यत् ।

विषुऽरूपा । भवाति ।

महः । पुत्रासः । असुरस्य । वीराः । दिवः । धर्तारः । उर्विया ।

परि । ख्यन् ॥ २ ॥

इदं यमस्य वाक्यम् । ते सखा त्वया सह समानोदरोत्पन्नत्वेन सखिभूतो यमः एतत् उक्तलक्षणं भ्रातृस्वस्रोः संभोगात्मकं सख्यं न वष्टि न कामयते । सख्यं कुतो वा न कामयत इति तत्र कारणम् आह । यत् यस्मात् सलक्ष्मा समानम् एकमेव लक्ष्म एकोदरत्वलक्षणं यस्याः सा तथोक्ता सहजा सती विषुरूपा स्वसृरूपं परित्यज्य भार्यात्वलक्षणरूपवती भवाति भवेत् अतो न वष्टीति संबन्धः । यद्वा वाक्यद्वयम् । यत् यतः सलक्ष्मा अतो न सख्यं वष्टि । लोके विषुरूपैव भवाति भवति । भार्येति शेषः । यत एवम् अत इति पूर्वत्र संबन्धः । न केवलं मम कामनाभावः किं तु देवा अपि निराकरिष्यन्तीत्याह महस्पुत्रास इत्यादिना । महः महतो महत्त्वोपेतस्य असुरस्य प्रकृष्टासोर्बलवतो रुद्रस्य पुत्रासः पुत्रा मरुतः । ते विशेष्यन्ते । वीराः विविधम् ईरयन्ति प्रेरयन्ति शत्रून् इति वीराः विक्रमवन्तः । दिवः द्युलोकस्य धर्तारः धारकाः पालकाः उर्विया उरवो महान्तो व्याप्ताः ते परि ख्यन् परिवदन्ति । निराकरिष्यन्तीत्यर्थः । ❀ ख्याप्र कथने । "अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योङ्" इति च्लेः अङ् आदेशः ❀ ॥

[यह यमका वाक्य है, कि–] मैं समान उदरसे उत्पन्न होने के कारण तेरा मित्र हूँ परन्तु यह मित्र भाई बहिनके संभोगात्मक मित्रभावकी कामना नहीं करता है, उसका कारण यह है, कि–तू एक उदर रूप समान लक्षण वाली होकर भार्यात्व लक्षणवाली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बनना चाहती है अतः मैं ऐसे मित्रभावकी कामना नहीं करता, [अब यह कहना है, कि-मैं ही केवल कामना नहीं करता हूँ यह बात नहीं है, किन्तु देवता भी इस बातकी निंदा करेंगे] महत्त्व-गुण युक्त प्रकृष्ट प्राणबली रुद्रके पुत्र कि-जो अनेक प्रकारसे शत्रुओंको खदेड़ते हैं द्युलोकको धारण करते वे पालक महान् मरुत् भी इस बातकी निन्दा करेंगे ॥ २ ॥

तृतीया ॥

उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित्त्यजसं मर्त्यस्य
नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्वं१मा
विविश्याः ॥ ३ ॥

उशन्ति । घ । ते । अमृतासः । एतत् । एकस्य । चित् । त्यजसम् । मर्त्यस्य ।

नि । ते । मनः । मनसि । धायि । अस्मे इति । जन्युः । पतिः । तन्वम् । आ । विविश्याः ॥ ३ ॥

इदं यमीवचनम् । हे यत रुद्ररूपुत्रा निराकरिष्यन्तीति मा वादीः । किं तु ते अमृतासः अमृता देवा मरुतः एतत् मया प्रार्थ्यमानं कर्म उशन्ति घ । घेति प्रसिद्धौ । कामयन्त एव । एतच्छब्दार्थम् आह । एकस्य असाधारणस्य मर्त्यस्य मनुष्यस्य पुत्रस्य त्यजसम् त्यागं गर्भान्निर्गमनम् उत्पत्तिम् उशन्तीति संबन्धः । यत एवम् अतस्ते मनः अस्मे अस्माकं मनसि नि धायि निधीयताम् । आवयोर्मनः एकमेवास्त्वित्यर्थः । अनन्तरं जन्युः अपत्यस्य जनयिता त्वं पतिः । भूत्वेति शेषः । भ्रातृभावं परित्यज्य पतिः सन् तन्वम् तनूं मामकीनाम् आ विविश्याः आविश प्रविश । यद्वा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तव तनूं मयि आवेशय। संभोगं कुर्वित्यर्थः। ❀ विश प्रवेशने। लिङि "बहुलं छन्दसि" इति शपः श्लुः ❀ ॥

[यह यमीका वचन है, कि–हे यम! रुद्रके पुत्र निन्दा करेंगे यह मत कहो क्योंकि-] वे अमृत देवता मरुत् मेरे प्रार्थित इस कर्मकी कामना करते हैं अर्थात् वे असाधारण मर्त्यके त्यागकी–गर्भसे उत्पत्तिकी–कामना करते हैं, अत एव आप अपने मनको मुझमें स्थापित करिये। अर्थात् हमारा मन एक होजावे। तदनन्तर आप सन्तानके उत्पादक पति बन कर भ्रातृभावको त्याग कर मेरे शरीरमें प्रवेश करिये अर्थात् संभोग करिये ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

न यत् पुरा चकृमा कद्ध नूनमृतं वदन्तो अनृतं रपेम।
गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नो नाभिः परमं जामि तन्नौ ॥ ४ ॥

न। यत्। पुरा। चकृम। कत्। ह। नूनम्। ऋतम्। वदन्तः। अनृतम्। रपेम।

गन्धर्वः। अप्ऽसु। अप्या। च। योषा। सा। नौ। नाभिः। परमम्। जामि। तत्। नौ ॥ ४ ॥

इदं यमस्य वाक्यम्। यत् यस्मात् कारणात् पुरा इतः पूर्वस्मिन् काले न चकृम एतादृशं कर्म भगिनीसंभोगलक्षणं न चकृम न कृतवन्तः स्मः अतः कद्ध कस्मात् खलु कारणात् नूनं निश्चयम्। किमर्थं करिष्याम इति शेषः। तदेव प्रकारान्तरेणाह। ऋतम् सत्यं यथार्थं वदन्तः ब्रुवाणा वयम् अनृतम् असत्यम् अयथार्थं कथं रपेम स्पष्टं ब्रूमः। "यद्धि मनसा ध्यायति तद्वाचा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वदति तत् कर्मणा करोति" इति [तै० सं० ६. १. ७. ४] श्रुतेः असत्याभिधाने अङ्गीकृते पश्चात् तदाचरणमपि भवेदेवेति बुद्ध्या असत्यवदनमपि न कुर्म इति प्रतिज्ञाया अभिप्रायः । अथ वा संभोगो मास्तु तद्विषयं शृङ्गारकवचनं वा कर्तव्यम् इत्याशङ्क्य तदपि निराक्रियते ऋतम् इत्यादिना॥ उक्तनिषेधसिद्धये निषिध्यमानस्यार्थस्य प्रतिकूलताम् आह गन्धर्व इत्यादिना । गाम् उदकं धारयतीति गन्धर्वः आदित्यः अप्सु । अन्तरिक्षनामैतत् । अनाश्रये स्थाने अस्य शब्दस्य व्यवहारः । अन्तरिक्षे । साक्षित्वेन वर्तत इति शेषः । तथा अप्या [अन्तरिक्षस्था सा प्रसिद्धा योषा] च आदित्यभार्या च अन्तरिक्षे वर्तते । सा भार्या नौ आवयोः नाभिः उत्पत्तिस्थानम् उभयोरपि तत एवोत्पत्तेः । तत् मिथुनं परमं निरतिशयं नौ आवयोः जामि बन्धुभूतम् । अत्र भार्याया नाभित्वेभिहिते तत्पतिर्वित्स्वानपि उक्त एव अतस्तस्य पुनरभिधानं न । यद्वा मातुरुदरादेव गर्भनिर्गमात् सा नौ नाभिरिति तस्या एवाभिधानम् । इतरेषां बन्धुत्वस्य मातापितृसंबन्धलब्धपेक्षत्वात् तयोर्बन्धुत्वस्य परमत्वम् । यतः पितरावभिन्नौ तौ च संनिहितौ अतस्त्वदभीष्टं न कार्यम् इति तात्पर्यम् ॥

[यह यमका वाक्य है, कि-] जिस भगिनीसंभोगरूप कर्मको हमने पहिले नहीं किया है तो अब किस कारणसे उसको करें [इसी बातको दूसरी रीतिसे कहते हैं, कि-] हम सत्य बोलने वाले हैं तो फिर अयथार्थ बातको किस प्रकार स्पष्टरूपसे कहें। तात्पर्य यह है, कि-"यद्धि मनसा ध्यायति तद् वाचा वदति तत् कर्मणा करोति ।-जिस बातका मनसे चिंतवन करता है, उसी को वाणीसे कहता है और उसीको कर्मरूपमें करता है" (तैत्तिरीयसंहिता ६ । १ । ७ । ४) की श्रुतिके अनुसार असत्य बात के अङ्गीकार करने पर उसका आचरण भी हो सकता है अतः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हम वाणीसे भी इस बातको नहीं कह सकते । और एक बात है, कि–जलको धारण करने वाले सूर्यदेव अन्तरिक्षमें साक्षीरूप में विराजमान हैं और आदित्यकी भार्या भी अन्तरिक्षमें है वह हम दोनोंका उत्पत्ति स्थान है और वे हमारे परमबन्धु हैं अत एव अभिन्न माता पिता वाले होनेके कारण और माता पिताके सामने होनेसे तेरा अभीष्ट सिद्ध नहीं होसकता ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

गर्भे नु नौ जनिता दंपती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः ।
नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः ॥ ५ ॥

गर्भे । नु । नौ । जनिता । दंपती इति दम्ऽपती । कः । देवः ।
त्वष्टा । सविता । विश्वऽरूपः ।
नकिः । अस्य । प्र । मिनन्ति । व्रतानि । वेद । नौ । अस्य ।
पृथिवी । उत । द्यौः ॥ ५ ॥

यस्या वचनम् इदम् । एवम् एकयोनिजत्वेन दांपत्ये निराकृतेपि तत् पूर्वमेव सिद्धम् इत्याह । नौ आवां गर्भे नु गर्भ एव जनिता जनयिता अपत्यस्य स्रष्टा देवः दंपती दांपत्यवन्तौ कः अकः कृतवान् ।❀ करोतेर्लुङि "मन्त्रे घस०" इत्यादिना च्लेर्लुक् ❀ । क इति आकाङ्क्षायाम् आह । त्वष्टा मातुदरुरस्थितस्य रेतसः अवयवसंनिवेशकर्ता विश्वकर्मा देवः सविता प्रसविता सर्वस्य अनुज्ञाता विश्वरूपः विश्वं रूप्यते येन सः विश्वस्रष्टा विश्वात्मको वा । एवंमहानुभावो देवः । दंपती करिति पूर्वत्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संबन्धः। यस्माद् उक्तमहिमोपेतः अतः अस्य त्वष्टुः सवितुः व्रतानि तत्कृतानि कर्माणि नकिः न मिनन्ति न हिंसन्ति न केपि अतिक्रामन्ति। ❀ मीञ् हिंसायाम्। "प्वादीनां ह्रस्वः" इति ह्रस्वः। "श्नाभ्यस्तयोरातः" इति आकारलोपः। ❀ एतत् सर्वं स्वकार्यार्थं कल्पितम् इति आशङ्कायाम् आह वेद नौ इति। नौ आवयोः अस्य। ❀ कर्मणि षष्ठी ❀। इदं कर्म गर्भ एव दंपतित्वलक्षणम्। यद्वा अस्य त्वष्टुर्देवस्य कर्म दंपतिकरणलक्षणं कर्म। पृथिवी देवी उत अपि च द्यौर्देवता वेद उभे अपि जानीतः। तस्माद् एतद् यथार्थम् इत्यर्थः॥

[यह यमीका वचन है, कि-इस प्रकार एकयोनिज होनेके कारण दाम्पत्यके निराकृत होने पर भी वह पहिलेसे ही बना हुआ है यथा-] अपत्यकी सृष्टि करने वाले देवने गर्भमें ही हम दोनोंको दाम्पत्यसम्बन्ध वाला कर दिया है, और माताके उदर में स्थित वीर्यको अवयवरूपमें बनाने वाले विश्वकर्मा सर्वप्रेरक त्वष्टा देवताने भी हमको दाम्पत्यबन्धनमें बाँध दिया है, ऐसे देवके किये हुए कर्मोंको कौन मेट सकता है [इस सबकी तू अपने कार्यकी सिद्धिके लिये कल्पना कर रही है, इस आशंकासे कहती है, कि-] हमारे इस त्वष्टादेवके गर्भमें ही दम्पतिकरणरूप कर्मको पृथिवी देवी और द्यौ देवता ये दोनों जानते हैं अत एव यह यथार्थ है॥ ५॥

षष्ठी॥

को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून्।
आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत् स जीवात्॥ ६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कः । अद्य । युङ्क्ते । धुरि । गाः । ऋतस्य । शिमीवतः । भामिनः ।
दुःऽहृणायून् ।

आसन्ऽइषून् । हृत्सुऽअसः । मयःऽभून् । यः । एषाम् । भृत्याम् ।
ऋणधत् । सः । जीवात् ॥ ६ ॥

इदं यमस्य वाक्यम् । यस्या असत्यमेवोक्तम् इत्यभिप्रेत्य सत्याभिधानस्य दुर्लभताम् आह । अद्य इदानीम् अस्मिन् काले ऋतस्य सत्यस्य धुरि वहनव्यापारे गाः बलीवर्दस्थानीया वाचः स्वीयाः को युङ्क्ते को योजयति । न कोपीत्यर्थः । गोशब्दस्य लिङ्गद्वयसाधारणत्वाद् उत्तरत्र गोविशेषणानि सर्वाण्यपि पुंलिङ्गतया निर्दिष्टानि । शिमीवतः । शमीति कर्मनाम । छान्दसम् इत्त्वम् । कर्मवतः कार्यपर्यवसायिनः । केवलायाः सत्योक्तेः सुलभत्वात् । भामिनः तेजस्विनः लोके सत्यवादा एव जयन्ति "सत्यमेव जयति नानृतम्" इत्यादिश्रुतेः [मु० ३. १. ६] । दुर्हृणायून् । ❀ हृणीयतिः क्रोधकर्मा ❀ । क्रोधरहितान् इत्यर्थः । यद्वा लज्जारहितान् न हि सत्यवदनविषये क्रोधलज्जे स्तः । ❀ हृणीङ् । लज्जायाम् कण्ड्वादित्वाद् यक् । अस्माद् उण् प्रत्ययः । अतो लोपे सति वर्णव्यापत्त्या आकारः । मृगय्वादिर्वा द्रष्टव्यः ❀ । आसन्निषून् आसन् आस्ये इष्यमाणान् तस्मात् प्रेर्यमाणान् सर्वदा सत्यविषयसंकल्पवतोपि मुखतः सत्यं वक्तुम् अशक्यम् इत्यभिप्रायेण एवम् उच्यते । ❀ "पद्दन्०" इत्यादिना आस्यशब्दस्य आसन् आदेशः । इष गतौ इत्यस्मात् इषेः किच्च [उ० १. १३] इति उप्रत्ययः । स च कित् ❀ । हृत्स्वसः हृदयेषु हृदयेभ्यः अस्यमानान् श्रोतॄणां हृदयेषु क्षिप्यमाणान् वा कण्ठाद् उपरि निर्गच्छन्तः शब्दाः संमता लोके हृदयपूर्वकास्तु दुर्लभा इत्यभिप्रायेण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हृत्स्वस इत्युक्तम् । ❀ असेर्व्यत्ययेन कर्मणि क्विप् "तत्पुरुषे कृति बहुलम्" इति सप्तम्या अलुक् ❀ । मयोभून् । मय इति सुखनाम । सुखस्य भावयितृन् सत्याभिर्वाग्भिः सुखं सर्वेषां भवति असत्याभिस्तु असुखं भवतीति लोके सुप्रसिद्धम् एतत् । यः पुरुषो महान् एषाम् उक्तविशेषणयुक्तानां गवां भृत्याम् भृतिं भरणम् । ❀ "भृञोऽसंज्ञायाम्" इति क्यप् । तुगागमः ❀ । ऋणधत् वर्धयेत् । सत्यवचनम् अभिवृद्धं कुर्यात् । ❀ ऋधु वृद्धौ । अस्मात् लेटि अडागमः ❀ । स जीवात् चिरकालं जीवति सत्याभिधानस्य माहात्म्यात् । ❀ जीवात् । लेटि आडागमः ❀ ॥

[यह यमका वाक्य है, यमीने असत्य ही कहा है, इस बातको लक्ष्यमें रखकर उन्होंने सत्य भाषणकी दुर्लभताका वर्णन किया है, कि-] आज कल सत्यके बोझमें अपनी वाणीरूप बैलोंको कौन लगाता है अर्थात् कोई भी सत्य नहीं बोलता है । [कार्यको पूर्ण करने वाले] कर्मवान्, ["सत्यमेव जयति नानृतम् ।-सत्यकी ही विजय होती है असत्यकी जय नहीं होती" इस मुण्डक ३ । १ । ६ के अनुसार सत्यवादी ही विजय पाते हैं अत एव] तेज देने वाले तेजस्वी, [सत्य कहनेमें क्रोध और लज्जा नहीं आती अत एव] क्रोध और लज्जासे शून्य [सत्य संकल्प करने वाला भी मुखसे सत्य नहीं कह सकता अत एव] मुखसे प्रेरित अपने हृदयसे कहे जानेके कारण श्रोताओंके हृदयको प्राप्त होने वाले और सुख देने वाले [क्योंकि-सत्य वचनोंसे सबको सुख मिलता है और असत्य वचनोंसे दुःख मिलता है, यह बात लोकमें प्रसिद्ध ही है] सत्य वचनोंके भरणको जो पुरुष बढ़ाता है, वह सत्यभाषणके माहात्म्य से चिरकाल तक जीवित रहता है ॥ ६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सप्तमी ॥

को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः क ईं ददर्श क इह प्र वोचत् ।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आहनो वीच्या नॄन् ॥

कः । अस्य । वेद । प्रथमस्य । अह्नः । कः । ईम् । ददर्श । कः । इह । प्र । वोचत् ।

बृहत् । मित्रस्य । वरुणस्य । धाम । कत् । ऊं इति । ब्रवः । आहनः । वीच्या । नॄन् ॥ ७ ॥

इदं यम्या वचनम् । अस्य प्रथमस्य अह्नः । ❀ कर्मणि षष्ठ्यौ ❀ । प्रथमम् अहः । आवयोः संगमदिवसम् इत्यर्थः । तत् को वेद जानाति । न कोपीत्यर्थः । किं च ईम् इदं कर्म इदानीं वा को ददर्श पश्येत् । न कश्चित् पश्यतीत्यर्थः । तथा इह एतद्विषये कः पुमान् दृष्टम् अर्थं प्र वोचत् प्रब्रूयात् दृष्टम् अर्थम् अन्यस्मै कथयेत् । सोपि नास्त्येव । ज्ञाता नैव किल । द्रष्टा कथयिता च दूरापास्तावित्यभिप्रायः । ज्ञानदर्शनप्रवचनानाम् अविषयं कालं संभावयति बृहदित्यादिना । मित्रस्य देवस्य धाम स्थानम् । अहरित्यर्थः । तद् बृहत् प्रभूतम् । तथा वरुणस्य तमोवारकस्य देवस्य धाम रात्र्याख्यम् तच्च बृहत् । अहोरात्रयोर्मध्ये कतमश्चन समयः संभोगाय संपत्स्यत इत्यभिप्रायः । तस्मात् हे आहनः । ❀ आङ्पूर्वात् हन्तेः असुन् ❀ । आहन्तः अस्मदभिमतस्य अकरणेन क्लेशकारिन् कत् कथं वीच्याः विविधम् अञ्चन्तः गच्छन्तः संचरन्तो नॄन् नराः । ❀ जसः स्थाने शस् ❀ । ते सन्तीति कथं ब्रवः ब्रूयाः ब्रवीषि ॥

[यमी कहती है, कि–] प्रथम दिनको अर्थात् हमारे सङ्गमके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिनको कौन जानरह है कोई नहीं जान सकता, और इस हमारे कर्मको कौन देख रहा है अर्थात् कोई नहीं देख रहा है। फिर कौन पुरुष इस देखी हुई बातको दूसरेसे कहेगा अर्थात् जब कोई जानने वाला नहीं है तो देखने और कहने वाला कहाँसे आवेगा। और दिन तो मित्र देवताका स्थान है वह भी विशाल और रात्रि तमोनिवारक देवका स्थान है वह भी विशाल है, अभिप्राय यह है, कि-दिन और रात्रिके समयमेंसे कोई समय भोगके लिये हो ही जावेगा। अत एव हे मेरी अभिलाषाको न करनेसे मुझे क्लेश देने वाले यम! तुम अनेक प्रकारसे विचरण करने वाले मनुष्योंके विषयमें कैसे कहते हो ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

यमस्य मा यम्यं१ काम आगन्त्समाने योनौ सहशेय्याय।
जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिद् वृहेव रथ्येव चक्रा ८

यमस्य। मा। यम्यम्। कामः। आ। अगन्। समाने। योनौ। सहऽशेय्याय।
जायाऽइव। पत्ये। तन्वम्। रिरिच्याम्। वि। चित्। वृहेव। रथ्याऽइव। चक्रा ॥ ८ ॥

इदमपि यमीवचनम्। मा मां यम्यम् यमीं यमस्य कामः यमविषयोभिलाषः आगन् आगमत्। ❀ यम्यम् इति। "वा छन्दसि" इति पूर्वरूपत्वाभावे यण् आदेशः। "उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य" इति यणः स्वरितत्वम्। आगन्निति। गमेर्लुङि "मन्त्रे घस०" इति च्लेर्लुक्। "हन्ङ्या०" इत्यादिना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तिलोपे "मो नो धातोः" इति नत्वम् ❀। कामं विशिनष्टि। समाने साधारणे योनौ एकस्मिन् शयने सहशेय्याय सहशयनार्हाय। ❀ शेयं शयनम्। "अचो यत्" इति भावे यत्। "तद् अर्हति" इति यत् ❀। यद्वा शय्याम् अर्हतीति शय्यः तस्मै। ❀ "तद् अर्हति" इति यत्। एकारोपजनश्छान्दसः ❀। तदर्थं तन्वम् तनूं मामकीनां रिरिच्याम् पृथक् कुर्याम्। तदधीनां कुर्याम् इत्यर्थः। तत्र दृष्टान्तः जायेव पत्ये इति। यथा स्वकीयाय भर्त्रे जाया पत्नी स्वकीयां तनुं पत्यधीनां करोति एवम् इत्यर्थः। तस्मिन् यथा विस्रम्भेण कामोपभोगः एवं करोमीत्यर्थः। अनन्तरं वि वृहेव आवां संश्लेषं करवाव। इतरेतरयोः संश्लेषो विवर्हा। तत्रापि दृष्टान्तोभिधीयते। रथ्येव चक्रा रथ्यया रथयोग्यया पदव्या सह चक्रा चक्राणि यथा वृहन्ति तद्वत्। ❀ रथ्येति। "तद् वहति रथयुगप्रासङ्गम्" इति यत् ❀। अथवा रथ्येव रथाधाराणि चक्राणि अक्षेण सह विवर्हा कुर्वन्ति तद्वद् इति व्याख्येयम्॥

[यह भी यमीका वचन है, कि-] मुझ यमीको यमकी अभिलाषा होगई है, मैं साधारण शय्या पर एक साथ शयन करने योग्य यमके लिये जैसे जाया अपने पतिके लिये शरीरको अर्पण कर देती है इसी प्रकार, अपने शरीरको उनके अर्पण करूँ फिर जैसे रथके चलने योग्य मार्गमें पहिये संश्लेष करते है इसी प्रकार परस्पर संश्लिष्ट होऊँ॥ ८॥

नवमी॥

न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति।
अन्येन मदाहनो याहि तूयं तेन वि वृह रथ्येव चक्रा ९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न । तिष्ठन्ति । न । नि । मिषन्ति । एते । देवानाम् । स्पशः ।
इह । ये । चरन्ति ।
अन्येन । मत् । आहनः । याहि । तूयम् । तेन । वि । वृह । रथ्या-
ऽइव । चक्रा ॥ ९ ॥

इह अस्मिन् लोके ये देवानां स्पशः चराः चरन्ति भ्रमन्ति तेषां मध्ये एके केचनापि न तिष्ठन्ति एकत्र स्थितिं न कुर्वन्ति । तथा न नि मिषन्ति । पक्ष्मसंकोचनं निमेषः । तदपि न कुर्वन्ति । न निद्रान्तीत्यर्थः । सर्वदैव स्पशा जागरूका वर्तन्त इत्यर्थः । ❀ स्पश इति । जसः सुः । विवब्बा द्रष्टव्यः ❀ । यत एवम् अतः हे आहनः मत् मत्तः अन्येन सह । ❀ "एकवचनस्य च" इति पञ्चम्या अत् आदेशः ❀ । तेन सह । रमस्वेति शेषः । तदर्थं तूयम् तूर्णं याहि गच्छ । तेन सह वि वृह सश्लेषं कुरु । रथ्येव चक्रेति दृष्टान्तवचनं व्याख्यातम् ॥

[यम कहते हैं, कि—] इस लोकमें जो देवताओंके दूत घूमते हैं उनमें एक भी एक ही स्थान पर नहीं बैठा रहता अर्थात् वे सर्वत्र विचरण करते हैं। और वे पलक भी नहीं मारते हैं सदा सावधान रहते हैं अतः हे मेरे धर्ममय मनोरथको नष्ट करना चाहने वाली ! तू मुझे छोड़ कर दूसरेके साथ रमण कर उसके पास शीघ्रतासे जा और जैसे पहिये रथमार्गसे लिपटते हैं वा रथके आधार चक्र जैसे अक्षसे विवर्हा करते हैं तिस प्रकार उससे संश्लेषण कर ॥ ९ ॥

दशमी ॥

रात्रीभिस्मा अहभिर्दशस्येत् सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मि-
मीयात् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य विवृहादजामि ।

रात्रीभिः । अस्मै । अहःऽभिः । दशस्येत् । सूर्यस्य । चक्षुः । मुहुः । उत् । मिमीयात् ।

दिवा । पृथिव्या । मिथुना । सबन्धू इति सऽबन्धू । यमीः । यमस्य । विवृऽहात् । अजामि ॥ १० ॥

इदं यमीवचनम् । अस्मै यमाय रात्रीभिः तथा अहभिः अहोभिः । रात्रिषु अहःसु चेत्यर्थः । सर्वदा दशस्येत् । ❀ दशस्यतिर्दानकर्मा ❀ । प्रयच्छतु । यजमानो हविरिति शेषः । तथा सूर्यस्य देवस्य चक्षुः प्रकाशकं तेजः मुहुः अन्वहम् उन्मिमीयात् ऊर्ध्वं गच्छेत् । अस्मा अर्थायेति शेषः । सूर्योदयोपि अस्य भोगायास्त्वित्यभिप्रायः । ❀ डुमिञ् प्रक्षेपणे । व्यत्ययेन श्लुः दीर्घश्च ❀ । किं च दिवा पृथिव्या च दिवा सह पृथिवी पृथिव्या सह द्यौश्च मिथुना मिथुने परस्परं मिथुने अविश्लिष्टे सबन्धू समानबन्धने यथा एकमनस्के एवं यमीः यमी । ❀ सोः सुः ❀ । यमस्य अजामिः अबन्धुः स्वसृरूपबन्धुत्वरहिता सती वि वृहात् विवृहणं कुर्यात् इति परोक्षत्वेन आत्मनो व्यपदेशः ॥

इति अष्टादशकाण्डे प्रथमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

[यह यमीका वचन है, कि–] यजमान इन यमके लिये दिन और रात हवि देवें । और सूर्यदेवका प्रकाशक तेज इनके लिये प्रतिदिन उदय होवे अर्थात् सूर्योदय भी इनके संभोगके लिये हो । और द्युलोकके साथ पृथिवीलोक जैसे परस्पर संश्लिष्ट हैं और सबंधु हैं इसी प्रकार यमी भी यमकी बहिनरूप बंधुत्वसे रहित होती हुई परस्पर संश्लेषण करे ॥ १० ॥ (१)

अठारहवें काण्डके प्रथम अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"आ घा ता" इति द्वितीयं सूक्तम् ॥

तत्र प्रथमा ॥

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्न-
जामि ।
उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्

आ । घ । ता । गच्छान् । उत्ऽतरा । युगानि । यत्र । जामयः ।
कृणवन् । अजामि ।

उप । बर्बृहि । वृषभाय । बाहुम् । अन्यम् । इच्छस्व । सुऽभगे ।
पतिम् । मत् ॥ ११ ॥

इदं यमवाक्यम् । घ इति पादपूरणः । ता तानि उत्तरा उत्तराणि युगानि अहोरात्रयोर्युगलानि । आगामिनो दिवसाः इत्यर्थः । आ गच्छान् आगच्छेयुः । ननु दिनानि आगच्छन्त्येव किमिति आशास्यत इत्याशङ्कायाम् उत्तराणि दिवसानि विशिनष्टि । यत्र येषु आगामिषु दिवसेषु जामयः बन्धवः स्वसृभूताः अजामि अबन्धुत्वं भार्यात्वं कृणवन् कुर्युः । ❀ कृवि हिंसाकरणयोश्च । "ध्रिन्विकृण्व्योर च" इति उप्रत्ययः ❀ । यस्माद् एवं तस्मात् हे यमि त्वं वृषभाय सेक्त्रे संभोगं कुर्वते अन्यस्मै बाहुम् स्वीयं भुजम् उप बर्बृहि अतिवृद्धं कुरु । ❀ बृहेर्यङ्लुगन्ताद् लोटि "सेर्ह्यपिच्च" इति हिः । तस्य ङित्त्वाद् गुणाभावः । धातोरन्त्यलोपश्छान्दसः ❀ । तदर्थम् हे सुभगे कामिनि मत् मत्तः । ❀ "एकवचनस्य च" इति पञ्चम्या मत् आदेशः ❀ । अन्यं पतिम् इच्छस्व कामयस्व ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[यह यमका वाक्य वाक्य है, कि—] वे दिन रात अर्थात् दिन आगे आवेंगे जब कि—वहिनरूप बन्धु अबन्धुत्व-भार्यात्व—को करने लगेंगी, इस कारण हे यमि ! तू सेचन कर सकने वाले दूसरे पुरुषके लिये अपने हाथको बढ़ा इस प्रकार हे सुभगे ! तू मुझको छोड़कर अन्य किसीको पति बनानेकी इच्छा कर ॥११॥

द्वितीया ॥

किं भ्रातासद् यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात् ।

काममूता बह्वेतद् रपामि तन्वा मे तन्वं सं पिपृग्धि

किम् । भ्राता । असत् । यत् । अनाथम् । भवाति । किम् । ऊ इति । स्वसा । यत् । निःऽऋतिः । निऽगच्छात् ।

कामऽमूता । बहु । एतत् । रपामि । तन्वा । मे । तन्वम् । सम् । पिपृग्धि ॥ १२ ॥

इदं यमीवचनम् स किं भ्राता असत् भ्राता भवेत् न भवत्येव । स भ्राता क एवं निन्द्यत इति तम् आह । यत् यदि भ्रातरि विद्यमाने स्वसा अनाथं नाथरहितम् अपेक्षितकामशून्यं भवाति भवेत् । स किं भ्रातासद् इति पूर्वत्रान्वयः । एवं भ्रातरं निन्दित्वा स्वसारं निन्दति । सा किम् स्वसा असत् स्वसा भवेत् न भवत्येव । कैवं निन्द्यत इति तां विशिनष्टि । यत् यदि स्वसृभूतायां विद्यमानायां भ्रातरं निर्ऋतिः दुःखं निगच्छात् प्राप्नुयात् । सा किमु स्वसेति संबन्धः । यतोहं सनाथा अतः काममूता कामेन मूर्छिता बहुविधकामोपेता बहु अधिकम् एतत् इदानीम् एतेन कारणेन वा रपामि प्रलापं करोमि । ❀ बह्वेतत् इत्यत्र संहितायां

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"स्वरितो वानुदात्ते पदादौ" इति उदात्तयणः परस्यानुदात्तस्य स्वरितत्वम् ❀। अतो मम प्रलापस्य सार्थकत्वाय मे मम तन्वा शरीरेण सह हे भ्रातः तन्वम् तनं तावकं शरीरं सं पिपृग्धि संपर्चय। ❀ पृची संपर्के। व्यत्ययेन श्लुः। "बहुलं छन्दसि" इति अभ्यासस्य इत्त्वम् ❀।

यह यमीका वचन है, कि–वह क्या भाई है, कि–जिस भाई के विद्यमान रहने पर बहिन अपेक्षित कामसे शून्य रह जावे और वह भी कैसी बहिन, कि–जिसके रहते हुए भाईको दुःख मिले, किंतु मैं सनाथ हूँ इस कारण कामसे मूर्छित होकर बहुतसा प्रलाप कर रही हूँ, अत एव मेरे प्रलापको सार्थक करनेके लिये मेरे शरीरके साथ अपने शरीरको संयुक्त करिये ॥ १२ ॥

तृतीया ॥

न ते नाथं यम्यत्राहमस्मि न ते तनूं तन्वा३ सं पपृच्याम् ।
अन्येन मत् प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत् ॥ १३ ॥

न। ते। नाथम्। यमि। अत्र। अहम्। अस्मि। न। ते। तनूम्। तन्वा। सम्। पपृच्याम्।

अन्येन। मत्। प्रऽमुदः। कल्पयस्व। न। ते। भ्राता। सुऽभगे। वष्टि। एतत् ॥ १३ ॥

इदं यमवाक्यम्। हे यमि अत्र अस्मिन् विषये ते तव अहं नाथम् अभिमतार्थसंपादको भ्राता नास्मि न भवामि। किं च ते तव तन्वा शरीरेण सह नूनम् निश्चयं न सं पपृच्याम् संपर्कं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न करोमि । तस्मात् मत् मत्तः अन्येन पुरुषान्तरेण सह प्रमुदः प्रमोदान् संभोगजनितान् कल्पयस्व साधय । ते तव भ्राता अयं जनः हे सुभगे संभोगार्थिनि एतत् जायापत्यलक्षणं कर्म न वष्टि न कामयते ॥

[यह यमका वचन है, कि–] हे यमि ! मैं इस विषयमें तेरी कामनाको पूर्ण करने वाला नाथ नहीं बन सकता और तेरे शरीरसे किसी प्रकार सम्पर्क नहीं कर सकता अत एव तू मुझको छोड़ कर और किसी पुरुषके साथ संभोगसे होने वाले आनन्दों को साध । हे सुभगे ! तेरा यह भाई इस जायापत्यरूप कर्मकी अभिलाषा नहीं करता ॥ १३ ॥

चतुर्थी ॥

न वा उ ते तनूं तन्वा३ सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् ।
असंयदेतन्मनसो हृदो मे भ्राता स्वसुः शयने यच्छयीय ॥ १४ ॥

न । वै । ऊं इति । ते । तनूम् । तन्वा । सम् । पपृच्याम् । पापम् । आहुः । यः । स्वसारम् । निऽगच्छात् ।
असम्ऽयत् । एतत् । मनसः । हृदः । मे । भ्राता । स्वसुः । शयने । यत् । शयीय ॥ १४ ॥

इदमपि यमवाक्यम् । पूर्वमन्त्रोक्तमेव निषेधम् अत्यन्तपापतया पुनर्द्रढयति । हे यमि ते तव तन्वा सह तनूम् मदीयां न वै सं पपृच्याम् नैव संपर्चयामि । संपर्काभावे हेतुम् आह । स्वसारम् भगिनीं निगच्छात् भ्राता संभोगं कुर्यात् इति यत् एतत् पापं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निषिद्धम् आहुः ब्रुवते धर्मरहस्यविदः। न केवलं पारलौकिकं पापमेव अपि तु दृष्टबाधाप्यस्तीत्याह। एतत् वक्ष्यमाणं कर्म मे मम मनसः हृदः हृदयाच्च अथवा मनसा हृदयेन च सह असुम् प्राणम्। अपहरेत् इति शेषः। एतच्छब्दार्थम् आह। भ्राता सन् स्वसुर्भगिन्याः शयने। शय्यते अत्रेति शयनम्। एकस्यां शय्यायां शयीय शयनं कुर्याम् इति यद् एतद् इति पूर्वत्रान्वयः।

[यह भी यमका वचन है, इसमें पूर्वोक्त निषेधको ही परम पाप होनेसे फिर दृढ़ किया है, कि–] हे यमि ! तेरे शरीरसे मैं अपने शरीरका किसी प्रकार स्पर्श नहीं करूँगा [सम्पर्क न करनेका कारण यह है,कि–]धर्मके रहस्यको जानने वाले पुरुष, भाई बहिनसे संभोग करे इसको पाप कहते हैं [पारलौकिक ही पाप नहीं होगा, किंतु दृष्टबाधा भी है, कि–] जो मैं भाई होकर बहिनकी शय्या करूँ तो यह कर्म मेरे हृदयको मनको और प्राण को भी नष्ट कर डालेगा ॥ १४ ॥

पञ्चमी ॥

बतो बतासि यम नैव ते मनो हृदयं चाविदाम।
अन्या किल त्वां कक्ष्येव युक्तं परि ष्वजाते लिबुजेव वृक्षम् ॥ १५ ॥

बतः। बत। असि। यम। न। एव। ते। मनः। हृदयम्। च। अविदाम।

अन्या। किल। त्वाम्। कक्ष्याऽइव। युक्तम्। परि। स्वजाते। लिबुजाऽइव। वृक्षम् ॥ १५ ॥

इदं यमीवाक्यम्। हे यम त्वं बतोसि बलाद् अतीतो भवसि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मनके अनुकूल चले, परस्पर अनुकूल होनेके अनन्तर तू उसके साथ परम कल्याण देने वाले सुखका अनुभव कर ॥ १६ ॥

सप्तमी ॥

त्रीणि च्छन्दांसि कवयो वि येतिरे पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम् ।
आपो वाता ओषधयस्तान्येकस्मिन् भुवन आर्पितानि

त्रीणि । च्छन्दांसि । कवयः । वि । येतिरे । पुरुऽरूपम् । दर्शतम् । विश्वऽचक्षणम् ।

आपः । वाताः । ओषधयः । तानि । एकस्मिन् । भुवने । आर्पितानि ॥ १७ ॥

कवयः क्रान्तप्रज्ञा ज्ञानिनः पूर्वे महर्षयः देवा वा त्रीणि च्छन्दांसि। अत्र छादनाच्छन्दांसीति व्युत्पत्त्या छन्दःशब्देन वक्ष्यमाणा अबादयस्त्रयो गृह्यन्ते । तानि वि येतिरे यत्नं कृतवन्तः । जगन्निर्वाहायेति शेषः । तेषु एकैकं विशिनष्टि । तेषु मध्ये आपः अप्तत्त्वं पुरुरूपम् नानारूपम् अब्विकारत्वात् सर्वेषां रूपाणाम् । दर्शतम् दर्शनीयं स्पृहणीयत्वेन प्रियदर्शनम् विश्वचक्षणम् विश्वस्य द्रष्टृ । एवं वाताः वायुतत्त्वमपि प्राणात्मना पुरुरूपं भवति दर्शनीयं च भवति । सूत्रात्मतया विश्वद्रष्टृपि । एवम् ओषध्यात्मकमपीति द्रष्टव्यम् । यद्वा समुदायाभिप्रायेण एकवचनम् । तद् अबादित्रयं पुरुरूपत्वादिधर्मकम् इत्यर्थः । त्रीणि च्छन्दांसीति उक्तम् । कानि तानि त्रीणीति तत्राह आपो वाता ओषधय इति । अबादीनां भुवनाच्छादकत्वं प्रसिद्धम् एव । तेषां भुवनैकप्रयोजकताम् । आह तानीति । भवन्ति अत्र प्राणिनः अप्राणिनश्चेति भुवनं भूलोकः । तत्र तन्निर्वाहार्थम् आर्पितानि स्थापितानि सृष्ट्यादौ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पहिले बुद्धिमान् देवताओंने संसारका आच्छादन करनेवाले जल आदि तीनको जगत्का आच्छादन करनेके लिये यत्न किया था। इनमें जलतत्त्व अनेक रूप वाला है, क्योंकि-सब रूप जल के ही विकार हैं और यह जलतत्त्व स्पृहणीय होनेसे प्रियदर्शन है और विश्वका द्रष्टा है। इसी प्रकार वायुतत्त्व भी प्राणात्मा-रूपसे अनेक प्रकारका होता है और दर्शनीय भी होता है और सूत्रात्मारूपसे विश्वद्रष्टा भी होता है। इसी प्रकार औषधि भी अनेक रूप वाली, दर्शनीय और सकल रोगोंकी द्रष्टा होती है। इन जल वायु और औषधिको देवताओंने (जिसमें प्राणी और अ-प्राणी होते हैं उस) भूलोकमें निर्वाहके लिये स्थापित किया है॥

अष्टमी ॥

वृषा वृष्णे दुदुहे दोहसा दिवः पयांसि यह्वो अदितेर-
दाभ्यः ।
विश्वं स वेद वरुणो यथा धिया स यज्ञियो यजति
यज्ञियाँ ऋतून् ॥ १८ ॥

वृषा । वृष्णे । दुदुहे । दोहसा । दिवः । पयांसि । यह्वः । अदितेः ।
अदाभ्यः ।
विश्वम् । सः । वेद । वरुणः । यथा । धिया । सः । यज्ञियः ।
यजति । यज्ञियान् । ऋतून् ॥ १८ ॥

वृषा कामानाम् अपां च वर्षिता अग्निः वृष्णे आज्यपयआदे-र्वर्षित्रे प्रयच्छते यजमानाय तद्भोगार्थं दोहसा दोहनसाधनेन यज्ञा-दिना दिवः सकाशात् पयांसि उदकानि दुदुहे वर्षितवान्। की-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दृशो वृषा । यद्वः महन्नामैतत् । महान् । अथ द्यौर्विशेष्यते । अदिते । अखण्डनीयायाः । न हि द्यौः केनचित् खण्ड्यते । अदाभ्य इति वृष्णो विशेषणम् । कैरपि रक्षःप्रभृतिभिः अहिंसितः । स तादृशोग्निः विश्वम् सर्वं धिया प्रज्ञानेन वेद जानाति साक्षात्करोति । तत्र दृष्टान्तः । वरुणो देवो यथा धिया वेत्ति तद्वत् । स च यज्ञियः यज्ञार्होग्निः । ❀ "यज्ञर्त्विग्भ्याम्०" इति घः ❀ । यज्ञियान् यज्ञार्हान् यष्टव्यान् ऋतून् अभिगन्तॄन् यद्वा यज्ञियान् यज्ञियेषु ऋतुषु कालेषु तत्तद्विहितकाले यष्टव्यान् देवान् यजतीति व्याख्येयम् ॥

कामनाओंकी और जलकी वर्षा करने वाले तथा राक्षस आदि से अहिंसित महान् अग्निदेव घृत दुग्ध आदिकी वर्षा करनेवाले यजमानके लिये दोहन साधन यज्ञ आदिके द्वारा अखण्डनीय द्युलोकसे जलोंकी वर्षा करते हैं । ऐसे यह अग्निदेव अपनी बुद्धि से सबको इस प्रकार जान जाते हैं, जिस प्रकार वरुणदेव अपनी बुद्धिसे सबको जानते हैं । और वही यज्ञके योग्य अग्नि यज्ञकी ऋतुमें पूजा करने योग्य देवताओंकी पूजा करते हैं ॥ १८ ॥

नवमी ॥

रपद् गन्धर्वीरप्या च योषणा नदस्य नादे परि पातु नो मनः ।
इष्टस्य मध्ये अदितिर्नि धातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः प्रथमो वि वोचति ॥ १९ ॥

रपत् । गन्धर्वीः । अप्या । च । योषणा । नदस्य । नादे । परि । पातु । नः । मनः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इष्टस्य । मध्ये । अदितिः । नि । धातु । नः । भ्राता । नः ।
ज्येष्ठः । प्रथमः । वि । वोचति ॥ १९ ॥

गन्धर्वीः गन्धर्वस्य उदकधारकस्य भरतस्य, आदित्यस्य स्वभूता भारती अप्या योषणा च अप्संबन्धिनी अप्स्थायिनी युवतिः सरस्वती च रपत् रपतु स्पष्टं वक्तु मद्द्वारा अग्निं स्तौतु । नदस्य नादे स्तोतुर्मम स्तोत्ररूपे नादे कर्तव्ये ध्वनौ नो मनः मम मनः परि पातु परितो रक्षतु । भारती सरस्वती चेति शेषः । अनन्तरम् इष्टस्य फलस्य यागस्य वा मध्ये नः अस्मान् अदितिः देवमाता देवी नि धातु स्थापयतु इष्टं योजयतु । भ्राता भरणकर्ता भ्रातृवत् हितकारी ज्येष्ठः गुणैः प्रशस्यः प्रथमोऽग्निः । ❀ प्रथम इति मुख्यनाम । प्रतमो भवति [नि० २. २२] इति निरुक्तम् ❀ । वि वोचति विवक्तु साधु यष्टा अयम् इति मयि ब्रवीत्वित्यर्थः । ❀ वि वोचति । "लिङ्याशिष्यङ्" इति विहितोऽङ् प्रत्ययो व्यत्ययेनात्र न प्राप्तः । "वच उम्" इति अङ्प्रत्ययनिबन्धन उमागमः❀ ॥

जलको धारण करने वाले सूर्यकी स्वभूता भारती और अन्तरिक्षमें विचरण करने वाली युवती सरस्वती मेरे द्वारा अग्निकी स्पष्टरूपसे स्तुति करें और मुझ स्तोताके स्तोत्ररूप नादमें मेरे मन की रक्षा करें, इसके अनन्तर देवमाता अदिति फल वा यागमें मुझको स्थापित करें और भाईकी समान हित करने वाले गुणों में ज्येष्ठ यह मुख्य अग्नि भी मेरे लिये कहें, कि—यह बहुत अच्छा यजमान है ॥ १९ ॥

दशमी ॥

सो चिन्नु भद्रा क्षुमती यशस्वत्युषा उवास मनवे स्वर्वती ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतुमग्निं होतारं विदथाय जीजनन् ॥ २० ॥

सो इति । चित् । नु । भद्रा । द्युऽमती । यशस्वती । उषाः । उवास । मनवे । स्वःऽवती ।

यत् । ईम् । उशन्तम् । उशताम् । अनु । क्रतुम् । अग्निम् । होतारम् । विदथाय । जीजनन् ॥ २० ॥

सो चित् सैव खलु भद्रा भन्दनीया कल्याणी द्युमती मन्त्ररूपशब्दवती । प्रातरनुवाकादौ बहुभिरुषस्यसूक्तैः शस्यमानत्वात् । अथ वा तस्मिन् काले पक्ष्यादीनां प्रबुद्धानां शब्ददर्शनात् द्युमती । यशस्वती । यश इति अन्ननाम । अन्नवती मनुष्योपभोगार्थेन अन्नेन हविर्लक्षणेन वा तद्वती । तथा स्वर्वती स्वः आदित्यः । तद्वती । तदविनाभावात् । ❀ "छन्दसीवनिपौ०" इति मतुपो वत्वम् ❀ । एवंरूपा उषाः मनवे मनुष्याय । ❀ जातावेकवचनम् ❀ । मनुष्याणां व्यवहाराय यजमानाय वा तस्याग्निहोत्राद्यर्थाय उवास प्रादुरभूत् । तमो निराचकारेत्यर्थः । यत् यदा ईम् एनम् उशन्तम् कामयमानं होतारम् देवानाम् आह्वातारं होमनिष्पादकं वा अग्निम् उशताम् यज्ञार्थं कामयमानानां यजमानानां तेषां विदथाय यज्ञाय देवानां हविःप्रापणाय अनु क्रतुम् तत्रतत्र क्रतौ तत्तत्क्रत्वर्थं जीजनन् अजीजनन् उदपादयन् अध्वर्यवः ॥

[इति] अष्टादशकाण्डे प्रथमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

जब अध्वर्युओंने इन इच्छा करते हुए देवताओंका आह्वान करके अग्निदेवको यज्ञके लिये कामना करने वाले यजमानोंके यज्ञोंमें देवताओंको हवि पहुँचानेके लिये क्रतुओंके लिये प्रकट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया उसी समय यह कल्याणी मन्त्ररूप शब्द वाली हविरूप अन्न वाली और सूर्यसे संपन्न उषा यजमानोंके अग्निहोत्र आदि के व्यवहारको सिद्ध करनेके लिये प्रकट होती है–अन्धकारको दूर करती है ॥ २० ॥ (२)

अठारहवें काण्डके प्रथम अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त।

अथ तृतीयं सूक्तम् ॥

तत्र प्रथमा ॥

अध त्यं द्रप्सं विभ्वं विचक्षणं विराभरदिषिरः श्येनो अध्वरे ।
यदी विशो वृणते दस्ममार्या अग्निं होतारमध धीरजायत ॥ २१ ॥

अध । त्यम् । द्रप्सम् । विऽभ्वम् । विऽचक्षणम् । विः । आ । अभरत् । इषिरः । श्येनः । अध्वरे ।
यदि । विशः । वृणते । दस्मम् । आर्याः । अग्निम् । होतारम् । अध । धीः । अजायत ॥ २१ ॥

अध अथ अनन्तरं त्यम् तम् । "तृतीयस्याम् इतो दिवि सोम आसीत्" [तै० ब्रा० ३. २. १. १]इत्यादिश्रुतिप्रसिद्धम् । द्रप्सम् देवैर्मनुष्यैश्च भक्षणीयं सोमम् । कीदृशम् । विभ्वम् महन्नामैतत् । महान्तं विचक्षणम् विद्रष्टारम् एवंलक्षणं सोमम् इषिरः प्रकृष्टगमनः एषणां प्राप्तः अग्न्यादिदेवैः प्रार्थितो वा श्येनः शंसनीयगतिः सौपर्णो विः पक्षी अध्वरे यज्ञे निमित्तभूते सति आभरत् आहरत् आहृतवान् । गायत्री सुपर्णरूपं धृत्वा द्युलोकात् सोमम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आहरद् इत्येतद् आख्यानम् "तृतीयस्याम् इतो दिवि सोम आसीत्। तं गायत्र्याहरत् । तस्य पर्णम् अच्छिद्यत्" [तै० ब्रा० ३.२.१.१] "कद्रूश्च वै सुपर्णी चास्पर्धेताम्" [तै० सं० ६.१.६.१] इत्यादिश्रुतिषु प्रसिद्धम् । एवम् आहृते सोमे यदि यदा आर्याः सर्वैरभिगन्तव्या विशः प्रजाः यजमाना दस्मम् दर्शनीयम् अग्निं होतारम् होमनिष्पादकम् । ❀ जुहोतेर्होतेत्यौर्णवाभः इति निरुक्तम् [नि० ७.१५] ❀ । होतृत्वेन वृणते वरणं कुर्वन्ति पुरस्कुर्वन्ति अध अथ अनन्तरं सोमस्य अग्नेश्च सिद्धत्वाद् धीः । कर्मनामैतत् । अग्निष्टोमादिलक्षणं कर्म अजायत निर्वृत्तं भवति । अग्निम् अन्तरेण कस्यचिदपि कर्मणः असिद्धेः यदी विशो वृणते अध धीरजायतेति अग्नेर्होतृत्वोपयोगित्वेन स्तुतिः ॥

इसके अनन्तर "तृतीयस्यां इतो दिवि सोम आसीत्-इस भूलोकसे तीसरे लोक द्युलोकमें सोम था" इस तैत्तिरीय आरण्यक ३।२।१।१ की श्रुतिमें प्रसिद्ध देवता और मनुष्योंसे भक्षणीय महान् द्रष्टा सोमको अग्नि आदि देवताओंसे प्रार्थित प्रशंसनीय गति वाले सुपर्ण पक्षी यज्ञके लिये लाये थे [गायत्री सुपर्णका रूप बनाकर द्युलोकसे सोमको लाई थी, यह आख्यान निम्नलिखित श्रुतियोंमें है। "तृतीयस्यां इतो दिवि सोम आसीत् । तं गायत्र्याहरत् । तस्य पर्णं अच्छिद्यत ।" तैत्तिरीयसंहिता ३।२।१।१ और कद्रूश्च वै सुपर्णी अस्पर्धेताम् ।-कद्रू और सुपर्णीने परस्पर स्पर्धा की" तैत्तिरीयसंहिता ६।१।६।१] इस प्रकार सोमके लाने पर जब आर्यप्रजा इन दर्शनीय अग्निका होम निष्पादकरूपमें वरण करती हैं तब सोमके और अग्निके सिद्ध होने पर अग्निष्टोम आदि कर्म सम्पन्न होता है तात्पर्य यह है, कि-अग्निके अभावमें कोई भी कर्म सिद्ध नहीं हो सकता अत एव यजमान आदि इसका वरण करते हैं तो कर्म चलता है अत एव होतृत्वमें उपयोगी होनेसे यह अग्निकी स्तुति हुई ॥ २१ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वितीया ॥

सदांसि रण्वो यवसेव पुष्यते होत्राभिरग्ने मनुषः स्वध्वरः
विप्रस्य वा यच्छशमान उक्थ्यो ३ वाजं ससवाँ उप-
यासि भूरिभिः ॥ २२ ॥

सदा । असि । रण्वः । यवसाऽइव । पुष्यते । होत्राभिः । अग्ने ।
मनुषः । सुऽअध्वरः ।
विप्रस्य । वा । यत् । शशमानः । उक्थ्यः । वाजम् । ससऽवान् ।
उपऽयासि । भूरिऽभिः ॥ २२ ॥

हे अग्ने स्वध्वरः शोभनयागः सुष्ठुः यागस्य निर्वर्तकस्त्वं मनुषः मनुष्यस्य स्वभूताभिः होत्राभिः होमसाधनाभिः आज्यादिभिः पुष्यते पोषयित्रे यजमानाय तदर्थं सदा सर्वदा रण्वः रमणीयः दर्शनीयोसि । तत्र दृष्टान्तः । यवसेव यवसा हरिततृणादिना गवादिरिव । स यथा पुष्यते स्वामिने रमणीयो भवति तद्वत् । यत् यस्त्वं शशमानः शंसन् यजमानं प्रशंसन् उक्थ्यः स्तोतव्यश्च सन् विप्रस्य मेधाविनो यजमानस्य वाजम् अन्नं हविर्लक्षणं ससवान् संभजमानः भूरिभिः बहुभिः कामैः सहितस्त्वं बहुभिर्देवैः सहितो वा उपयासि उपगच्छसि । यत एवं करिष्यसि अतस्त्वं यजमानस्य सदा रण्वोसीति संबन्धः ॥

हे अग्निदेव ! आप यज्ञको सुन्दरतासे निष्पन्न करने वाले हैं और जैसे हरित तृण आदिसे पुष्ट होने वाला पशु अपना पोषण करने वाले पशुपालकको रमणीय दीखता है, इसी प्रकार आप भी होमके साधन घृत आदिसे अपनेको पुष्ट करने वाले यजमान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के लिये सदा दर्शनीय होते हैं, क्योंकि—आप यजमानकी प्रशंसा करते हुए और स्तुतिके योग्य होते हुए मेधावी यजमानके हविरूप अन्नका सेवन करते हुए बहुतसी कामनाओंके साथ उसको लेकर देवताओंके समीप पहुँचते हैं ॥ २२ ॥

तृतीया ॥

उदीरय पितरा जार आ भगमियक्षति हर्यतो हृत्त इष्यति ।
विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मखस्तविष्यते असुरो वेपते मती ॥ २३ ॥

उत् । ईरय । पितरा । जारः । आ । भगम् । इयक्षति । हर्यतः । हृत्तः । इष्यति ।

विवक्ति । वह्निः । सुऽअपस्यते । मखः । तविष्यते । असुरः । वेपते । मती ॥ २३ ॥

हे अग्ने त्वं पितरा पितरौ मातापितरौ । ❀ "पिता मात्रा" इत्येकशेषः ❀ । अत्र द्यावापृथिव्यौ गृह्येते । "द्यौः पितः पृथिवि मातः" [तै० ब्रा० २. ८. ६. ५] "द्यौः पिता पृथिवी माता" [तै० ब्रा० ३. ७. ५. ४] इत्यादिश्रुतिषु तथा श्रवणात् । तौ उदीरय उद्गमय यज्ञं प्रति प्रेरय । यद्वा तावकं तेजः पितरौ प्रति उदीरय उद्गमय । अत्यन्तं प्रज्वलितो भवेत्यर्थः । तत्र दृष्टान्तः जार आ भगम् । जारः आदित्यः रात्रेर्जरयिता । ❀ जार इव भगम् आदित्योत्र जार उच्यते रात्रेर्जरयितेति यास्कः [नि० ३. १६] ❀ । आ इति इवार्थे । जार इव आदित्य इव । स यथा भगम् भजनीयं स्वप्रकाशं द्यावापृथिव्यौ प्रति प्रेरयति तद्वत् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लौकिको जारो भगम् योनिमिव इत्ययं दृष्टान्तस्तु स्पष्टं प्रतीयत एव। अथ वा जरा स्तुतिः। तत्कर्त्वेन तत्संबन्धी जारः स्तोता। स च भगम् भजनीयं त्वाम् आ। हयति इत्यध्याहारः। अत उदीरयेति संबन्धः॥ अथ परोक्षम् आह। इयक्षति यष्टुम् इच्छति यान् देवान् यजमानः। ❀ यजतेः सन्। अभ्यासस्य छान्दसं संप्रसारणम् ❀। तान् हर्यतः कमनीयः स्पृहणीयोऽग्निः हृत्तः हृदयात् हृदयेनैव इष्यति इच्छति। स्वयं कर्तुम् इति शेषः॥ किं च वह्निः हविषां वोढाग्निः मखः मखसाधनो मंहनीयो वा स्वपस्यते शोभनकर्म कर्तुम् इच्छते। ❀ "सुप् आत्मनः क्यच्"। "नः क्ये" इति नियमात् पदसंज्ञाया अभावाद् रुत्वाभावः ❀। यजमानाय विवक्ति ब्रवीति। अभिलषितं तवेष्टं दास्यामीति भाषत् इत्यर्थः। तथा तविष्यते। ❀ तविषिर्वृद्ध्यर्थः ❀। वर्धिष्यते यजमानाय असुरः बलवान् अग्निः मती मत्या कर्मणा यागेन निमित्तेन वेपते कम्पते चलति आगच्छति॥

हे अग्निदेव! आप द्युलोकरूप पिताको और पृथिवीरूप माता को यज्ञके प्रति प्रेरित करिये वा अपने तेजको माता पिता की ओर प्रेरित करिये। परम प्रदीप्त हूजिये, जैसे आदित्य अपने भजनीय प्रकाशको द्युलोक और पृथिवी—लोककी ओर प्रेरित करता है इसी प्रकार आप अपने तेजको प्रेरित करिये। और यह यजमान जिन देवताओंका पूजन करना चाहता है उनको यह स्पृहणीय अग्नि हृदयसे स्वयं ही चाहता है। यह हविका वहन करने वाले पूजनीय अग्नि शोभन कर्म करना चाहते हुए यजमानसे कहते हैं; कि—मैं तेरे अभिलषित पदार्थको दूँगा और अपनेको बढ़ाने वाले यजमानके पास भी यह बलवान् अग्नि यागनिमित्तक कर्मसे आरहे हैं॥ २३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुर्थी ॥

यस्ते अग्ने सुमतिं मर्तो अख्यत् सहसः सूनो अति स प्र शृण्वे ।
इषं दधानो वहमानो अश्वैरा स द्युमाँ अमवान् भूषति द्यून् ॥ २४ ॥

यः । ते । अग्ने । सुऽमतिम् । मर्तः । अख्यत् । सहसः । सूनो इति । अति । सः । प्र । शृण्वे ।
इषम् । दधानः । वहमानः । अश्वैः । आ । सः । द्युऽमान् । अमऽवान् । भूषति । द्यून् ॥ २४ ॥

हे अग्ने ते तव सुमतिम् शोभनां बुद्धिम् अनुग्रहलक्षणां यो मर्तः मरणधर्मा मनुष्यो यजमानः अख्यत् कथयति परस्मै । स्वयं प्राप्तो भवतीत्यर्थः । हे सहसः सूनो बलस्य पुत्र बलेन मथ्यमानो जायत इति तादृशाग्ने स त्वयानुगृहीतो यजमानः अभि आभिमुख्येन सर्वतः प्र शृण्वे प्रकर्षेण श्रूयते । ❀ शृणोतेर्लिटि "छन्दस्युभयथा" इति लिटः सार्वधातुकत्वात् "श्रुवः शृ च" इति श्नुप्रत्ययः ❀ । सर्वत्र विश्रुतो भवति । किं च स त्वयानुगृहीतो यजमानाः इषम् सर्वैरेषणीयम् अन्नं दधानः धारयन् बहन्नः सन् तथा अश्वैः बहुभिर्वहमानः अश्वैरुह्यमानो रथगामी भूत्वा द्युमान् दीप्तिमान अमवान् बलवान् सन् द्यून् । अहर्नामैतत् । बहून् दिवसान् आ भूषति आभवति । सर्वम् अधिष्ठाय वर्तते । यद्वा भूषति बुभूषति द्युमान् अमवांश्च भवितुम् इच्छति । ❀ भवतेः सनि "सनि ग्रहगुहोश्च" इति इडभावः "इको झल्" इति किस्वाद्गुणाभावः । सर्वविधीनां छन्दसि विकल्पितत्वाद्द्वित्वाभावः ❀ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे अग्ने ! जो यजमान पुरुष आपकी अनुग्रहरूपा शोभना बुद्धिका दूसरेसे वर्णन करता है अर्थात् आपके अनुग्रहको पाकर दूसरेसे कहता है, हे बलपूर्वक मथनेसे उत्पन्न होने वाले बलके पुत्र ! वह आपसे अनुगृहीत हुआ यजमान सर्वत्र प्रसिद्ध हो जाता है और वह आपसे अनुगृहीत यजमानसबके चाहने योग्य अन्नको धारण करता हुआ तथा बहुतसे घोड़ोंकी सवारी खाता हुआ दीप्तिमान् और बली रहता हुआ चिरकाल तक प्रतिष्ठित रहता है ॥ २४ ॥

पञ्चमी ॥

श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम्
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः ॥ २५ ॥

श्रुधि । नः । अग्ने । सदने । सधऽस्थे । युक्ष्व । रथम् । अमृतस्य । द्रवित्नुम् ।
आ । नः । वह । रोदसी इति । देवपुत्रे इति देवऽपुत्रे । माकिः । देवानाम् । अप । भूः । इह । स्याः ॥ २५ ॥

हे अग्ने त्वं नः अस्माकम् आह्वानं श्रधि शृणु । कुत्रेति उच्यते । सदने सीदत्यत्रेति सदनं गृहं तत्र । कीदृशे सधस्थे सहस्थाने । ❀ "सध मादस्थयोश्छन्दसि" इति सहस्य सधादेशः ❀ । देवानां साधारणे यागगृहे । तदर्थम् अमृतस्य उदकस्य द्रवित्नुम् द्रावकं रथं युक्ष्व योजय । किंच त्वं नः अस्माकम् अर्थाय रोदसी द्यावापृथिव्यौ । कीदृश्यौ । देवपुत्रे देवाः पुत्रा ययोस्ते तादृश्यौ तदुपजीव्यत्वात् तत्पुत्रत्वोपचारः । ते देवते आ वह यज्ञार्थम् । किं च त्वं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवानां संघे माकिरप भूः मा भूः मा गच्छ । किं तु इह अस्मदीये यागगृह एव स्याः भव । सर्वकर्मार्थं सर्वदा संनिहितो भवेत्यर्थः। यद्वा देवानां मध्ये एकोपि देवो माकिरप भूः अप भूत् अपगतो मा भूत् । किं तु सर्वोपीह स्याः स्यात्। ❀ "तिङां तिङो भवन्ति" इति प्रथमपुरुषस्थाने मध्यमः ❀ ॥

हे अग्निदेव ! आप देवताओंके एकत्र बैठनेके स्थान यागगृहमें हमारे आह्वानको सुनिये कि–उन देवताओंके लिये आप जलके द्रावक रथको जोड़िये और देवता जिनमें पालित होनेसे जिनके पुत्र हैं, उन द्यावापृथिवीको लाइये, देवताओंमें ऐसा कोई भी न बचे जो यहाँ न आवे ॥ २५ ॥

षष्ठी ॥

यदग्न एषा समितिर्भवाति देवी देवेषु यजता यजत्र ।
रत्ना च यद् विभजासि स्वधावो भागं नो अत्र वसुमन्तं वीतात् ॥ २६ ॥

यत् । अग्ने । एषा । सम्ऽइतिः । भवाति । देवी । देवेषु । यजता । यजत्र ।

रत्ना । च । यत् । विऽभजासि । स्वधाऽवः । भागम् । नः । अत्र । वसुऽमन्तम् । वीतात् ॥ २६ ॥

हे यजत्र यष्टव्य अग्ने यत् यदा एषा पुरोभाविनी समितिः समाजः । संहतिरित्यर्थः । भवाति भवति । स्तुतानां हविषां च समितिर्यदा भवति । कीदृशी । देवी दैवी देवसंबन्धिनी दीप्ता वा । कुत्र।देवेषु मध्ये । पुनः कीदृशी सा । यजता यष्टव्या पूजनीया । हे स्वधावः अन्नवः अन्नवन् अग्ने यत् यदा च रत्ना रत्नानि रम-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णीयानि धनानि विभजासि स्तोतृभ्यो विभजसि प्रयच्छसि अत्र विभागसमये नः अस्माकमपि वसुमन्तम् प्रभूतेन वसुना युक्तं भागम् अंशं वीतात् । ❀ वी गत्यादिषु । अत्र गत्यर्थः ❀ । वीहि । प्रयच्छेत्यर्थः ॥

हे पूजनीय अग्निदेव ! जब यह संहति और स्तोत्र तथा हवियों की दैवी पूजनीया संहति देवताओंमें हो, उस समय हे अन्नवान् अग्ने ! जब आप रमणीय रत्नोंको स्तोताओंको देवें तब विभाग के समय हमको बहुतसा धनका भाग दीजिये ॥ २६ ॥

"अन्वग्निः" इति सप्तमी "प्रत्यग्निः" इति अष्टमी च पूर्वत्र व्याख्याते [७. ८७. ४. ५] । तयोः पाठस्तु ।

सप्तमी ॥

अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः ।
अनु सूर्य उषसो अनु रश्मीननु द्यावापृथिवी आ विवेश

अनु । अग्निः । उषसाम् । अग्रम् । अख्यत । अनु । अहानि । प्रथमः । जातऽवेदाः ।

अनु । सूर्यः । उषसः । अनु । रश्मीन् । अनु । द्यावापृथिवी इति । आ । विवेश ॥ ७ ॥

अंगनादिगुणसम्पन्न अग्निदेव प्रतिदिन उषःकालके प्रादुर्भाव के साथ ही प्रकाशित होते हैं–दीखते हैं, यह अग्नि पहिले उषः-कालके आरम्भमें प्रकाशित होते हैं और यह अग्निदेव दिनोंके साथ में भी प्रकाशित होते हैं और यह मुख्य जातवेदा अग्नि सूर्य बन कर † उषाको प्रकाशित हैं फिर किरणोंको प्रकाशित करते

† इस मन्त्रसे उत्तरार्धमें सूर्यरूप अग्निकी स्तुति की गई है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं, इस क्रमसे यह सूर्यात्मक अग्नि द्यावापृथिवीमें सर्वत्र व्याप्त होकर प्रकाश फैलाते हैं ॥ २७ ॥

अष्टमी ॥

प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यत् प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः।
प्रति सूर्यस्य पुरुधा च रश्मीन् प्रति द्यावापृथिवी आ ततान ॥ २८ ॥

प्रति । अग्निः । उषसाम् । अग्रम् । अख्यत् । प्रति । अहानि । प्रथमः । जातऽवेदाः ।

प्रति । सूर्यस्य । पुरुऽधा । च । रश्मीन् । प्रति । द्यावापृथिवी इति । आ । ततान ॥ २८ ॥

अङ्गनादिगुणसम्पन्न अग्निदेव प्रत्येक उषःकालके प्रादुर्भाव में प्रकाशित होते हैं और यह अग्निदेव प्रत्येक दिनोंके साथ ही प्रकाशित होते हैं और मुख्य जातवेदा सूर्यात्मक अग्निदेव अनेक रूप होनेसे अनेक प्रकारसे प्रवृत्त सूर्यकी किरणोंमें भी स्वयं ही प्रकाशित होते हैं (क्योंकि—अग्नि और सूर्यमें अत्यन्त भेद नहीं है) इस प्रकार यह द्यावापृथिवी आदि सबमें अपने प्रकाशका विस्तार करते हैं ॥ २८ ॥

नवमी ॥

द्यावा ह क्षामा प्रथमे ऋतेनाभिश्रावे भवतः सत्यवाचा

तैत्तिरीय ब्राह्मण २ । १ । २ । १० में कहा भी है, कि—"उद्यन्तं वावादित्यं अग्निरनुसमारोहति तस्माद् धूम एवाग्नेर्दिवा ददृशे।—उदय होते हुए सूर्यदेव पर अग्निदेव अनुसमारोहण करते हैं। इस कारण दिनमें अग्निदेवका धुआँ ही दीखता है"।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवो यन्मर्तान् यजथाय कृण्वन्त्सीदद्धोता प्रत्यङ् स्वमसुं यन् ॥ २९ ॥

द्यावा । ह । क्षामा । प्रथमे इति । ऋतेन । अभिऽश्रावे । भवतः । सत्यऽवाचा ।

देवः । यत् । मर्तान् । यजथाय । कृण्वन् । सीदत् । होता । प्रत्यङ् । स्वम् । असुम् । यन् ॥ २९ ॥

अत्र द्यावापृथिव्यौ यष्टुम् इच्छन् तयोर्यागस्य अग्निसव्यपेक्षत्वाद् अग्निं स्तौति । द्यावा । ❀ "दिवो द्यावा" इति द्यावादेशः ❀ । द्यौः तथा क्षामा क्षमा पृथिवी द्यावापृथिव्यौ । ❀ व्यवहितप्रयोगश्छान्दसः । यद्वा द्योशब्दस्य द्विवचनं द्यावेति । द्यावौ । क्षामाशब्दस्य द्विवचनं क्षामेति । क्षामे । द्वन्द्वस्य युगपदधिकरणवचनत्वात् परस्परापेक्षया उभयोरपि द्विवचनत्वम् ❀ । द्यावापृथिव्यौ । ह इति प्रसिद्धौ । प्रथमे ह मुख्ये खलु सत्यवाचा सत्यवाचौ सत्यस्तुतिके । सर्वदेवमनुष्याद्याश्रयत्वात् सर्वोपकारकत्वाच्च तद्विषया स्तुतिरूपा वाक् सर्वापि सत्यैव विद्यमानगुणैव । ते ऋतेन यज्ञेन निमित्तेन यज्ञार्थम् अभिश्रावे अभितः श्रूयते इति अभिश्रावे स्तोतु श्रवणयोग्ये भवतः । कदेति उच्यते । यत् यदा देवः द्योतमानोऽग्निः मर्तान् मनुष्यान् यजथाय यागाय यज्ञार्थं कृण्वन् कुर्वन् होता होमनिष्पादको देवानाम् आह्वाता वा प्रत्यङ् यजमानाभिमुखं स्वम् स्वीयम् असुम् प्रज्ञां यागविषयां बलं वा ज्वालालक्षणं यन् गच्छन् प्राप्नुवन् सीदत् निषीदसि । तदा अभिश्रावे भवत इति संबन्धः ॥

[अब यजमान द्यावापृथिवीका याग करना चाहता है और इनका याग अग्निकी अपेक्षा रखता है इस कारण वह अग्निकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्तुतिकरता है,कि–] द्यावा और पृथिवी मुख्य हैं और सत्यवाक् हैं अर्थात् सब देव और मनुष्योंका आश्रय होनेसे तथा सबका उपकारक होनेसे उनकी जो कुछ भी स्तुति की जाय वह ठीक ही है। जिस समय द्योतमान अग्नि मनुष्योंके पास यज्ञके लिये होम-निष्पादकरूपमें यजमानके अभिमुख अपनी ज्वालारूप बुद्धिको चलाते हुए बैठें उस समय वे द्यावापृथिवी यज्ञके कारण स्तोता की स्तुतिको सुनने योग्य होवें ॥ २९ ॥

दशमी ॥

देवो देवान् परिभूर्ऋतेन वहा नो हव्यं प्रथमश्चिकित्वान् ।
धूमकेतुः समिधा भाऋजीको मन्द्रो होता नित्यो वाचा यजीयान् ॥ ३० ॥

देवः । देवान् । परिऽभूः । ऋतेन । वह । नः । हव्यम् । प्रथमः । चिकित्वान् ।
धूमऽकेतुः । सम्ऽइधा । भाःऽऋजीकः । मन्द्रः । होता । नित्यः । वाचा । यजीयान् ॥ ३० ॥

हे अग्ने देवः द्योतमानः प्रकृष्टज्वालस्त्वम् ऋतेन यज्ञेन देवान् यष्टव्यान् परिभूः परिभवन् स्वाधीनान् कुर्वन् प्रथमः मुख्यः सन् चिकित्वान् एतेत्र यष्टव्या इति जानन् नः अस्माकं हव्यम् हविः वह प्रापय देवान् प्रति गमय । अथ अग्निं बहुधा प्रशंसति । धूमकेतुः धूमेन प्रज्ञायमानः समिधा समिन्धनसाधनेन काष्ठादिना भाऋजीकः भासमानदीप्तिः प्रकृष्टज्वालः मन्द्रः मोदमानः मादयिता वा होता देवानाम् आह्वाता नित्यः अविनाशी वाचा स्तुति-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रूपया यजीयान् अतिशयेन यष्टा यष्टव्यो वा। उक्तमहिमोपेतः सन् हव्यं वहेति संबन्धः ॥

इत्यष्टादशकाण्डे प्रथमोनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

हे प्रकृष्ट ज्वाला वाले अग्निदेव! आप यज्ञके द्वारा पूजनीय देवताओंको अपने आधीन करते हुए और प्रधान बन कर इन देवताओंका इस अवसर पर पूजन करना चाहिये यह समझते हुए उन देवताओंके पास हमारी हवि पहुँचाइये हे अग्निदेव! आप धूमसे जाननेमें आने वाले धूमकेतु हैं और समिधाओंसे आपकी ज्वाला दीप्त होती है और आप प्रसन्न करने वाले हैं, देवताओंका आह्वान करने वाले हैं, स्तुतिरूपा वाणीसे पूजा करने के पात्र हैं और अविनाशी हैं अतः आप हमारी हविको पहुँचाइये ॥ ३० ॥ (३)

अठारहवें काण्डके प्रथम अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त

चतुर्थसूक्ते प्रथमा ॥

अर्चामि वां वर्धायापो घृतस्नू द्यावाभूमी शृणुतं रोदसी मे ।
अहा यद् देवा असुनीतिमायन् मध्वा नो अत्र पितरा शिशीताम् ॥ ३१ ॥

अर्चामि । वाम् । वर्धाय । अपः । घृतस्नू इति घृतऽस्नू । द्यावाभूमी इति । शृणुतम् । रोदसी इति । मे ।

अहा । यत् । देवाः । असुऽनीतिम् । आयन् । मध्वा । नः । अत्र । पितरा । शिशीताम् ॥ ३१ ॥

हे घृतस्नू उदकस्य सारयित्र्यौ द्यावापृथिव्यौ वाम् युवयोः अपः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्म वर्धाय अभिवृद्धये । ❀ वृधेर्घञन्तत्वाद् आद्युदात्तः ❀ । अर्चामि स्तौमि । तदर्थम् हे द्यावाभूमी द्यावापृथिव्यौ रोदसी रोधयित्र्यौ द्यावापृथिव्योर्मध्ये सर्वेषां प्राणिनां निरोधात् । अथवा रोधयित्र्यौ वृष्टिफलयोः प्रतिबन्धेन । एवंरूपे द्यावापृथिव्यौ मे मम शृणुतम् । स्तुतिम् इति शेषः ॥ अथ परोक्षम् आह । यत् येषु अहा अहस्सु देवाः । दीव्यतिरत्र स्तुत्यर्थः । युवयोः स्तोतारः ऋत्विजः असुनीतिम् असूनां बलानां नयनम् आयन् अगच्छन् स्वकीयं बलं यज्ञार्थम् अकुर्वन् । अत्र एषु दिवसेषु पितरा पितरौ मातापितरौ द्यावापृथिव्यौ नः अस्माकं मध्वा । ❀ द्वितीयार्थे तृतीया ❀ । मधु उदकं शिशीताम् संस्कुरुतां प्रयच्छताम् । यद्वा मध्वा मधुना उदकेन नः अस्मान् शिशीताम् संस्कुरुताम् । उदकप्रदानेन वर्धयताम् इत्यर्थः । अग्निसाहचर्याद् अनयोः स्तुतिः । ❀ शिशीताम् इति । शो तनूकरणे । लोटि छान्दसं रूपम् ❀ ॥

हे जलके सारक द्यावापृथिवीके अधिष्ठात्री देवताओं ! मैं आपके जलकर्मकी वृद्धिके लिये आपकी स्तुति करता हूँ, इस कारण हे वृष्टिरूप फलके रोधक द्यावा पृथिवी ! तुम मेरी स्तुतिको सुनो और जिन दिनोंमें स्तुति करने वाले ऋत्विज अपने बल को यज्ञके लिये लगावें उन दिनोंमें हे माता पिता द्यावापृथिवी ! तुम हमको जल प्रदान करके बढ़ाओ ॥ ३१ ॥

द्वितीया ॥

स्वावृग् देवस्यामृतं यदी गोरतो जातासो धारयन्त उर्वी
विश्वे देवा अनु तत् ते यजुर्गुर्दुहे यदेनी दिव्यं घृतं वा

स्वावृक् । देवस्य । अमृतम् । यदि । गोः । अतः । जातासः ।
धारयन्ते । उर्वी इति ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विश्वे । देवाः । अनु । तत् । ते । यजुः । गुः । दुहे । यत् । एनी । दिव्यम् । घृतम् । वाः ॥ ३२ ॥

देवस्य द्योतमानस्य अग्नेः स्वावृक् सुष्ठु आवर्जकं सर्वप्राण्यावर्जकं स्वाधीनकर्तृ अमृतम् अमृतवद् उपकारकम् उदकं यदि यदा गोः रश्मेः सकाशाद् उत्पद्यते अतः अस्माद् अमृताद् वृष्ट्युदकात् जातासः जाता ओषधयः उर्वी उर्व्यौ महत्यौ द्यावापृथिव्यौ धारयन्ते अधारयन्त । भूमिष्ठानां द्युस्थानां च प्राणिनां तिलव्रीह्याद्यौषध्युपजीवित्वात् तल्लोकनिवासिनां धारणेन तद्धारकत्वोपचारः किंच यत् यदा एनी श्येता तव दीप्तिः । ❀ "वर्णाद् अनुदात्तात्०" इति एत शब्दात् ङीप् तकारस्य नकारश्च ❀ । दिव्यम् दिवि भवं घृतम् क्षरद् वाः सर्वलोकच्छादकम् उदकं दुहे दुग्धे हे अग्ने ते तव तद् यजुः । युज्यत इति यजुः कर्म तत् कर्मजनितम् उदकं विश्वे सर्वे देवा अनु गुः अनुगच्छन्ति । उदकाभिवृद्धानां व्रीह्यादीनाम् अनुगतिरेव उदकानुगतिरित्युच्यते । यद्वा इज्यत इति यजुः । ❀यजिरत्र दानार्थः ❀ । तव तद् दानम् उदकविषयं विश्वे सर्वे देवाः । ❀ दीव्यतिरत्र स्तुत्यर्थः ❀ । स्तोतार ऋत्विजः अन्वगुः अनुयान्तीति व्याख्येयम् ॥

द्योतमान अग्निदेवका सब प्राणियोंको स्वाधीन करने वाला और अमृतकी समान उपकारक जल जब किरणोंसे प्रकट होता है तब इस वृष्टिजलरूप अमृतसे उत्पन्न हुई औषधियें द्यावापृथिवी को धारण करती हैं [भूमिके तथा द्युलोकके सब प्राणी तिल व्रीहि आदि ओषधियोंसे जीवित रहते हैं अत एव औषधियें धारण करती हैं-कहा है] और जब आपकी यह श्वेत दीप्ति अन्तरिक्ष में होने वाले क्षरणशील सर्वलोकाच्छादक जलको दुहती है तब हे अग्ने ! आपके कर्मसे प्रकट हुए जलका सब स्तोता अनुगमन करते हैं अर्थात् जलसे बढ़े हुए धान आदिका उपभोग करते हैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृतीया ॥

किं स्विन्नो राजा जगृहे कदस्यातिव्रतं चकृमा को वि वेद ।
मित्रश्चिद्धि ष्मा जुहुराणो देवांछ्लोको न यातामपि वाजो अस्ति ॥ ३३ ॥

किम् । स्वित् । नः । राजा । जगृहे । कत् । अस्य । अति । व्रतम् । चकृम । कः । वि । वेद ।

मित्रः । चित् । हि । स्म । जुहुराणः । देवान् । श्लोकः । न । याताम् । अपि । वाजः । अस्ति ॥ ३३ ॥

राजा देवेषु मध्ये क्षत्रियजातिर्यमो नः अस्माकं संबन्धि किंचिद्धविरादकं किं स्वित् जगृहे गृह्णाति । कत् कदा अस्य यमस्य प्रीणनं व्रतम् कर्म यमप्रीतिकरं नित्यनैमित्तिकरूपं कर्म अति चकृम अतिक्रमं कृतवन्तः स्मः । को वि वेद तत् को जानाति । अविद्यमानं ज्ञातुं कः शक्नोति । यमविषयापराधपरिहारोस्तीत्याह । देवान् ह्वातव्यान् जुहुराणः आह्वयन् । ❀ ह्व कौटिल्ये । कानचि रूपम् । धातूनाम् अनेकार्थत्वाद् अत्र ह्वयत्यर्थः ❀ । मित्रः मित्रवद्धितकारी अग्निर्विद्यते । चित् हि स्म इति पादपूरणः । सर्वं स एव परिहरिष्यतीत्यर्थः । यातान् देवानभिगच्छतो नः अस्मान् रक्षितुं श्लोको न । नेति उपमार्थे । श्लोकः स्तुतिः । स्तुतिर्यथास्ति एवं वाजोपि हविर्लक्षणम् अन्नं च विद्यते । अस्मान् रक्षितुं स्तुत्या हविषा च अग्निं परितोष्य तन्मुखाद् यमस्यापराधं परिहरिष्याम इत्यभिप्रायः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवताओंमें क्षत्रिय जाति वाला राजा यम हमारी कुछ हविको ग्रहण कर लेवे क्योंकि-कभी हमने यमको प्रसन्न करने वाले नित्य नैमित्तिक कर्मका अतिक्रमण कर लिया हो, परन्तु यह शंका होती है, कि-अविद्यमानको जाननेके लिये कौन समर्थ होसकता है कि-यमका अपराध क्षमा होगया या नहीं तब कहते हैं, कि-देवताओंका आह्वान करने वाले, मित्रकी समान हितकारी अग्निदेव विद्यमान हैं वही सब दूर कर देंगे। देवताओं की शरणमें जाते हुए हमारे पास स्तुतिकी समान हवि भी है अत एव अपनी रक्षा करनेके लिये हम स्तुति और हविसे अग्नि को सन्तुष्ट करके उनके द्वारा यमके अपराधको क्षमा करा लेंगे ३३

चतुर्थी ॥

दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति
यमस्य यो मनवते सुमन्त्वग्ने तमृष्व पाह्यप्रयुच्छन्

दुःऽमन्तु । अत्र । अमृतस्य । नाम । सऽलक्ष्मा । यत् । विषुऽरूपा । भवाति ।

यमस्य । यः । मनवते । सुऽमन्तु । अग्ने । तम् । ऋष्व । पाहि । अप्रऽयुच्छन् ॥ ३४ ॥

पूर्वत्र "सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति" [२] इत्यत्र यमेन स्वसृभूताया यम्याः या संभोगप्रार्थना निराकृता तां स्मारयन्नाह । अत्र अस्मिन् । कृते सतीति शेषः । यद्वा अत्र यम्याः संभोगविषये अमृतस्य अमरणस्य यमस्य नाम नामधेयं दुर्मन्तु दुर्मननं दुर्वचम् । भवतीति शेषः । कथं भवतीत्याशङ्क्य तत्र कारणम् आह सलक्ष्मेति । यत् यस्मात् कारणात् यमस्य यमीम् इच्छतः । अथवा यत् यस्मै संभोगम् अङ्गीकुर्वते यमाय इति व्याख्येयम् । स-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लक्ष्मा समानोदरा स्वसा यमी संभोगानन्तरं विषुरूपा भिन्नरूपा भार्यारूपा भवाति भवेत् । अतः स्वभगिनीभर्तेति यमस्य दुर्वचं नाम भवेद्ध इत्यर्थः ॥ तथा सति यश्च पुमान् यमस्य राज्ञो नाम सुमन्तु सुवचं नाम मनवते मन्नुते स्तौति । ❀ मनु अवबोधने । लेटि तनादित्वाद् उप्रत्ययः । "लेटोडाटौ" इति अडागमः । आगमस्य अनुदात्तत्वेन विकरणस्वरः ❀ । तं स्तोतारम् हे ऋष्व दर्शनीय अग्ने त्वम् अप्रयुच्छन् अमाद्यन् विस्मरणम् अकुर्वाणः पाहि रक्ष । एवं यमस्य निन्दानुकीर्तनदोषपरिहारप्रार्थनारूपेण अग्नेः स्तुतिः ॥

यहाँ यमका नाम लेना अच्छा नहीं लगता दुर्वच है, क्योंकि– इनकी बहिनने इनको अपना पति बनाना चाहा था ऐसी दशामें भी जो पुरुष इन यमराजके नामको लेरहा है इनकी स्तुति कर रहा है, उस स्तोताकी हे दर्शनीय अग्ने ! आप इन निन्दाका विस्मरण करते हुए उस की रक्षा करिये ॥ ३४ ॥

पञ्चमी ॥

यस्मिन् देवा विदथे मादयन्ते विवस्वतः सदने धारयन्ते
सूर्ये ज्योतिरदधुर्मास्य१क्तून् परि द्योतनिं चरतो अजस्रा

यस्मिन् । देवाः । विदथे । मादयन्ते । विवस्वतः । सदने । धारयन्ते । सूर्ये । ज्योतिः । अदधुः । मासि । अक्तून् । परि । द्योतनिम् । चरतः । अजस्रा ॥ ३५ ॥

यस्मिन् अग्नौ सति यज्ञनिर्वर्तकत्वेन अग्नौ विद्यमाने सति देवा इन्द्राद्याः विदथे यज्ञे मादयन्ते माद्यन्ति । यस्मिन् सति मनुष्या विवस्वतः सूर्यस्य सदने स्थाने सूर्यलोके धारयन्ते वर्तन्ते । कर्मफलम् उपभुञ्जानाः सुखेन अवतिष्ठन्ते । येन वा अग्निना देवाः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूर्ये ज्योतिः लोकत्रयप्रकाशकं तेजः अदधुः स्थापितवन्तः । एवं मासि मास्यते परिमीयत इति मा चन्द्रः । ❀ "पद्दन्नोमास्०" इत्यादिना मासशब्दस्य मास्भावः ❀ । तस्मिन् अक्तून् व्यञ्जकान् तमोनिवर्तकान् रश्मीन् अग्नेः सकाशाद् आहृत्य देवाः स्थापितवन्तः । यद्वा अक्तवो रात्रयः । चन्द्रमसि रात्रीः स्थापितवन्तः । यस्माद् एवं तस्माद् द्योतनिम् द्योतमानम् अग्निं तौ चन्द्रसूर्यौ अजस्रम् सततं परि चरतः ॥

जिन अग्निदेवके यज्ञको सम्पन्न करने वालेके रूपमें विद्यमान होने पर देवता प्रसन्न होते हैं और जिनके होने पर मनुष्य सूर्यलोकमें रहते हैं अर्थात् सूर्यलोकमें कर्मफलका उपभोग करते हुए सुखपूर्वक रहते हैं और जिस अग्निके द्वारा देवताओंने सूर्यमें तीनों लोकोंके प्रकाशक तेजको स्थापित किया है और देवताओं ने जिनके पाससे तमोनिवर्तक किरणोंको लेकर चन्द्रमामें स्थापित किया है ऐसे द्योतमान अग्निकी चन्द्रमा और सूर्य निरन्तर सेवा करते हैं ॥ ३५ ॥

षष्ठी ॥

यस्मिन् देवा मन्मनि संचरन्त्यपीच्ये३ न वयमस्य विद्म मित्रो नो अत्रादितिरनागान्त्सविता देवो वरुणाय वोचत् ॥ ३६ ॥

यस्मिन् । देवाः । मन्मनि । सम्ऽचरन्ति । अपीच्ये । न । वयम् । अस्य । विद्म ।

मित्रः । नः । अत्र । अदितिः । अनागान् । सविता । देवः । वरुणाय । वोचत् ॥ ३६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यस्मिन् मन्मनि मन्तव्ये स्थाने वरुणाख्ये देवाः यष्टव्याः संचरन्ति । कीदृशे स्थाने । अपीच्ये । अन्तर्हितनामैतत् । अस्य वरुणस्य तत् स्थानं न वयं विद्म न जानीमः । अत्र अन्तर्हितस्थाने स्थिताय देवसंचारास्पदाय वरुणाय नः अस्मान् अनागान् अनागसः सविता देवः अदितिः देवमाता द्यौः मित्रश्च हे अग्ने त्वदनुग्रहाद् । वोचत् ब्रवीतु । वोचद् इति प्रत्येकं संबध्यते ॥

जिस मननीय वरुणके अन्तर्हित स्थानमें पूजनीय देवता विचरण करते हैं उस स्थानको हम नहीं जानते हैं, इस अन्तर्हित स्थानमें स्थित वरुणदेवसे देवता हमको निरपराध बतावें, सविता देवता, देवमाता अदिति द्युलोक और मित्रदेवता भी हे अग्ने ! आपके अनुग्रहसे हमको निरपराध बतावें ॥ ३६ ॥

सप्तमी ॥

सखा॑य॒ आ शि॑षामहे॒ ब्रह्मेन्द्रा॑य व॒ज्रिणे॑ ।
स्तु॒ष ऊ॒ षु नृत॑माय धृ॒ष्णवे॑ ॥ ३७ ॥

सखा॑यः । आ । शि॒षा॒म॒हे॒ । ब्रह्म॑ । इन्द्रा॑य । व॒ज्रिणे॑ ।
स्तु॒षे । ऊ॒ इति॑ । सु । नृऽत॑माय । धृ॒ष्णवे॑ ॥ ३७ ॥

हे सखायः सखिभूताः परस्परं प्रेमवन्तः वयं वज्रिणे वज्रोपेताय । अनेन अतिशयितवीर्यत्वम् अस्य उक्तं भवति तेन च तस्य अवश्ययष्टव्यतावगम्यते । तादृशाय इन्द्राय देवाय ब्रह्म परिवृढं कर्म आ शिषामहे आशास्महे । कर्तुम् इति शेषः । ❀ आङः शासु इच्छायाम् । लेटि आडागमः । "शास इदङ्हलोः" इति विहितम् इत्वम् अत्र व्यत्ययेन भवति । "शासिवसिघसीनां च" इति षत्वम् ❀ । अथ वा अयम् अर्थः । सखायो वयम् । यजमाना इति शेषः । अस्मिन् पक्षे सखायः इन्द्रस्य सखिभूता इत्यर्थः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तत्सखित्वं च हविःप्रदानाभिमतफलप्रदानाभ्याम् इति मन्तव्यम्। उ अपि च नृतमाय नेतृतमाय। नृणां मध्य इति शेषः। सर्वेषां देवानां मुख्यायेत्यर्थः। धृष्णवे धर्षकाय शत्रूणां प्रच्यावकाय एवं रूपाय इन्द्राय तत्प्रीणनाय स्तुषे स्तौमि। अथ वा एकमेव वाक्यम्। उक्तविशेषणोपेताय इन्द्राय स्तुषे स्तोतुम्। ❀ ष्टुञ् स्तुतौ। तुमर्थे क्सेप्रत्ययः ❀। ब्रह्म स्तुतिसाधनं मन्त्रजातम् आ शिषामहे इच्छाम इति योजना ॥

परस्पर प्रेम रखने वाले मित्ररूप हम वज्रधारी इन्द्रदेवके निमित्त दृढ़ कर्मको करनेकी आशा रखते हैं, मैं परमनेता और शत्रुओंके धर्षक इन्द्रदेवकी स्तुति करता हूँ ॥ ३७ ॥

अष्टमी ॥

शवसा ह्यसि श्रुतो वृत्रहत्येन वृत्रहा।
मघैर्मघोनो अति शूर दाशसि ॥ ३८ ॥

शवसा। हि। असि। श्रुतः। वृत्रऽहत्येन। वृत्रऽहा।
मघैः। मघोनः। अति। शूर। दाशसि ॥ ३८ ॥

पूर्वमन्त्रे वज्रिणे ब्रह्म आ शिषामह इत्युक्तम्। अनेन मन्त्रेण तस्य महत्त्वं वर्णयन् स्वाभिमतम् आशास्ते। हे इन्द्र वृत्रहा वृत्रस्य हन्ता बलवतोऽसुरस्य हन्ता त्वं वृत्रहत्येव वृत्रहननेनेव यथा त्वं श्रुतः एवं शवसा। बलनामैतत्। बलेन गोत्रभेदनबलनमुच्याद्यसुरविनाशकरणादिरूपसामर्थ्येन श्रुतः विख्यातोसि तेन युक्तो भवसि। यस्माद् एवम् अतो मघैः महनीयैर्बहुविधैर्धनैः मघोनः धनवतः बहुविधैर्धनैराढ्योहम् इति मन्यमानस्य आढ्यस्य। धनम् इति शेषः। हे शूर विक्रान्त त्वं तद्धनम् अति दाशसि अतिप्रयच्छसि। मह्यम् इति शेषः। त्वदर्थं यागम् अकुर्वाणस्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धनं तव यष्टे मह्यं प्रयच्छेत्यर्थः। "अयज्वनो विभजन्नेति वेदः" [ऋ० १. १०३. ६]। "आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदः" [ऋ० ३. ५३. १४] इत्यादिश्रुतेः ॥

[पूर्वमन्त्रमें इन्द्रदेवका स्तुतिरूप दृढ़कर्म करनेकी आशा दिखाई अब इस मन्त्रसे उनके महत्त्वका वर्णन करते हुए अपने अभिमतको प्रकाशित करते हैं, कि–] हे इन्द्रदेव ! आप वृत्रासुरके मारने वाले हैं, जैसे आप वृत्रासुरको मारनेके लिये प्रसिद्ध हैं इसी प्रकार अपने बलसे अर्थात् नमुचि बल आदिका नाश करने वाले बलके कारण प्रसिद्ध हैं अत एव अनेक प्रकारके धनोंके कारण अपनेको धनी मानने वालेके धनको आप मुझको दीजिये अर्थात् आपके निमित्त याग न करने वालेके धनको मुझ आपका यज्ञ करने वालेको दीजिये। [ऋग्वेदसंहिता १। १०३। ६ में कहा है, कि–"अयज्वनो विभजन्नेति वेदः।–यज्ञ न करने वालेके धनको बाँटता हुआ आता है" और ऋग्वेदसंहिता ३।५३।१४में कहा है, कि–"आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदः"] ॥ ३८ ॥

नवमी ॥

श्री गणेशवर्णी दि० जैन संस्थान
नरिया, वाराणसी-५
५४५५

स्तेगो न क्षामत्यप्येषि पृथिवीं मही नो वाता इह वान्तु भूमौ ।
मित्रो नो अत्र वरुणो युज्यमानो अग्निर्वने न व्यसृष्टशोकम् ॥ ३९ ॥

स्तेगः । न । क्षाम् । अति । एषि । पृथिवीम् । मही इति । नः । वाताः । इह । वान्तु । भूमौ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मित्रः । नः । अत्र । वरुणः । युज्यमानः । अग्निः । वने । न ।

वि । असृष्ट । शोकम् ॥ ३९ ॥

स्त्यायति संघातेन बाहुल्येन शब्दं करोति वर्षास्विति स्तेगो मण्डूकः । स यथा क्षाम् क्षियन्ति निवसन्त्यत्रेति क्षा मही तां यथा अत्येति । वर्षाकाले भुवं परित्यज्य अप्सु सवत इत्यर्थः । एवं त्वं पृथिवीम् अत्येषि अतिगच्छसि ऊर्ध्वं गच्छसि । अथ वा अतीति अभीत्यस्यार्थे । अभिगच्छसि सर्वां पृथिवीम् । महीति पृथिवीविशेषणम् । महतीम् इत्यर्थः । ❀ अमः । स्थाने सुः ❀। अथ वा महीति उत्तरत्र वाता इत्यनेन संबध्यते । किं च मही महान्तो वाता वायवः इह भूमौ नः अस्माकं वान्तु । अग्निसहायत्वेनेति शेषः । यद्वा अस्माकं सुखायेति योज्यम् । किं च मित्रः सर्वप्राणिनां मित्रभूतः एतन्नामको देवः नः अस्माकम् अर्थाय अत्र अस्मिन् कर्मणि युज्यमानः सन् शोकं व्यसृष्टेति उत्तरत्र संबन्धः । तथा वरुणोपि देवो युज्यमानः सन् शोकं व्यसृष्ट । नाशयत्वित्यर्थः । ❀ सृज विसर्गे । अस्माद् दैवादिकात् लुङि रूपम् ❀। तत्र दृष्टान्तः । अग्निर्वने न अग्निर्यथा तृणगुल्मादिकं कार्त्स्न्येन विसृजति दहति एवम् इति ॥

जैसे मण्डूक वर्षाकालमें पृथिवीका अतिक्रमण करता है अर्थात् पृथ्वीको छोड़ कर जलमें कूद जाता है इसी प्रकार आप भी विशाल पृथ्वीका अतिक्रमण कर ऊपरको जाते हैं और अग्निकी सहायतासे यह वायु हमको सुख देनेके लिये वहें । और सब प्राणियोंके मित्ररूप मित्र नामक देवता इस कर्ममें लग कर हमारे शोकको दूर करें और वरुणदेव भी इस कर्ममें लग कर हमारे शोकको इस प्रकार दूर करें, जिस प्रकार अग्नि घासको पूर्णरीतिसे भस्म कर डालता है ॥ ३९ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दशमी ॥

स्तुहि श्रुते गर्तसदं जनानां राजानं भीममुपहत्नुमुग्रम्
मृडा जरित्रे रुद्र स्तवानो अन्यमस्मत् ते नि वपन्तु
सेन्यम् ॥ ४० ॥

स्तुहि । श्रुतम् । गर्तऽसदम् । जनानाम् । राजानम् । भीमम् ।
उपऽहत्नुम् । उग्रम् ।
मृड । जरित्रे । रुद्र । स्तवानः । अन्यम् । अस्मत् । ते । नि ।
वपन्तु । सेन्यम् ॥ ४० ॥

अत्र अग्निरूपो रुद्रः स्तूयते । "रुद्रो वै क्रूरः" [तै० सं ६. १. ७. ७] "एष रुद्रो यद् अग्निः" [तै० ब्रा० १. १. ५. ८] इति श्रुतेः । अत्र स्तोता स्वात्मानमेव संबोध्य ब्रूते । हे स्तोतस्त्वं श्रुतम् प्रसिद्धं गर्तसदम् । "श्मशानसंचयोपि गर्त उच्यते" [नि० ३. ५] इति निरुक्तोक्तेर्गर्तः शवदाहप्रदेशः । तत्र सीदतीति गर्तसदः । प्रसिद्धो गर्तो वा परिगृह्यते । तस्य अरण्ये संचाराद् गर्तसदनं युज्यते । पुनः कीदृशम् । जनानां किरातपिशाचादिजनानां राजानम् स्वामिनम् । तथा भीमम् बिभेति अस्माद् इति भीमं भयजनकम् । तथा उपहत्नुम् उपेत्य हन्तारम् । उग्रम् उद्गूर्णबलम् । एवंमहानुभावं रुद्रम् हे आत्मन् स्तुहि स्तुतिं कुरु ॥ अथ प्रत्यक्षवादः । हे रुद्र । सर्वप्राणिनो माम् अनिष्ट्वा नश्यन्तीति स्वयं रौति इति रुद्र । ❀ रुद्रो रौतीति सतः [नि० १०. ५] इति निरुक्तम् ❀ । अथ वा देवैर्भर्त्सितः सन् स्वयम् अरोदीद् इति रुद्रः । "सोऽरोदीत् । यद् अरोदीत् तद् रुद्रस्य रुद्रत्वम्" इति श्रुतेः [तै० सं० १. ५. १. १] । यद्वा रुद् दुःखं दुःखहेतुभूतं पापं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वा । तद् द्रावयतीति रुद्रः । स्वसेवकानां दुःखस्य द्रावकत्वं श्रुत्यागमप्रसिद्धम् । तादृशस्त्वं स्तवानः । ❀ कर्मणि कर्तृप्रत्ययः ❀ । अस्माभिः स्तूयमानः सन् मृड सुखय अस्मान् । अतस्ते सेन्यम् सेनाः अस्मत् अस्मत्तः अन्यम् तव द्वेष्टारं नि वपन्तु । ❀ 'वपि-प्राप्त्यर्थः ❀ । नितरां प्राप्नुवन्तु । अथ वा सेन्यम् तव सेनार्हम् । ❀ "तद् अर्हति" इति यः ❀ । अन्यम् इति व्ताख्येयम् । अस्मिन् पक्षे सेना इति शेषः सामर्थ्याल्लभ्यते ॥

इति अथर्वसंहितायाम् अष्टादशकाण्डे प्रथमेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

[इस मन्त्रमें अग्निरूप रुद्रकी स्तुतिकी गई है । तैत्तिरीयसंहिता ६ । १ । ७ । ७ में लिखा है, कि-"रुद्रो वै क्रूरः ।-रुद्रदेव क्रूर हैं" और तैत्तिरीयब्राह्मण १ । १ । ५ । ८ में कहा है, कि-"एष रुद्रो यद् अग्निः ।-यह रुद्र हैं जो अग्नि हैं" यहाँ स्तुति करने वाला अपनेको ही सम्बोधित करके कहता है, कि-] हे स्तोतः । तू श्मशानमें भवन वाले, किरात पिशाच आदिके राजा, भयजनक, समीपमें आकर मारने वाले, प्रचण्ड बली महानुभाव रुद्रकी स्तुति कर । हे सब प्राणियोंके रुद्र अर्थात् दुःखको भगाने वाले रुद्र ! हमसे स्तुति पाकर आप हमको सुख दीजिये । और आपकी सेना हमको छोड़ कर दूसरे आपसे द्वेष करने वाले पर पड़े ॥ ४० ॥

प्रथम अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त ॥

पितृमेधकर्मणि "सरस्वतीं देवयन्तः" [४१] इति तिसृभिः अग्निदाता कनिष्ठपुत्रश्चितौ दक्षिणत आज्येन सारस्वतहोमान् कुर्यात् ॥

तत्रैव कर्मणि शवदहनस्थानम् "उदीरताम्" [४४] इत्यृचा काम्पीलशाखया उद्धृत्य अभ्युक्ष्य लक्षणं कुर्यात् [कौ० ११.१] ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा पिण्डपितृयज्ञेपि अनया ऋचा गर्तं खनेत्। तथा च सूत्रितम्। "यज्ञोपवीती दक्षिणपूर्वम् अन्तर्देशम् अभिमुख उदीरताम् इति कर्षूं खनति प्रादेशमात्रीं तिर्यगङ्गुलिमिताम्" इति [कौ० ११. ८]॥

तत्रैव "उदीरताम्" इति तृचेन त्रीणि उदपात्राणि बर्हिषि निनयेत्। सूत्रितं हि। "उदीरताम् इति तिसृभिरुदपात्राण्यन्वृचं निनयति" इति [कौ० ११. ८]॥

तत्रैव "इदं पितृभ्यः" [४६] इत्यृचा गर्ते दर्भान् स्तृणीयात्॥

पितृमेधे परेयिवांसम् इति द्वाभ्यां कनिष्ठपुत्रेण चित्यादीपने सति याम्यौ होमौ कुर्यात्॥

पितृमेधकर्ममें "सरस्वतीं देवयन्तः" इस इकतालीसवींसे तैंतालीसवीं तककी तीन ऋचाओंसे अग्निदाता कनिष्ठ पुत्र चिताके दक्षिणकी ओर घृतसे सारस्वत होमोंको करे।

तहाँ ही कर्ममें शवदहनस्थानको "उदीरिताम्" इस ४४ वीं ऋचासे काम्पीलशाखासे उद्धृत करके और अभ्युक्षित करके लक्षण करे। [कौशिकसूत्र ११। १]॥

तथा पिण्डपितृयज्ञमें भी इस ऋचासे गड्ढा खोदे। इसी बातको सूत्रमें कहा है, कि—"यज्ञोपवीती दक्षिणपूर्वं अन्तर्देशं अभिमुखं उदीरताम् इति कर्षूं खनति प्रादेशमात्रीं तिर्यगंगुलिमिताम् (कौशिकसूत्र ११। ८)॥

तहाँ ही "उदीरताम्" इस तृचसे तीन जलपूर्ण पात्रोंको कुशा पर रक्खे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"उदीरतां इति तिसृभिरुदपात्राण्यन्वृचं निनयति" (कौशिकसूत्र ११। ८)॥

तहाँ ही "इदं पितृभ्यः" इस ४६ वीं ऋचासे गर्तमें कुशाओं को बिछावे।

पितृमेधमें "परेयिवांसम्" इन दो ऋचाओंसे कनिष्ठ पुत्रके द्वारा चिताके प्रदीप्त होने पर याम्य होमोंको करे।

३७८५
Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तत्र प्रथमा ॥

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥

सरस्वतीम् । देवऽयन्तः । हवन्ते । सरस्वतीम् । अध्वरे । तायमाने ।
सरस्वतीम् । सुऽकृतः । हवन्ते । सरस्वती । दाशुषे । वार्यम् । दात्

सरस्वतीम् सरणवतीं सकलशब्दसरणिस्वरूपां वाग्देवतां देवयन्तः देवान् यष्टव्यान् आत्मन इच्छन्तः । ❀ "सुप आत्मनः क्यच्" इति क्यच् ❀ । अत्र विनियोगानुसारेण देवः मृतशरीरस्य संस्कारकोऽग्निः यमो वाभिमतः । तम् इच्छन्तः हवन्ते आह्वानं कुर्वन्ति । तस्य प्रीणनायेति शेषः । तथा सरस्वतीमेव अध्वरे यज्ञे ज्योतिष्टोमे तायमाने सति हवन्ते। ❀ "तनोतेर्यकि" इति आत्वम् ❀। यज्ञे सारस्वतहोमस्य विद्यमानत्वात् स्तोत्रशस्त्रादीनां वागात्मकत्वात् तत्सिद्धये च हवन्ते । अत्रापि विनियोगानुसारेण अध्वरः पैतृमेधिको द्रष्टव्यः। एवम् उत्तरत्रापि विनियोगानुसारेण योज्यम्। तथा सरस्वतीं सुकृतः सुकर्माणः स्वस्वाभिमतफलाय अह्वयन्त आह्वानम् अकुर्वन् पूर्वे आह्वयन्ति इदानीम् । इति सरस्वती देवी दाशुषे हविर्दत्तवते यजमानाय वार्यम् वरणीयं दात् प्रयच्छतु ॥

मृत शरीरके संस्कारक अग्निदेवको चाहते हुए पुरुष वाग्देवता सरस्वतीका आह्वान करते हैं और ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ के चलने पर भी सरस्वतीका आह्वान करते हैं और पुण्यात्मा पुरुषोंने भी सरस्वतीका आह्वान किया है वह सरस्वती हविः प्रदान करने वाले यजमानके लिये वरणीय पदार्थको देवे ॥४१॥

द्वितीया ॥

सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे

सरस्वतीम् । पितर । हवन्ते । दक्षिणा । यज्ञम् । अभिऽनक्षमाणाः ।

आऽसद्य । अस्मिन् । बर्हिषि । मादयध्वम् । अनमीवाः । इषः ।

आ । धेहि । अस्मे इति ॥ ४२ ॥

सरस्वतीं देवीं पितरोपि हवन्ते आह्वयन्ति । कीदृशाः । दक्षिणा । ❀ "दक्षिणाद् आच्" इति आच् प्रत्ययः ❀ । वेदेर्दक्षिणभागे यज्ञम् अभिनक्षमाणाः व्याप्नुवानाः । ❀ नक्षतिर्व्याप्तिकर्मा ❀ । "सर्वकर्माणि तां दिशम्" इत्यादिसूत्रात् [आश्व० २. ६. ३] वेदेर्दक्षिणभागे पैतृकं कृत्स्नं कर्म क्रियते । पितृणामपि स्वधालाभाय सरस्वत्यपेक्षा विद्यत एव । तत्रापि मन्त्रादिरूपायाः सरस्वत्या अपेक्षितत्वम् ॥ हे पितरः यूयम् अस्मिन् क्रियमाणे बर्हिषि यज्ञे आसद्य उपविश्य मादयध्वम् सरस्वतीं तर्पयत । आसद्य यूयं वा मादयध्वम् तृप्ता भवत । अस्माभिर्दत्तया स्वधयेति शेषः । किं च हे सरस्वति पितृभिराहूता त्वम् अनमीवाः हिंसकै रक्षोभिर्वर्जिताः व्याधिरहिता वा इषः इष्यमाणाः एवंलक्षणानि अन्नानि अस्मे अस्मासु आ धेहि स्थापय ॥

वेदीके दक्षिण भागमें बैठे हुए पितर भी सरस्वती देवीका आह्वान करते हैं ["सर्वकर्माणि तां दिशम् ।—सब कर्म दक्षिण दिशाकी ओर किये जावें" इस आश्वलायनसूत्र २ । ६ । ३ के अनुसार वेदीके दक्षिण भागमें सब पित्र्य कर्म किया जाता है । और पितरोंको भी स्वधाप्राप्तिके लिये मंत्ररूपा सरस्वतीकी अपेक्षा होती ही है] हे पितरो ! तुम इस यज्ञमें बैठ कर प्रसन्न होओ, सरस्वतीको तृप्त करो और आकर हमारी दी हुई हविसे तृप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होओ। और हे सरस्वति ! पितरोंसे बुलाई हुई तुम व्याधिशून्य अभिलषित अन्नको हममें स्थापित करो ॥ ४२ ॥

तृतीया ॥

सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
सहस्रार्घमिडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानाय धेहि

सरस्वति । या । सऽरथम् । ययाथ । उक्थैः । स्वधाभिः । देवि । पितृऽभिः । मदन्ती ।

सहस्रऽअर्घम् । इडः । अत्र । भागम् । रायः । पोषम् । यजमानाय । धेहि ॥ ४३ ॥

हे सरस्वति देवि या प्रसिद्धा त्वं सरथम् समानम् एकमेव रथं ययाथ यासि । सामर्थ्यात् पितृभिरिति गम्यते । ❀ या प्रापणे । लिटि "अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम्" इति थलि इडभावः ❀ । कीदृशी त्वम् । उक्थैः शस्त्रैः स्वधाभिः । पितॄणाम् अन्नं स्वधा । ताभिश्च पितृभिः सह मदन्ती आत्मानं तर्पयन्ती । त्वम् अत्र सहस्रार्घम् अनेकैः पुत्रादिभिः पूजनीयं पुत्रादिसंतर्पकं बहुमूल्यत्वेन अनर्घं वा इडः अन्नस्य भागम् भजनीयम् अंशं रायस्पोषम् धनस्य गवादिलक्षणस्य पुष्टिं च यजमानाय मह्यं धेहि प्रयच्छ। ❀ रायस्पोषम् इति । षष्ठ्याः पतिपुत्र०" इत्यादिना सांहितिकं सत्त्वम् ❀ ॥

हे सरस्वती देवि ! आप उक्थ शस्त्र तथा स्वधान्नसे पितरों सहित अपनेको तृप्त करती हुई एक ही रथ पर आती हैं आप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहाँ पुत्र आदि अनेकों व्यक्तियोंको तृप्त करने वाले अन्नके भागको और धनकी पुष्टिको मुझ यजमानको दीजिये ॥ ४३ ॥

चतुर्थी ॥

उदीरतामवर उत् परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ४४

उत् । ईरताम् । अवरे । उत् । परासः । उत् । मध्यमाः । पितरः ।
सोम्यासः ।

असुम् । ये । ईयुः । अवृकाः । ऋतऽज्ञाः । ते । नः । अवन्तु ।
पितरः । हवेषु ॥ ४४ ॥

अवरे वयसा गुणैर्वा निकृष्टाः पितरः उदीरताम् उत्तिष्ठन्तु । ❀ ईर गतौ । आदादिकोऽनुदात्तेत् ❀ । तथा परासः परे वयआदिना श्रेष्ठाः पितरः उदीरताम् । एवं मध्यमाः उक्तप्रकारेण तादृशाः पितरः उत्तिष्ठन्तु । अथ वा अवरे पुत्रपौत्रप्रपौत्राः परासः परे वृद्धप्रपितामहादयः । मध्यमाः पितृपितामहप्रपितामहाः । सर्वत्र उदीरताम् इति संबन्धः । यद्वा सोम्यास इति सोमसंबन्धाद् "अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः" [५८] इत्यादिमन्त्रोक्ता अङ्गिरःप्रभृतयः पूर्वतनाः पितरः अत्र गृह्यन्ते । तेष्वेव तपआदिमहत्त्वतारतम्येन अवरपरमध्यमत्वलक्षणो विभागो द्रष्टव्यः ते विशेष्यन्ते । सोम्यासः । सोमार्हाः सोमसंपादिनः । ❀ "सोमम् अर्हति यः" इति यप्रत्ययः ❀ । ये असुम् प्राणम् ईयुः प्राणोपलक्षितं लिङ्गशरीरं प्राप्ताः प्राणं वा प्रयच्छन्ति स्वयष्टृभ्यः । अवृकाः अहिंसकाः । ऋतज्ञाः सत्यविदः । ते तादृशाः पितरः हवेषु आह्वानेषु निमित्तभूतेषु नः अस्मान् अवन्तु रक्षन्तु ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवस्था वा गुणोंमें निकृष्ट पितर उठें और अवस्था वा गुणों में श्रेष्ठ पितर उठें और इसी प्रकारके मध्यम पितर उठें। अथवा पुत्र पौत्र प्रपौत्र रूप अवर पितर तथा वृद्धप्रपितामह आदि पर पितर तथा पिता पितामह प्रपितामह आदि मध्यम पितर उठें। वा तप आदिके महत्वके कारण अवर पर और मध्यम अंगिरा आदि पितर उठें, यह पितर सोमका भक्षण करने वाले हैं; ये प्राणोपलक्षित लिंगशरीरको प्राप्त होगए हैं अहिंसक हैं, सत्यज्ञ हैं, ऐसे पितर आह्वानोंके समय हमारी रक्षा करें ॥ ४४ ॥

पञ्चमी ॥

आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ॥ ४५ ॥

आ । अहम् । पितॄन् । सुऽविदत्रान् । अवित्सि । नपातम् । च । विऽक्रमणम् । च । विष्णोः ।

बर्हिऽसदः । ये । स्वधया । सुतस्य । भजन्त । पित्वः । ते । इह । आऽगमिष्ठाः ॥ ४५ ॥

अहं सुविदत्रान् कल्याणधनान् पितॄन् आवित्सि आभिमुख्येन प्राप्नोमि आजानामि वा। ❀ विदेर्लाभार्थात् लुङि सिचि "एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्" इति इट्प्रतिषेधः। "ज्ञिङ्सिचावात्मनेपदेषु" इति क्रित्वाद् गुणाभावः। क्रियाफलस्य कर्तृगामित्वाद् आत्मनेपदम्। विदेर्ज्ञानार्थाद् वा लुङि व्यत्ययेन आत्मनेपदम्। इड-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावः ❀ । किं च विष्णोः । "यज्ञो वै विष्णुः" इति [तै० ब्रा० ३. १. ६. ७] श्रुतेर्यज्ञाख्यस्य विष्णोः नपातम् न पातयितारम् । ❀ "नभ्राण्नपात्०" इत्यादिना निपातितः ❀ । निर्वाहकम् अग्निं च आवित्सि । तथा विक्रमणं च क्रमेण सवनत्रयाक्रमणं च आवित्सि । अतो ये बर्हिषदः बर्हिषि निषीदन्तः एतन्नामकाः पितरः सन्ति । "ये वै यज्वानो गृहमेधिनस्ते पितरो बर्हिषदः" इति श्रुतेः [तै० ब्रा० १. ६. ९. ६] । एवंलक्षणा ये स्वधया सह सुतस्य अभिषुतस्य । ❀ कर्मणि षष्ठी ❀ । सुतं सोमं भजन्त भजन्ते ते तान् हे अग्ने पित्वः । आसन्ननामैतत् । आसन्नः सन् इह अस्मिन् कर्मणि आगमिष्ठाः आगमय । अथ वा ये भजन्ते ते पितरः पित्वः अन्तिकं देशम् आगमिष्ठाः आगच्छन्तु ॥

मैं कल्याणधनी पितरोंको अभिमुख होकर प्राप्त होता हूँ और विष्णु (यज्ञ) के रक्षक अग्निको प्राप्त होता हूँ अत एव जो †बर्हिषद् नामक पितर हैं, कि—जो स्वधाके साथ अभिषुत सोमका सेवन करते हैं उनको हे अग्ने ! यहाँ समीपमें बुलाइये॥४५॥

षष्ठी ॥

इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो ये अपरास ईयुः ।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु दिक्षु

इदम् । पितृऽभ्यः । नमः । अस्तु । अद्य । ये । पूर्वासः । ये । अपरासः । ईयुः ।

---

† तैत्तिरीयब्राह्मण १ । ६ । ९ । ६ में कहा है, कि—"ये वै यज्वानो गृहमेधिनस्ते पितरो बर्हिषदः ।—जो गृहमेधी यज्ञ करते रहते हैं वे बर्हिषद् पितर होते हैं" ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ये। पार्थिवे। रजसि। आ। निऽसत्ताः। ये। वा। नूनम्।
सुऽवृजनासु। दिक्षु ॥ ४६ ॥

पितृभ्यः अद्य इदानीं क्रियमाणम् इदं नमोस्तु। "नमस्कारो हि पितॄणाम्" इति श्रुतेः [तै० ब्रा० १. ३. १०. ८] नमउक्तिः क्रियते। पितॄन् विशिनष्टि। ये पूर्वासः पूर्वे परेताः ईयुः पितृलोकं प्राप्ताः। उ अपि च परासः परे ईयुः। ये च पितरः पार्थिवे रजसि भूलोके आ निषत्ताः आनिषण्णाः स्थिताः। ❀ "नसत्तनिषत्त०" इत्यादिना निपातितः ❀। वा अथ वा ये पितरो नूनम् इदानीं सुवृजनासु सुष्ठु विभक्तासु दिक्षु प्रागादिषु आ निषत्ताः। तेभ्यः सर्वेभ्यः पितृभ्यः इदं नमोस्तु इति पूर्वत्रान्वयः ॥

जो पितर पहिले पितृलोकको प्राप्त होगए हैं और जो अभी हाल में पितृलोकको गए हैं और जो भूलोकमें हैं और जो पितर सुविभक्त दिशाओंमें हैं उनके लिये यह प्रणाम प्राप्त हो ॥ ४६ ॥

सप्तमी ॥

मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः।
यांश्च देवा वावृधुर्ये च देवांस्ते नोवन्तु पितरो हवेषु ४७

मातली। कव्यैः। यमः। अङ्गिरःऽभिः। बृहस्पतिः। ऋक्वऽभिः। ववृधानः।
यान्। च। देवाः। ववृधुः। ये। च। देवान्। ते। नः। अवन्तु।
पितरः। हवेषु ॥ ४७ ॥

मातली यमः बृहस्पतिश्च पितॄणां नेतारो देवाः। अत्र मातली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाम देवः कव्यैः एतत्संज्ञकैः पितृभिः सह वावृधानः वर्धमानो भवति यजमानप्रत्तेन हविषा। तथा यमो देवः अङ्गिरोभिः पितृभिः सह। यमस्य देवत्वं पितृत्वं चेति द्वैरूप्यम् अस्ति। अत्र देवत्वं विवक्षितम्। तथा बृहस्पतिर्देवोपि ऋक्वभिः अर्चनीयैः एतन्नामकैः पितृभिः सह वावृधानः। तत्र यांश्च पितॄन् देवाः मातल्यादयः प्रमुखाः सन्तो वावृधुः वर्धयन्ति यज्ञे। ये च पितरः कव्यादयो देवान् निर्दिष्टान् ववृधुः वर्धयन्ति स्वधाप्रदाने ते अत्र निर्दिष्टा पितरः नः अस्मान् हवेषु आह्वानेषु अवन्तु रक्षन्तु ॥

मातली नामक पितृदेवता देव यजमानकी दी हुई हविसे कव्य नामक पितरोंके साथ वृद्धिको प्राप्त होते हैं, तथा यम नामक पितृनेता देव यजमानोंकी दी हुई हविसे अङ्गिरा नामक पितरोंके साथ वृद्धिको प्राप्त होते रहते हैं तथा बृहस्पति नामक पितृनेता ऋक्व नामक पितरोंके साथ वृद्धिको प्राप्त होते रहते हैं। इनमें जिन पितरोंको मातली आदि देवता यज्ञमें बढ़ाते रहते हैं और जो कव्य आदि पितर देवताओंको स्वधा प्रदान करके बढ़ाते रहते हैं, वे पितर आह्वानोंमें हमारी रक्षा करें ॥ ४७ ॥

अष्टमी ॥

स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम्।
उतो न्व१स्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु ॥

स्वादुः। किल। अयम्। मधुऽमान्। उत। अयम्। तीव्रः। किल। अयम्। रसऽवान्। उत। अयम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उतो इति । नु । अस्य । पपिऽवांसम् । इन्द्रम् । न । कः । चन ।

सहते । आऽहवेषु ॥ ४८ ॥

अत्र सोमः स्तूयते । अयम् अभिषुतः सोमः स्वादुः सुखेन आस्वाद्यः किल । यथा बालकं पयआदिकपानाय स्वाद्वादिगुण-कीर्तनेन प्ररोचयति तद्वद् अत्रापि अभिधीयते । उत अयं सोमः मधुमान् माधुर्योपेतः किल । यत एवम् अतः स्वादुरित्यर्थः । तथा अयं सोमः तीव्रः आशु मदयिता किल । उत अपि च अयं रसवान् बहुरसोपेतः किल । उतो अपि च नु किल अस्य अमुं सोमं पपिवांसम् पीतवन्तम् इन्द्रम् आहवेषु परस्पराह्वानवत्सु संग्रामेषु कश्चन असुरादिः न सहते नाभिभवति । तं सोढुं न शक्नोतीत्यर्थः । अनेनास्य अत्यन्तबलकरत्वम् उक्तं भवति । तत्र सर्वत्र स्वाद्वादिगुणेषु अनुभवसिद्धेष्वपि पितॄणां देवानां च तत्प्रत्यायनाय किलेति प्रयुक्तम् इति मन्तव्यम् ॥

[इस मंत्रमें सोमकी स्तुति की गई है, कि–] यह अभिषुत सोम सुखपूर्वक आस्वादन करने योग्य है [जैसे बालकको स्वादु आदि गुणोंका कीर्तन करके दुग्ध आदि पीनेमें रुचि उत्पन्न कराते हैं, इसी प्रकार यहाँ किया है] यह सोम मधुरता युक्त है अत एव स्वादु है और यह सोम तीव्र है अतः शीघ्र ही मदमें भर देता है, और यह रसवान् है, इसका पान करने वाले इन्द्रको युद्धोंमें असुर आदि कोई सह नहीं सका है ॥ ४८ ॥

नवमी ॥

परेयिवांसं प्रवतो महीरिति बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम्

वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा

सपर्यत ॥ ४९ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परेयिवांसम् । प्रवतः । महीः । इति । बहुऽभ्यः । पन्थाम् । अनुऽपस्पशानम् ।

वैवस्वतम् । सम्ऽगमनम् । जनानाम् । यमम् । राजानम् । हविषा । सपर्यत ॥ ४९ ॥

परेयिवांसम् परागतम् अत्यन्तविप्रकृष्टदेशं गतवन्तम् । ❀ "उपेयिवाननाश्वाननूचानश्च" इति क्वस्वन्तो निपातितः । उपसर्गग्रहणम् अतन्त्रम् ❀ । परागतिं विशिनष्टि । प्रवतो महीरनु प्रकर्षवतीर्भूमीः प्रति । सर्वां भूमिम् अतिक्रम्य वर्तमानम् इत्यर्थः । ❀ "उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे" इति वतिः । अर्थग्रहणसामर्थ्यात् लिङ्गसंख्यायोगः ❀ । किं च बहुभ्यः पितृलोकं गतेभ्यः पन्थाम् पन्थानं मार्गम् अनुपस्पशानम् । अनु इत्ययम् अवेत्यस्यार्थे । अवगच्छन्तम् इत्यर्थः । ❀ स्पशतिर्ज्ञानकर्मा ❀ । एवंरूपं वैवस्वतम् विवस्वतः पुत्रं जनानाम् मृतानां संगमनम् प्राप्तिस्थानभूतम् एवं महानुभावं यमं राजानं हविषा सपर्यत पूजयत ॥

विशाल पृथ्वीका अतिक्रमण करके परम दूर देशको जाने वाले, बहुतसे पितरोंके द्वारा चले हुए मार्गमें चलने वाले विवस्वान्के पुत्र, मृत पुरुषोंके प्राप्तिस्थानरूप राजा यमकी पूजा करो ॥४९॥

दशमी ॥

यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ यत्रा नः पूर्वे पितरः परेता एना जज्ञानाः पथ्या३ अनु स्वाः ॥ ५० ॥

यमः । नः । गातुम् । प्रथमः । विवेद । नः । एषा । गव्यूतिः । अपऽभर्तवै । ऊं इति ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यत्र । नः । पूर्वे । पितरः । पराऽइताः । एना । जज्ञानाः । पथ्याः ।
अनु । स्वाः ॥ ५० ॥

यमो देवः नः अस्माकं संबन्धिनां मृतानां गातुम् मार्गं प्रथमः पूर्वगामी सन् विवेद अजानात् । उ अपि च एषा मृतेन गन्तव्या यमेन नेतव्या गव्यूतिः पद्धतिः । मार्ग इत्यर्थः । ❀ "गोर्यूतौ छन्दसि०" इति वान्तादेशः ❀ । अपभर्तवै अपहर्तुं देवैर्मनुष्यैर्वा परिहर्तुं न । शक्येति शेषः । अवश्यं गन्तव्यैवेत्यर्थः । आत्मसाक्षात्काररहितैः पुरुषैः स्वकर्मफलभोगाय पितृलोकप्राप्तेरावश्यकत्वात् । ❀ अपभर्तवै इति । "तवै चान्तश्च युगपत्" इति उभयपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ । यत्र यस्मिन् मार्गे नः अस्माकं पूर्वे पूर्वभाविनः पितरः परेताः परागताः येन च मार्गेण पुनरागत्य जज्ञानाः जाताः सर्वे स्वाः स्वीयाः स्वस्वकर्मानुरोधिनीः पथ्याः हितकरा भूमीर्गच्छन्ती । स्वस्वकर्मोपार्जितानि स्थानानि स्वेषां हितानि भवन्ति । तं मार्गं यमो विवेदेति पूर्वत्र संबन्धः ॥

इत्यथर्वसंहितायां अष्टादशकाण्डे प्रथमोनुवाकः पञ्चमं सूक्तम् ॥

यमदेव हमारे मरे हुए सम्बंधियोंके मार्गको प्रथम अनुभवी होनेके कारण जानते हैं, कि-यह मरे हुए मनुष्योंका मार्ग है देवता और मनुष्य इससे बच नहीं सकते, सबको इस मार्गसे अवश्य जाना पड़ता है, क्योंकि-आत्मसाक्षात्काररहित पुरुषोंको अपना कर्मफल भोगनेके लिये पितृलोक अवश्य मिलता है। जिस मार्गसे हमारे पूर्व पितर गए थे और जिस मार्गसे आकर वह अपने २ कर्मके अनुसार हितकारिणी भूमियोंको प्राप्त होते हैं उन मार्गोंको यम जानते हैं ॥ ५० ॥ (५)

प्रथम अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त ॥

पिण्डपितृयज्ञे "बर्हिषदः पितरः" इत्यृचा बर्हिः स्तृणीयात् । सूत्रितं हि । "बर्हिर्गृहीत्वा त्रिवृत्य संनहनं दक्षिणापरम्" इति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रक्रम्य "बर्हिरुदकेन संप्रोक्ष्य बर्हिषदः पितरः [१८. १. ५१] उपहूता नः पितरः [१८. ३. ४५] अग्निष्वात्ता पितरः [१८. ३. ४४] ये नः पितुः पितरः [१८. ३. ४६] येस्माकम् [१८. ४. ६८] इति प्रस्तृणाति" [इति । कौ० ११. ८] ॥

तत्रैव कर्मणि "आच्या जानु" [५२] इत्यृचा तस्मिन् बर्हिषि तिलान् प्रकिरेत् ॥

पितृमेधे प्रेतास्थीनि अनया त्रिपादे शिक्ये उपवेशयेत् ॥

पितृमेधे "प्रेहि प्रेहि" [५४] इत्यनया तम् उत्थाप्य शकटे निदध्यात् ॥

तत्रैव "अपेत वीत" [५५] इत्यनया प्रेतदहनस्थानं काम्पील-शाखया संप्रोक्षयेत् ॥

पिण्डपितृयज्ञे "उशन्तस्त्वा" [५६] इति द्वाभ्याम् ऋग्भ्यां द्वे काष्ठे गृहीत्वा अग्निम् आदीपयेत् । सूत्रितं हि । "द्वे काष्ठे गृहीत्वा उशन्त इत्यादीपयति । आदीप्तयोरेकं प्रति निदधाति" इति [कौ० ११. ८] ॥

तत्रैव "अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वाः" [५८] इति सप्तभि-र्ऋग्भिः प्रेतशरीरे अग्निप्रदः पुत्रः आज्यं जुहुयात् ॥

"इमं यम" [६०] इत्यृचा यमाय चतुर्थीं वपाहुतिं जुहुयात् ॥

"इत एतद् उदारुहन्" [६१] इति चतसृभिः उत्थापनीया-भिर्ऋग्भिः प्रेतम् उत्थाप्य शकटे शयने वा निदध्यात् ॥

पिण्डपितृयज्ञमें "बर्हिषदः पितरः" ऋचासे कुशाओंको फैलावे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि "बर्हिर्गृहीत्वा विचृत्य संहननं दक्षिणापरम् ।" इति प्रक्रम्य "बर्हिरुदकेन सम्प्रोक्ष्य बर्हिषदः पितरः (१८ । १ । ५१) उपहूता नः पितरः (१८ । ३ । ४५) अग्निष्वात्ताः पितरः (१८ । ३ । ४४) ये नः पितुः पितरः (१८ । ३ । ४६) येऽस्माकम् (१८ । ४ । ६८) इति प्रस्तृणाति" (कौशिकसूत्र ११ । ८) ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तहाँ ही कर्ममें "आच्या जानु" इस बावनवीं ऋचासे कुशाओं में तिलोंको बखेरे।

पितृमेधमें प्रेतकी अस्थियोंको इस ऋचासे तिलड़े छींके पर रख देय।

पितृमेधमें "प्रेहि प्रेहि" इस चौअनवीं ऋचासे उसको उठा कर शकटमें रक्खे।

तहाँ ही "अपेत वीत" इस पचपनवीं ऋचासे प्रेतदहनस्थानको काम्पीलशाखासे सम्प्रोक्षित करे।

पिण्डपितृयज्ञमें "उशन्तस्त्वा" इस ५६ वीं ऋचासे और ५७ वीं ऋचासे दो काष्ठोंको लेकर अग्निको प्रदीप्त करे। इस विषय में सूत्रका प्रमाण भी है, कि–"द्वे काष्ठे गृहीत्वा उशन्त इत्यादीपयति। आदीप्तयोरेकं प्रतिनिदधाति। (कौशिकसूत्र ११। ८)॥

तहाँ ही अग्निप्रद पुत्र अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वाः इस अट्ठानवीं ऋचासे सात ऋचाओंके द्वारा प्रेतके शरीरमें घृतकी आहुति देय।

"इमं यम" इस साठवीं ऋचासे यमके लिये चौथी वपाहुति देय।

"इत एतद् उदाहरन्" इस ६१ वीं ६२ वीं, ६३ वीं और चौंसठवीं उत्थापनीया ऋचाओंसे प्रेतको उठाकर शकट वा शयनमें रक्खे॥

तत्र प्रथमा॥

बर्हिषदः पितर ऊत्य१र्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम्।
त आ गतावसा शंतमेनाधा नः शं योररपो दधात ५१

बर्हिऽसदः। पितरः। ऊती। अर्वाक्। इमा। वः। हव्या। चकृम। जुषध्वम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ते । आ । गत । अवसा । शम्ऽतमेन । अथ । नः । शम् । योः । अरपः । दधात ॥ ५१ ॥

हे बर्हिषदः । बर्हिषि आस्तीर्णे दर्भे सीदन्तीति बर्हिषदः । ❀ अन्त्यलोपश्छान्दसः ❀ । यज्ञम् आगताः हे पितरः यूयम् ऊती ऊत्या अस्मद्रक्षणेन निमित्तेन अर्वाक् अस्मदभिमुखम् । आगच्छतेति शेषः । आगते सति किं लभ्यम् अस्तीत्यत्राह । इमा इमानि पुरत आसन्नानि हव्या हव्यानि हवींषि वः युष्मभ्यं चक्रुम अकार्ष्म । तानि यूयं जुषध्वम् सेवध्वम् । ते तादृशा यूयम् आ गत आगच्छत । ❀ गमेर्लुङि "मन्त्रे घस०" इति च्लेर्लुक् । "अनुदात्तोपदेश०" इत्यादिना अनुनासिकलोपः ❀ । केन सहिताः । शंतमेन सुखतमेन अवसा रक्षणेन सह । अस्माकं क्लेश-लेशेनापि रहितां रक्षां कर्तुम् आगच्छतेत्यर्थः । अथ आगत्य च नः अस्मभ्यं शम् रोगाणां शमनं योः भयानां यावनं च अरपः । ❀ रपो रिषम् इति पापनामनी भवतः इति निरुक्तम् [नि० ४. २१.] ❀ । अपापं यथा भवति तथा दधात । ❀ "तप्त-नप्तनथनाश्च" इति तस्य तबादेशः । तपः पित्त्वाद् आल्लोपाभावः ❀ । प्रयच्छत ॥

यज्ञमें आये हुए हे बर्हिषद् पितरों ! तुम हमारी रक्षाके लिये हमारे सम्मुख आओ, इन हवियोंको हमने आपके लिये किया है, अतः आकर आप इनका सेवन करिये । आप कल्याणप्रद रक्षाओं के साथ पधारिये, और हममें रोगशान्ति और निष्पापत्वको स्थापित करिये ॥ ५१ ॥

द्वितीया ॥

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येदं नो हविरभि गृणन्तु विश्वे ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद् व आगः पुरुषता कराम ॥ ५२ ॥

आऽअच्य । जानु । दक्षिणतः । निऽसद्य । इदम् । नः । हविः । अभि । गृणन्तु । विश्वे ।

मा । हिंसिष्ट । पितरः । केन । चित् । नः । यत् । वः । आगः । पुरुषता । कराम ॥ ५२ ॥

हे पितरः विश्वे सर्वे यूयं जानु आच्य जानुप्रदेशम् आकुञ्च्य । अनेन भोजनोचितः संनिवेश उक्तो भवति । दक्षिणतः वेदेर्दक्षिण-भागे उपसद्य उपविश्य इदम् अस्माभिर्दीयमानं पुरोवर्ति हविः हव्यम् अभि गृणीत अभिष्टुत समीचीनम् इति ब्रूत । अनेन हविः-स्वीकारः अर्थाद् उक्तो भवति । न हि अनास्वाद्यमानस्य प्रशं-सास्ति । कर्तव्यविषये अतिक्रमे संजातेपि शिक्षा न कार्येति प्रार्थ-यते । हे पितरः यूयं केन चिद् अल्पेन महता वा अपराधेन नः अस्मान् मा हिंसिष्ट हिंसां मा कुरुत । अपराधस्य संभावनाम् आह । पुरुषता पुरुषत्वेन मनुष्यत्वेन हेतुना वः युष्माकं यद् आगः यम् अपराधं कराम कुर्मः । मनुष्याणाम् अनवधानाद् अतिक्रमसंभावनास्त्येवेत्यर्थः ॥

हे सकल पितरों ! तुम जानुको सकोड़ कर वेदिके दक्षिणभाग में बैठकर हमारी दी हुई हविकी प्रशंसा करो [इससे हविका स्वीकार स्वीकृत होता है, क्योंकि—अनास्वाद्य वस्तुकी कोई प्रशंसा नहीं करता, अब यह प्रार्थना करते हैं, कि—कोई भूल चूक होजाय तब भी आप दण्ड न देवें] हे पितरों ! आप किसी छोटे या बड़े अपराधसे हमारी हिंसा न करना, क्योंकि—मनुष्य होने से ही हमसे अपराध होसकना संभव है ॥ ५२ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृतीया ॥

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति तेनेदं विश्वं भुवनं समेति
यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश

त्वष्टा । दुहित्रे । वहतुम् । कृणोति । तेन । इदम् । विश्वम् । भुवनम् । सम् । एति ।

यमस्य । माता । परिऽउह्यमाना । महः । जाया । विवस्वतः । ननाश ॥ ५३ ॥

अस्य मन्त्रस्य "अपागूहन्" [१८. २. ३३] इति उपरि वक्ष्यमाणस्य च अर्थविवरणरूपा आख्यायिका बृहद्देवतानुक्रमणिकाकारेण स्पष्टं प्रदर्शिता ।

अभवन्मिथुनं त्वष्टुः सरण्युस्त्रिशिराश्च ह ।
स वै सरण्युं प्रायच्छत् स्वयमेव विवस्वते ॥
ततः सरण्व्यां जज्ञाते यमयम्यौ विवस्वतः ।
तौ चाप्युभौ यमौ स्यातां ज्यायांस्ताभ्यां तु वै यमः ॥
दृष्ट्वा भर्तुः परोक्षं तु सरण्युः सदृशीं स्त्रियम् ।
निक्षिप्य तद्युगं तस्याम् अश्वा भूत्वापचक्रमे ॥
अविज्ञाता विवस्वांस्तु तस्याम् अजनयन्मनुम् ।
राजर्षिरभवत् सोपि विवस्वानिव तेजसा ॥
स विज्ञाय त्वपक्रान्तां सरण्युं त्वश्वरूपिणीम् ।
त्वाष्ट्रीं प्रति जगामाशु अश्वो भूत्वा सलक्षणः ॥
सरण्युश्च विवस्वन्तं विदित्वा हयरूपिणम् ।
मैथुनायोपचक्राम तां चाश्वामारुरोह सः ॥
ततस्तयोस्तु योगेन शुक्रं तद् अपतद् भुवि ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपजिघ्रति सा त्वश्वा तच्छुक्लं गर्भकाम्यया ॥
आघ्रातमात्राच्छुक्लात् तु कुमारौ संबभूवतुः ।
नासत्यश्चैव दस्रश्च यौ तु तावश्विनाविति ॥

त्वष्टा सिक्तस्य रेतसः पुरुषाद्याकारनिर्माता देव उच्यते । "यावच्छो वै रेतसः सिक्तस्य त्वष्टा रूपाणि विकरोति" [तै० सं० १. ५. ६. २] इत्यादिश्रुतेः । एतन्नामको देवः दुहित्रे स्वदुहितुः पुत्र्याः सरण्व्याः । ❀ षष्ठ्यर्थे चतुर्थी ❀ । वहतुम् विवाहं कृणोति करोति इति तेन कारणेन इदं विश्वं भुवनम् भूतजातं समेति संगतम् अभूत् । तद्दिदृक्षयेति शेषः । यमस्य देवस्य माता जनयित्री सरण्युः पर्युह्यमाना परिवाहम् उद्वाहं त्वष्ट्रा पित्रा क्रियमाणा । ❀ वहतेर्यकि यजादित्वात् संप्रसारणम् ❀ । महः महतः अतिशयितप्रभावस्य विवस्वतः सूर्यस्य जाया सरण्युः ननाश अदर्शनं तिरोधानं प्राप्ता । "अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः" [१८.२.३३] इति वक्ष्यमाणत्वात् । अत्र निरुक्तम् । त्वष्टा दुहितुर्वहनं करोतीतीदं सर्वं भुवनं समेति । यमस्य माता पर्युह्यमाना महतो जाया विवस्वतो ननाश । रात्रिरादित्यस्य । आदित्योदयेन्तर्धीयते [नि० १२. ११] इति ॥

[बृहद्देवतानुक्रमणिकाकारने इस मन्त्रकी और आगे कहे जाने वाले 'अपागूहन्' (१८। २। ३३) मंत्रकी भी अर्थको स्पष्ट करने वाली आख्यायिका कही है, कि-त्वष्टा देवताके सरण्यु नामकी कन्या और त्रिशिरा नामक पुत्र हुआ उसने स्वयं ही सरण्युको-विवस्वान्-सूर्यके लिये दिया । तब सूर्यदेवसे सरण्युमें यम और यमी उत्पन्न हुए, वे दोनों जुड़वाँ उत्पन्न हुए थे, यम उन दोनोंमें बड़ा था, भर्ताकी अनुपस्थितिने सरण्युने अपनीसी आकृति वाली एक स्त्री देखी तब अपनी दोनों सन्तानोंको उसको सौंप अपने आप घोड़ी बन कर चली गई, इस वृत्तान्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से अनजान सूर्यदेवने उस स्त्रीमें मनुको उत्पन्न किया, वह राजर्षि मनु भी तेजमें सूर्यदेवकी समान हुए। इधर जब सूर्यदेवको पता लगा, कि—सरण्यु घोड़ीका रूप धारण करके चली गई है तब वह घोड़ेका रूप धारण करके शीघ्रता से उसकी खोजमें चले, सरण्युने हयरूपधारीको विवस्वान् जानकर मैथुनकी चेष्टाकी तब उनके योगसे जो वीर्य भूमि पर गिरा उस गर्भकी कामनासे उस घोड़ीने सूँघा, सूँघते ही उस वीर्यसे नासत्य और दस्र नामक दोनों अश्विनीकुमार प्रकट हुए"] सींचे हुए वीर्यको पुरुष आदिके आकारमें परिणत करने वाले त्वष्टा देवने अपनी पुत्री सरण्युका विवाह किया, उसको देखने के लिये सारा भुवन एकत्रित हुआ जब यमकी माता सरण्यु पिताके द्वारा विवाही गई तब परमप्रभावशाली सूर्यदेवकी भार्या उनके पाससे छिप गई थी ॥ ५३ ॥

चतुर्थी ॥

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्याणैर्येना ते पूर्वे पितरः परेताः।
उभा राजानौ स्वधया मदन्तौ यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ॥ ५४ ॥

प्र। इहि। प्र। इहि। पथिऽभिः। पूःऽयानैः। येन। ते। पूर्वे। पितरः। पराऽइताः।

उभा। राजानौ। स्वधया। मदन्तौ। यमम्। पश्यासि। वरुणम्। च। देवम् ॥ ५४ ॥

अत्र "प्रेहि प्रेहि" इत्यनया प्रेतम् उत्थाप्य शकटे निदध्याद् इति विनियोगात् प्रेतस्य शकटं प्रति गमनम् अभिधीयते। हे प्रेत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्वं प्रेहि प्रेहि प्रगच्छ प्रगच्छ । शकटं प्रतीति शेषः । अथ वा यमलोकं प्रति प्रेहि । द्विरभिधानम् आवश्यकगमनद्योतनाय । कैः साधनैरिति तत्राह । पूर्याणैः यात्यनेनेति यानं वर्त्म । पुमांसो येन वर्त्मना पितृलोकं यान्ति स पूर्याणः । पुंभिः उह्यमानो वा शिबिकादिः पूर्याणः । ❀ पृषोदरादित्वाद् अयं साधुः ❀ । बहुवचनं पूजार्थम् । तैः पथिभिः प्रेहि । स मार्गो विशेष्यते । येन यानेन ते तव पूर्वे पितरः पितृपितामहाद्याः परेता परागताः पितृलोकं प्राप्ताः ॥ तत्र को लाभ इत्यत्राह । उभा उभौ राजाना राजानौ देवेषु मध्ये क्षत्रियजातीयौ । "यमो राजा" [तै० ब्रा० ३.१.२.११] "वरुणो राजा" [तै० ब्रा० ३. ७. ७. ६] इति श्रुतिषु सर्वत्र प्रसिद्धेः । स्वधया अस्माभिर्दत्तया मदन्तौ माद्यन्तौ । विद्येते इति शेषः । तत्र लोके यमं देवं पश्यासि पश्यसि वरुणं च देवं पश्यसि । अतः प्रेहीति पूर्वत्रान्वयः ॥

हे प्रेत ! तू जिसको मनुष्य उठाते हैं उस टिकटिकी (आदि) से यममार्गको प्रस्थान कर इस मार्गसे तेरे पिता पितामह आदि पहिले मरे हुए पुरुष गए हैं, तहाँ देवताओंमें क्षत्रियजातीय राजा वरुण और राजा यम ये दोनों राजा वर्तमान हैं और हमारी दी हुई हविसे प्रसन्नता पा रहे हैं, तहाँ यमलोकमें तू यमदेवको और वरुणदेवको देखेगा ॥ ५४ ॥

पञ्चमी ॥

अपेत वीत वि च सर्पतातोस्मा एतं पितरो लोकमक्रन्
अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै ५५

अप । इत । वि । इत । वि । च । सर्पत । अतः । अस्मै । एतम् । पितरः । लोकम् । अक्रन् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अहःऽभिः । अत्ऽभिः । अक्तुऽभिः । विऽअक्तम् । यमः । ददाति ।

अवऽसानम् । अस्मै ॥ ५५ ॥

अत्र अनया दहनस्थानं संप्रोक्षेत् इति विनियोगात् तत्स्थान-स्थितानां रक्षःपिशाचादीनाम् अपगमनम् अभिधीयते । हे रक्षः-प्रभृतयः यूयम् अपेत अपगच्छत । वीत । ❀ वी गत्यादिषु । अत्र गतिरर्थः ❀ । विगता भवत । अतः अस्माद् दहनस्थानाद् वि सर्पत च विविधं विशेषेण वा गच्छत । दूरं गच्छतेत्यर्थः । अपसारणीयान् विशिनष्टि । ये अत्र स्थले पुराणाः पूर्वतनाः स्थ भवथ । ये च अत्र नूतनाः इदानीन्तनाः स्थ तिष्ठथ । ते सर्वे अपेतेति संबन्धः । अस्मै प्रेताय अहोभिश्च अद्भिः क्षालनसाधनै-रुदकैश्च अक्तुभिः अभिव्यक्तिसाधनाभी रात्रिभिश्च व्यक्तम् सुवि-शदम् अवसानम् अवस्यति अत्रेत्यवसानम् । ❀ षो अन्तकर्मणि । अधिकरणे ल्युट् ❀ । स्थानम् । तद् अस्मै यमो देवः ददाति अदात् । तदर्थम् अपेतेति संबन्धः ॥

[इस ऋचासे दहनस्थानका सम्प्रोक्षण करे इस विनियोगके अनुसार इस स्थानमें स्थित राक्षस पिशाच आदिका अपसारण कहा जाता है, कि–] हे राक्षस आदि ! तुम इस स्थानसे भाग जाओ, चले जाओ, तुम इस दहनस्थानसे अतिदूर चले जाओ तुम प्राचीन समयसे यहाँ रहते हो वा नवीन ही यहाँ रहते हो तो भी चले जाओ, क्योंकि-यमदेवताने इस प्रेतके लिये इस स्थानको जल और दिन रातके साथ भली प्रकार रहनेके लिये दिया है ५५

षष्ठी ॥

उशन्तस्त्वेधीमह्युशन्तः समिधीमहि ।

उशन्नुशत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥ ५६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उशन्तः । त्वा । इधीमहि । उशन्तः । सम् । इधीमहि ।

उशन् । उशतः । आ । । वह । पितॄन् । हविषे । अत्तवे ॥५६॥

हे अग्ने अस्मिन् पितृयज्ञे त्वा त्वाम् उशन्तः यज्ञनिर्वाहार्थं त्वां कामयमाना हवामहे आह्वानं कुर्मः। तथा उशन्तः कामयमानास्त्वां समिधीमहि सम्यग् इद्धं करवाम । ❀ इन्धेर्विधिलिङि विकरणस्य लुक् छान्दसः । "अनिदिताम्०" इति धातुनकारस्य लोपः ❀ । त्वं च उशन् यज्ञं स्वधां वा कामयमानः सन् उशतः स्वधां कामयमानान् पितॄन् आ वह । किमर्थम् । हविषे हविःस्वीकाराय अत्तवे तस्य च भक्षणाय । आ वहेति संबन्धः ॥

हे अग्ने ! हम यज्ञको निष्पन्न करनेके लिये इस पितृयज्ञमें आपकी कामना करते हुए आपका आह्वान करते हैं और आपकी कामना करते हुए आपको भली प्रकार प्रदीप्त करते हैं, आप भी स्वधाकी कामना करते हुए पितरोंको हवि स्वीकार कर उसका भक्षण करनेके लिये लाइये ॥ ५६ ॥

सप्तमी ॥

द्युमन्तस्त्वेधीमहि द्युमन्तः समिधीमहि ।

द्युमान् द्युमत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥५७॥

द्युऽमन्तः । त्वा । इधीमहि । द्युऽमन्तः । सम् । इधीमहि ।

द्युऽमान् । द्युऽमतः । आ । वह । पितॄन् । हविषे । अत्तवे ॥५७॥

हे अग्ने द्युमन्तः दीप्तिमन्तः त्वदनुग्रहाद् अतिशयिततेजसो वयं त्वा त्वां हवामहे । शिष्टं पूर्वमन्त्रवद् योज्यम् ॥

हे अग्ने ! आपके अनुग्रहसे कान्तिमान् हुए हम आपका आह्वान करते हैं. कांतिमान् हम आपको प्रदीप्त करते हैं, कान्तिमान् आप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कांति वाले पितरोंको हविको स्वीकार करनेके लिये और हवि का भक्षण करनेके लिये लाइये ॥ ५७ ॥

अष्टमी ॥

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ५८

अङ्गिरसः । नः । पितरः । नवऽग्वाः । अथर्वाणः । भृगवः ।
सोम्यासः ।

तेषाम् । वयम् । सुऽमतौ । यज्ञियानाम् । अपि । भद्रे । सौमनसे ।
स्याम ॥ ५८ ॥

अङ्गिरसः एतन्नामानः अङ्गारात्मकाः । "येङ्गारा आसंस्तेङ्गिरसोभवन्" इति निरुक्तम् [ऐ० ब्रा० ३. ३४] । पूर्वे महर्षयः नः पितरः अस्माकं पितरः । नवग्वाः नूतनस्तुतिका नवभिर्मासैरुद्गता वा । तथा अथर्वाणश्च नः पितरः भृगवश्च नः पितरः । ❀ भृगुर्भृज्यमानो न देहेङ्गारेष्विति निरुक्तम् [नि० ३. १७] ❀ । एते सर्वे सोम्यासः सोमार्हाः सोमसम्पादिनः । एषाम् अङ्गिरःप्रभृतीनाम् ऋषिगणमध्ये प्राधान्याद् इदानीन्तनानामपि प्राचुर्येण तद्गोत्रत्वात् पितृत्वम् । यज्ञियानाम् यज्ञार्हाणां तेषां सुमतौ शोभनायाम् अनुग्रहरूपायां बुद्धौ वयं स्याम भवेम । तेषां सुमतिरस्मासु भवेद् इत्यर्थः । अपि अपि च तेषां भद्रे कल्याणे सौमनसे सुमनसो भावः सौमनसम् । ❀ युवादिषु पाठो द्रष्टव्यः ❀ । तत्र स्याम भवेम । उक्तस्यैवार्थस्य स्पष्टाभिधानम् एतत् ॥

जो अंगिरा नामक प्राचीन महर्षि हमारे पितर हैं, नूतन स्तुति वाले अथर्वा नामक और भृगु जो हमारे पितर हैं, ये सब सोम-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पायी हैं, [ऋषियोंमें इन अंगिरा आदिकी प्रधानता है और आज कलके भी पितर अधिकतासे इसी गोत्र वाले हैं अत एव उनका पितृत्व है] इन यज्ञिय पितरोंकी अनुग्रहात्मिका बुद्धिमें हम रहें और वह मनमें हम पर प्रसन्न रहें ॥ ५८ ॥

नवमी ॥

अङ्गिरोभिर्यज्ञियैरा गहीह यम वैरूपैरिह मादयस्व ।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेस्मिन् बर्हिष्या निषद्य ५९

अङ्गिरःऽभिः । यज्ञियैः । आ । गहि । इह । यम । वैरूपैः । इह । मादयस्व ।

विवस्वन्तम् । हुवे । यः । पिता । ते । अस्मिन् । बर्हिषि । आ । निऽसद्य ॥ ५९ ॥

हे यम इह अस्मिन् कर्मणि अङ्गिरोभिः एतन्नामकैः पितृभिः सह आ गहि आगच्छ । कीदृशैः । यज्ञियैः यज्ञार्हैः । एवं वैरूपैः विरूपाख्यस्य महर्षेर्गोत्रजैः सह आ गहि । आगत्य च इह अस्मिन् यज्ञे मादयस्व तर्पयस्व ॥ न केवलं त्वामेव ह्वयामि । किं तु ते तव यः पिता विवस्वान् आदित्यः तं विवस्वन्तं हुवे आह्वयामि । ❀ ह्वयतेर्लटि "बहुलं छन्दसि" इति संप्रसारणम् ❀ । अस्मिन् बर्हिषि आस्तीर्णे निषद्य । यथा हविः स्वीकरोति तथा आह्वयामीति शेषः । आभिमुख्येन निषद्य इति वा ॥

हे यमदेव ! आप इस कर्ममें विरूप नामक महर्षिके गोत्रमें उत्पन्न हुए अंगिरा नामक यज्ञिय, पितरोंके साथ आइये और आकर इस यज्ञमें तृप्त हूजिये, मैं केवल आपका ही आह्वान नहीं करता हूँ, किंतु आपके जो पिता विवस्वान् हैं उनका भी आह्वान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करता हूँ, वह जिस प्रकार इस फैले हुए कुशासन पर बैठ कर हविको स्वीकार करें तिस प्रकार आह्वान करता हूँ ॥ ५९ ॥

दशमी ॥

इमं यम प्रस्तरमा हि रोहाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन् हविषा मादयस्व ॥ ६० ॥

इमम् । यम । प्रऽस्तरम् । आ । हि । रोह । अङ्गिरःऽभिः । पितृऽभिः । सम्ऽविदानः ।

आ । त्वा । मन्त्राः । कविऽशस्ताः । वहन्तु । एना । राजन् । हविषः । मादयस्व ॥ ६० ॥

हे यम इमम् पुरत आस्तीर्णं प्रस्तरम् बर्हिषम् । उपस्तीर्णो दर्भः प्रस्तरः । ❀ "प्रेस्त्रोऽयज्ञे" इति निषेधाद् घञभावः । "ऋदोरप्" ❀ । तं प्रस्तरम् आ सीद । हि इति पादपूरणः । किमेक एव । नेत्याह । अङ्गिरोभिः एतन्नामकैः पितृभिः सह संविदानः ऐकमत्यं प्राप्तः । ❀ "समोगम्यृच्छि०" इति आत्मनेपदम् ❀ । हे राजन् त्वा त्वां कविशस्ताः कविभिः क्रान्तप्रज्ञैर्महर्षिभिः स्तुता मन्त्राः आह्वानसाधना आ वहन्तु आह्वानं कुर्वन्तु आगमयन्तु । आगत्य च एना एनेन अनेन । ❀ "द्वितीयाटौःस्वेनः" इति एनादेशः । सर्वविधीनां छन्दसि विकल्पितत्वाद् इनादेशाभावः ❀ । हविषः । ❀ तृतीयार्थे षष्ठी ❀ । हविषा अस्माभिर्दत्तेन मादयस्व ॥

हे यम ! आप अङ्गिरा नामक पितरोंके साथ एकमत होतेहुए इस कुशासन पर बैठिये, बुद्धिमान् महर्षियोंके मन्त्र आपको बुला लेवें और आप आकर हमारी दी हुई हविसे प्रसन्न हूजिये॥६०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एकादशी ॥

इत एत उदारुहन् दिवस्पृष्ठान्यारुहन् ।
प्र भूर्जयो यथा पथा द्यामङ्गिरसो ययुः ॥ ६१ ॥

इतः । एते । उत् । आ । अरुहन् । दिवः । पृष्ठानि । आ । अरुहन् ।
प्र । भूःऽजयः । यथा । पथा । द्याम् । अङ्गिरसः । ययुः ॥६१॥

शवसंस्कर्तारः पुरुषाः एतत् मृतशरीरम् इतः अस्माद् भूमदेशाद् उदारुहन् ऊर्ध्वं शकटादिकम् आरोहयन् । इत एतद् इति शकटे शयने वा प्रेतं निदध्याद् इति विनियोगात् ॥ अनन्तरं दिवः द्युलोकस्य पृष्ठानि स्पष्टव्यानि उपरितनस्थलानि भोग्यस्थानानि आरुहन् आरोहयन् । ❀ रुहेर्लुङि "कृमृदृरुहिभ्यश्छन्दसि" इति च्लेः अङ् । ङित्त्वाद् गुणाभावः ❀ । द्युलोकं केन पथा आरोहयन्निति तत्राह । भूर्जयः भरणवन्तो भुवं जितवन्तो वा अङ्गिरसः यथा यादृशेन पथा मार्गेण द्याम् द्युलोकं प्र ययुः प्राप्ताः । तेन मार्गेण दिवस्पृष्ठान्यारुहन् इति संबन्धः ॥

इत्यथर्वसंहितायां प्रथमेनुवाके अष्टादशकाण्डे षष्ठं सूक्तम् ॥
प्रथमोऽनुवाकः समाप्तः ॥

शवका संस्कार करने वाले इन पुरुषोंने इस मृतशरीरको इस पृथ्वी परसे उठा कर शकट टिकटिकी आदि पर चढ़ा दिया है, फिर इसको द्युलोकके ऊपरके भोग्य स्थानों पर चढ़ा दिया है, जिस मार्गसे पृथ्वीका विजय करने वाले आंगिरस गए हैं उस मार्गसे द्युलोकमें पहुँचा दिया है ॥ ६१ ॥

प्रथम अनुवाकमें छठा सूक्त समाप्त

प्रथम अनुवाक समाप्त (५४१)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वितीयेऽनुवाके षट् सूक्तानि । तत्र "यमाय सोमः" इति प्रथमं सूक्तम् । अत्र आदितस्तिसृणाम् ऋचां पूर्वर्चा सह प्रेतोत्थापन-कर्मणि उक्तो विनियोगः ॥

पितृमेधे "मैनमग्ने" [४] इत्यादिभिः "सहस्रणीथाः कवयः" [१८] इत्यन्ताभिः "अव सृज" [१०] इत्यृग्वर्जिताभिश्चतुर्दशभि-र्ऋग्भिर्दह्यमानं प्रेतशरीरं सर्वे गोत्रिण उपतिष्ठेरन् ॥

"मैनमग्ने" इति चतसृभिः प्रेतशरीरे कनिष्ठपुत्रेण दत्तम् अग्निं गोत्रिण आदीपयेयुः ॥

तत्रैव कर्मणि "अजो भागः" [८] इति द्वाभ्यां चितेर्दक्षिण-पार्श्वे अजपशुं बध्नीयात् । यथा दह्यते तथा बन्धनं कार्यं मोचनं न कर्तव्यम् । तथा च माहकिराचार्यः "अजो हन्यते दह्यते एका-ग्निप्रेतशरीरदहने" इति ॥

पितृमेध एव चतुर्थेऽहनि "अव सृज" इत्यनया एकाग्निकस्या-हिताग्नेः शरीरम् अनुमन्त्रयेत ॥

दूसरे अनुवाकमें छः सूक्त हैं । इनमें "यमाय सोमः" यह प्रथम सूक्त है । इसकी पहिली तीन ऋचाओंका पूर्व ऋचाके साथ प्रेतोत्थापनकर्ममें विनियोग कह दिया है ।

पितृमेधमें १० वीं ऋचासे रहित "मैनमग्ने" इस चौथी ऋचा से "सहस्रणीथाः कवयः" इस अठारहवीं ऋचा तककी १४ ऋचाओंसे भस्म होते हुए प्रेतशरीरके पास सब गोत्र वाले खड़े रहें ।

"मैनमग्ने" इन चार ऋचाओंसे प्रेतके शरीरमें दी हुई अग्नि को गोत्र वाले प्रदीप्त करें ।

तहाँ ही कर्ममें "अजो भागः" इन ८ वीं और नवम ऋचाओं से चिताके दाहिनी ओर बकरेको बाँधे । जिस प्रकार वह भस्म होजाय तिस प्रकार बाँधे उसको छोड़े नहीं । इसी बातको माह-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्रिराचार्यने कहा है, कि-"अजो हन्यते दह्यते एकाग्निप्रेतशरीर-दहने" ॥

पितृमेधमें ही चौथे दिन "अवसृज" ऋचासे एकाग्निक आहिताग्निके शरीरका अनुमन्त्रण करे।

तत्र प्रथमा ॥

यमाय सोमः पवते यमाय क्रियते हविः ।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः ॥ १ ॥

यमाय । सोमः । पवते । यमाय । क्रियते । हविः ।
यमम् । ह । यज्ञः । गच्छति । अग्निऽदूतः । अरम्ऽकृतः ॥ १ ॥

यमाय देवाय सोमः पवते पूयते अभिषूयते सोमयागे यजमानैः । ❀ कर्मणि कर्तृप्रत्ययः । शप् । पूञ्धातोः ❀ । सोमसाधनो ज्योतिष्टोमादिरननुष्ठितश्चेद् यमो नरके पातयिष्यतीति भिया यमप्रीतये सोमोभिषूयत इत्यर्थः । अथ वा पितॄणां सोमसंबन्धेन यमस्यापि सोमोस्त्येव । किं च यमायैव हविः आज्यादिलक्षणं क्रियते संस्क्रियते उत्पवनादिसंस्कारेण । किं च यमं ह यममेव यज्ञः कृत्स्नो ज्योतिष्टोमादिः गच्छति । कीदृशो यज्ञः । अग्निदूतः । दूतो यथा स्वामिना दत्तं धनादिकं दातव्याय प्रयच्छति एवम् अग्निरपि यजमानेन दत्तं हविस्तस्मैतस्मै देवाय प्रयच्छतीत्यग्निर्दूत इत्यभिधीयते । अलंकृतः स्तोत्रशस्त्रादिभिर्भूषितः । यद्वा अलम् अत्यर्थं निष्पादितः । साङ्गोपाङ्ग इत्यर्थः । यद्यपि सोमो हविश्च उभे सर्वार्थे क्रियेते तथा यज्ञोपि सर्वदेवार्थः तथापि यमस्य सर्वप्राणिसंहर्तृत्वेन वा सर्वेषां पितृलोकप्रापकत्वेन वा प्राधान्याद् यमायैव सोमादिकं क्रियत इत्युपचर्यते ॥

यजमान सोमयागमें यमदेवताके लिये सोमका अभिषव करते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं तात्पर्य यह है, कि—सोमसाधन ज्योतिष्टोम आदि न करा हो तो यम नरकमें गिरा देंगे इस भयसे यमकी प्रीतिके लिये सोम अभिषुत किया जाता है। और घृत आदि हवि उत्पवन आदि संस्कारसे यमदेवके लिये ही दीजाती है। और स्तोत्र शस्त्र आदि से भूषित और जिसमें अग्नि दूतकी समान यजमानकी दी हुई हविको पहुँचाते हैं वह ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ भी यमको ही प्राप्त होता है। [यद्यपि सोम और हवि सबके लिये की जाती हैं और यज्ञ भी सब देवताओंके लिये किया जाता है तथापि यम सब प्राणियोंके संहारक हैं और सबको पितृलोकमें पहुँचाने वाले हैं अत एव प्रधानतासे उनका वर्णन किया है] ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

यमाय मधुमत्तमं जुहोता प्र च तिष्ठत ।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः २

यमाय । मधुमत्ऽतमम् । जुहोत । प्र । च । तिष्ठत ।
इदम् । नमः । ऋषिऽभ्यः । पूर्वऽजेभ्यः । पूर्वेभ्यः । पथिकृत्ऽभ्यः २

अत्रापि पूर्वमन्त्रवद् यमस्य प्राधान्याभिप्रायेण होमप्रतिष्ठे तस्यैव कर्तव्ये इत्यभिधीयते। हे यजमानाः यमायैव देवाय मधुमत्तमम् अतिशयेन मधुमत् सोमाज्यादिकं हविः जुहोत जुहुत। ❀ "तप्तनप्तन०" इति तस्य तबादेशे गुणः ❀। प्र च तिष्ठत प्रतिष्ठां समाप्तिं यमायैव कुरुत। ननु यमायैव हूयते तत्सहचारिणां पितॄणां किं स्याद् इत्याशङ्क्य तेषां नमस्कारः क्रियत इत्याह इदं नम इति। ऋषिभ्यः मन्त्रादिद्रष्टृभ्यः अङ्गिरःप्रभृतिभ्यः। ❀ ऋषिर्दर्शनात्। स्तोमान् ददर्शेत्यौपमन्यव इति निरुक्तम्। तद् यद् एनांस्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयंभ्वभ्यानर्षत् ते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऋषयोऽभवंस्तद् ऋषीणाम् ऋषित्वम् इति विज्ञायते। इति च निरुक्तम् [नि० २. ११.] ❀। ऋषयो विशेष्यन्ते। पूर्वजेभ्यः पूर्वम् उत्पन्नेभ्यः इदानींतनयजमानापेक्षया तेषां पूर्वजत्वम्। अत एव पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः। पथिकृतः पितृलोकस्य पथां कर्तारः। ये प्रथमं परेताः स्वर्गमार्गाणां दर्शयितारस्ते पथिकृतः पितृगणगताः। तेषां मार्गाणाम् इदानीन्तनैरपि अनुस्रियमाणत्वात्। एवं महानुभावेभ्य ऋषिभ्यः अङ्गिरःप्रभृतिभ्यः इदं नमः नमस्कारोस्तु॥

[इस मंत्रमें भी यमकी प्रधानताके अभिप्रायसे होम और प्रतिष्ठा यमकी ही करनेका वर्णन है, कि-] हे यजमानों! तुम यम देवता के लिये ही परम मधुर सोम घृत आदि हविकी आहुति दो और प्रतिष्ठाको भी यमके लिये ही करो [अब यह विचार होता है यमके लिये ही आहुति दी जावे तो उनके साथ रहने वाले पितरों के लिये क्या होगा, तो कहते हैं, कि-] पूर्वके पूर्वज पितर पितृलोकके मार्गको बनाने वाले मन्त्रद्रष्टा अंगिरा आदि ऋषियोंके लिए यह प्रणाम है॥ २॥

तृतीया॥

यमाय घृतवत् पयो राज्ञे हविर्जुहोतन।
स नो जीवेष्वा यमेद्दीर्घमायुः प्र जीवसे॥ ३॥

यमाय। घृतऽवत्। पयः। राज्ञे। हविः। जुहोतन।
सः। नः। जीवेषु। आ। यमेत्। दीर्घम्। आयुः। प्र। जीवसे ३

हे यजमानाः यमाय राज्ञे घृतवत् घृतोपेतं पयः क्षीरं हविः हवीरूपेण संस्कृतं जुहोतन जुहोत जुहुत। ❀ तस्य तनादेशे गुणः ❀। तेन किं लभ्यत इत्यत आह। स प्राप्तहविः सन् नः अस्मान् जीवेषु जीवत्सु प्राणिषु मध्ये आ यमत् नियमयेत् स्थाप-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

येत । यथा मृतिर्न भवेत् तथा करोतु । किं च स यमः दीर्घम् आयुः शतसंवत्सरलक्षणम् । प्रयच्छतु इति शेषः । किमर्थम् । जीवसे जीवनाय ॥

हे यजमानों ! यमराजके लिये घृतसम्पन्न क्षीरको हविके रूप में अर्पण करो (उससे क्या मिलेगा तो कहते हैं, कि–) वह हवि को पाने पर हम हमको जीवित प्राणियोंमें रक्खेंगे अर्थात् जिस प्रकार हमारी मृत्यु न होगी तैसा करेंगे और वह यमदेव जीवित रहनेके लिये हमको सौ वर्षकी आयु प्रदान करेंगे ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

मैनमग्ने वि दहो माभि शूशुचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम् ।
शृतं यदा करसि जातवेदोथेमेनं प्र हिणुतात पितॄँरुप ४

मा । एनम् । अग्ने । वि । दहः । मा । अभि । शूशुचः । मा । अस्य । त्वचम् । चिक्षिपः । मा । शरीरम् ।

शृतम् । यदा । करसि । जातऽवेदः । अथ । ईम् । एनम् । प्र । हिणुतात् । पितॄन् । उप ॥ ४ ॥

हे अग्ने एनं प्रेतं मा वि दहः विदाहम् अतिदाहं मा कार्षीः । तथा माभि शूशुचः । ❀ शुचेर्लुङि चङि रूपम् । "दीर्घो लघोः" इति अभ्यासस्य दीर्घः ❀ । अभितः शोकयुक्तं मा कार्षीः । उपर्यधश्च उभयोः पार्श्वयोरपि दाहाद्ध अभितः शोको भवति तदभावोत्र प्रार्थ्यते । किंच अस्य त्वचं मा चिक्षिपः अन्यत्र मा गमय । त्वग्भेदं मा कुर्वित्यर्थः । तथा शरीरमपि मा चिक्षिपः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अस्य शवशरीरस्य आहुतिरूपत्वात् पुरोडाशादिवद्द विदाहाद्यभावः प्रार्थ्यते। यदा त्वम् एतच्छरीरं शृतम् हविर्योग्यं पक्वं करसि करोषि। ❀ श्रा पाके। "शृतं पाके" इति कर्मणि कर्तरि वा निपातनात् शृभावः। करसीति। करोतेः औत्सर्गिकः शप्। लेटि वा अडागमः ❀। हे जातवेदः जातप्रज्ञ अग्ने अथ शृतकरणानन्तरम् ईम् एनं पितृभ्यः उप पितृसमीपं प्र हिणुतात् प्रहिणु प्रेरय॥

हे अग्निदेव! आप इस प्रेतको अति मत जलाइये और शोक युक्त भी न करिए और इसकी त्वचाको भी अन्यत्र न फेंकिये तथा इसके शरीरको भी अन्यत्र न फेंकिये [शवशरीरके आहुतिरूप होनेसे पुरोडाश आदिकी समान विदाहादिके अभावकी प्रार्थना की है, कि–] जब आप इस हविके योग्य शरीरको पका लें तब इसको हे जातवेदा अग्ने! पितरोंके समीप भेज दें॥ ४॥

॥ पञ्चमी

यदा शृतं कृणवो जातवेदोथेममेनं परि दत्तात् पितृभ्यः।
यदो गच्छात्यसुनीतिमेतामथ देवानां वशनीर्भवाति॥५॥

यदा। शृतम्। कृणवः। जातऽवेदः। अथ। इमम्। एनम्। परि। दत्तात्। पितृऽभ्यः।

यदो इति। गच्छाति। असुऽनीतिम्। एताम्। अथ। देवानाम्। वशऽनीः। भवाति॥ ५॥

हे जातवेदः प्राप्तहविर्लक्षणधन अग्ने त्वम् एनं शृतम् पक्वं यदा कृणवः अकरोः अथ अनन्तरम् इदम् इदानीम् एनं दाहेन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्कृतं पुरुषं पितृभ्यः परि दत्तात् प्रयच्छ । यद्वा परिदानं रक्षणाय दानम् इति प्रसिद्धं तस्य रक्षणाय प्रयच्छ । उ अपि च अयम् एनां प्रसिद्धाम् असुनीतिम् असून् प्राणान् नयति लोकान्तरम् इति असुनीतिः प्राणापहर्त्री देवता तां यदा गच्छाति गच्छति अथ अनन्तरम् अयं देवानाम् द्योतमानानां स्वकीयानाम् इन्द्रियाणां वशनीः वशं नयतीति वशनीः । ❀ "सत्सूद्विष०" इत्यादिना क्विप् ❀ । चक्षुरादीन्द्रियाणां सूर्यादिदेवताप्रापको भवाति भवति ॥

हे हविरूप धनको पाने वाले अग्निदेव ! जब आप इसको पक्व कर लें तब इस दाहसे संस्कृत पुरुषको पितरोंको रक्षाके लिये दीजिये और जब यह असुनीति देवताको प्राप्त होवे तब यह देवताओंको वशमें करने वाला हो अर्थात् चक्षु आदि इन्द्रियोंको सूर्य आदिको प्राप्त कराने वाला हो ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

त्रिकद्रुकेभिः पवते षडुर्वीरेकमिद् बृहत् ।
त्रिष्टुब् गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आर्पिता ६

त्रिऽकद्रुकेभिः । पवते । षट् । उर्वीः । एकम् । इत् । बृहत् ।
त्रिऽस्तुप् । गायत्री । छन्दांसि । सर्वा । ता । यमे । आर्पिता ६

त्रिकद्रुकेभिः त्रिकद्रुकैः । ज्योतिष्टोमगोष्टोमायुष्टोमास्त्रयः त्रिकद्रुका इत्युच्यन्ते । तैर्निमित्तभूतैस्तेषां निष्पत्तये पवते पूयते यमार्थम् अभिषूयते । सोम इति शेषः । ज्योतिष्टोमादीनाम् अननुष्ठाने यमो हनिष्यतीति भीत्या तेषु सोमोभिषूयत इत्यर्थः । तथा षडुर्वीः षडुर्व्यः । "षण्मोर्वीरंहसस्पान्तु" [आश्व० १. २. १] इत्यत्राम्नानाद्द्यौश्च पृथिवी च अहश्च रात्रिश्च आपश्च ओष-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धयश्च एनाः षड् उर्व्यः। ता अपि एकमित् एकमेव बृहत् महान्तं यमम्। उद्दिश्यैव प्रवर्तन्त इति शेषः। अथ वा बृहत् इति उत्तरत्र अन्वेति। बृहत् बृहती छन्दः तथा त्रिष्टुप् गायत्रीति च्छन्दांसि। ता तानि इतराणि सर्वा सर्वाणि छन्दांसि यमे आर्पिता आर्पितानि पर्यवसितानि। छन्दोभिरुपलक्षिताः सर्वे मन्त्रा यमैकविषया इत्यर्थः। ❀ ऋ गतौ। "अर्तिह्री०" इत्यादिना पुगागमः। "जुष्टार्पिते च च्छन्दसि" इति आद्युदात्तत्वम् ❀ ॥

ज्योतिष्टोम गोष्टोम और आयुष्टोम ये तीन त्रिकद्रुक कहलाते हैं, इनको करते समय यमदेवके सोम लिये अभिषुत किया जाता है अर्थात् ज्योतिष्टोम आदिका अनुष्ठान न करने पर यमदेव प्रहार करेंगे, इस भयसे इनमें सोमका अभिषव किया जाता है। और द्यौ पृथिवी दिन रात्रि जल तथा औषधियें ये छः उर्वियें एक यमदेवके उद्देश्यसे ही प्रवृत्त होती हैं। बृहती त्रिष्टुप् और गायत्री आदि सब छन्द भी यममें ही पर्यवसित होते हैं अर्थात् छन्दों वाले सब मन्त्र एक यमकी ही प्रशंसा करते हैं ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

सूर्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मभिः।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ॥ ७ ॥

सूर्यम्। चक्षुषा। गच्छ। वातम्। आत्मना। दिवम्। च। गच्छ। पृथिवीम्। च। धर्मऽभिः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपः । वा । गच्छ । यदि । तत्र । ते । हितम् । ओषधीषु ।
प्रति । तिष्ठ । शरीरैः ॥ ७ ॥

हे मृत पुरुष त्वं सूर्यं देवं चक्षुषा चक्षुर्द्वारेण गच्छ सूर्यप्राप्तौ चक्षुरेव द्वारम् । "आदित्यश्चक्षुर्भूत्वाक्षिणी प्राविशत्" इति [ऐ० आ० २. ४. २] पूर्वम् अक्षिणि आदित्यानुप्रवेशात् । तथा वातम् वायुं सूत्रात्मानम् आत्मना । अत्र आत्मशब्देन मुख्यः प्राणोभिधीयते । तेन तं गच्छ । अत्रापि "वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत्" इति [ऐ० आ० २, ४. २] श्रुतेः वातप्राप्तौ प्राण एव द्वारम् । एवं धर्मभिः शरीरधारकैः इतरैरिन्द्रियैः दिवं च पृथिवीं च गच्छ । वा अथ वा अपो गच्छ उदकानि अन्तरिक्षं वा प्राप्नुहि । यदि तत्र अप्सु अब्देवतायां ते तव हितं भवेत् । अनेन तत्तत्स्थानप्राप्तेरैच्छिकत्वं सूचितं भवति । ओषधीषु व्रीहियवादिषु शरीरैः स्वावयवैः कर्मेन्द्रियैः । यद्वा पूजार्थं बहुवचनम् । शरीरेण स्थूलेन प्रति तिष्ठ प्रतिष्ठितो भव ॥

हे मृतपुरुष ! तू चक्षुरूपी द्वारके द्वारा सूर्यदेवको प्राप्त हो [सूर्यप्राप्तिमें चक्षु ही द्वार है क्योंकि–"आदित्यश्चक्षुर्भूत्वाक्षिणी प्राविशत् ।–आदित्य चक्षु बनकर नेत्रोंमें प्रवेश कर गए ।" इस ऐतरेय आरण्यक २ । ४ । २ की श्रुतिमें नेत्रमें पहिले आदित्य का प्रवेश कहा है] और हे मृतपुरुष ! तू वायुको सूत्रात्मारूपसे प्राप्त हो ["वायुप्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत् ।–वायुने प्राण-सूत्रात्मा–बन कर नासिकामें प्रवेश किया" इस ऐतरेय आरण्यक २ । ४ । २ की श्रुतिके अनुसार वातप्राप्तिमें प्राण ही द्वार है] इसी प्रकार शरीरधारक अन्य इन्द्रियों (धर्मों) से द्युलोक और पृथ्वीलोकको प्राप्त हो । जल वा अन्तरिक्षको प्राप्त हो, इन सब स्थानोंमें तेरा हित (इच्छा) हो तो प्रवेश कर और व्रीहि यव आदिमें औषधियोंमें अपने स्थूल–शरीरके रूपमें प्रवेश कर ७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अष्टमी ॥

अजो भागस्तपसस्तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः ।
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम् ॥ ८ ॥

अजः । भागः । तपसः । तम् । तपस्व । तम् । ते । शोचिः । तपतु । तम् । ते । अर्चिः ।
याः । ते । शिवाः । तन्वः । जातऽवेदः । ताभिः । वह । एनम् । सुऽकृताम् । ऊं इति । लोकम् ॥ ८ ॥

हे अग्ने अयम् अजस्तव भागः । अनुस्तरणीत्वेन अजस्य हन्यमानत्वाद् एवम् उच्यते । तं तपसः तापकेन तव तेजसा तपस्व संतापय । तम् एव अजं भागं ते तव शोचिः दीप्तिः तपतु सन्तापयतु ॥ एवम् अजस्य तापादिविषयताम् अभिधाय अथ प्रेतस्य अभिमतलोकप्राप्तिम् आशास्ते । उ अपि च हे जातवेदः प्राप्तपशुलक्षणधन त्वं ते याः शिवाः सुखकरास्तन्वः सन्ति । "ये ते अग्ने शिवे तनुवौ" [तै० ब्रा० १. १. ७. २] इत्यध्वर्युमन्त्रोक्ता विराट्स्वराडाद्याः शिवास्तन्वः सन्ति ताभिस्तनूभिः शरीरसुखकरीभिः एनं प्रेतं सुकृताम् पुण्यकृतां लोकम् स्थानं वह प्रापय ॥

हे अग्निदेव ! यह अज आपका भाग है उसको आप अपने तापक तेजसे सन्तप्त करिये और उसी अजभागको आपकी दीप्ति सन्तप्त करे और उसी अजको आपका ज्वालारूप तेज तपावे और हे पशुरूप धनको पाने वाले जातवेदा अग्ने ! आपके जो सुखप्रद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विराट् स्वराट् आदि शरीर हैं उनसे आप इस प्रेतको पुण्यात्माओं के लोकको प्राप्त कराइये ॥ ८ ॥

नवमी ॥

यास्ते शोचयो रंहयो जातवेदो याभिरापृणासि दिवमन्तरिक्षम् ।
अजं यन्तमनु ताः समृण्वतामथेतराभिः शिवतमाभिः शृतं कृधि ॥ ९ ॥

याः । ते । शोचयः । रंहयः । जातऽवेदः । याभिः । आऽपृणासि । दिवम् । अन्तरिक्षम् ।
अजम् । यन्तम् । अनु । ताः । सम् । ऋण्वताम् । अथ । इतराभिः । शिवऽतमाभिः । शृतम् । कृधि ॥ ९ ॥

हे जातवेदः ते याः शोचयः । शोचयन्तीति शोचयः । तादृशा याः सन्ति । तथा या रंहयः वेगवत्यः । ❀ रहि गतौ । औणादिक इप्रत्ययः ❀ । तन्वः सन्ति । किं च याभिस्तनूभिर्ज्वालारूपाभिः दिवम् अन्तरिक्षं च आ प्रीणासि पूरयसि तर्पयसि वा तास्तव तन्वो यन्तं गच्छन्तम् अजम् अनुस्तरणीलक्षणं समृण्वताम् संगच्छन्ताम् । अथ । अथेत्ययं प्रकारान्तरद्योतनार्थः । इतराभिस्तनूभिः शिवतराभिः अत्यन्तसुखकराभिः अमुं प्रेतं शृतम् पक्वं हविर्योग्यं कृधि कुरु ॥

हे जातवेदा अग्ने ! आपकी जो शोक देने वाली और वेगवती लपटें हैं कि–जिनसे आप द्युलोक और अन्तरिक्षलोकमें व्याप्त होजाते हैं वे लपटें इस अजको प्राप्त होवें और दूसरी सुखप्रद लपटोंसे आप इस प्रेतको हविकी समान पक्व करिये ॥ ९ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दशमी ॥

अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधावान्
आयुर्वसान उप यातु शेषः सं गच्छतां तन्वा सुवर्चाः

अव । सृज । पुनः । अग्ने । पितृऽभ्यः । यः । ते । आऽहुतः ।
चरति । स्वधाऽवान् ।
आयुः । वसानः । उप । यातु । शेषः । सम् । गच्छताम् । तन्वा ।
सुऽवर्चाः ॥ १० ॥

हे अग्ने त्वम् एनं प्रेतं तव हविष्टेन कल्पितं पितृभ्यः पुनरव सृज अत्यन्तं त्यज प्रयच्छ । पितृलोकस्थानायेत्यर्थः । यः प्रेतपुरुषः ते त्वयि आहुतः आहुतित्वेन दत्तः स्वधावान् अस्माभिर्दत्ताभिः स्वधाभिस्तद्वान् सन् चरति गच्छति ॥ किं च शेषः । अपत्यनामैतत् । ❀ शेष इत्यपत्यनाम शिष्यत इति निरुक्तम् । ३. २. ❀ । आयुर्वसानः आयुष्मान् सन् उप यातु स्वगृहं प्रति गच्छतु । स च प्रेतः सुवर्चाः शोभनेन वर्चसा युक्तः सन् तन्वा पितृलोकावस्थानोचितेन शरीरेण सं गच्छताम् युक्तो भवतु ॥ यद्वा चतुर्थपादोपि अपत्यविषयतया योजनीयः । तत्पक्षेपि स च शेषः सुवर्चाः सन् तन्वा स्वीयेन शरीरेण सं गच्छताम् । अनेन पितृमृतिदुःखात् पुत्रस्य शरीरत्यागाभावो वर्चस्वित्वं च प्रार्थितं भवति ॥

इत्यष्टादशकाण्डे द्वितीयेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

हे अग्ने ! जो प्रेतपुरुष आपको हविरूपसे दिया गया है और हमारी दी हुई स्वधाओंसे सम्पन्न होकर आपमें विचरण कर रहा है उस हविरूपमें कल्पित प्रेतको आप फिर पितृलोकके लिये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छोड़िये और इसका जो शेष अर्थात् पुत्र है वह आयुष्मान् रहता हुआ घरको चला जावे और यह प्रेत शोभन वर्चसे सम्पन्न होकर पितृलोकमें रहनेके योग्य शरीरसे भी संयुक्त होवे, अथवा—इसका पुत्र ही सुन्दर तेजसे सम्पन्न रहता हुआ अपने शरीरसे सम्पन्न रहे [इससे यह प्रार्थनाकी है, कि—पिताके मरणके दुःखसे पुत्र के शरीरका पात न हो और यह वर्चस्वी भी रहे] ॥ १० ॥ (७)

अष्टादश काण्डके द्वितीय अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त

पितृमेधे "अति द्रव" इति अष्टानाम् ऋचा दह्यमानप्रेतशरीरोपस्थाने विनियोग उक्तः ॥

तथा एताभिरष्टभिर्दहनदेशं नीयमानं प्रेतशरीरम् अनुमन्त्रयेत ॥

संचयनकर्मणि एताभिरष्टभिः हरिणीसंज्ञिकाभिर्ऋग्भिः अस्थिपूर्णं कलशं निखननप्रदेशं प्रति हरेयुः ॥

तत्र "अति द्रव" इति तिसृभिः प्रेतहस्तयोर्दीयमानं गोपशुवृक्षद्वयम् अनुमन्त्रयेत ॥

"स्योनास्मै भव" इति तिसृभिर्मुमूर्षुं यजमानम् अग्निहोत्रशालायाम् आस्तीर्णेषु दर्भेषु स्थापयेत् ॥

तथा एताभिस्तिसृभिर्ऋग्भिः अग्नेरुत्तरपार्श्वे प्रेतस्य शरीरं शकटाद् अवतारयेत् । इदं कर्म दहनस्थाने कर्तव्यम् ॥

तथा अस्थिपूर्णकलशस्य भूमौ निखननपक्षे "स्योनास्मै भव" [१९] इत्यृचा कलशम् अभिमन्त्र्य निखनेत् ॥

"अति द्रव" आदि आठ ऋचाओंका भस्म होते हुए प्रेत-शरीरके उपस्थानमें विनियोग कहा है ।

तथा इन आठ ऋचाओंसे भस्म करनेके स्थानको लिये जाते हुए प्रेतके शरीरका अनुमन्त्रण करे ।

संचयनकर्ममें इन हरिणी नामक आठ ऋचाओंसे अस्थिपूर्ण कलशको निखननदेशकी ओर लेजावे ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तहाँ "अतिद्रव" इन तीन ऋचाओंसे प्रेतके हाथमें दिये जाते हुए गोपशुके दोनों वृक्कोंका अनुमन्त्रण करे।

"स्योनास्मै भव" इन तीन ऋचाओंसे मुमूर्षु यजमानको अग्निहोत्रशालामें फैले हुए दर्भों पर स्थापित करे।

तथा इन तीन ऋचाओंसे अग्निके उत्तरकी ओर प्रेतके शरीर को शकटसे उतारे इस कर्मको दहनस्थानमें करे।

तथा अस्थिपूर्ण कलशके निखननके पक्षमें "स्योनास्मै भव" इस उन्नीसवीं ऋचासे कलशको अभिमंत्रित करके गाड़ देवे।

तत्र प्रथमा ॥

अति द्रव श्वानौ सारमेयौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा।

अध पितॄन्त्सुविदत्राँ अपीहि यमेन ये सधमादं मदन्ति

अति। द्रव। श्वानौ। सारमेयौ। चतुःऽअक्षौ। शबलौ। साधुना। पथा।

अध। पितॄन्। सुऽविदत्रान्। अपि। इहि। यमेन। ये। सधऽमादम्। मदन्ति ॥ ११ ॥

प्रेतः संबोध्यते। हे पितृलोकं गच्छन् प्रेत सारमेयौ सरमा नाम देवशुनी तस्याः पुत्रौ। ❀ "स्त्रीभ्यो ढक्" ❀। चतुरक्षौ चत्वारि अक्षीणि ययोः। एकैकस्य चतुरक्षत्वम्। ❀ "बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः०" इति षच् समासान्तः ❀। शबलौ शबलवर्णौ। यद्वा नामधेयम् एतत्। श्यामशबलसंज्ञकौ। शबलाविति द्विवचनेन श्यामोपि विवक्ष्यते। स्मर्यते हि।

श्वानौ द्वौ श्यामशबलौ वैवस्वतकुलोद्भवौ।
ताभ्यां बलिं प्रदास्यामि स्यातां मे नावहिंसकौ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इति । तौ श्वानौ साधुना समीचीनेन ऋजुना पथा मार्गेण अति द्रव अतीत्य गच्छ । अथ अथ अनन्तरं सुविदत्रान् । विदत्रशब्दो धनवाची । सुधनान् शोभनहवीरूपान्नान् । यद्वा । ❀ वेत्तेः कत्रन् प्रत्ययः ❀ । ज्ञानवाची विदत्रशब्दः । संज्ञानान् पितॄन् अपेहि । अपशब्दः उपोपसर्गस्यार्थे । उपेहि । उपगच्छेत्यर्थः । यद्वा अपशब्दो वर्जनार्थः । अपवृज्य मार्गासीनौ श्वानौ वर्जयित्वा पितॄन् इहि गच्छ । ❀ एतेर्लोटि रूपम् ❀ । ये पूर्वजाः पितरो यमेन पितृराजेन सधमादम् सह मादनं तृप्तिर्यस्मिन् कर्मणि तत् सधमादं सह तृप्तिर्हर्षो वा यथा भवति तथा मदन्ति माद्यन्ति तान् इहीति संबन्धः । ❀ "सध मादस्थयोश्छन्दसि" इति सहस्य सधादेशः । मादयतेरेरजन्तो माद इति माद्यतेर्वा व्यत्ययेन घञ् ❀ ॥

हे पितृलोकको जाने वाले प्रेत ! सरमानामक देवताओंकी कुतियाके श्याम और शबल नामक दो पुत्र हैं उनमेंसे प्रत्येकके चार २ नेत्र हैं उन दोनों श्याम शबलों † को तू सरल मार्गसे अतिक्रमण करके जा । फिर जो पितर यमके साथ रहते हुए प्रसन्न रहते हैं उन हविरूप धनसे सम्पन्न पितरोंके पास जा ११

द्वितीया ॥

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिषदौ नृचक्षसौ
ताभ्यां राजन् परि धेह्येनं स्वस्त्यस्मा अनमीवं च धेहि

यौ । ते । श्वानौ । यम । रक्षितारौ । चतुःऽअक्षौ । पथिसदौ
इति पथिऽसदौ । नृऽचक्षसौ ।

† कहा भी है, कि—"द्वौ श्वानौ श्यामशबलौ वैवस्वतकुलोद्भवौ । ताभ्यां बलिं प्रदास्यामि स्यातां मे तावहिंसकौ ।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ताभ्याम् । राजन् । परि । धेहि । एनम् । स्वस्ति । अस्मै । अनमीवम् । च । धेहि ॥ १२ ॥

यमरक्षितारौ यमो रक्षिता गोपायिता ययोः । ❀ "ऋतश्छन्दसि" इति कबभावः । अन्तोदात्तप्रकरणे "त्रिचक्रादीनाम् उपसंख्यानम्" इति अन्तोदात्तत्वम् ❀ । यद्वा यमशब्देन तत्स्वामिकं पुरम् उच्यते । यमपुरस्य पालयितारौ । ❀ कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वेन अन्तोदात्तत्वम् ❀ । चतुरक्षौ व्याख्यातम् । पथिसदौ पितृभिर्गन्तव्ये मार्गे सीदन्तौ । ❀ "छन्दसि वनसनरक्षिमथाम्" इति विहित इन् प्रत्ययः सदेरपि व्यत्ययेन भवति ❀ । नृचक्षसा नृचक्षसौ नृणां मन्तॄणां द्रष्टारौ हे राजन् पितॄणां स्वामिन् ते त्वदीयौ यौ श्वानौ वर्तेते ताभ्यां श्वभ्याम् एनम् अन्वादिष्टं प्रेतं परि धेहि । परिदेहीत्यर्थः । रक्षणार्थं दानं परिदानम् इत्युच्यते । किं च अस्मै त्वदीयं लोकं गच्छते स्वस्ति । स्वस्तीत्यविनाशिनाम । अविनाशम् अनमीवम् अमीवो रोगः बाधा तद्रहितं स्थानं च धेहि विधेहि ॥

हे पितरोंके स्वामिन् ! यमपुरकी रक्षा करने वाले चार नेत्र वाले, पितरोंके मार्गमें बैठे रहने वाले मनुष्योंके द्रष्टा आपके जो श्वान हैं उनको रक्षाके लिये इस प्रेतको सौंपिये । और इस आप के लोकमें रहने वालेको अविनाशी बाधारहित स्थान दीजिये १२

तृतीया ॥

उरूणसावसुतृपावुदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु ।
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् १३

उरुऽनसौ । असुऽतृपौ । उदुम्बलौ । यमस्य । दूतौ । चरतः । जनान् । अनु ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तौ । अस्मभ्यम् । दृशये । सूर्याय । पुनः । दाताम् । असुम् । अद्य । इह । भद्रम् ॥ १३ ॥

उरुणसौ विस्तीर्णनासिकौ । ❀ नासिकाशब्दस्य नस्भावः । सुप आकारः ❀ । असुतृपौ प्राणिनाम् असुभिः प्राणैस्तृप्यन्तौ प्राणापहारकौ उदुम्बलौ । विस्तीर्णबलावित्यर्थः । ❀ पूर्वपदे वर्णोपजनश्छान्दसः ❀ । यमस्य दूतौ प्रेष्यौ जनान् जननवतः उत्पत्तिमतः प्राणिनः अनु अनुलक्ष्य चरतः तेषां प्राणान् अपहर्तुं सर्वत्र संचरतः । तौ दूतौ सूर्याय । ❀ "क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्" इति कर्मणः संप्रदानत्वाच्चतुर्थी । ❀ दृशये दर्शनाय । ❀ इगुपधात् क्वित् [उ० ४. ११९] इति औणादिक इप्रत्ययः । क्वित्त्वात् लघूपधगुणाभावः ❀ । सूर्यं द्रष्टुम् अद्य इदानीम् इह अस्मच्छरीरे भद्रम् भन्दनीयम् असुम् पञ्चवृत्तिकं प्राणम् अस्मभ्यं पुनर्दाताम् पुनः प्रयच्छताम् । ❀ ददातेश्छान्दसे लुङि "गातिस्था०" इति सिचो लुक् । बाहुलकाद्व अमाङ्योगेपि अडभावः ❀ ॥

विस्तीर्ण नासिका वाले, प्राणियोंके प्राणोंसे तृप्त होने वाले, प्राणापहारक प्रचण्ड बली यमके दूत उत्पत्ति वाले प्राणियोंको लक्ष्यमें रख कर उनका प्राण अपहरण करनेके लिये सर्वत्र विचरण करते रहते हैं । ये दोनों दूत हमारे शरीरमें सूर्यदेवको देखने के लिये कल्याणप्रद पञ्चवृत्ति प्राणको फिर देवें ॥ १३ ॥

चतुर्थी ॥

सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते ।
येभ्यो मधु प्रधावति तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥१४॥

सोमः । एकेभ्यः । पवते । घृतम् । एके । उप । आसते ।
येभ्यः । मधु । प्रऽधावति । तान् । चित् । एव । अपि । गच्छतात्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इदमादिभिः पञ्चभिर्ऋग्भिः म्रियमाणानां यजमानानां वर्तनम् अत्र प्रतिपाद्यते। एकेभ्यः केभ्यश्चित् पितृभ्यः सोमः पवते उपभोगाय कुल्यारूपेण प्रवहति येषां गोत्रजाः सामा न ब्रह्मयज्ञसमयेऽधीयते। श्रूयते हि। "यत् सामानि सोम एभ्यः पवते" इति [तै० आ० २. १०. १]॥ एके अन्ये पितरः घृतम् आज्यम् उपासते उपगच्छन्ति। उपभुञ्जत इत्यर्थः। येषां पुत्रादयो यजूंषि ब्रह्मयज्ञकालेऽधीयते। श्रुतिश्च भवति। "यद् यजूंषि घृतस्य कूल्या" इति [तै० आ० २. १०. १]॥ येभ्यः पितृभ्यः। ❀ तादर्थ्ये चतुर्थी ❀। उपभोगाय मधु क्षौद्रं प्रधावति प्रवाहरूपेण शीघ्रं गच्छति। ये आथर्वणान् मन्त्रान् ब्रह्मयज्ञार्थम् अधीयते तेषां पितॄन् प्रति मधु मधुकुल्या प्रवहति। तथा चाम्नायते। "यद् अथर्वाङ्गिरसो मधोः कूल्याः" इति [तै० आ० २. १०. १]। तांश्चिदेव पूर्वोक्तान् सर्वान् एव हे म्रियमाण प्रेत वा अपि गच्छतात् अपिगच्छ प्राप्नुहि। ❀ "तुह्योः०" इति हेस्तातङ् आदेशः ❀॥

[इस ऋचासे पाँच ऋचा तक मरने वाले यजमानोंकी वृत्ति का वर्णन किया है, कि-] एक पितरोंके लिये सोम उपभोगके लिये नदीरूपमें बहता है [जिनके गोत्रमें उत्पन्न हुए पुरुष ब्रह्मयज्ञके समय सामको पढ़ते हैं उनके निमित्त सोम नदीरूपमें बहता है। तैत्तिरीय आरण्यक २। २।१ की श्रुतिमें भी कहा है, कि- "यत् सामानि सोम एभ्यः पवते"] और दूसरे पितर घृतका उपभोग करते हैं [जिनके पुत्र आदि ब्रह्मयज्ञके समय यजुर्वेदके मन्त्रोंका पाठ करते हैं उनको घृतकी नदी मिलती हैं इसमें तैत्तिरीय आरण्यक २। १०। १ का प्रमाण है. कि-"यद् यजूंषि घृतस्य कूल्या"] और जो ब्रह्मयज्ञके समय अथर्ववेदके मन्त्रोंका पाठ करते हैं उनके पितरोंकी ओर मधुकी नदी बहती है [इसका श्रुतिमें प्रमाण भी है, कि-"यद् अथर्वांगिरसो मधोः कूल्याः"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तैत्तिरीय आरण्यक २ । १० । १] हे मरते हुए प्रेत ! तू उन सब वस्तुओंको प्राप्त हो ॥ १४ ॥

पञ्चमी ॥

ये चित् पूर्वे ऋतसाता ऋतजाता ऋतावृधः ।
ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् १५

ये । चित् । पूर्वे । ऋतऽसाताः । ऋतऽजाताः । ऋतऽवृधः ।
ऋषीन् । तपस्वतः । यम । तपःऽजान् । अपि । गच्छतात् ॥१५॥

ये चित् ये च पूर्वे पूर्वपुरुषा ऋतसाताः ऋतम् सत्यं यज्ञो वा तेन दत्ताः संभक्ता वा । ❀ सनतेर्निष्ठायां "जनसनखनां सन्झलोः" इति आत्वम् ❀ । अत एव ऋतजाताः ऋतेन सत्येन जाता उत्पन्नाः ऋतावृधः ऋतस्य वर्धकाश्च भवन्ति । तपस्वतः तपसा युक्तान् तपोजान् तपसः सकाशादेव उत्पन्नान् ऋषीन् अतीन्द्रियार्थदर्शिनस्तान् हे यम यमवत् नियत यद्वा यमेन पितृराजेन नीयमान हे प्रेत त्वम् अपि गच्छतात् अपिगच्छ प्राप्नुहि ॥

जो पूर्वपुरुष सत्यसे संभक्त थे, सत्यसे उत्पन्न हुए थे और सत्यको बढ़ाते रहते हैं उन तपसे संपन्न हुए और तपसे ही उत्पन्न अतीन्द्रियार्थदर्शी ऋषियोंको हे यमसे नीयमान पुरुष! तू भी प्राप्त हो

षष्ठी ॥

तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः ।
तपो ये चक्रिरे महस्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥१६॥

तपसा । ये । अनाधृष्याः । तपसा । ये । स्वः । ययुः ।
तपः । ये । चक्रिरे । महः । तान् । चित् । एव । अपि । गच्छतात् १६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ये जनाः तपसा कृच्छ्रचान्द्रायणादिना युक्ताः सन्तः अनाधृष्याः पापैरप्रधृष्या भवन्ति । ये च तपसा यागादिरूपेण साधनेन स्वः स्वर्गं ययुः यान्ति प्राप्नुवन्ति । ये च महः महत् तपः अन्यैर्दुष्करं राजसूयाश्वमेधादिकं हिरण्यगर्भाद्युपासनं वा चक्रिरे कुर्वन्ति । एते येषु लोकेषु वर्तन्ते तेषु लोकेषु तांश्चिदेव तानेव तपस्विनः हे प्रेत अपि गच्छतात् अपिगच्छ ॥

कृच्छ्रचान्द्रायण आदि तपसे संयुक्त जो पुरुष पापोंसे अप्रधृष्य होते हैं और जो यागादिसाधनरूप तपसे स्वर्गको प्राप्त होते हैं, और जो दूसरोंसे दुष्कर राजसूय अश्वमेध वा हिरण्यगर्भकी उपासनारूप महातपको करते हैं वे पुरुष जिन लोकोंको प्राप्त होते हैं हे प्रेत ! तू भी उन तपस्वियोंके लोकोंको प्राप्त हो ॥ १६ ॥

सप्तमी ॥

ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः ।
ये वा सहस्रदक्षिणास्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥ १७ ॥

ये । युध्यन्ते । प्रऽधनेषु । शूरासः । ये । तनूऽत्यजः ।
ये । वा । सहस्रऽदक्षिणाः । तान् । चित् । एव । अपि । गच्छतात्

प्रधनेषु । प्रकीर्णानि अस्मिन् धनानि भवन्तीति प्रधनाः संग्रामाः । तेषु शूरासः शौर्यवन्तो ये युध्यन्ते शत्रून् संप्रहरन्ति । ये च तनूत्यजः शरीराणि तत्र ये त्यक्तारो भवन्ति । ये वा ये च सहस्रदक्षिणाः सहस्रदक्षिणान् क्रतून् अनुष्ठितवन्तः तान् सर्वानेव हे प्रेत त्वम् इतो गच्छ । ते येषु उत्तमेषु लोकेषु निवसन्ति तं लोकं प्राप्नुहीत्यर्थः ॥

जो शूर संग्रामोंमें शत्रुओंके ऊपर प्रहार करते हैं और जो युद्धमें शरीरको त्याग देते हैं और जो अनन्त दक्षिणा वाले यज्ञों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को किया करते हैं, हे प्रेत ! तू उन सबको प्राप्त हो अर्थात् वे जिन उत्तम लोकोंमें रहते हैं उन लोकोंको प्राप्त हो ॥ १७ ॥

अष्टमी ॥

सहस्रणीथाः कवयो ये गोपायन्ति सूर्यम् ।
ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् ॥ १८ ॥

सहस्रऽनीथाः । कवयः । ये । गोपायन्ति । सूर्यम् ।
ऋषीन् । तपस्वतः । यम । तपःऽजान् । अपि । गच्छतात् ॥ १८ ॥

सहस्रणीथाः । सहस्रनयनाः कवयः क्रान्तदर्शिनो ये सूर्यम् आदित्यं गोपायन्ति रक्षन्ति तपस्वतः तपसा युक्तान् तपोजान् तपसः सकाशादेव उत्पन्नान् तान् ऋषीन् हे यम नियत शकटे बद्ध वा यमेन नीयमान वा हे प्रेत त्वम् अपि गच्छतात् अपि गच्छ ॥

अनन्त दृष्टि वाले जो क्रान्तदर्शी ऋषि सूर्यकी रक्षा करते हैं उन तपस्वी तपसे उत्पन्न हुए ऋषियोंको हे यमसे नीयमान पुरुष ! तू भी प्राप्त हो ॥ १८ ॥

नवमी ॥

स्योनास्मै भव पृथिव्यनृक्षरा निवेशनी ।
यच्छास्मै शर्म सप्रथाः ॥ १९ ॥

स्योना । अस्मै । भव । पृथिवि । अनृक्षरा । निऽवेशनी ।
यच्छ । अस्मै । शर्म । सऽप्रथाः ॥ १९ ॥

हे पृथिवि प्रथिते भूमे वेदिरूपे त्वम् अनृक्षरा अनाधिका निवेशनी निविशन्ति अत्रेति निवेशनी शयनार्हा सती अस्मै मुमूर्षवे जनाय अस्थिरूपप्रेताय वा स्योना सुखकरी भव । किं च अस्मै

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्वोक्ताय सप्रथाः प्रथः प्रख्यानं विस्तीर्णता तत्सहिता त्वं शर्म सुखं यच्छ देहि । ❀ दाण् दाने । "पाघ्रा०" इत्यादिना यच्छादेशः ❀ ॥

हे वेदिरूपे विस्तृतभूमे ! तू मुमूर्षु पुरुषके लिये निष्कण्टक अत एव शयनके योग्य बन और विस्तीर्णतासम्पन्न तू इसको सुख दे १९

दशमी ॥

असंबाधे पृथिव्या उरौ लोके नि धीयस्व ।
स्वधा याश्चकृषे जीवन् तास्ते सन्तु मधुश्चुतः ॥ २० ॥

असम्ऽबाधे । पृथिव्याः । उरौ । लोके । नि । धीयस्व ।
स्वधाः । याः । चकृषे । जीवन् । ताः । ते । सन्तु । मधुऽश्चुतः २०

हे मुमूर्षो प्रेत वा असंबाधे । संबाधः संमर्दः । तद्रहिते उरौ विस्तीर्णेपृथिव्याः अग्निहोत्रवेदिलक्षणाया लोके लोक्यमाने स्थाने नि धीयस्व धापितो भव । ❀ दधातेः कर्मणि यक् ❀ । पूर्वं त्वं जीवन् जीवनवान् याः स्वधाः स्वम् आत्मानं दधाति पुष्णाति धिनोतीति स्वधा अन्नम् दैवानि हवींषि स्वधाकारेण दत्तानि पित्र्याणि हवींषि च चकृषे कृतवान् असि । ❀ करोतेर्लिटि क्रादिनियमाद् इडभावः ❀ । ताः स्वधाः ते तव मधुश्च्युतः मधुप्रवाहक्षारयित्र्यः सन्तु भवन्तु । उपलक्षणम् एतत् । मधुररसघृतसोमादिप्रवाहरूपा भवन्तु ॥

[इति] द्वितीयेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे मुमूर्षो ! तू अग्निहोत्रादिके वेदीरूप विशाल दर्शनीय स्थान में स्थापित हो, पहिले तूने पितरों और देवताओंके निमित्त जिन स्वधाओंको और हवियोंको दिया है वे स्वधा तुझको मधु आदिके प्रवाहरूपमें प्राप्त होवें ॥ २० ॥ (८)

द्वितीय अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"हयामि" [२१] इति आद्यायाः "स्योनास्मै भव" [१९] इत्यनया सह उक्तो विनियोगः ॥

"उत् त्वा वहन्तु" [२२] इत्यनया चितेर्दक्षिणपार्श्वे अजं पशुं बध्नाति । यथा दह्यते तथा बध्नीयात् ॥

आहिताग्नेः संस्कारार्थं विहितेषु त्रिष्वग्निषु "अपेमम्" [२७] इत्यृचा आज्यं जुहुयात् ॥

पिण्डपितृयज्ञे बर्हिषि उदपात्रनिनयनानन्तरं "ये दस्यवः" [२८] इत्यृचा उभयत आ दीप्तम् उल्मुकं निरस्येत् । सूत्रितं हि । "यज्ञोपवीती ये दस्यव इत्युभयत आदीप्तम् उल्मुकं त्रिः प्रसव्यं परिहृत्य निरस्यति" इति [कौ० ११. ८] ॥

पिण्डपितृयज्ञ एव "सं विशन्तु" [२९] इत्यनया आस्तीर्णे बर्हिषि तिलान् प्रकिरेत् ॥

"हयामि" इस (२१) पहिली ऋचाका "स्योनास्मै भव" (१९) ऋचाके साथ विनियोग कह दिया है ।

"उत् त्वा वहन्तु" इस (२२ वीं) ऋचासे चिताके दाहिनी ओर अज-पशुको बाँधे, जिस प्रकार वह भस्म होजाय तिस प्रकार बाँधे ।

आहिताग्निकी संस्कारार्थक विहित तीन अग्नियोंमें "अपेमम्" (२७) ऋचासे घृतकी आहुति देय ।

पिण्डपितृयज्ञमें कुशाओं पर जलपूर्ण पात्र रखनेके अनन्तर "ये दस्यवः" (२८) ऋचासे दोनों ओर जलते हुए उल्मुक को फेंक देय । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-"यज्ञोपवीती ये दस्यव इत्युभयत आदीप्तं उल्मुकं त्रिः प्रसव्यं परिहृत्य निरस्यति" (कौशिकसूत्र ११ । ८) ॥

पिण्डपितृयज्ञमें ही "सं विशन्तु" (२९) ऋचासे बिछाये हुए दर्भों पर तिलोंको डाले ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तत्र प्रथमा ॥

ह्वयामि ते मनसा मन इहेमान् गृहाँ उप जुजुषाण एहि ।
सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेन स्योनास्त्वा वाता उप वान्तु शग्माः ॥ २१ ॥

ह्वयामि । ते । मनसा । मनः । इह । इमान् । गृहान् । उप । जुजुषाणः । आ । इहि ।

सम् । गच्छस्व । पितृऽभिः । सम् । यमेन । स्योनाः । त्वा । वाताः । उप । वान्तु । शग्माः ॥ २१ ॥

हे प्रेत पुरुष ते तव संबन्धिः मनः अन्तःकरणम् अस्मदीयेन मनसा इह अस्मिन् लोके ह्वयामि आह्वयामि । इमान् अस्मदीयान् गृहान् येषु त्वाम् उद्दिश्य और्ध्वदेहिकं कर्म क्रियते तान् जुजुषाणः सेवमानः प्रीयमाणो वा । ❀ जुषी प्रीतसेवनयोः । व्यत्ययेन श्लुः ❀ । उपैहि उपागच्छ । उपेत्य च संस्कारोत्तरकालं पितृभिः पितृपितामहप्रपितामहैः सं गच्छस्व साषिण्डयंकरणेन संगतो भव । ❀ "समो गम्यृच्छि०" इति आत्मनेपदम् ❀ । यमेन तद्राजेन च संगतो भव । स्योनाः । ❀ षिवु तन्तुसंताने । अस्माद् औणादिको नप्रत्ययः । "च्छ्वोः शूडनुनासिके च" इति वकारस्य ऊडादेशः ❀ । पितृलोकगमनसमये तव अध्वजन्यश्रमम् अपनेतुं संततानैरन्तर्येण वर्तमानाः शग्माः सुखकराः शैत्यमान्द्यसौरभ्ययुक्ता वाताः वायवस्त्वा त्वाम् उप वान्तु उपगच्छन्तु । ❀ वा गतिगन्धनयोः । अदादित्वात् शपो लुक् ❀ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे प्रेत पुरुष ! तेरे मनको मैं अपने मनसे इस लोकमें बुलाता हूँ, अब जिन घरोंमें तेरे निमित्त और्ध्वदेहिक कर्म किया जाता है उन हमारे घरोंमें तू आ, और संस्कारके अनन्तर पिता, पितामह और प्रपितामहके साथ सपिण्डीकरणके प्रभावसे मिल जा और राजा यमके पास पहुँच जा, पितृलोकमें जानेके समय निरन्तर चलने वाले सुखप्रद वायु तेरे मार्गके श्रमको दूर करनेके लिए तुझको प्राप्त होवें ॥ २१ ॥

द्वितीया ॥

उत् त्वा वहन्तु मरुत उदवाहा उदप्रुतः ।
अजेन कृण्वन्तः शीतं वर्षेणोक्षन्तु बालिति ॥२२॥

उत् । त्वा । वहन्तु । मरुतः । उदऽवाहाः । उदऽप्रुतः ।
अजेन । कृण्वन्तः । शीतम् । वर्षेण । उक्षन्तु । बाल् । इति २२

हे प्रेत मरुतः मरुत्संज्ञका देवास्त्वा त्वाम् उद्वहन्तु ऊर्ध्वम् आकाशे वहन्तु धारयन्तु । यद्वा उदवाहसमभिव्याहारात् मरुच्छब्देन वायव उच्यन्ते । वायवस्त्वाम् उपरिलोकं प्रापयन्तु इत्यर्थः । अपि च उदवाहाः उदकं वहन्ति धारयन्तीति उदवाहा मेघाः । ❀ "पेषंवासवाह०" इति उदकशब्दस्य उदभावः ❀ । अत एव उदप्लुतः उदकैर्भूमिं स्रावयन्तः आर्द्रीकुर्वन्तः । शीतम् शैत्यगुणं कृण्वन्तः कुर्वन्तः एवंगुणविशिष्टा मेघाः समीपबद्धेन अजेन सहितं त्वां वर्षेण वर्षजलेन उक्षन्तु सिञ्चन्तु । इतिशब्दः बाल् इत्यस्य अनुकरणशब्दतां द्योतयति । उक्षणसमये बाल् इत्येवमात्मकः शब्दो यथा जायेत तथा उक्षन्तु इत्यर्थः । ❀ उक्ष सेचने ❀ ॥

हे प्रेत पुरुष ! मरुत्संज्ञक देवता तुझको आकाशमें ऊपर धारण किये रहें अथवा वायु तुझको ऊपरके लोकमें पहुँचावें,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और जलको धारण करने वाले अत एव पृथ्वीको जलसे गीली करने वाले शीतल मेघ बाल शब्द करते हुए समीपमें बँधे हुए अजसहित तुझको वर्षाके जलसे सिञ्चित करें ॥ २२ ॥

तृतीया ॥

उदहमायुरायुषे क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
स्वान् गच्छतु ते मनो अधा पितॄँरुप द्रव ॥ २३ ॥

उत् । अहम् । आयुः । आयुषे । क्रत्वे । दक्षाय । जीवसे ।
स्वान् । गच्छतु । ते । मनः । अध । पितॄन् । उप । द्रव ॥२३॥

हे प्रेत ते त्वदीयम् आयुः उदहम् उच्चैःस्वरेण आह्वयामि । ❀ "छन्दसि लुङ्लङ्लिटः" इति लुङ् । "लिपिसिचिह्वश्च" इति च्लेः अङ् आदेशः ❀ । किमर्थम् । आयुषे जीवनाय क्रत्वे क्रतवे यज्ञादिकर्मणे दक्षाय बलाय । यद्वा "प्राणो वै दक्षः । अपानः क्रतुः" इति [तै० सं० २. ५. २. ४] श्रुतेर्दक्षक्रतुशब्दाभ्यां प्राणापानावभिधीयेते । क्रत्वे अपाननव्यापाराय दक्षाय प्राणनव्यापाराय । प्राणवायोर्नासारन्ध्राद् बहिर्निःसरणं प्राणनम् । अन्तराकर्षणम् अपाननम् । जीवसे जीवनाय प्राणधारणाय । ❀ सर्वत्र तादर्थ्ये चतुर्थी ❀ । एतत् सर्वम् आयुषि सत्येव भवतीति तदाहानं क्रियते इत्यर्थः । ते त्वदीयं मनः स्वाम् स्वकीयां तनुं संस्कारजन्यम् अभिनवशरीरं गच्छतु । अध अथ शरीरप्राप्त्यनन्तरं पितॄन् वस्वादिरूपान् उप द्रव उपलक्ष्य गच्छ । ❀ द्रु गतौ ❀ ॥

हे प्रेत ! मैं तेरी आयुका प्राणन अपानन व्यवहारके लिये और जीवनके लिये आह्वान करता हूँ, तेरा मन संस्कारसे उत्पन्न हुए तेरे नवीन शरीरको प्राप्त हो फिर शरीरकी प्राप्तिके अनन्तर तू वसु आदिक पितरोंको प्राप्त हो ॥ २३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुर्थी ॥

मा ते मनो मासोर्माङ्गानां मा रसस्य ते ।
मा ते हास्त तन्वः किं चनेह ॥ २४ ॥

मा । ते । मनः । मा । असोः । मा । अङ्गानाम् । मा । रसस्य । ते
मा । ते । हास्त । तन्वः । किम् । चन । इह ॥ २४ ॥

हे प्रेत पुरुष ते तव मनः मानसम् इन्द्रियं मा हास्त त्वां मा परित्याक्षीत् । ❀ ओहाक् त्यागे । व्यत्ययेन आत्मनेपदम् ❀ । यद्वा । ❀ ओहाङ् गतावित्यस्य रूपम् ❀ । मा गच्छतु त्वां विहाय इह मा तिष्ठतु । तथा असोस्त्वदीयस्य प्राणस्य किं चन किमपि रूपं मा हास्त । अङ्गानाम् अवयवानां हस्तपादादीनां किमपि मा हास्त । तथा ते तव देहसंबन्धिनो रसस्य रुधिरादेः किमपि मा हास्त । इह अस्मिन् लोके ते तव तन्वः शरीरस्य किं चन किमप्यङ्गं मा हास्त । लोकान्तरे मनःप्राणादिसर्वाङ्गसहितशरीरयुक्तो भवेत्यर्थः ॥

हे प्रेत पुरुष ! तेरी मन इन्द्रिय तेरा परित्याग न करे । तथा तेरे प्राणका कोई अंश क्षीण न हो और तेरे हाथ पैर आदिमें कुछ भी विकार न होवे और तेरे देहका रुधिर आदि रस भी तेरा किसी मात्रामें भी त्याग न करे । इस लोकमें तेरे शरीरका कोई भी अङ्ग तुझको न त्यागे, अर्थात् तू दूसरे लोकमें मन प्राण आदि सब अङ्गोंसे पूर्ण शरीर वाला रह ॥ २४ ॥

पञ्चमी ॥

मा त्वा वृक्षः सं बाधिष्ट मा देवी पृथिवी मही ।
लोकं पितृषु वित्त्वैधस्व यमराजसु ॥ २५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मा । त्वा । वृक्षः । सम् । बाधिष्ट । मा । देवी । पृथिवी । मही ।

लोकम् । पितृषु । वित्त्वा । एधस्व । यमराजऽसु ॥ २५ ॥

हे प्रेत त्वा त्वां वृक्षः त्वदाश्रयभूतो मा सं बाधिष्ट संबाधं हिंसनं मा कार्षीत् । ❀ बाधृ विलोडने । "माङि लुङ्" ❀ । तथा देवी द्योतमाना दानादिगुणयुक्ता वा मही महती पृथिवी त्वदाश्रयभूता भूमिस्त्वां मा सं बाधिष्ट । त्वं च यमराजसु यमो राजा ईश्वरो येषां ते यमराजानः तथाविधेषु पितृषु पितृदेवतासु लोकम् स्थानं वित्त्वा लब्ध्वा एधस्व वर्धस्व । ❀ विद्लृ लाभे । "समानकर्तृकयोः पूर्वकाले" इति क्त्वाप्रत्ययः । "एकाच उपदेशे०" इति इट्प्रतिषेधः ❀ ॥

हे प्रेत ! जिस वृक्षके नीचे तू विश्राम करे वह वृक्ष तुझको बाधा न दे और जिस दमकती हुई पृथ्वी देवीका तू आश्रय ले वह तुझको पीड़ा न देवें और जिनका राजा यम है उन पितरोंमें स्थान पाकर तू वृद्धि पा ॥ २५ ॥

षष्ठी ॥

यत् ते अङ्गमतिहितं पराचैरपानः प्राणो य उ वा ते परेतः ।

तत् ते संगत्य पितरः सनीडा घासाद् घासं पुनरा वेशयन्तु ॥ २६ ॥

यत् । ते । अङ्गम् । अतिऽहितम् । पराचैः । अपानः । प्राणः ।

यः । ऊं इति । वा । ते । पराऽइतः ।

तत् । ते । सम्ऽगत्य । पितरः । सऽनीडाः । घासात् । घासम् ।

पुनः । आ । वेशयन्तु ॥ २६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे प्रेत ते तव यद् अङ्गम् शरीरं पराचैः पराङ्मुखम् अतिहितम् अतीत्य स्थितम् । अतिक्रम्य गतम् इत्यर्थः । तस्मिन् शरीरे वर्तमानः अपानः अपानवायुः प्राणः प्राणवायुः उशब्दः अप्यर्थे । अपि वा ये च अन्ये चक्षुःश्रोत्रादिरूपाः सप्तशीर्षण्याः प्राणास्ते त्वदीयाः परेताः परागताः । अपुनरावृत्तये शरीरान्निर्गता इत्यर्थः । ते त्वदीयं तत् सर्वं सनीलाः समाननिलयाः पितरः पितृदेवताः संगत्य संघीभूत्वा । ❀ संपूर्वाद् गमेः क्त्वो ल्यप् । "अनुदात्तोपदेश०" इत्यादिना अनुनासिकलोपे "ह्रस्वस्य पिति०" इति तुक् ❀ । घासात् । अद्यते भुज्यते अस्मिन्निति घासः भोगायतनं शरीरम् । ❀ अद भक्षणे । अधिकरणे घञ् । "घञपोश्च" इति घस्लादेशः ❀ । घासात् भोजनाधिकरणाच्छरीराद् घासम् भोजनाधिकरणम् अन्यच्छरीरं पुनरा वेशयन्तु अभिप्रापयन्तु ॥

हे प्रेत ! तेरे शरीरका जो अङ्ग तेरे शरीरसे पराङ्मुख होकर स्थित होगया था और उस शरीरमेंसे अपान वायु तथा चक्षु श्रोत्र आदि सात प्राण अपुनरावृत्तिके लिये शरीरसे निकल गए थे; उन सबको तेरे साथ एक स्थानमें रहने वाले पितर एकत्रित होकर भोजनाधिकरण शरीरसे दूसरे भोजनाधिकरण शरीरमें प्रवेश करादें

सप्तमी ॥

अपेमं जीवा अरुधन् गृहेभ्यस्तं निर्वहत परिग्रामादितः मृत्युर्यमस्यासीद् दूतः प्रचेता असून् पितृभ्यो गमयां चकार ॥ २७ ॥

अप । इमम् । जीवाः । अरुधन् । गृहेभ्यः । तम् । निः । वहत । परि । ग्रामात् । इतः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मृत्युः । यमस्य । आसीत् । दूतः । प्रऽचेताः । असून् । पितृऽभ्यः । गमयाम् । चकार ॥ २७ ॥

जीवः जीवन्तः प्राणधारिणो बान्धवा इमं प्रेतं गृहेभ्यः सकाशाद् अपारुधन् । प्रेतशरीरम् अपागमयन्तु इत्यर्थः । ❀ रुधिर् आवरणे । "इरितो वा" इति च्लेः अङ् आदेशः ❀ । तं प्रेतदेहम् इतः अस्माद् ग्रामात् । परिः पञ्चम्यर्थानुवादी । यद्वा परिहरणार्थः । हे बान्धवाः तं मृतदेहं परिहृत्य निर्वहत ग्रामाद् निर्गमयत । कुत इत्यत आह । मृत्युः मारकः पुरुषो यमस्य राज्ञो दूतः कर्मकर आसीत् अभवत् । प्रचेताः प्रकृष्टज्ञानः सः म्रियमाणस्य पुरुषस्य असून् प्राणान् पितृभ्यः पितॄन् अनुप्रवेशयितुम् । ❀ "क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः" इति चतुर्थी ❀ । गमयां चकार प्रापयामास । ❀ गमेर्ण्यन्तात् "कास्प्रत्ययाद्०" इति आम् प्रत्ययः । कृञोऽनुप्रयोगश्च ❀ ॥

हे जीवित बांधवो ! इस प्रेतको घरसे अलग करके लेजाओ, इस मृतशरीरको उठाकर ग्रामसे बाहर लेजाओ, क्योंकि श्रेष्ठ ज्ञानवाले यमके दूत मृत्युने इस मरे हुए पुरुषके प्राणोंको पितरोंमें प्रवेश करानेके लिये प्राप्त कर लिया है ॥ २७ ॥

अष्टमी ॥

ये दस्यव पितृषु प्रविष्टा ज्ञातिमुखा अहुतादश्चरन्ति
परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टानस्मात् प्र धमाति यज्ञात्

ये । दस्यवः । पितृषु । प्रऽविष्टाः । ज्ञातिऽमुखाः । अहुतऽअदः । चरन्ति ।
पराऽपुरः । निऽपुरः । ये । भरन्ति । अग्निः । तान् । अस्मात् । प्र । धमाति । यज्ञात् ॥ २८ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ये दस्यवः उपक्षयकारिणो राक्षसा ज्ञातिमुखाः ज्ञातीनां मुखमिव मुखं येषां ते तथोक्ताः। ज्ञातिप्रतिरूपा इत्यर्थः। अत एव पितृषु पितृपितामहप्रपितामहेषु मध्ये प्रविष्टाः अहुतादः अहुतं लौकिकम् अन्नम् अदन्ति भक्षयन्तीति अहुतादः। यद्वा अहुतावस्थमेव हविर्मायया अदन्तीति अहुतादः। चरन्ति पितृषु मध्ये वर्तन्ते। परापुरः परापृणन्ति पिण्डान् ददतीति परापुरः पिण्डदातारः पुत्राः। निपुरः निपृणन्ति नियमेन पिण्डदानादिकं कुर्वन्तीति निपुरः पौत्राः। ❀ पॄ पालनपूरणयोः। इत्यस्माद् उभयत्र कर्तरि क्विप्। "उदोष्ठ्यपूर्वस्य" इति उत्वम् ❀। ये च राक्षसाः पिण्डोदकदानादिना पालयितॄन् पुत्रपौत्रादीन् भरन्ति हरन्ति। नाशयन्तीत्यर्थः। तान् मायाविनो राक्षसान् अग्निः अस्माद् यज्ञात् पितॄन् उद्दिश्य क्रियमाणात् प्र धमाति प्रधमतु प्रकर्षेण निर्गमयतु। ❀ ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः। अस्मात् लेटि आडागमः। "पाघ्रा०" इत्यादिना धमादेशः॥ ❀

जो उपक्षय करने वाले राक्षस ज्ञाति वालोंकी समान मुख बना पिता पितामह और प्रपितामहरूप पितरोंमें घुस बैठते हैं और अहुत अवस्थामें ही मायासे हविका भक्षण कर लेते हैं और पिण्डोंका दान करने वाले परापुर अर्थात् पुत्रोंको और नियमपूर्वक पिण्डदान करने वाले पौत्रोंको नष्ट कर डालते हैं, अग्निदेव उन मायावी राक्षसोंको पितरोंके निमित्त किये जाने वाले इस यज्ञसे निकाल कर बाहर करदें॥ २८॥

नवमी॥

सं विशन्त्विह पितरः स्वा नः स्योनं कृण्वन्तः प्रतिरन्त आयुः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तेभ्यः शकेम हविषा नक्षमाणाः ज्योग् जीवन्तः शरदः पुरूचीः ॥ २९ ॥

सम् । विशन्तु । इह । पितरः । स्वाः । नः । स्योनम् । कृण्वन्तः । प्रऽतिरन्तः । आयुः ।

तेभ्यः । शकेम । हविषा । नक्षमाणाः । ज्योक् । जीवन्तः । शरदः । पुरूचीः ॥ २९ ॥

इह अस्मिन् यज्ञे नः अस्माकं स्वाः ज्ञातयो गोत्रजाः । पितरः पितृपितामहप्रपितामहाः सं विशन्तु सम्यग् उपविशन्तु । उपविष्टास्ते स्योनम् सुखम् अस्माकं कृण्वन्तः कुर्वन्तः आयुः जीवनं प्रतिरन्ते । ❀ प्रपूर्वस्तिरतिर्वर्धनार्थः ❀ । प्रवर्धयन्तु । चिरकालम् अस्मान् जीवयन्तु इत्यर्थः । दक्षमाणाः वर्धमाना वयं तेभ्यः पितृभ्यो हविषा चरुपुरोडाशादिलक्षणेन शकेम परिचरितुं शक्ता भूयास्म । ❀ शक्लृ शक्तौ इत्यस्माद् आशिषि लिङि "लिङ्याशिष्यङ्" इति अङ् प्रत्ययः ❀ । पुरूचीः पुरु बहुलम् अञ्चन्ति गच्छन्तीति पुरूच्यः । ❀ अञ्चतेः "ऋत्विग्०" इत्यादिना क्विन् "अनिदिताम्०" इति नलोपः । "अचः" इति अकारलोपे "चौ" इति दीर्घः । अञ्चतेश्चोपसंख्यानम्" इति ङीप् ❀ । पुरूची बहीः शरदः संवत्सरान् । ❀ अत्यन्तसंयोगे द्वितीया ❀ । ज्योक् चिरकालं जीवन्तः पितृप्रसादाज्जीवितारो भवेम ॥

इस यज्ञमें हमारे गोत्रमें उत्पन्न हुए पिता पितामह प्रपितामह आदि पितर भली प्रकार बैठें, और बैठे कर वह हमको सुख दें और हमारी आयुको बढ़ावें और वृद्धि पाते हुए हम भी उन पितरोंकी हविसे पूजा करनेमें समर्थ होवें । और बहुतसे वर्षों तक–चिरकाल तक जीवित रहें ॥ २९ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दशमी ॥

यां तें धेनुं निपृणामि यमु ते क्षीर ओदनम् ।
तेना जनस्यासो भर्ता योत्रासदजीवनः ॥ ३० ॥

याम् । ते । धेनुम् । निऽपृणामि । यम् । ऊं इति । ते । क्षीरे । ओदनम् ।

तेन । जनस्य । असः । भर्ता । यः । अत्र । असत् । अजीवनः

हे प्रेत ते तुभ्यं यां धेनुम् दोग्ध्रीं गां निपृणामि प्रयच्छामि । ❀ निपूर्वः पृणातिः पित्र्ये दाने वर्तते ❀ । त्वाम् उद्दिश्य गां दत्तवान् अस्मीत्यर्थः । तथा क्षीरे पयसि पक्वं यम् उ यं च ओदनं ते तुभ्यं निपृणामि तेन धेनुसहितेन ओदनेन जनस्य जनिमतो लोकस्य भर्ता धारयिता पोषयिता वा असः भवेः । ❀ डुभृञ् धारणपोषणयोः ❀ । यो जनः अत्र अस्मिन् लोके अजीवनः जीवनरहितः असत् भवेत् । तस्य जनस्येति संबन्धः । यद्वा अस्मिन् लोके जीवनरहितः असत् । पुरुषव्यत्ययः । स त्वम् इति संबन्धः । ❀ अस इति । अस्तेर्लेटि अडागमः । "इतश्च लोपः परस्मैपदेषु" इति इकारलोपः ❀ ॥

इति द्वितीयेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

हे प्रेत ! मैं तेरे निमित्त धेनुको देता हूँ, और तेरे निमित्त जिस दुग्धमें बने हुए भातको दे रहा हूँ उस धेनुदान और क्षीर-पक्व ओदनदानके द्वारा तू यदि इस यमलोकमें जीवन—जीविका रहित हो तो अपनी जीविकाको पुष्ट करने वाला हो ३० (९)

द्वितीय अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त ।

पितृमेधे "अश्वावतीम्" [३१] इत्यृचा शवदाहानन्तरं स्नानं कृत्वा नदीं तरतोऽनुमन्त्रयेत । पिण्डपितृयज्ञे "ये निखाताः"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[३४] इति द्वाभ्यां द्वे समिधावादध्यात्। "शं तप" [३६] इत्यृचा प्रेतशरीरे पुत्रेण दत्तम् अग्निं पुत्रो गोत्रिणो वा दीपयेयुः। "ददामि" [३७] इत्यनया काम्पीलशाखया दहनस्थानं संप्रोक्षेत्। "इमां यात्रां मिमीमहे" [३९] इत्यादिभिः सप्तभिः श्मशानदेशं प्रतिदिशं मिमीते। दिष्टिवितस्त्यादिभिः प्रमाणैः सप्त दक्षिणतो मिमीते। सप्त उत्तरतः। पञ्च पुरस्तात्। पञ्च पश्चात् इत्यादिक्रमेणेत्यर्थः॥

पितृमेधमें "अश्वावतीम्" (३१) ऋचासे शवदाहके अनन्तर स्नान करके नदीको उतरते हुएका अनुमन्त्रण करे। पिण्डपितृयज्ञमें "ये निखाताः" आदि (३४ । ३५) दो ऋचाओंसे दो समिधाओंको रक्खे। "शं तप" इस छत्तीसवीं ऋचासे प्रेतके शरीरमें पुत्रके द्वारा दी हुई अग्निको पुत्र वा गोत्र वाले प्रदीप्त करें। "ददामि" इस ३७ वीं ऋचासे काम्पीलशाखा के द्वारा दहनस्थानका सम्प्रोक्षण करे। "इमां यात्रां मिमीमहे" इस ३९ वीं से सात ऋचाओंके द्वारा श्मशानदेशकी प्रतिदिशा का नाप करे। बिलस्त आदि प्रमाणोंके द्वारा दक्षिणकी ओरसे सात, उत्तरकी ओरसे सात, पूर्वकी ओरसे पाँच और पश्चिमकी ओर पाँच बिलस्त नापे।

तत्र प्रथमा॥

अश्वावतीं प्र तर या सुशेवार्क्षाकं वा प्रतरं नवीयः।
यस्त्वा जघान वध्यः सो अस्तु मा सो अन्यद् विदत भागधेयम्॥ ३१॥

अश्वऽवतीम्। प्र। तर। या। सुऽशेवा। ऋक्षाकम्। वा। प्रऽतरम्। नवीयः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

थः । त्वा । जघान । वध्यः । सः । अस्तु । मा । सः । अन्यत् ।

विदत । भागऽधेयम् ॥ ३१ ॥

हे प्रेत अश्वावतीम् अश्वा अस्यां सन्तीति अश्वावती अश्वानाम् आकरभूता नदी । ❀ "मन्त्रे सोमाश्वेन्द्रिय०" इति मतौ दीर्घः ❀ । संज्ञाशब्दोयम् । एतत्संज्ञां नदीं प्र तरय प्रकर्षेण तारय उत्तारय । सा च नदी सुशेवा अस्मभ्यं सुसुखा भवतु । तथा ऋक्षाकं वा । वाशब्दश्चार्थे । ऋक्षाकम् ऋक्षैः भल्लूकैरुपेतं दुष्टमृगनिषेवितं नवीयः नवतरम् अदृष्टपूर्वम् अरण्यमपि प्रतरम् प्रकर्षेण तरामि हे प्रेत त्वा त्वां यः पुरुषः जघान स वध्यः वधार्हः अस्तु भवतु । स घातकः पुरुषः अन्यद् भागधेयम् पूर्वम् उपभुक्ताद् अन्यद् उपभोग्यं वस्तु मा विदत मा लभताम् । निर्धनो भवत्वित्यर्थः ❀ । विद्लृ लाभे । अस्मात् माङि लुङि आत्मनेपदैकवचने लृदित्वात् च्ले अङ् आदेशः ❀ ॥

हे प्रेत ! तू हमको अश्वावती नदीके पार उतार, यह नदी हमको सुख देने वाली हो और मैं राछ आदि दुष्ट जन्तुओंसे भरे हुए और पहिले न देखनेके कारण नवीन, वनके भी पार पहुँच जाऊँ, हे प्रेत ! जिस पुरुषने तुझको मार डाला है वह पुरुष वधका पात्र हो और वह घातक पुरुष पहिले भोगे हुए पदार्थसे अतिरिक्त दूसरे उपभोग्य पदार्थको न पा सके अर्थात् निर्धन होजावे ॥ ३१ ॥

द्वितीया ।

यमः परोवरो विवस्वान् ततः परं नाति पश्यामि किं चन

यमे अध्वरो अधि मे निविष्टो भुवो विवस्वानन्वातताम ॥ ३२ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यमः । परः । अवरः । विवस्वान् । ततः । परम् । न । अति । पश्यामि । किम् । चन ।

यमे । अध्वरः । अधि । मे । निऽविष्टः । भुवः । विवस्वान् । अनुऽआततान ॥ ३२ ॥

यमः विवस्वतः पुत्रः परः तेजसा अधिकोभवत् । विवस्वान् यमस्य पिता आदित्यः अवरः तेजसा निकृष्टोभवत् । यमस्तेजसा पितुरपि अधिकोभवद् इत्यर्थः । ततः तस्माद् यमात् परम् उत्कृष्टं किं चन किमपि प्राणिजातं नाति पश्यामि अतिक्रान्तं न जानामि। तस्मिन् सर्वोत्कृष्टे यमे मे मदीयः अध्वरो यज्ञः अधि निविष्टः अधिकम् अवस्थितः ।तत्प्रीतिकरो वर्तत इत्यर्थः यज्ञस्य सिद्धये विवस्वान् तत्पिता सूर्यः भुवः भूप्रदेशान् अन्वाततान स्वकिरणैर्विस्तारितवान् । ❀ तनु विस्तारे ❀ ॥

विवस्वान् (सूर्य) के पुत्र यमदेव तेजमें सूर्यसे भी अधिक हैं और यमके पिता आदित्य निकृष्ट हैं अर्थात् यम तेजमें पितासे भी अधिक हैं । अतः मैं किसी प्राणीको यमसे अधिक नहीं देखता । उन सर्वोत्कृष्ट यममें ही मेरा यज्ञ अधिकतर प्रतिष्ठित है अर्थात् उनको प्रसन्न करनेके लिये होरहा है । यज्ञकी सिद्धिके लिये उनके पिता सूर्यदेवने भी भूप्रदेशोंको विस्तृत कर दिया है अर्थात् अपनी किरणोंसे प्रकाशित कर दिया है ॥ ३२ ॥

तृतीया ॥

अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वा सवर्णामदधुर्विवस्वते उताश्विनावभरद् यत् तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः ॥ ३३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अप । अगूहन् । अमृताम् । मर्त्येभ्यः । कृत्वा । सऽवर्णाम् । अदधुः ।
विवस्वते ।
उत । अश्विनौ । अभरत् । यत् । तत् । आसीत् । अजहात् ।
ऊं इति । द्वा । मिथुना । सरण्यूः ॥ ३३ ॥

"त्वष्टा दुहित्रे" [१. ५३] इत्यत्र इतिहासोभिहितः ॥ सोत्र ऋगर्थप्रतिपत्तये पुनः स्मार्यते । त्वष्टृऋदुहिता सरण्युर्नाम विवस्वत आदित्याद् यमौ मिथुनौ जनयांचकार । तौ च यमलौ यमश्च यमी चेत्याहुरैतिहासिकाः । माध्यमिकोग्निर्माध्यमिका वाक् चेति नैरुक्ताः । ततः सरण्युस्तत्तेजः असहमाना स्वसमानरूपाम् अन्यां प्रतिनिधाय आश्वं रूपं कृत्वा प्रदुद्राव । सोपि विवस्वान् तज्जानन् आश्मेव रूपं कृत्वा तां समभवत् । ततः अश्विनौ जज्ञाते । प्रतिनिहितायां सवर्णायां विवस्वत आदित्याद् मनुर्जज्ञ इत्ययम् अर्थोत्र प्रतिपाद्यते ॥ मर्त्येभ्यः मरणधर्मभ्यो मनुष्येभ्यः अमृतान् मरणधर्मरहितान् आत्मनः देवा अपागूहन् तिरोहितान् अकुर्वन् । अमृतत्वप्रापकं स्वकीयं रूपं देवा मनुष्येभ्यः प्राच्छादयन् । ❀ गुहू संवरणे ❀ । तथा सवर्णाम् समानरूपाम् अन्यां स्त्रियं कृत्वा विवस्वते आदित्याय अदधुः अधारयन् । प्रायच्छन्नित्यर्थः । उत अपि च सरण्यूर्वा यद् आश्वं रूपं तदानीं स्वीकृतम् आसीत् तत् अश्विनौ अभरत् समभरत् । उदपादयद् इत्यर्थः । यद्वा अश्वभूतयोः सरण्युविवस्वतोर्यद् रेत आसीत् तद् अश्विनावजनयद् इत्यर्थः । सा च सरण्यूस्त्वष्टृऋदुहिता निर्गमनसमये द्वा द्वौ मिथुना मिथुनौ स्त्रीपुंसात्मकौ अजहात् पर्यत्यजत् । ❀ ओहाक् त्यागे ❀ । उशब्दः अवधारणे । ❀ द्वा मिथुनेत्यत्र "वा छन्दसि" इति पूर्वसवर्णदीर्घः ❀ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवताओंने मरणधर्मी मनुष्योंसे अपने मरणधर्मरहित अमृतत्व-प्रापक रूपोंको छिपा लिया। और समान वर्ण वाली दूसरी स्त्री बनाकर आदित्यको दी। और सरण्युने जो उस समय घोड़ीका रूप धारण कर लिया था उसने अश्विनीकुमारोंका भरण किया था वा अश्वभूत सरण्यु और सूर्यदेवका जो रेत था उसने अश्विनी-कुमारोंको जन्म दिया था और इस त्वष्टाकी पुत्री सरण्युने सूर्य-देवके घरसे निकलते समय स्त्री पुरुष यम-यमीके जोड़ेको तहाँ छोड़ दिया था ॥ ३३ ॥

चतुर्थी ॥

ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः ।
सर्वांस्तानग्न आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥ ३४ ॥

ये । निऽखाताः । ये । पराऽउप्ताः । ये । दग्धाः । ये । च । उद्धिताः ।
सर्वान् । तान् । अग्ने । आ । वह । पितॄन् । हविषे । अत्तवे ॥ ३४ ॥

ये पितरः भूमौ निखाताः निखननसंस्कारेण संस्कृताः । ❀ खनु अवदारणे । कर्मणि निष्ठा । "जनसनखनां सञ्झलोः" इति आत्वम् ❀ । ये च पितरः परोप्ताः परावपनं दूरदेशे काष्ठवत्परि-त्यागः । तेन संस्कृताः । ये च दग्धाः अग्निना संस्कृताः । ये च उद्धिताः संस्कारोत्तरकालम् ऊर्ध्वदेशे पितृलोके स्थिताः । एवं बहुविधावस्थितान् तान् सर्वान् पितॄन् हविषे अत्तवे अस्माभिर्दत्तं हविर्भक्षयितुम् हे अग्ने आ वह आनय । ❀ "क्रियाग्रहणं कर्त-व्यम्" इति कर्मणः संप्रदानत्वात् हविःशब्दाच्चतुर्थी । अद् भक्षणे इत्यस्मात् "तुमर्थे सेसेन्०" इति तवेन् प्रत्ययः ❀ ॥

जो पितर भूमिमें गाड़नेके संस्कारसे संस्कृत हुए हैं और जो दूरदेशमें काष्ठकी समान त्याग देनेसे संस्कृत हुए हैं और जो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अग्निसे संस्कृत हुए हैं और जो संस्कारके अनन्तर ऊपरके लोक पितृलोकमें स्थित हैं, ऐसे अनेक प्रकारके पितरोंको हे अग्निदेव! आप हविका भक्षण करनेके लिये लाइये ॥ ३४ ॥

पञ्चमी ॥

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
त्वं तान् वेत्थ यदि ते जातवेदः स्वधया यज्ञं स्वधितिं जुषन्ताम् ॥ ३५ ॥

ये । अग्निऽदग्धाः । ये । अनग्निऽदग्धाः । मध्ये । दिवः । स्वधया । मादयन्ते ।

त्वम् । तान् । वेत्थ । यदि । ते । जातऽवेदः । स्वधया । यज्ञम् । स्वऽधितिम् । जुषन्ताम् ॥ ३५ ॥

ये पितरः अग्निदग्धाः अग्निना संस्कृताः । ये च अनग्निदग्धाः अग्निदाहरहितेन खननादिसंस्कारेण संस्कृता दिवः द्युलोकस्य मध्ये स्वधया । अन्ननामैतत् । पुत्रादिभिर्दत्तेन पिण्डरूपेण हविषा । यद्वा स्वधाकारोपलक्षितेन पिण्डपितृयज्ञादिकर्मणा मादयन्ते हृष्टास्तृप्ता वर्तन्ते हे जातवेदः जातानां वेदितरग्ने त्वं तान् सर्वान् पितॄन् यदि वेत्थ जानासि । "यदि वेदाः प्रमाणं स्युः" इतिवद् निश्चये यदिशब्दः । त्वमेव तान् निश्चयेन जानासीत्यर्थः । ते सर्वे स्वधायाः संबन्धिनम् अस्मदीयं यज्ञं स्वधितम् । स्वधा संजाता यस्य स तथोक्तः । ❀ तारकादित्वाद् इतच् प्रत्ययः ❀ । यद्वा स्वैर्ज्ञातिभिः पुत्रपौत्रादिभिः हितं विहितं कृतम् ईदृशं यज्ञं जुषन्ताम् सेवन्ताम् ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो पितर अग्निसे दग्ध होगए हैं और अर्थात् अग्निसे संस्कृत हुए हैं जो अनग्निदग्ध हैं अर्थात् अग्निदाहरहित खनन आदि संस्कारसे संस्कृत हुए हैं और पुत्र आदिके किये हुए पिण्ड पितृयज्ञ आदि कर्मरूप स्वधासे द्युलोकके मध्यमें तृप्त होकर रहते हैं, हे अग्निदेव ! आप उनको अवश्य जानते हैं अतः वे पितर अपने पुत्र पौत्र आदिसे विहित यज्ञ (स्वधिति) का सेवन करें ॥ ३५ ॥

षष्ठी ॥

शं तप मातिं तपो अग्ने मा तन्वं१ तपः ।
वनेषु शुष्मो अस्तु ते पृथिव्यामस्तु यद्धरः ॥३६॥

शम् । तप । मा । अति । तपः । अग्ने । मा । तन्वम् । तपः ।
वनेषु । शुष्मः । अस्तु । ते । पृथिव्याम् । अस्तु । यत् । हरः ३६

हे अग्ने शम् सुखं यथा भवति तथा प्रेतशरीरं तप दह । मा अति तपः अतितापं मा कार्षीः । अतिदहने हि अस्थीन्यपि भस्मीभवन्ति तेषां संचयनादिसंस्कारेण प्रतिविधानाद् अतिदाहो निषिध्यते । तथा तन्वः शरीराणि अस्मत्संबन्धीनि मा तपः मा धाक्षीः । तथा ये त्वदीयः शुष्मः । शोषको ज्वालासमूहो वनेषु अरण्येषु अस्तु भवतु । हरः रसहरणशीलं यत् त्वदीयं तेजस्तत् पृथिव्याम् भूम्याम् अस्तु भवतु ॥

हे अग्निदेव ! जिस प्रकार सुख मिले तिस प्रकार प्रेतशरीर को भस्म करिये अधिक भस्म न करिये [अधिक भस्म करनेसे हड्डियें भी जल जावेंगी और अस्थियोंका संचयनसंस्कार करना विहित है अत एव अतिदाहका निषेध किया है] और आप हमारे शरीरोंको भी भस्म न करिये, आपका जो शोषक ज्वालासमूह है वह वनको चला जावे, और आपका जो रसहरणशील तेज है वह पृथ्वीमें रहे ॥ ३६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सप्तमी ॥

ददाम्यस्मा अवसानमेतद् य एष आगन् मम चेदभूदिह
यमश्चिकित्वान् प्रत्येतदाह ममैष राय उप तिष्ठतामिह

ददामि । अस्मै । अवऽसानम् । एतत् । यः । एषः । आऽअगन् ।
मम । च । इत् । अभूत् । इह ।
यमः । चिकित्वान् । प्रति । एतत् । आह । मम । एषः । राये । उप ।
तिष्ठताम् । इह ॥ ३७ ॥

यमो ब्रूते । अस्मै मृताय पुरुषाय अवसानम् । अवस्यन्ति निवसन्ति अस्मिन्निति अवसानम् आवासस्थानम् । एतत् स्थानं ददामि यत् यस्मात् कारणात् एष पुरुषः आगन् मत्समीपम् अगमत् । ❀ गमेर्लुङि "मन्त्रे घस०" इति च्लेर्लुक् । "मो नो धातोः" इति नत्वम् ❀ । स च आगतः पुरुषः इह अस्मिन् लोके मम संबन्धी अभूच्चेत् । यदि मत्संबन्धी मत्परिचरणशीलो भवेद् इत्यर्थः । तदा अस्मै आगतायेति पूर्वेण संबन्धः । एवं चिकित्वान् जानन् यमो मृतं पुरुषं प्रति एतद् वाक्यम् आह ब्रवीति । एषः मत्समीपम् आगतः पुरुषः रायः । ❀ रै शब्दे ❀ । रायति स्तौतीति रायः मम स्तोता भूत्वा इह अस्मिन् मदीये लोके उप तिष्ठताम् सेवताम् ॥

यम कहते हैं, कि—यदि यह आया हुआ पुरुष मेरा होगा अर्थात् मेरी सेवामें तत्पर रहे तो मैं इस मृतपुरुषके लिये निवास-स्थानको देता हूँ, क्योंकि—यह पुरुष मेरे समीपमें आगया है। ऐसा समझने वाले यम मृतपुरुषसे फिर इस बातको कहते हैं, कि—यह पुरुष मेरी स्तुति करता रहे तो मेरे पास रहे ॥ ३७ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अष्टमी ॥

इमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥ ३८

इमाम् । मात्राम् । मिमीमहे । यथा । अपरम् । न । मासातै ।
शते । शरत्ऽसु । नो इति । पुरा ॥ ३८ ॥

इमाम् इति इदंशब्देन सूत्रोक्ता मात्रा अभिनयेन प्रदर्श्यते । इमाम् एतावतीं श्मशानदेशस्य मात्राम् परिमाणं मिमीमहे अरत्निप्रादेशादिमितेन दण्डेन परिच्छेदयामः । ❀ माङ् माने ❀ । यथा येन प्रकारेण अपरम् अन्यत् श्मशानकर्म मा मां न आसातै नासीत न प्राप्नुयात् । ❀ आस उपवेशने । अस्मात् लेटि आडागमः । "वैतोन्यत्र" इति ऐकारः ❀ । तथा मिमीमह इति संबन्धः । श्मशानकर्मप्राप्तेरवधिम् आह शते शरत्स्विति । शतसंख्याकेषु संवत्सरेषु अस्माकं जीवनं ब्रह्मणा परिकल्पितम् ततः पुरा शतसंवत्सरमध्ये नो नैव अस्मान् श्मशानकर्म प्राप्नोतु । अकालमृतिरस्माकं मा भूद् इत्यर्थः ॥ एवम् उत्तरे षण्मन्त्रा व्याख्येयाः ॥

हम इस श्मशानके मापको दण्डादिसे करते हैं उसका कारण यह है, कि—ब्रह्माजीने हमारी सौ वर्षकी आयु बनाई है अतः उससे पहिले सौ वर्षके बीचमें दूसरा श्मशानकर्म हमको प्राप्त न होवे अर्थात् हमारी अकालमृत्यु न होवे ॥ ३८ ॥

नवमी ॥

प्रेमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥ ३९ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy Trust/eGangotri

प्र । इमाम् । मात्राम् । मिमीमहे । यथा । अपरम् । न । मासातै ।

शते । शरत्ऽसु । नो इति । पुरा ॥ ३९ ॥

प्रेत्येतावान् अत्र विशेषः । प्रकर्षेण । मिमीमहे इति श्मशान-देशमानस्य प्रकर्षगुणः प्रतिपाद्यते । अन्यत् पूर्ववत् ॥

हम इस श्मशानभूमिको प्रकृष्टरूपसे नापते हैं कि-जिससे हमको सौ वर्षोंसे पहिले दूसरा श्मशानकर्म प्राप्त न होवे अर्थात् हमारी अकालमृत्यु न होवे ॥ ३९ ॥

दशमी ॥

अपेमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।

शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४० ॥

अप । इमाम् । मात्राम् । मिमीमहे । यथा । अपरम् । न । मासातै ।

शते । शरत्ऽसु । नो इति । पुरा ॥ ४० ॥

अत्र अप इत्युपसर्गेण अपगतदोषता मानस्य प्रतिपाद्यते । तद्दोषाश्च श्मशानलक्षणे निषिध्यन्ते । यथाह भारद्वाजः । "दहन-देशं जोषयते दक्षिणाप्रत्यक्प्रवणम् अनिरिणम् असुषिरम् अनूष-रम् अभङ्गुरम्" इत्यादिना । अन्यत् पूर्ववत् ॥

इति द्वितीयेऽनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

हम इस श्मशानभूमिके नापको दोषोंको दूर करते हुए नापते हैं, जिससे हमको सौ वर्षोंसे पूर्व दूसरा श्मशानकर्म प्राप्त न होवे [श्मशानके दोषोंका यहाँ दूर करना कहा है । भरद्वाजमुनिने श्मशानके दोषोंका वर्णन करते हुए कहा है, कि-"दहनदेशं जोष-यते दक्षिणाप्रत्यक्प्रवणम् अनिरणम् असुषिरम् अनूषरम् अभङ्ग-रम् ० ।-दक्षिण और पश्चिमकी ओर ढलकाव वाले, अनि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रिण, छिद्ररहित, कल्लड़पनसे रहित और अभंगुर स्थानको पसन्द करे"०]

द्वितीय अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त

"वीमां मात्रां मिमीमहे" इति आदितश्चतसृणाम् ऋचां श्मशान-प्रमाणकरणे विनियोग उक्तः ।

"अमासि मात्राम्" [४५] इति तिसृभिः पूर्वोक्तप्रकारेण मितं श्मशानप्रदेशम् अनुमन्त्रयेत ॥

"उदन्वती" [४८] इति द्वाभ्यां प्रेतम् उत्थाप्य शकटे शयने वा निदध्यात् ॥

"ये नः पितुः पितरः" [४९] इति द्वाभ्यां प्रेतशरीरे संदीपितेऽग्नौ याम्यहोमं कुर्यात् ॥

"इदमिद् वा" [५०] इति तिसृभिः श्मशानदेशं विषम-संख्याकाभिः शलाकाभिः इष्टकाभिर्वा प्रसव्यं चिनुयात् ॥

"वीमां मात्रां मिमीमहे" इन पहिली चार ऋचाओंका श्मशान के नापनेमें विनियोग कहा है ।

"अमासि मात्रायाम्" (४५) आदि तीन ऋचाओंसे पूर्वोक्त-रीतिसे नापे हुए श्मशानस्थानका अनुमन्त्रण करे ।

"उदन्वती" (४८) आदि दो ऋचाओंसे प्रेतको उठाकर शकट वा शयनमें रक्खे ।

"ये नः पितुः पितरः" (४९) आदि दो ऋचाओंसे प्रेत-शरीरकी प्रज्वलित अग्निमें याम्यहोमको करे ।

"इदमिद् वा" (५०) आदि तीन ऋचाओंसे श्मशानदेशको विषमसंख्यक शलाका वा ईंटोंसे प्रसव्य चिने ।

तत्र प्रथमा ॥

वी३मां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४१ ॥

वि । इमाम् । मात्राम् । मिमीमहे । यथा । अपरम् । न । मासातै ।

शते । शरत्ऽसु । नो इति । पुरा ॥ ४१ ॥

अत्र वीत्युपसर्गेण श्मशानदेशमानस्य विशिष्टगुणयोगः प्रदर्शितः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

हम इस श्मशानभूमिके नापनेको विशिष्टगुणोंसे युक्त करते हुए नापते हैं। जिससे, कि–हमको सौ वर्षसे पहिले दूसरा श्मशान कर्म न करना पड़े अर्थात् हमारी अकाल मृत्यु न होवे ४१

द्वितीया ॥

निरिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।

शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४२ ॥

निः । इमाम् । मात्राम् । मिमीमहे । यथा । अपरम् । न । मासातै ।

शते । शरत्ऽसु । नो इति । पुरा ॥ ४२ ॥

अत्र निरत्युपसर्गेण निर्गतदोषता मानस्य प्रतिपाद्यते । अन्यत् समानं पूर्वेण ॥

हम इस श्मशानभूमिको दोषोंसे शून्य करते हुए नापते हैं, जिससे, कि–हमको सौ वर्षोंमें होने वाले श्मशान कर्मोंमें पहिले ही दूसरा श्मशान कर्म न करना पड़े अर्थात् हमारी अकाल मृत्यु न होवे ॥ ४२ ॥

तृतीया ॥

उदिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४३ ॥

उत् । इमाम् । मात्राम् । मिमीमहे । यथा । अपरम् । न । मासातै ।

शते । शरत्ऽसु । नो इति । पुरा ॥ ४३ ॥

उद् इत्युपसर्गेणात्र मानस्य उत्कर्षगुणोभिधीयते । गतम् अन्यत् ॥

हम इस श्मशानभूमिको उत्कृष्टगुणयुक्त नापसे नापते हैं, जिससे कि—हमें सौ वर्षोंसे पूर्व दूसरा श्मशानकर्म प्राप्त न हो अर्थात् हमारी अकालमृत्यु न हो ॥ ४३ ॥

चतुर्थी ॥

समिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।

शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४४ ॥

सम् । इमाम् । मात्राम् । मिमीमहे । यथा । अपरम् । न । मासातै ।

शते । शरत्ऽसु । नो इति । पुरा ॥ ४४ ॥

इमां श्मशानदेशस्य मात्रां सं मिमीमहे । उदीरितगुणयोगेन सम्यग् मिमीमहे । अत्र प्रत्यृचं यथापरं न मासातै इत्यादिरावर्त्यते । तस्यायम् अभिप्रायः । पुनः पुनः प्रार्थनया आदरातिशयद्योतिन्या प्रार्थ्यमानोऽर्थः सर्वथा सिध्यतीति । गतम् अन्यत् ॥

हम इस श्मशानभूमिको भले नापसे नापते हैं, जिस प्रकार कि—सौ वर्षोंसे पहिले फिर न नापना पड़े अर्थात् हममेंसे किसी की अकाल मृत्यु न हो [परमादरको सूचित करने वाली वारंवार की प्रार्थनासे प्रार्थित अर्थ भली प्रकार सिद्ध होजाता है] ॥४४॥

पञ्चमी ॥

अमासि मात्रां स्वर्गामायुष्मान् भूयासम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यथापरं न मासातै शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४५ ॥

अमासि । मात्राम् । स्वः । अगाम् । आयुष्मान् । भूयासम् ।

यथा । अपरम् । न । मासातै । शते । शरत्ऽसु । नो इति । पुरा४५

मात्राम् श्मशानदेशस्य परिमाणम् अमासि परिच्छेदितवान् अस्मि । उदीरितरीत्या समाचीनं मानम् अकृषीत्यर्थः । ❀ माङ् माने इत्यस्मात् लुङि उत्तमैकवचने रूपम् ❀ । तेन मानेन स्वः अगाम् स्वर्गं लोकं गतोस्मि । भाविस्वर्गलोकप्राप्तिस्तस्य मानस्य फलम् इत्यर्थः । यद्वा । ❀ अन्तर्भावितण्यर्थे एतिर्वर्तते ❀ । अगाम् अगमयम् इत्यर्थः । ❀ "इणो गा लुङि" इति गादेशः ❀ । तेन च मानकर्मणा अहम् आयुष्मान् शतसंवत्सरपरिमितेन आयुषा युक्तो भूयासम् । यथापरं न मासातै इत्यादि प्रागुक्तार्थम् ॥

मैंने पूर्वोक्तरीतिसे श्मशानभूमिको नाप लिया है, उस मानके प्रभावसे मैं इस मृतकको स्वर्गमें भेज चुका हूँ और उस कर्मसे ही मैं सौ वर्षकी आयु वाला होऊँ और हमको सौ वर्षों वाले जीवन से पहिले फिर श्मशान कर्म न करना पड़े अर्थात् हममेंसे किसी की अकालमृत्यु न होवे ॥ ४५ ॥

षष्ठी ॥

प्राणो अपानो व्यान आयुश्चक्षुर्दृशये सूर्याय ।
अपरिपरेण पथा यमराज्ञः पितॄन् गच्छ ॥ ४६ ॥

प्राणः । अपानः । विऽआनः । आयुः । चक्षुः । दृशये । सूर्याय ।

अपरिऽपरेण । पथा । यमऽराज्ञः । पितॄन् । गच्छ ॥ ४६ ॥

मुख्यप्राणस्य तिस्रो वृत्तयः प्राणाद्याः । मुखनासिकाभ्यां बहिर्निःसरन् वायुः प्राणः । अन्तर्गच्छन् अपानः । मध्यस्थः सन्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अशितपीतादिकं विविधम् आनिति कृत्स्नदेहं व्यापयतीति व्यानः। आयुः जीवनं शतसंवत्सरपरिमितम्। चक्षुः नीलपीतादिदर्शन-साधनम् इन्द्रियम्। एतच्च उपलक्षणम् अन्येषाम् इन्द्रियाणाम्। सर्वम् एतद् अनुक्रान्तं सूर्याय। ❀ षष्ठ्यर्थे चतुर्थी ❀। सूर्यस्य दृशये दर्शनाय भवतु। प्राणादिभिः सहिताः सूर्यं पश्यन्तश्चिर-कालम् अवतिष्ठेमहीत्यर्थः॥ हे मृतपुरुष त्वं यमराज्ञः यमश्चासौ राजा यमराजा तस्य स्वभूतेन अपरिपरेण। परिपरिणः पर्यवस्था-तारश्चोराः। तद्रहितेन पथा मार्गेण पितॄन् गच्छ प्राप्नुहि॥

मुख्य प्राणकी प्राण आदि तीन वृत्तियें होती हैं। मुख और नासिकासे बाहर निकलने वाला वायु प्राण कहलाता है, भीतर को जाने वाला वायु अपान कहलाता है, और मध्यस्थ होकर खाये पियेको विविधरूपसे सारे शरीरमें व्याप्त कर देने वाला वायु व्यान कहलाता है। और सौ वर्षका जीवन आयु कहलाती है। तथा नील पीत आदि वस्तुओंको देखनेकी साधन इन्द्रिय चक्षु कहलाती है [तथा अन्य सब इन्द्रियें] ये कहे हुए सब सूर्यको देखनेके लिये होवें अर्थात् हम प्राणादिसे सम्पन्न रहते हुए सूर्यको देखते हुए चिरकाल तक स्थित रहें। और हे पुरुष! तू भी यमराजके चोररहित मार्गसे पितरोंको प्राप्त हो॥ ४६॥

सप्तमी॥

ये अग्रवः शशमानाः परेयुर्हित्वा द्वेषांस्यनपत्यवन्तः
ते द्यामुदित्याविदन्त लोकं नाकस्य पृष्ठे अधि दीध्यानाः

ये। अग्रवः। शशमानाः। पराऽईयुः। हित्वा। द्वेषांसि। अन-पत्यऽवन्तः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ते । द्याम् । उत्ऽइत्य । अविदन्त । लोकम् । नाकस्य । पृष्ठे ।

अधि । दीध्यानाः ॥ ४७ ॥

शशमानाः । शशमानः शंसमान इति यास्कः [नि० ६.८]। यद्वा । ❀ शश प्लुतगतौ । ताच्छीलिकश्चानश् ❀ । प्लुतगमनशीला अग्रवः अग्रगामिनो ये पितरः अनपत्यवन्तः अपत्यरहिता द्वेषांसि द्वेषणीयानि पापानि हित्वा त्यक्त्वा परेयुः पराजग्मुः । अमृषतेत्यर्थः । ते पितरो द्याम् अन्तरिक्षम् उदित्य उद्गत्य ऊर्ध्वं गत्वा नाकस्य दुःखसंस्पर्शरहितस्य स्थानस्य पृष्ठे उपरिभागे । अधिः सप्तम्यर्थानुवादी । अधिकं वा दीध्यानाः दीप्यमाना लोकम् सुकृतफलोपभोगस्थानम् अविदन्त अलभन्त । ❀ विद्लृ लाभे । लृदित्वाद् आत्मनेपदेपि व्यत्ययेन च्लेः अङ् आदेशः । यद्वा लङि "अनित्यम् आगमशासनम्" इति नुमभावः ❀ ॥

जो ऊर्ध्वगमन करने वाले अग्रगामी पितर अपत्यरहित होने पर भी द्वेष करने योग्य (पापों)को त्यागते हुए परलोकको प्राप्त हुए हैं वे अन्तरिक्षका अतिक्रमण कर ऊपर वा दुःखसंस्पर्शरहित स्वर्गके ऊपरके भागमें दिपते हुए पुण्यफलके भोगके स्थानको पाते हैं ॥ ४७ ॥

अष्टमी ॥

उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा ।
तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते ॥ ४८ ॥

उदन्ऽवती । द्यौः । अवमा । पीलुऽमती । इति । मध्यमा ।

तृतीया । ह । प्रऽद्यौः । इति । यस्याम् । पितरः । आसते ।४८।

पितृलोकस्य सर्वोत्कृष्टतां वक्तुं दिवस्त्रैविध्यं प्रतिपाद्यते । अवमा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अधःकक्ष्यां गता द्यौः उदन्वती उदकवती यस्याम् अवस्थिता मेघाः प्रवर्षन्ति । तस्या उदन्वतीति संज्ञेत्यर्थः ॥ मध्यमा मध्यकक्ष्यां गता द्यौः पीलुमती इत्युच्यते । पालयन्तीति पीलवः ग्रहनक्षत्रादयः । ते यस्यां सन्तीति पीलुमती । तृतीया ह । ह शब्दः प्रसिद्धौ । प्रद्यौरिति प्रसिद्धा । प्रकृष्टफलोपेता द्यौः प्रद्यौः । यस्यां तृतीयस्यां दिवि नाकपृष्ठाख्ये स्थाने पितरः पितृदेवता आसते निवसन्ति ॥

(पितृलोककी सर्वोत्कृष्टताको कहनेके लिये द्यौकी त्रिविधताका प्रतिपादन करते हैं, कि–) नीचेकी ओर स्थित द्युलोक उदन्वती है [उसमें स्थित मेघ वर्षा करते हैं अत एव उसका नाम उदन्वती है] दूसरा भाग पीलुमती कहलाता है [उसमें पालन करने वाले पीलु ग्रह नक्षत्र आदि रहते हैं अतः वह पीलुमती कहलाता है] तीसरा भाग प्रद्यौ कहलाता है [वह प्रकृष्ट फल देनेके कारण प्रद्यौ कहलाता है] उस तृतीय द्युलोकमें पितर रहते हैं ॥४८॥

नवमी ॥

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्व१-न्तरिक्षम् ।
य आक्षियन्ति पृथिवीमुत द्यां तेभ्यः पितृभ्यो नमसा विधेम ॥ ४९ ॥

ये । नः । पितुः । पितरः । ये । पितामहाः । ये आऽविविशुः । उरु । अन्तरिक्षम् ।

ये । आऽक्षियन्ति । पृथिवीम् । उत । द्याम् तेभ्यः । पितृऽभ्यः । नमसा । विधेम ॥ ४९ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नः अस्माकं पितुस्तातस्य ये पितरः जनकाः । ये च पितामहास्तज्जनकाः । पूजार्थं बहुवचनम् । ये च अन्ये उरु विस्तीर्णम् अन्तरिक्षम् आविविशुः आविष्टवन्तः । ये च पृथिवीम् आक्षियन्ति अभिनिवसन्ति । पृथिव्यां वर्तन्त इत्यर्थः । उतशब्दः अप्यर्थे । ये च द्याम् स्वर्गलोकम् आक्षियन्ति आश्रित्य निवसन्ति । इत्थं लोकत्रयं व्याप्य वर्तन्त इत्यर्थः । तेभ्यः सर्वेभ्यः पितृभ्यः ।❀ तादर्थ्ये चतुर्थी ❀ । नमसा । नम इति अन्ननाम । हविर्लक्षणेन अन्नेन नमस्कारेण वा विधेम परिचरेम । ❀ विधतिः परिचरणकर्मा ❀ ॥

जो हमारे पिताके उत्पादक पितर हैं † और जो हमारे पितामहके उत्पादक पितर हैं इनके अतिरिक्त और भी जिन्होंने विशाल अन्तरिक्षमें प्रवेश किया है । तथा जो पृथिवीमें रहते हैं, और जो स्वर्गलोकका आश्रय करके रहते हैं । इन सब लोकोंमें रहने वाले पितरोंकी हम स्वधान्नसे वा नमस्कारसे पूजा करते हैं ॥ ४९ ॥

दशमी ॥

इदमिद् वा उ नापरं दिवि पश्यसि सूर्यम् ।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥ ५० ॥

इदम् । इत् । वै । ऊं इति । न । अपरम् । दिवि । पश्यसि । सूर्यम् । माता । पुत्रम् । यथा । सिचा । अभि । एनम् । भूमे । ऊर्णुहि

हे मृतपुरुष इदम् इद् वा उ इदमेव खलु तव जीवनम् यद् अस्माभिः श्राद्धेषु दीयते । अपरम् अन्यद् न किंचिद् अस्ति । अत्रैव श्मशानदेशे निवसन् सूर्यं दिवि आकाशे पश्यसि ॥ उत्तरोर्धर्चः परोक्षकृतः । यथा येन प्रकारेण माता जननी सिचा चेलाञ्च-

† यहाँ आदरमें बहुवचन होरहा है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेन स्वकीयं पुत्रम् अभिवृणोति आच्छादयति हे भूमे पृथिवि एनं श्मशानस्थं मृतम् अभ्यूर्णु हि स्वतेजसा प्रच्छादय । शीतवातोष्णादिकं यथैनं न प्राप्नोति तथा त्वत्स्वरूपे अन्तर्भावयेत्यर्थः । ❀ ऊर्णुञ् छादने ❀ ॥

इति द्वितीयेनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

हे मृतपुरुष ! यही तेरा जीवन है जिसको हम श्राद्धोंमें देते हैं और कुछ भी तेरे जीवनका साधन नहीं है । तू इस श्मशानस्थानमें ही रहता हुआ आकाशमें सूर्यदेवको देखता है । और जिस प्रकार माता अपने आँचलसे अपने पुत्रको ढ़क लेती है, इसी प्रकार हे भूमे ! तुम इस श्मशानमें पड़े हुए मृतपुरुषको अपने तेजसे आच्छादित करो अर्थात् जिस प्रकार इसको शीत वात आदि प्राप्त न हों तिस प्रकार इसको अपने स्वरूपमें अन्तर्भावित करो ॥ ५० ॥ (११)

द्वितीय अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त ॥

"इदमिद् वै" इति ऋचोराद्ययोः श्मशानदेशे शलाकाभिश्चयनकर्मणि विनियोग उक्तः ॥

"अग्नीषोमा पथिकृता" [५३] इति तिसृभिः प्रेतम् उत्थाप्य दहनाय शकटे निदध्यात् ॥

"इमौ युनज्मि" [५६] इत्यनया सप्रेते शकटे वृषभद्वयम् अभिमन्त्र्य युञ्ज्यात् ॥

"एतत् त्वा वासः" [५७] इत्यनया वासोऽभिमन्त्र्य प्रेतं प्रच्छादयेत् ॥

"अग्नेर्वर्म" [५८] इत्यनया सप्तच्छिद्रया गोवपया प्रेतमुखं प्रच्छादयेत् ॥

"दण्डं हस्तात्" [५९] इत्यनया प्रेतब्राह्मणहस्ताद् वेदयष्टिं पुत्रो गृह्णीयात् ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"धनुर्हस्तात्" [६०] इत्यनया प्रेतक्षत्रियहस्ताद्धनुर्गृह्णीयात्

"इदमिद् वै" इन दो पहिली ऋचाओंका श्मशानदेशके शलाकाचयनकर्ममें विनियोग है।

"अग्नीषोमा पथिकृता" (५३) आदि तीन ऋचाओंसे प्रेत को उठाकर भस्म करनेके लिये शकट (गाड़ी) में रक्खे।

"इमौ युनज्मि" इस छप्पनवीं ऋचासे प्रेत रखनेके अनन्तर शकटमें दोनों वृषभोंको अभिमन्त्रित करके जोड़े।

"एतत् त्वा वासः" इस सत्तावनवीं ऋचासे वस्त्रको अभिमन्त्रित करके प्रेतको ढ़क देय।

"अग्नेर्वर्म" इस अट्ठावनवीं ऋचासे सात छिद्र वाली गोचर्मा से प्रेतके मुखको आच्छादित करे।

"दण्डं हस्तात्" इस उनसठवीं ऋचासे प्रेतब्राह्मणके हाथसे वेदयष्टिको पुत्र ग्रहण करे।

"धनुर्हस्ताद्" इस साठवीं ऋचासे प्रेतक्षत्रियके हाथसे धनुष ग्रहण करे।

तत्र प्रथमा ॥

इदमिद् वा उ नापरं जरस्यन्यादितोपरम् ।
जाया पतिमिव वाससाभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥ ५१ ॥

इदम् । इत् । वै । ऊं इति । न । अपरम् । जरसि । अन्यत् । इतः । अपरम् ।
जाया । पतिम्ऽइव । वाससा । अभि । एनम् । भूमे । ऊर्णुहि ५१

जरसि जरायां जीर्यदवस्थायां यद् अन्नादिकम् उपभुक्तम् इदम् इद् वा उ इदमेव खलु परिशिष्टम् नापरम् अन्यद् भोक्तव्यम् अस्ति। इतः अस्मात् श्मशान देशाद् अन्यत् स्थानमपि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अस्य न विद्यते अपरं कार्यजातमपि अस्य न संभवति । इत्थं श्मशाने परित्यक्तम् एनम् हे भूमे जाता भार्या पतिं वाससेव अभ्यूर्णुहि अभिप्रच्छादय ॥

जीर्ण होनेकी दशामें इसने जो भोजन किया था वही परिशिष्ट है और कुछ भोक्तव्य नहीं है । और इस श्मशानदेशके अतिरिक्त और कोई स्थान भी इसके लिये नहीं हैं और कोई कार्य भी इसके लिये बाकी नहीं है । इस प्रकार श्मशानमें छोड़े हुए इसको हे भूमे ! भार्या जिस प्रकार वस्त्रसे आच्छादित करती है, तिस प्रकार आच्छादित करो ॥ ५१ ॥

द्वितीया ॥

अभि त्वोर्णोमि पृथिव्या मातुर्वस्त्रेण भद्रया ।
जीवेषु भद्रं तन्मयि स्वधा पितृषु सा त्वयि ॥५२॥

अभि । त्वा । ऊर्णोमि । पृथिव्याः । मातुः । वस्त्रेण । भद्रया ।
जीवेषु । भद्रम् । तत् । मयि । स्वधा । पितृषु । सा । त्वयि ५२

मातुः सर्वजनन्याः । भद्रया । ❀ षष्ठ्यर्थे तृतीया ❀ । भद्रायाः कल्याण्याः पृथिव्याः भूम्याः संबन्धिना वस्त्रेण वाससा हे मृतपुरुष त्वां त्वाम् अभि प्रोर्णोमि अभिच्छादयामि । जीवेषु प्राणधारिषु जीवदवस्थावत्सु मनुष्येषु मध्ये यद् दानाय भद्रम् शोभनं वस्त्वस्ति तन्मयि संस्कर्तरि भवतु । पितृषु पितृदेवतासु या स्वधा विद्यते । स्वधेति अन्ननाम स्वधाकारेण हूयमानं हविर्लक्षणम् अन्नं यद् अस्ति सा स्वधा त्वयि मृतपुरुषे भवतु । यद्वा स्वैर्ज्ञातिभिर्धीयते विधीयत इति स्वधा पिण्डोदकदानादिरूपा पितृतृप्तिकरी क्रिया स्वधा । सा त्वयि भवत्वित्यर्थः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे मृतपुरुष ! मैं तुझको सबकी जननी कल्याणकारिणी भूमिके वस्त्रसे आच्छादित करता हूँ। प्राणधारी मनुष्योंमें जीवित अवस्थामें जो दानके लिये शोभन वस्तु होती है वह मुझ संस्कर्तामें होवे। और पितरोंमें स्वधाकारसे आहुत जो अन्न होता है वह तुझ मृतपुरुषमें हो ॥ ५२ ॥

तृतीया ॥

अग्नीषोमा पथिकृता स्योनं देवेभ्यो रत्नं दधथुर्वि लोकम् ।
उप प्रेष्यन्तं पूषणं यो वहात्यञ्जोयानैः पथिभिस्तत्र गच्छतम् ॥ ५३ ॥

अग्नीषोमा । पथिऽकृता । स्योनम् । देवेभ्यः । रत्नम् । दधथुः । वि । लोकम् ।
उप । प्र । ईष्यन्तम् । पूषणम् । यः । वहाति । अञ्जःऽयानैः । पथिऽभिः । तत्र । गच्छतम् ॥ ५३ ॥

अग्नीषोमा अग्निश्च सोमश्च अग्नीषोमौ। ❀ "सुपां सुलुक्०" इति पूर्वसवर्णआकारः ❀। पथिकृता पन्थानं पुण्यलोकगमनसाधनं मार्गं कुरुत इति पथिकृतौ। ❀ तेनैव सूत्रेण विभक्तेराकारः ❀। एवंगुणविशिष्टावग्नीषोमौ स्योनम् सुखकरं रत्नम् रमणीयं यद्वा रत्नवद् उत्कृष्टं लोकम् स्वर्गाख्यं देवेभ्यः। ❀ तादर्थ्ये चतुर्थी ❀। देवानाम् अर्थे वि दधतुः चक्रतुः। ❀ "छन्दसि परेपि" इति उपसर्गस्य परत्र प्रयोगः ❀। यद्वा। पुरुषव्यत्ययः। हे पथिकृतावग्नीषोमौ देवेभ्यः देवार्थं देवान् उद्दिश्य होतुं रत्नम् रमणीयं लोकम् स्थानं वि दधथुः युवां कृतवन्तौ स्थः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रूयते हि । "राजानौ वा एतौ देवतानां यद् अग्नीषोमौ । अन्तरा देवता इज्येते देवतानां विधृत्यै" इति [तै० सं० २. ६. २. २]। यो लोकः उप समीपे प्रेष्यन्तम् प्रगच्छन्तं पूषणम् पूषाख्यं देवम् यद्वा सर्वप्राणिनां पोषकं सूर्यं वहाति वहति धारयति तत्र तस्मिन् लोके अञ्जयानैः अञ्जसा आर्जवेन यान्ति गच्छन्ति एभिरिति अञ्जयानाः । तैः पथिभिर्गच्छतम् इमं प्रेतं गमयतम् । ❀ प्रयोज्यव्यापारवाचिना प्रयोजकव्यापारो लक्ष्यते ❀ ॥

हे अग्नि और सोमदेवताओं ! तुम पुण्यलोकमें पहुँचनेके मार्गको बनाने वाले हो, ऐसे इन देवताओंने सुखदायक और रमणीय स्वर्ग नामक लोककी देवताओंके लिये रचना की है । जो लोक समीपमें चलने वाले सूर्यदेवको धारण करता है उस लोकमें इस प्रेत पुरुषको सरलतासे चलने योग्य मार्गोंके द्वारा पहुँचाओ ॥ ५३ ॥

चतुर्थी ॥

पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः ।
स त्वैतेभ्यः परि ददत् पितृभ्योग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः

पूषा । त्वा । इतः । च्यवयतु । प्र । विद्वान् । अनष्टऽपशुः । भुवनस्य । गोपाः ।

सः । त्वा । एतेभ्यः । परि । ददत् । पितृऽभ्यः । अग्निः । देवेभ्यः । सुऽविदत्रियेभ्यः ॥ ५४ ॥

हे प्रेत त्वा त्वां विद्वान् जानन् पूषा एतत्संज्ञको देवः इतः अस्मात् स्थानात् मं च्यावयतु निर्गमयतु । कीदृशः पूषा । अनष्टपशुः अनष्टा अहताः पशवो येन स तथोक्तः । स खलु गवादि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पशूनां पोषयिता । "पूषा पोषयतु" [तै० ब्रा० १. ६. २. २] "पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः" इत्यादिश्रुतेः [ऋ० ६. ५४. ५] । भुवनस्य भूतजातस्य गोपाः गोपायिता । ❀ गुपू रक्षणे । "गुपूधूपविच्छि०" इति आयप्रत्ययः । क्विपि अतो लोपे यलोपविधिं प्रति न स्थानिवद् भवतीति तस्य स्थानिवत्त्वनिषेधात् "लोपो व्योर्वलि" इति यकारलोपः ❀ । स पूषा त्वा त्वाम् एतेभ्यः पितृभ्यः । एतच्छब्देन संनिहितार्थवाचिना मृतपुरुषसंबन्धिनः पितरः परामृश्यन्ते । त्वदीयेभ्यः पितृपितामहप्रपितामहेभ्यः परि ददात् परिददातु । रक्षणार्थं दानं परिदानम् । ❀ तद्योगे चतुर्थी विभक्तिर्भवति । "अग्नये त्वा परिददामि" [कौ० ७. ७] इत्यादौ तथा दर्शनात् । परिपूर्वाद् ददातेर्लेटि आडागमः । "इतश्च लोपः०" इति इकारलोपः❀ । तथा अग्निर्देवः दहनसंस्कारेण त्वा सुविदत्रियेभ्यः । सुविदत्रं शोभनविज्ञानम् यद्वा सुखेन लब्धव्यं धनं सुविदत्रम् सुष्ठु विशेषेण दानं वा । ❀ आह च यास्कः । सुविदत्रं धनं भवति विन्दतेर्वैकोपसर्गाद् ददातेर्वा स्याद् द्व्युपसर्गात् । इति नि० ७. ९ ❀ । तदर्हाः सुविदत्रियाः । तेभ्यो देवेभ्यः परि ददातु ॥

हे प्रेत ! विद्वान् पूषा देवता तेरा इस स्थानसे निर्गमन करें। यह पूषा देवता पशुओंको नष्ट नहीं करते हैं, किन्तु पशुओंका पालन करते हैं[क्योंकि-तैत्तिरीय ब्राह्मण १ । ६ । २ । २ की श्रुतिमें लिखा है, कि-"पूषा पोषयतु ।—पूषा देवता पुष्ट करें" और ऋग्वेदसंहिता ६ । ५४ । ५ में लिखा है, कि-"पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः ।-पूषा देवता हमारी गौओंके पीछे चलें०"] यह प्राणियोंके रक्षक हैं । वह पूषा देवता तुझको इन तेरे पितापपितामह आदि मृत पुरुषोंको रक्षाके लिये अर्पण करें। तथा अग्निदेव तुझको सुन्दर धन वाले देवताओंके अर्पण करें ५४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पञ्चमी ॥

आयुर्विश्वायुः परि पातु त्वा पूषा त्वां पातु प्रपथे पुरस्तात् ।
यत्रासते सुकृतो यत्र त ईयुस्तत्रं त्वा देवः सविता दधातु ॥ ५५ ॥

आयुः । विश्वऽआयुः । परि । पातु । त्वा । पूषा । त्वा । पातु । प्रऽपथे । पुरस्तात् ।
यत्र । आसते । सुऽकृतः । यत्र । ते । ईयुः । तत्र । त्वा । देवः । सविता । दधातु ॥ ५५ ॥

आयुः एतन्नामको जीवनाभिमानी देवः त्वा त्वां परि पासति परिपातु । कीदृश आयुः । विश्वायुः सर्वजीवनवान् । तथा पूषा जीवपोषको देवः पुरस्तात् पूर्वस्यां दिशि प्रपथे पथो गमनमार्गस्य प्रारम्भे त्वा त्वां पातु रक्षतु । यत्र यस्मिन् स्वर्गे लोके सुकृतः पुण्यकृतः आसते उपविशन्ति ते सुकृतो यत्र यस्मिन् स्वर्गसंबन्धिनि देशे नाकपृष्ठाख्ये ईयुः जग्मुः तत्र देशे देवः दानादिगुणयुक्तः सविता सर्वप्रेरक एतत्संज्ञकः हे प्रेत त्वा त्वां दधातु धारयतु स्थापयतु ॥

सर्वजीवनवान् जीवनका अभिमानी देवता आयु तेरी रक्षा करे । जीवपोषक पूषा देवता पूर्वदिशाके गमनमार्गके प्रारम्भमें तेरी रक्षा करे । और हे प्रेत ! जिसमें पुण्यात्मा रहते हैं और जहाँ वह पुण्यात्मा जाते हैं उस स्वर्गके नाकपृष्ठ नामक भागमें सर्वप्रेरक सविता देवता तुझको स्थापित करें ॥ ५५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

षष्ठी ॥

इमौ युनज्मि ते वह्नी असुनीताय वोढवे ।
ताभ्यां यमस्य सादनं समितीश्चाव गच्छतात् ।५६।

इमौ । युनज्मि । ते । वह्नी इति । असुऽनीताय । वोढवे ।
ताभ्याम् । यमस्य । सदनम् । सम्ऽइतीः । च । अव । गच्छतात्

हे मृतपुरुष वह्नी वोढारौ इमौ अनड्वाहौ ते तव वहनाय युनज्मि अनसि संयोजयामि । किमर्थम् । असुनीताय असवः प्राणा नीता यस्मात् सः असुनीतो गतप्राणो देहः तस्मै । ❀ "क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्" इति कर्मणः सम्प्रदानत्वाच्चतुर्थी ❀ । त्यक्तप्राणं शरीरं वोढवे वोढुम् । यद्वा सुष्ठु नेतव्यः सुनीतः न सुनीतः असुनीतः । दुर्वह इत्यर्थः । तादृशं शवं वोढुम् । ❀ वहेः "तुमर्थे सेसेन्०" इति तुमर्थे तवेन् प्रत्ययः ❀ । ताभ्याम् अनड्वद्भ्यां यमस्य संबन्धि सदनम् गृहम् इति अनेन प्रकारेण सम् अव गच्छतात् सम्यग्जानीहि ॥

हे मृतपुरुष ! वहन करने वाले इन बैलोंको मैं तेरे त्यक्तप्राण शरीरको लेजानेके लिये गाड़ीमें जोतता हूँ इन बैलोंसे तू यमके घरको भली भाँति प्राप्त हो ॥ ५६ ॥

सप्तमी ॥

एतत् त्वा वासः प्रथमं न्वागन्नपैतदूह यदिहाबिभः पुरा
इष्टापूर्तमनुसंक्राम विद्वान् यत्र ते दत्तं बहुधा विबन्धुषु

एतत् । त्वा । वासः । प्रथमम् । नु । आ । अगन् । अप । एतत् ।
ऊह । यत् । इह । अबिभः । पुरा ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इष्टापूर्तम् । अनुऽसंक्राम । विद्वान् । यत्र । ते । दत्तम् । बहुऽधा ।

विऽबन्धुषु ॥ ५७ ॥

एतत् इदं संनिहितं प्रथमम् मुख्यं वाससस्त्वा त्वां नु अद्य आगन् आगमत् प्राप्नोत् । ❀ गमेर्लुङि "मन्त्रे घस०" इति च्लेर्लुक् । "मो नो धातोः" इति नत्वम् ❀ । एतद् वासः अपोह परित्यज । इह अस्मिन् भूलोके पुरा पूर्वस्मिन् जीवनकाले यद् वासः अबिभः अधारयः । एतत् इति पूर्वेण संबन्धः । ❀ बिभर्तेर्लङि सिपि "भृञाम् इत्" इति अभ्यासस्य इत्त्वम् ❀ । विद्वान् जानन् मोह-रहितो भूत्वा इष्टापूर्तम् इष्टम् श्रुतिचोदितम् अग्निहोत्रदर्शपर्णमा-सादि कर्म पूर्तम् स्मृत्युदितं वापीकूपतटाकादिनिर्माणम् तद् उभयं स्वात्मना कृतम् अनुलक्ष्य संक्राम गच्छ संप्राप्नुहि । यत्र यस्मि-न्निष्टापूर्ते क्रियमाणे बन्धुषु बान्धवजनेषु बहुधा बहुप्रकारं ते त्वया विशेषेण धनं दत्तम् दक्षिणात्वेन वितीर्णम् । अभवद् इत्यर्थः । तादृशम् इष्टापूर्तम् इति संबन्धः ॥

जिस मुख्य वस्त्रको तू पहिले पहिर रहा था उस वस्त्रको तू त्याग दे और जिन इष्टापूर्तोंमें तूने बांधवोंको बहुतसा धन दिया था उस श्रुतिविहित अग्निहोत्र दर्श पूर्णमास आदि इष्ट कर्मके फलको और स्मृतिविहित वापी कूप तटाक आदि पूर्तके फलको प्राप्त हो ॥ ५७ ॥

अष्टमी ॥

अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व सं प्रोर्णुष्व मेदसा पीवसा च
नेत् त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग् विधक्षन् परीङ्खयातै

अग्नेः । वर्म । परि । गोभिः । व्ययस्व । सम् । प्र । ऊर्णुष्व ।

मेदसा । पीवसा । च ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न । इत् । त्वा । धृष्णुः । हरसा । जर्हृषाणः । दधृक् । त्विऽधक्षन् । परिऽईङ्खयातै ॥ ५८ ॥

हे प्रेत गोभिः । अवययेषु अवयविशब्दः । अनुस्तरणया गोः संबन्धिभिरवयवैः अग्नेः दाहकस्य वह्नेः वर्म वारकं कवचं परि व्यय स्व परितः संवृणु । यथाग्नेर्ज्वालाभिर्दग्धो न भवसि तथा गोसंबन्धिभिरवयवैः संवृतो भवेत्यर्थः । ❀ व्येञ् संवरणे । संव्यानक्रियाफलस्य आत्मगामित्वात् "स्वरितञितः०" इति व्ययतेरात्मनेपदम् ❀ । उक्त एवार्थो विव्रियते । पीवसा पीवरेण स्थूलेन मेदसा मेदोधातुरूपया वपया सं प्रोर्णुष्व । यद्वा मेदसा वपया पीवसा अन्येन च पीवरेणाङ्गेन सं प्रोर्णुष्व हे प्रेत आत्मानं सम्यक् प्रच्छादय । प्रच्छादनाभावे भीतिं दर्शयति नेद्ध इति । धृष्णुः धर्षकः अभिभवनशीलो हरसा रसहरणशीलेन तेजसा जर्हृषाणः अत्यर्थं हृष्यन् दधृक् प्रगल्भः एवंगुणविशिष्टोग्निः त्वा त्वां त्विधक्षन् विशेषेण दग्धुम् इच्छन् परि परितः नेत ईङ्खयातै ईङ्खनं चलनं दाहासहिष्णुतया इतस्ततः पतनम् तन्नैव कुर्यात् महाभीतिकरम् ईङ्खनं तव मा भूद् इत्यर्थः । ❀ नेत् इति निपातः परिभये वर्तते । उक्तं हि यास्केन । अथापि नेत्येष इद् इत्येतेन संप्रयुज्यते परिभये [नि० १. १०] इति । ईङ्खतिर्गत्यर्थः । उख उखि वख वखि इत्यादिषु गत्यर्थेषु इख इखि ईखि इति पठितत्वात् । तस्मात् लेटि आडागमः । "वैतोन्यत्र" इति ऐकारः ❀ ॥

हे प्रेत ! गोसम्बन्धी अवयवोंसे दाहक अग्निके वारक कवचसे संयुक्त हो अर्थात् जिस प्रकार अग्निकी ज्वालाओंसे भस्म न हो तिस प्रकार गोसम्बन्धी अवयवोंसे आवृत हो हे प्रेत ! स्थूल मेद से अपनेको आच्छादित कर । जिससे, कि–धर्षक अग्नि अपने रसहरणशील तेजसे तुझको अधिकतासे भस्म करना चाहता हुआ हर्षमें भर कर तुझको इधर उधर न गिरा सके ॥ ५८ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नवमी ॥

दण्डं हस्तादाददानो गतासोः सह श्रोत्रेण वर्चसा बलेन ।
अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वा मृधो अभिमातीर्जयेम ॥ ५९ ॥

दण्डम् । हस्तात् । आऽददानः । गतऽअसोः । सह । श्रोत्रेण । वर्चसा । बलेन ।
अत्र । एव । त्वम् । इह । वयम् । सुऽवीराः । विश्वाः । मृधः । अभिऽमातीः । जयेम ॥ ५९ ॥

समावर्तनप्रभृति समन्त्रकं दण्डधारणं ब्राह्मणस्य विहितम् । स दण्डः अस्मिन् काले पुत्रादिना धारणाय स्वीकार्य इति प्रतिपाद्यते । गतासोः गता असवः प्राणा यस्मात् स तथोक्तः तथाविधस्य ब्राह्मणशवस्य हस्ताद् वैणवं दण्डम् आददानः स्वीकुर्वन्नहं श्रोत्रेण शब्दश्रवणसाधनेन्द्रियजनितेन वर्चसा श्रुताध्ययनसंभूतेन तेजसा तत्कृतेन बलेन च सह । भवामीति शेषः ॥ अत्र अस्मिन् दहनदेश एव हे प्रेत त्वम् भव वर्तस्व । वयं तु इह अस्मिन् भूलोके सुशेवाः सुसुखाः सन्तः विश्वाः सर्वा मृधः संग्रामान् अभिमातीः अभिमन्यमानान् हिंसकान् शत्रून् जयेम अभिभवेम ॥

[ब्राह्मणके लिये समावर्तनके आरम्भसे समन्त्रक दण्ड धारण करनेका विधान है अब इस बातका प्रतिपादन किया गया है, कि—इस समय उस दण्डको पुत्र आदि स्वीकार करें] गतप्राण ब्राह्मणशवके हाथसे बाँसके दण्डको स्वीकार करता हुआ मैं श्रोत्रेन्द्रियके वर्चसे अर्थात् श्रुताध्ययनसंभूत तेजसे और उसके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वारा प्राप्त होने वाले बलसे सम्पन्न रहूँ और हे प्रेत ! तू इस दहनदेशमें ही रह और हम तो इस भूलोकमें परम सुखसे सम्पन्न रहते हुए सकल उपद्रवोंको और हिंसक शत्रुओंको दबा देवें ५९

दशमी ॥

धनुर्हस्तादाददानो मृतस्य सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन
समागृभाय वसु भूरि पुष्टमर्वाङ् त्वमेह्युप जीवलोकम्

धनुः । हस्तात् । आऽददानः । मृतस्य । सह । क्षत्रेण । वर्चसा ।
बलेन ।
सम्ऽआगृभाय । वसु । भूरि । पुष्टम् । अर्वाङ् । त्वम् । आ ।
इहि । उप । जीवऽलोकम् ॥ ६० ॥

मृतस्य त्यक्तप्राणस्य क्षत्रियस्य हस्ताद् धनुश्चापम् आददानः गृह्णन्नहं क्षत्रेण क्षतात् त्रायत इति क्षत्रम् क्षत्रजातेरसाधारणं तेजः तेन तेजसा वर्चसा पराभिभवसमर्थेन वीर्येण तत्कृतबलेन च सह युक्तो भवामि ॥ भूरि बहुलं पुष्टम् पोषकं वसु धनम् अस्मभ्यं दातुं समागृभाय सम्यग् अभिमुखं गृहाण आदत्स्व। ❀ग्रह उपादाने। "छन्दसि शायजपि" इति हल उत्तरस्य श्नाप्रत्ययस्य शायजादेशः ❀ ॥ एवं धनं गृहीत्वा जीवलोकम् जीवानां लोकं भूलोकम् उपलक्ष्य अर्वाङ् अस्मदभिमुखः सन् त्वम् एहि आगच्छ। आगत्य अस्मभ्यम् इष्टधनादिकं प्रयच्छेत्यर्थः ॥

इति द्वितीयेनुवाके षष्ठं सूक्तम् ॥
अष्टादशकाण्डस्य द्वितीयोनुवाकः ॥

मैं त्यक्तप्राण क्षत्रियके हाथसे धनुषको ग्रहण करता हुआ क्षत्रजातिके असाधारण तेज और बलसे सम्पन्न होता हूँ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[हे धनुष !] तू बहुतसे पोषक धनको हमें प्रदान करनेके लिये ग्रहण कर और इस प्रकार धनको ग्रहण करके जीवलोकमें हमारे अभिमुख आ । तात्पर्य यह है, कि-हमको प्राप्त होकर हमको इष्ट-धन आदि दे ॥ ६० ॥ (१२)

द्वितीय अनुवाकमें छठा सूक्त समाप्त

द्वितीय अनुवाक समाप्त (५४२)

तृतीयेनुवाके सप्त सूक्तानि । तत्र प्रथमसूक्तस्य आद्यया चितौ भार्यां प्रेतेन सह संवेशयेत् । ऋक्पाठस्तु

तृतीय अनुवाकमें सात सूक्त हैं । इनमें प्रथम सूक्तकी पहिली ऋचासे चितामें भार्याको प्रेतसहित प्रवेश करावे ।

प्रथमा ॥

इयं नारी पतिलोकं वृणाना नि पद्यत उप त्वा मर्त्य प्रेतम् ।
धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि १

इयम् । नारी । पतिऽलोकम् । वृणाना । नि । पद्यते । उप । त्वा । मर्त्य । प्रऽइतम् ।
धर्मम् । पुराणम् । अनुऽपालयन्ती । तस्यै । प्रऽजाम् । द्रविणम् । च । इह । धेहि ॥ १ ॥

इयं पुरोवर्तिनी नारी स्त्री । ❀ "नृनरयोर्वृद्धिश्च" इति शार्ङ्गरवादिषु पाठात् ङीन् प्रत्ययः । "ञ्नित्यादिर्नित्यम्" इति आद्युदात्तत्वम् ❀ । पतिलोकम् पत्युर्लोकः पतिलोकः पत्या अनुष्ठितानां यागदानहोमादीनां फलभूतं स्वर्गादि स्थानम् तं पतिलोकं वृणाना सहधर्मचारिणीत्वेन संभजमाना । ❀ वृङ् संभक्तौ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लटः शानच् । क्र्यादित्वात् श्ना प्रत्ययः । "चितः" इति अन्तोदात्तत्वम् ❀ । एवंभूता स्त्री हे मर्त्य मरणधर्मन् मनुष्य प्रेतम् प्रकर्षेण गतम् अस्माद् भूलोकाद् विनिर्गतं त्वा त्वाम् उप निषद्यते समीपे नितरां गच्छति । अनुमरणार्थं प्राप्नोतीत्यर्थः । ❀ पद गतौ । दिवादित्वात् श्यन् प्रत्ययः ❀ । कस्माद्धेतोरित्याह । पुराणम् पुरातनम्अनादिशिष्टाचार सिद्धं स्मृतिपुराणादिप्रसिद्धं वा । ❀ "पुराणप्रोक्तेषु०" इत्यत्र पुराणेति निपातनात् तुडभावः ❀ । धर्मम् सुकृतम् अनुपालयन्ती । आनुपूर्व्येण संप्रदायाविच्छेदेन परिपालनम् अनुपालनम् । तत् कुर्वती । ❀ "लक्षणहेत्वोः क्रियायाः" इति हेतौ शतृप्रत्ययः ❀ । स्मृतिपुराणादिप्रसिद्धधर्मस्य अनुमरणजन्यस्य अनुपालनाद्धेतोरित्यर्थः । स्मर्यते हि ।

भर्तारम् उद्धरेन्नारी प्रविष्टा सह पावकम् ।
व्यालग्राही यथा सर्पं बलाद् उद्धरते बिलात् ।

इति । तस्यै तथाविधायै अनुमरणं कृतवत्यै स्त्रियै इह अस्मिन् भूलोके जन्मान्तरे लोकान्तरेपि प्रजाम् । प्रजायत इति प्रजा । ❀ "उपसर्गे च संज्ञायाम्" इति जनेर्डप्रत्ययः ❀ । तां पुत्रपौत्रादिरूपां द्रविणम् धनं च धेहि प्रयच्छ । अनुमरणप्रभावाज्जन्मान्तरेपि स एव तस्याः पतिर्भवतीत्यर्थः । ❀ डुधाञ् दानधारणयोः । "ध्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च" इति एत्वाभ्यासलोपौ ❀ ॥

यह सामने वर्तमान नारी स्मृतिपुराण आदिसे सिद्ध अनादिशिष्टाचारसिद्ध ‡ धर्मका पालन करनेके लिये और पतिके किये

‡ स्मृतिमें कहा है, कि–"भर्तारमुद्धरेन्नारी प्रविष्टा सह पावकम् । व्यालग्राही यथा सर्पं बलादुद्धरते बिलात् ॥–जो स्त्री पतिके साथ अग्निमें प्रवेश करती है वह स्त्री (नरक आदिमें पड़े हुए भी) अपने पतिका इस प्रकार उद्धार कर लेती है जिस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुए याग दान आदि के फलको देने वाले लोकको चाहती हुई मनुष्यलोकसे पूर्णरूपसे निकले हुए तेरे परम समीपमें आती है अर्थात् तेरे पीछे मरना चाहती है-सती होना चाहती है। इस प्रकार अनुमरण करने वाली स्त्रीके लिये इस भूलोकमें दूसरे जन्मके समय भी तू पुत्र पौत्र आदिरूप प्रजाको और धनको देना। तात्पर्य यह है, कि—सती होनेके प्रभावसे दूसरे जन्ममें भी वही इस स्त्रीका पति होता है ॥ १ ॥

उपनिपद्यमाना सा यदि इह लोके पुनर्जीवितुम् इच्छेत् तदा "उदीर्ष्व" इत्यनया द्वितीययर्चा प्रेतेन सह संविष्टां ताम् अभिमन्त्र्य उत्थापयेत् ॥ पाठस्तु

प्रेतके समीपमें प्राप्त हुई यदि वह फिर इस लोकमें ही जीवित रहना चाहे अर्थात् सती न होना चाहे तो 'उदीर्ष्व" इस दूसरी ऋचासे उस प्रेतके पास बैठी हुईको अभिमन्त्रित करके उठावे।

द्वितीया ॥

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि।
हस्तग्राभस्य दधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ

उत् । ईर्ष्व । नारि । अभि । जीवऽलोकम् । गतऽअसुम् । एतम् । उप । शेषे । आ । इहि ।

हस्तऽग्राभस्य । दधिषोः । तव । इदम् । पत्युः । जनिऽत्वम् । अभि । सम् । बभूथ ॥ २ ॥

प्रकार साँपोंको पकड़ने वाला सपेरा बिलमेंसे सर्पको बलपूर्वक खेंच लेता है" ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे नारि धर्मपत्नि जीवलोकम् जीवानां जीवतां प्राणधारिणां लोकः। लोक्यते अनुभूयते जन्मान्तरकृतंधर्माधर्मफलं सुखदुःखात्मकम् अस्मिन्निति लोकः भूलोकः। "उभाभ्यामेव मनुष्यलोकम्" इति श्रुतेः। तथाविधं जीवलोकम् अभिलक्ष्य उदीर्ष्व उद्गच्छ। पत्युः सकाशाद् उत्तिष्ठ। ❀ ईर गतौ कम्पने च। "अदिप्रभृतिभ्यः शपः" इति शपो लुक् ❀। गतासुम् गता असवः प्राणा यस्मात् स तथोक्तः तथाविधम् एतं पतिम् उप शेषे उपेत्य तेन सार्धं शयनं करोषि। ❀ शीङ् स्वप्ने। अदादित्वात् शपो लुक् ❀। अयम् अर्थः। पूर्वम् अदृष्टार्थम् अनुगमनम् उक्तम्। इदानीं शास्त्राविरोधिदृष्टफलानुरोधेन तत उत्थानं प्रतिपाद्यते। दृष्टफलाभावप्रतिपत्त्यर्थं गतासुम् इति विशेषणम्। उपशयने दृष्टप्रयोजनं नास्तीत्यतः एहि पत्युः सकाशाद् आगच्छ॥ जीवनावस्थायामेव पतिसकाशात् सर्वम् ऐहिकं पुत्रादिलक्षणम् अभिप्राप्तम् अतोपि हेतोरागच्छेति प्रतिपाद्यते हस्ताग्राभस्येति। हस्तं गृह्णातीति हस्तग्राभः पाणिग्रहणकर्ता तस्य। ❀ ग्रह उपादाने इत्यस्मात् "कर्मण्यण्" इति अण् प्रत्ययः। "हृग्रहोर्भश्छन्दसि" इति भत्वम् ❀। दधिषोः धारयितुः तव पत्युः इदं जनित्वम् अपत्यादिरूपेण जन्मत्वम् अभि सं बभूथ अभिसंप्राप्तासि। ❀ "बभूथाततन्थजगृभ्मववर्थेति निगमे" इति इडभावो निपात्यते ❀॥

हे धर्मपत्नि! तू इस प्राणहीन पतिके पास बैठी है अब तू जीवित प्राणियोंके पूर्वजन्ममें किये हुए धर्म अधर्मका फल जिसमें अनुभवमें आता है ऐसे इस जीवलोककी ओर ध्यान देकर पतिके पाससे उठ (पहिले अदृष्टार्थ अनुगमन कहा अब शास्त्रके अविरुद्ध दृष्ट फलका अनुरोध करके उसके पाससे उठनेकी प्रार्थना करते हैं कि—अब इसके पास बैठनेसे कोई दृष्ट लाभ नहीं है अत एव इस गतासु पुरुषके पाससे उठ अब इस बातको दिखाते हैं,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

`CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि-तूने जीवित अवस्थामें पतिके पाससे पुत्र आदि सब अभिमत वस्तुएँ पाली हैं अतः उठ आ, यथा-) पोषण करने वाले पतिकी यह पुत्र पौत्रादिरूप उत्पत्ति है इसको तू प्राप्त होगई है अर्थात् ये तेरे समीपमें उपस्थित हैं अतः तू उठ ॥ २ ॥

"अपश्य युवतिम्" इति द्वाभ्याम् ऋग्भ्यां चितौ पार्श्वतः परिणीयमानां गाम् अनुमन्त्रयते । तत्र आद्या-

'अपश्यं युवतिम्" आदि दो ऋचाओंसे चिताकी करवटसे ले जाती हुई गौका अनुमन्त्रण करे ।

सूक्ते तृतीया ॥

अपश्यं युवतिं नीयमानां जीवां मृतेभ्यः परिणीयमानाम् ।
अन्धेन यत् तमसा प्रावृतासीत् प्राक्तो अपाचीमनयं तदेनाम् ॥ ३ ॥

अपश्यम् । युवतिम् । नीयमानाम् । जीवाम् । मृतेभ्यः । परिऽनीयमानाम् ।
अन्धेन । यत् । तमसा । प्रावृता । आसीत् । प्राक्तः । अपाचीम् । अनयम् । तत् । एनाम् ॥ ३ ॥

युवतिम् यौवनावस्थोपेतां नीयमानाम् शवसमीपं प्राप्यमाणां जीवाम् जीवन्तीं मृतेभ्यः । ❀ तादर्थ्ये चतुर्थी ❀ । त्यक्तप्राणेभ्यः पुरुषेभ्यः मृतपुरुषार्थं परिणीयमानाम् दारुचित्यग्न्यादिसहितं शवं परितः प्रसव्यं नीयमानां गाम् अनुस्तरणयाख्याम् अपश्यम् पश्यामि अवलोकयामि । ❀ "छन्दसि लुङ्लङ्लिटः" इति वर्त-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माने लङ् ❀ । जीवदवस्थापन्नाया युवतेर्गोः शवपरिणयनम् अयुक्तम् इति जानामीत्यभिप्रायः । अनुस्तरणी सा गौः यत् यस्माद् अन्धेन दृष्ट्युपघातकेन गाढेन तमसा तमिस्रेण अज्ञानलक्षणेन प्रावृता प्रकर्षेण वेष्टिता आसीत् । हिताहितविभागं स्वयं न जानातीत्यर्थः । तत् तस्माद्धेतोः एनां गां प्राक्तः पूर्वदेशात् शवसमीपाद् अपाचीम् अपाङ्मुखीं शवात् पराङ्मुखीम् अस्मदभिमुखीम् अनयम् प्रापयामि । ❀ पूर्ववत् लङ् ❀ ॥

मैं तरुण अवस्था वाली शवके समीप लाई जाती हुई जीवित गौको, कि–जो काष्ठचिता अग्नि आदि वाले शव–मृतपुरुषके प्रसव्यमें लानेसे अनुस्तरणी कहलाती है उस गौको देखता हूँ [अर्थात् मैं यह जानता हूँ, कि–युवती जीवित गौका शवपरिणयन अनुचित है] क्योंकि–यह अनुस्तरणी गौ दृष्ट्युपघातक घोर अंधकारसे और अज्ञानसे आवृत है अर्थात् अपने हित अहितको स्वयं नहीं समझती है, इस कारण इस गौको मैं शवके समीपसे पराङ्मुख करके अपने अभिमुख लाता हूँ ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

प्रजानत्यघ्न्ये जीवलोकं देवानां पन्थामनुसंचरन्ती ।
अयं ते गोपतिस्तं जुषस्व स्वर्गं लोकमधि रोहयैनम्

प्रऽजानती । अघ्न्ये । जीवऽलोकम् । देवानाम् । पन्थाम् । अनुऽसंचरन्ती ।

अयम् । ते । गोऽपतिः । तम् । जुषस्व । स्वःऽगम् । लोकम् । अधि । रोहय । एनम् ॥ ४ ॥

हे अघ्न्ये । गोनामैतत् । अहन्तव्ये हे गौः जीवलोकम् जीवानां लोको जीवलोकः भूलोकः । तं प्रजानती प्रकर्षेण जानाना ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

❀ ज्ञा अवबोधने इत्यस्मात् लटः शत्रादेशः । "ज्ञाजनोर्जा" इति जादेशः । "श्नाभ्यस्तयोरातः" इति आल्लोपः । "उगितश्च" इति ङीप् । "शतुरनुमः०" इति नद्या उदात्तत्वम् ❀ । तथा देवानाम् इन्द्रादीनां पन्थाम् पन्थानं मार्गं यज्ञलक्षणम् अनुसंचरन्ती अनुलक्ष्य गच्छन्ती क्षीरदध्यादिहविर्निष्पादयन्ती । त्वम् आगच्छेति शेषः । ते तव अयं गोपतिः गोस्वामी । तं जुषस्व सेवस्व । एनं मृतं पुरुषं स्वर्गं लोकम् अधि रोहय प्रापय ॥

हे गौ ! तू जीवित पुरुषोंके लोक—भूलोक—को प्रकृष्टरूपसे जानती हुई तथा इन्द्र आदि देवताओंके यज्ञरूपी मार्गको लक्ष्यमें रख उसको क्षीर दधि आदि हविसे निष्पन्न करती हुई आ । यह तेरा गोपति स्वामी है इसका सेवन कर और इस मृतपुरुष को स्वर्गलोकमें चढ़ा ॥ ४ ॥

पितृमेधे चतुर्थेऽहनि संचयनाख्ये कर्मणि "उप द्यामुप वेतसम्" इति पञ्चमीषष्ठीभ्यां मन्त्रोक्ता ओषधीरभिमन्त्र्य ताभिः क्षीरेण ब्राह्मणस्य अस्थीनि अवसिञ्चेत् । ताश्च ओषधयः वेतसाश्च कर्णी च नदीफेनं च अवका च गर्हका च बृहद्दूर्वा च मण्डूकपर्णी चेत्येवमाद्याः ॥

पितृमेधके चौथे दिन सञ्चयन नामक कर्ममें "उप द्यामुप वेतसम्" इन पाँचवीं छठी ऋचाओंसे मन्त्रोक्त औषधियोंको अभिमन्त्रित करे उनसे क्षीरके द्वारा ब्राह्मणकी अस्थियोंका अवसिञ्चयन करे । वे औषधिये ये हैं, वेंत, भटकैया, नदीफेन, अवका, गर्हका, बृहद्दूर्वा और सेनापाढ़ा आदि ।

पञ्चमी ॥

उप द्यामुप वेतसमवत्तरो नदीनाम् ।
अग्ने पित्तमपामसि ॥ ५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उप । द्याम् । उप । वेतसम् । अवत्ऽतरः । नदीनाम् ।

अग्ने । पित्तम् । अपाम् । असि ॥ ५ ॥

नदीनाम् नदनशीलानाम् अपाम् । नदनान्नद्य इति यास्कः [नि० २. २४] । मन्त्रवर्णश्च भवति । "अहावनदता हते । तस्मादा नद्यो नाम स्थ" इति [३. १३. १] । ❀ पचादिषु नदट् इति पाठात् "टिड्ढाणञ्०" इत्यादिना ङीप् ❀ । नदनशीलानाम् अपां संबन्धिनीं द्याम् उप । अत्र द्योशब्दः अवकावाची । जलस्योपरि प्ररूढा भूमंस्पर्शरहिता अवका उच्यन्ते । तत्समीपे । तथा वेतसम् उप । वेतसो नदीतीरगतो वृक्षविशेषः । तस्य समीपे । यद्वा सप्तम्यर्थप्रतिपादकावुपशब्दौ । अवकासु वेतसे चेत्यर्थः । अवत्तरः अतिशयेन अवन् रक्षणसमर्थः सारभूतांशो विद्यते । वेतस्य च अवकानां च अप्सारत्वं तैत्तिरीये समाम्नायते । "अपां वा एतत् पुष्पं यद् वेतसः । अपां शरोऽवका । वेतसशाखया चावकाभिश्च विकर्षति" इति [तै० सं० ५. ४. ४. २] । हे अग्ने त्वमपि अपां पित्तम् अप्संबन्धी पित्तधातुरसि । "शुचिरप्पित्तम् और्वस्तु" इति अभिधानकारः । यतस्त्वम् अपां संबन्ध्यसि अतस्त्वा अप्संबन्धिनीभिः अवकावेतसशाखानदीफेनबृहद्दूर्वाद्योषधीभिः शमयामीति शेषः । ओषधयः केशवेन पद्धतिकारेण परिगणिताः । वेतसाश्च कर्णौ च नदीफेनं चावका च बर्हका च बृहद्दूर्वा च मण्डूकपर्णी चेति । ❀ अवत्तर इति । अव रक्षणे इत्यस्मात् लटः शत्रादेशः । तथा प्रकर्षार्थे तरप् ❀ ॥

नदियोंके जलका सिवारमें और वेतमें रक्षा करनेमें समर्थ सारभूत अंश है † और हे अग्ने ! तू भी जलकी पित्त धातु है ।

† वेत और काईका अप्सारत्व तैत्तिरीयमें कहा है. कि–"अपां वा एतत् पुष्पं यद् वेतसः । अपां शरोऽवका । वेतसशाखया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्योंकि-तू जलसंबंधी है अत एव मैं तुझको जलसंबंधी अवका अर्थात् पृथ्वीसे अधर जलके ऊपर होने वाली काई वेंतकी शाखा, नदीफेन और बृहद्दूर्वा आदि औषधियोंसे शान्त करता हूँ ॥५॥

षष्ठी ॥

यं त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुनः ।
क्याम्बूरत्र रोहतु शाण्डदूर्वा व्यल्कशा ॥ ६ ॥

यम् । त्वम् । अग्ने । सम्ऽअदहः । तम् । ऊं इति । निः । वापय ।
पुनः ।
क्याम्बूः । अत्र । रोहतु । शाण्डऽदूर्वा । विऽअल्कशा ॥ ६ ॥

हे अग्ने त्वं यं पुरुषं समदहः सम्यग् दग्धवान् असि तमु तं खलु त्वं पुनर्निर्वापय निर्वृतं सुखितं कुरु । दाहजनितौष्ण्यपरिहारेणेत्यर्थः । एतदर्थमेव हि पूर्वम् अपां पित्तम् असीति अग्नेरप्कार्यत्वम् उक्तम् । ❀ निरुपसृष्टाद् "वा गतिगन्धनयोः" इत्यस्मात् णिचि "०आतां पुङ् णौ" इति पुगागमः ❀ । दाहनिर्वापणस्य परां काष्ठाम् आह क्याम्बूरित्युत्तरार्धेन । अत्र अस्मिन् दहनप्रदेशे क्याम्बूः ओषधिविशेषः रोहतु प्ररोहतु उत्पद्यताम् । तथा शाण्डदूर्वा जलसमीपे उत्पद्यमाना अण्डाकृतिमूलसहिता दीर्घकाण्डा वा दूर्वा शाण्डदूर्वा सा बृहद्दूर्वेत्युच्यते । सा व्यल्कशा अल्काः शाखाः । ❀ शो मत्वर्थीयः ❀ । विविधशाखोपेता । रोहत्विति संबन्धः ॥

चावकाभिश्च विकर्षति ।-जो वेत है यह जलोंका पुष्परूप है, और अवका-काई-जलके बाण हैं । वेतकी डाली और अवकासे खेंचे' (तैत्तिरीयसंहिता ५ । ४ । ४ । २) ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे अग्निदेव ! आपने जिस पुरुषको भस्म कर दिया है उसको आप फिर भली प्रकार सुखी करिये । [दाहजनित उष्णताका परिहार कर सुखी करिये, इसी लिये पहिले "हे अग्ने ! आप जलोंके पित्त हैं" कह कर अग्निको जलका कार्य कहा था, दाह को दूर करनेकी पराकाष्ठाको कहते हैं, कि–] इस दहनस्थानमें क्याम्बू नामक औषधि उग आवे तथा अनेक शाखाओं वाली जलके समीप होने वाली शाण्डदूर्वा बृहद्दूर्वा भी उग आवे॥३॥

"इदं त एकम्" इत्यनया सप्तम्या आहिताग्नेः प्रेतस्याग्रे अग्नित्रयं धारयित्वा अनुमन्त्रयते ॥ तत्पाठस्तु–

"इदं त एकम्" इस सातवीं ऋचासे आहिताग्नि प्रेतके आगे तीनों अग्नियोंको धर कर अनुमन्त्रण करे ।

सप्तमी ॥

इदं त एकं पर ऊत एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व ।
संवेशने तन्वा ३ चारुरेधि प्रियो देवानां परमे सधस्थे ७

इदम् । ते । एकम् । परः । ऊं इति । ते । एकम् । तृतीयेन ।
ज्योतिषा । सम् । विशस्व ।
सम्ऽवेशने । तन्वा । चारु । एधि । प्रियः । देवानाम् । परमे ।
सधऽस्थे ॥ ७ ॥

हे प्रेत ते तव परलोकगमनाय इदम् एकम् गार्हपत्याख्यं ज्योतिः । तथा परः परस्तात् ते तव । उशब्दः अप्यर्थे । अन्वाहार्यपचनाख्यमपि एकं ज्योतिः । तृतीयेन त्रित्वसंख्यापूरकेण ज्योतिषा आहवनीयाख्येन सं विशस्व संगतो भव । साकल्येन आत्मानम् आहवनीयं गमयेत्यर्थः । इत्थम् अग्निसंवेशने सति तन्वा संस्कार-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जनितेन देवशरीरेण चारुः शोभनः एधि भव । ❀ अस भुवीत्यस्माल्लोटि "ध्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च" इति अकारस्य एत्त्वम् । तस्य "असिद्धवद् अत्रा भात्" इति असिद्धत्वात् "हुझल्भ्यः०" इति हेर्धित्वम् ❀ । ततः परमे उत्कृष्टे सधस्थे सहस्थाने देवलोके देवानाम् इन्द्रादीनां प्रियः प्रीतिविषयो भव । ❀ सह तिष्ठन्ति अस्मिन्निति सधस्थः । "घञर्थे कविधानम्" इति अधिकरणे तिष्ठतेः कप्रत्ययः । "सध मादस्थयोश्छन्दसि" इति सहस्य सधादेशः ❀ । यद्वा अग्निसंस्कारजनितदेवशरीरेण चारुर्भूत्वा देवलोके देवानां प्रिय एधीत्येकवाक्यता ॥

हे प्रेत ! तेरे परलोकगमनके लिये यह गार्हपत्याग्नि एक ज्योति है । दूसरी अन्वाहार्यपचन नामक एक ज्योति है । और तू आहवनीय नामक तीसरी ज्योतिसे सङ्गत हो अर्थात् पूर्णरूपसे अपनेको आहवनीय अग्निको प्राप्त करा ॥ इस प्रकार अग्निसंवेशन होने पर संस्कारजनित देवशरीरके द्वारा शोभन होता हुआ वृद्धिको प्राप्त हो फिर साथ रहनेके उत्कृष्ट स्थानमें इन्द्र आदि देवताओं को प्रिय लगने वाला हो ॥ ७ ॥

"उत्तिष्ठ प्रेहि" इत्यष्टम्या "प्र च्यवस्व" इति नवम्या च दहनप्रदेशं नेतुं प्रेतम् उत्थापयेत् ॥

"उत्तिष्ठ प्रेहि" इस आठवीं ऋचासे और "प्र च्यवस्व" इस नवम ऋचासे भी दहनस्थानको लेजानेके लिये प्रेतको उठावे ।

तत्र अष्टमी ॥

उत्तिष्ठ प्रेहि प्र द्रवौकः कृणुष्व सलिले सधस्थे ।
तत्र त्वं पितृभिः संविदानः सं सोमेन मदस्व सं स्वधाभिः ॥ ८ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत् । तिष्ठ । प्र । इहि । प्र । द्रव । ओकः । कृणुष्व । सलिले ।
सधऽस्थे ।

तत्र । त्वम् । पितृऽभिः । सम्ऽविदानः । सम् । सोमेन । मदस्व ।
सम् । स्वधाभिः ॥ ८ ॥

हे प्रेत त्वम् उत्तिष्ठ अस्मात् स्थानाद् ऊर्ध्वं तिष्ठ । ❀ "उदो-नूर्ध्वकर्मणि" इति पर्युदासात् तिष्ठतेरात्मनेपदाभावः ❀ । उत्थानानन्तरं प्रेहि प्रगच्छ । ततः प्र द्रव प्रकर्षेण धाव । शीघ्रं गच्छेत्यर्थः । सलिले । अन्तरिक्षनामैतत् । अन्तरिक्षे सधस्थे सहस्थाने अलौकिके ओकः गृहं कृणुष्व कुरु । ❀ कृवि हिंसाकरणयोश्च । "धिन्विकृण्व्योर च" इति उप्रत्ययः ❀ । तत्र तस्मिन् लोके त्वं पितृभिः बर्हिषदग्निष्वात्ताख्याभिः पितृदेवताभिः संविदानः संजानानः ऐकमत्यं गतः सन् सोमेन सं मदस्व । ❀ मद तृप्तियोगे ❀ । सोमपानेन तृप्तो भवेत्यर्थः । सोमयागेषु हि नाराशंसाख्यः सोमरसस्य भागः पितॄणाम् अस्ति । तदुपभोगेन आत्मानं हर्षयेति भावः । यद्वा सोमेन राज्ञा पितॄणाम् अधिपतिना सह मदस्वेत्यर्थः । तथा स्वधाभिः स्वधाकारसहितैः श्राद्धैः पुत्रादिभिः कृतैः सं मदस्व । ❀ संविदान इति । विद ज्ञाने । "समो गम्यृच्छि०" इत्यादिना आत्मनेपदम् ❀ ॥

हे प्रेत ! तू इस स्थानसे ऊपर स्थित हो—उठ ! उत्थानके अनंतर चल, फिर शीघ्रतासे चल, फिर अलौकिक अन्तरिक्षमें घर बना और उस लोकमें बर्हिषद् अग्निष्वात्ता आदि पितरोंसे एकमत होकर सोमपान करके आनन्दको प्राप्त हो, भाव यह है, कि—सोमयागोंमें जो नाराशंस नामक सोमरसका जो भाग पितरोंका है उसका उपभोग करके अपनेको प्रसन्न कर । और पुत्र आदिके किये हुए स्वधाकारसम्पन्न श्राद्धोंसे आनन्दको प्राप्त हो ८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"प्र च्यवस्व" इत्यनया प्रेतस्य गात्राणि इतस्ततश्च व्याकुलीकुर्यात् ॥ तत्पाठस्तु—

"प्रच्यवस्व" ऋचासे प्रेतके अङ्गोंको इधर उधर व्याकुल करे।

नवमी ॥

प्र च्यवस्व तन्वं१ सं भरस्व मा ते गात्रा वि हायि मो शरीरम् ।
मनो निविष्टमनुसंविशस्व यत्र भूमेर्जुषसे तत्र गच्छ ९

प्र । च्यवस्व । तन्वम् । सम् । भरस्व । मा । ते । गात्रा । वि । हायि । मो इति । शरीरम् ।
मनः । निऽविष्टम् । अनुऽसंविशस्व । यत्र । भूमेः । जुषसे । तत्र । गच्छ ॥ ९ ॥

हे प्रेत त्वं प्र च्यवस्व अस्मात् स्थानात् प्रच्युतो भव । तदर्थं तन्वम् शरीरं हस्तपादादिसहितं सं भरस्व संभृतम् एकीभूतं कुरु । ते तव गात्रा गात्राणि हस्तपादादीनि मा वि हायि परित्यक्तानि मा भूवन् । तथा शरीरम् अवयविभूतो मध्यदेहश्च मो मैव त्याक्षीः । यत्र यस्मिन् स्थाने त्वदीयं मनो निविष्टम् अवस्थितं मनसो विषयभूतं तत् स्वर्गादिलक्षणम् अनुसंविशस्व संप्रविष्टो भव । तथा यत्र यस्यां भूमौ भूप्रदेशे जुषसे प्रीयसे । ❀ जुषी प्रीतिसेवनयोः ❀ । तत्र गच्छ । तं भूप्रदेशं प्राप्नुहीत्यर्थः ॥

हे प्रेत ! तू इस स्थानसे प्रच्युत हो और इस लिये हाथ पैर आदि सहित शरीरको एकीभूत कर । तेरे हाथ पैर आदि अंग छूट न जावें । तथा अवयवीरूप मध्यदेह भी न छूटे । तेरा मन जिस स्थानमें लग रहा है उस स्वर्गादिरूप स्थानमें तू प्रविष्ट हो और जिस भूप्रदेशमें तू प्रीति रखता है उस भूप्रदेशको तू प्राप्त हो९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पिण्डपितृयज्ञे "वर्चसा माम्" इति दशम्या उत्तरसूक्तस्य आद्यया च आचामेत् । "वर्चसा माम् इत्याचामति" इति हि सूत्रितम् [कौ० ११. २] ॥

पिण्डपितृयज्ञमें "वर्चसा माम्" इस दशवीं ऋचासे और अगले सूक्तकी पहिली ऋचासे भी आचमन करे ।

दशमी ॥

वर्चसा मां पितरः सोम्यासो अञ्जन्तु देवा मधुना घृतेन ।
चक्षुषे मा प्रतरं तारयन्तो जरसे मा जरदष्टिं वर्धन्तु १०

वर्चसा । माम् । पितरः । सोम्यासः । अञ्जन्तु । देवाः । मधुना । घृतेन ।

चक्षुषे । मा । प्रऽतरम् । तारयन्तः । जरसे । मा । जरत्ऽअष्टिम् । वर्धन्तु ॥ १० ॥

पितरः पितृदेवताः सोम्यासः सोम्याः सोमार्हाः । ❀ "सोमम् अर्हति यः" इति सोमशब्दाद् अर्हार्थे यप्रत्ययः । "आज्जसेरसुक्" ❀ । तथाविधाः पितरो मां यजमानं वर्चसा तेजसा अञ्जन्तु अक्तं संश्लिष्टं कुर्वन्तु । तथा देवाः विश्वे देवा मधुना माधुर्योपेतेन घृतेन दीप्तिकरेण आज्येन माम् अञ्जन्तु । अपि च चक्षुषे दर्शनाय मा मां प्रतरम् प्रकृष्टतरं तारयन्तः प्लावयन्तः । दीर्घकालदर्शनार्थं रोगादिभ्यो मां व्यावर्तयन्त इत्यर्थः । तथा जरसे जरायै मा मां जरदष्टिम् जरती जीर्णा अष्टिः अशनं यस्य । ❀ जॄष् वयोहानौ । "जीर्यतेरतृन्" इति भूतेर्थे अतृन् प्रत्ययः । "जराया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जरस् अन्यतरस्याम्" इति जराशब्दस्य जरस् आदेशः। तादर्थ्ये चतुर्थी ❀। जरार्थम् यावता कालेन जरा भवति तावत्कालपर्यन्तं मां जरदष्टिं कृत्वा वर्धन्तु वर्धयन्तु ॥

इति अष्टादशकाण्डस्य तृतीयेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

सोमके पात्र पितृदेवता मुझ यजमानको तेजसे संयुक्त करें। तथा विश्वेदेवा भी मुझको मधुरतासम्पन्न दीप्तिप्रद घृतसे संयुक्त करें और मुझको दीर्घकाल तक देखते रहनेके लिये रोगादिके पार उतारते हुए और बुढ़ापे तकके लिये भोजनको जीर्ण कराते हुए मुझको बढ़ावें ॥ १० ॥ (१३)

अष्टादशकाण्डके तृतीय अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त

"वर्चसा माम्" इति आद्याया ऋचः पूर्वया ऋचा सह उक्तो विनियोगः। तत्पाठस्तु-

"वर्चसा माम्" इस प्रथम ऋचाका पहिली ऋचाके साथ विनियोग कह दिया गया है।

तत्र प्रथमा ॥

वर्चसा मां समनक्त्वग्निर्मेधां मे विष्णुर्न्यनक्त्वासन्।
रयिं मे विश्वे नि यच्छन्तु देवाः स्योना मापः पवनै पुनन्तु ॥ ११ ॥

वर्चसा। माम्। सम्। अनक्तु। अग्निः। मेधाम्। मे। विष्णुः। नि। अनक्तु। आसन्।

रयिम्। मे। विश्वे। नि। यच्छन्तु। देवाः। स्योनाः। मा। आपः। पवनैः। पुनन्तु ॥ ११ ॥

अग्निः अङ्गनादिगुणयुक्तो देवः मा मां वर्चसा तेजसा सम-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नक्तु संयोजयतु। ❀ अञ्जू व्यक्तिम्लक्षणगतिषु। रुधादित्वाद्नुम्। "श्नान्नलोपः" इति नलोपः ❀ ॥ तथा विष्णुः मे मम आसन् आसनि आस्ये मुखे मेधां नि अनक्तु नितरां संयोजयतु। ❀ "पद्दन्०" इत्यादिना आस्यशब्दस्य आसन् आदेशः। "सुपां सुलुक्०" इति सप्तम्या लुक् ❀ ॥ तथा विश्वे देवाः स्योनाम् सुखकरीं रयिम् धनं मे मह्यं नि यच्छन्तु नियतां कुर्वन्तु। ❀ यम उपरमे। "इषुगमियमां छः" इति छत्वम् ❀। यद्वा नियमेन ददतु। ❀ दाण् दाने इत्यस्य "पाघ्रा०" इत्यादिना यच्छादेशः ❀ ॥ तथा आपः उदकानि पवनैः शोधनसाधनैः स्वांशैः मा मां पुनन्तु पूतं शुद्धं कुर्वन्तु ॥

अंगनादिगुणसम्पन्न अग्निदेव मुझको तेजसे संयुक्त करें, और विष्णुदेव मेरे मुखमें मेधाको संयुक्त करें और विश्वेदेवता सुखप्रद धनको मुझमें नियत करें। तथा जल शोधनसाधन वायुरूप अपने अंशोंसे मुझको शुद्ध करें ॥ ११ ॥

"मित्रावरुणा परि माम्" इति द्वितीयया ऋचा पिण्डपितृयज्ञे पाणी कर्ता प्रक्षालयेत्। तत्पाठस्तु—

"मित्रा वरुणा परि माम्" इस दूसरी ऋचासे कर्ता पिण्डपितृयज्ञमें हाथोंका प्रक्षालन करे।

द्वितीया ॥

मित्रावरुणा परि मामधातामादित्या मा स्वरवो वर्धयन्तु वर्चो म इन्द्रो न्यनक्तु हस्तयोर्जरदष्टिं मा सविता कृणोतु ॥ १२ ॥

मित्रावरुणा। परि। माम्। अधाताम्। आदित्याः। मा। स्वरवः। वर्धयन्तु।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्चः । मे । इन्द्रः । नि । अनक्तु । हस्तयोः । जरत्ऽअष्टिम् । मा । सविता । कृणोतु ॥ १२ ॥

मित्रावरुणा मित्रश्च वरुणश्च मित्रावरुणौ । ❀ "देवताद्वन्द्वे च" इति पूर्वपदस्य आनङ् आदेशः । "सुपां सुलुक्०" इति पूर्वसवर्णदीर्घः ❀ । अहरभिमानी देवो मित्रः । वरुणो रात्र्यभिमानी । तावुभौ मां पर्यधाताम् परितो धारयताम् । यद्वा वस्त्रादिना परिहितं कुरुताम् ॥ तथा आदित्याः अदितेः पुत्रा अन्ये देवा स्वरवः । ❀ स्वृ शब्दोपतापयोः । शॄस्वृस्निहीत्यादिना [उ० १. १०] उप्रत्ययः ❀ । स्वरवः शोभनशब्दं कुर्वाणाः यद्वा अस्मच्छत्रुविषयम् उपतापं कुर्वन्तो मा मां वर्धयन्तु ॥ अपि च इन्द्रो देवः मे मम हस्तयोर्वर्चः बलं नि अनक्तु नियोजयतु । बाहुजातत्वाद् इन्द्रस्य बाहुबलं तत्प्रसादाल्लभ्यम् इत्यभिप्रायः ॥ सविता सर्वस्य प्रसविता देवो मा मां जरदष्टिम् जीर्यदवस्थभोजनं दीर्घायुषं कृणोतु करोतु ॥

दिनके अभिमानी देवता मित्र, और रात्रिके अभिमानी देवता वरुण दोनों मुझको वस्त्र आदिसे परिहित रक्खें । और अदिति के पुत्र अन्य देवता हमारे शत्रुओंको ताप देते हुए हमको बढ़ावें। और इन्द्र देवता मेरे हाथोंमें बलको देवें और सबको प्रेरित करने वाले सविता देवता मुझको जिसमें अन्न जीर्ण होता रहे ऐसी दीर्घायु दें ॥ १२ ॥

तृतीया ॥

यो मृमार प्रथमो मर्त्यानां यः प्रेयाय प्रथमो लोकमेतम् वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यः । ममार । प्रथमः । मर्त्यानाम् । यः । प्रऽइयाय । प्रथमः । लोकम् । एतम् ।

वैवस्वतम् । सम्ऽगमनम् । जनानाम् । यमम् । राजानम् । हविषा । सपर्यत ॥ १३ ॥

यो यमो राजा मर्त्यानाम् मरणधर्माणां मनुष्याणां मध्ये स्वयमपि एकः सन् प्रथमः प्रथमभूतो ममार मरणं प्राप्तवान् । ❀ मृङ् प्राणत्यागे । "म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च" इति नियमात् लिटः परस्मैपदम् ❀ । एतं लोकं यो यमो राजा प्रथमः प्रथमभूतः प्रेयाय प्रगतवान् । प्रथमं मरणम् पश्चात् लोकान्तरप्राप्तिः इत्युभयं यमोपज्ञम् आसीद् इत्यर्थः । अत एव यमस्य मनुष्यवत् कामयितृत्वादिकं यागाद् राज्यप्राप्तिश्च आम्नायते । "यमो वा अकामयत पितॄणां राज्यम् अभिजयेयम् इति । स एतं यमायापभरणीभ्यश्चरुं निरवपत्" इति [तै० ब्रा० ३. १. ५. ४. १] । इत्थं य यमो राजा मरणपूर्वकं प्रथमं प्रेयाय अस्माल्लोकात् प्रगतो बभूव तं वैवस्वतम् विवस्वान् आदित्यः तस्य पुत्रं जनानाम् जनिमतां प्राणिनां संगमनम् संगच्छन्ते अस्मिन्निति संगमनः । ❀ अधिकरणे ल्युट् ❀। जनिमद्भिः सर्वैः प्राणिभिः संप्राप्यम् इत्यर्थः । एवंगुणविशिष्टं यमं राजानम् ईश्वरम् । प्राणिकृतसुकृतदुष्कृतानुरूपेण शिक्षाकरम् इति यावत् । हविषा आज्यपुरोडाशादिना सपर्यत पूजयत । हे ऋत्विज इति शेषः । ❀ सपर पूजायाम् । "कण्ड्वादिभ्यो यक्" इति यक् प्रत्ययः ❀ ॥ अथ वा प्रथमः प्रथमभावी कल्पादौ वर्तमानो यो जनः प्राणी ममार यश्च जनः प्रथमः कल्पादौ वर्तमानः एतं लोकं यमस्य स्वभूतं प्रेयाय प्रगतवान् । तदाप्रभृति वर्तमानानां सर्वेषां जनानां संगमनम् संप्राप्यं राजानम् इत्यादि पूर्ववत् ॥

जो राजा यम मरणधर्मी मनुष्योंमें स्वयं भी पहिले मरे थे और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस लोकको जो राजा यम प्रथम होकर प्राप्त हुए थे (अर्थात् पहिले जिनका मरण और फिर लोकान्तरकी प्राप्ति हुई थी [अत एव मनुष्यकी समान यमका कामयिता–पन और यागसे राजप्राप्तिका वर्णन मिलता है, यथा–"यमो वा अकामयत पितॄणां राज्यं अभिजयेयम् । स एतं यमायापभरणीभ्यश्चरुं निरवपत् ।" तैत्तिरीयब्राह्मण १ । ५ । ६ । १४] ऐसे विवस्वान्के पुत्र और जिनको उत्पत्ति वाले प्राणी प्राप्त होते हैं उन प्राणियोंको पुण्य पापके अनुसार फल देने वाले राजा यमकी हे ऋत्विजों ! तुम पूजा करो ॥ १३ ॥

पिण्डपितृयज्ञे "परा यात" इति चतुर्थ्या ऋचा पितॄन् विसर्जयेत् । तत्पाठस्तु–

पिण्डपितृयज्ञमें "परा यात" नामक चौथी ऋचासे पितरोंका विसर्जन करे ।

चतुर्थी ॥

परा यात पितर आ च यातायं वो यज्ञो मधुना समक्तः
दत्तो अस्मभ्यं द्रविणेह भद्रं रयिं च नः सर्ववीरं दधात

परा । यात । पितरः । आ । च । यात । अयम् । वः । यज्ञः ।
मधुना । सम्ऽअक्तः ।
दत्तो इति । अस्मभ्यम् । द्रविणा । इह । भद्रम् । रयिम् । च ।
नः । सर्वऽवीरम् । दधात ॥ १४ ॥

हे पितरः पितृदेवताः अस्माभिः कृतेन पितृयज्ञरूपेण कर्मणा संतुष्टाः सन्तः परा यात परागच्छत । पराङ्मुखाः स्वस्थानं गच्छतेत्यर्थः । पुनर्यागार्थम् अस्माभिराहूताः सन्तः आ यात च आ-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गच्छत च ॥ इदानीं परागमने कारणम् आह । वः युष्मभ्यं मधुना मधुरेण आज्येन । "एतद् वै मधु दैव्यं यद् आज्यम्" इति हि ऐतरेयकम् [ऐ० ब्रा० २. २] । समक्तः सम्यक् संसिक्तः अयं यज्ञः अस्माभिर्दत्तः ॥ तं स्वीकृत्य अस्मभ्यम् अस्मदर्थं भद्रम् कल्याणं द्रविणा द्रविणं धनम् इह अस्मिन् गृहे दधात धारयत । तथा सर्ववीरम् वीर्याज्जायन्त इति वीराः पुत्रपौत्रादिरूपाः प्रजास्तैः सर्वैरुपेतं रयिम् प्रजापश्वादिरूपं धनं नः अस्माकं दधात धारयत । ❀ "तप्तनप्तनथनाश्च" इति तस्य तबादेशः । पित्त्वेन ङित्त्वाभावाद् आल्लोपाभावः ❀ ॥

हे पितृदेवताओं ! तुम हमारे किये हुए पितृयज्ञरूप कर्मसे सन्तुष्ट हो पराङ्मुख हो अपने स्थानको जाओ और जब हम फिर आपका आह्वान करें तो आ भी जाना । [इस समय लौटानेका कारण यह है, कि–] हमने इस समय आपको मधु अर्थात् मधुर घृतसे संसिक्त यज्ञ प्रदान किया है उसको स्वीकार कर आप हमारे लिये इस घरमें कल्याणकारक धनको स्थापित करिये और पुत्र पौत्र आदि प्रजासे सम्पन्न पशु आदिक धनको भी हममें स्थापित करिये ॥ १४ ॥

पञ्चमी ॥

कण्वः कक्षीवान् पुरुमीढो अगस्त्यः श्यावाश्वः सोभर्यर्चनानाः ।

विश्वामित्रोयं जमदग्निरत्रिरवन्तु न कश्यपो वामदेवः

कण्वः । कक्षीवान् । पुरुऽमीढः । अगस्त्यः । श्यावऽअश्वः । सोभरी । अर्चनानाः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विश्वामित्रः । अयम् । जमत्ऽअग्निः । अत्रिः । अवन्तु । नः ।
कश्यपः । वाऽमदेवः ॥ १५ ॥

कण्वादयो द्वादशसंख्याका ऋषयो नः अस्मान् अवन्तु रक्षन्तु। कणतिः शब्दार्थः । ❀ अशूप्रुषिलटिकणिखटिविशिभ्यः क्वन् [उ० १. १४९] इति क्वन् प्रत्ययः ❀। निरुक्तात् आद्युदात्तः कण्व-शब्दः । कक्ष्या रज्जुरश्वस्य कक्षं सेवते [नि०२.२] इति यास्कः। तद्वान् कक्षीवान् । ❀ "आसन्दीवद् अष्ठीवच्चक्रीवत्कक्षीवत्०" इति मतुपि निपात्यते ❀ । पुरुमीढः । ❀ मिह सेचने इत्यस्मात् कर्मणि निष्ठा ❀ । पुरूणि मीढानि सिक्तानि अपत्यानि यस्य स तथोक्तः। यद्वा मीढम् इति धननाम। पुरूणि मीढानि धनानि यस्य स तथोक्तः । बहुधन इत्यर्थः । अगस्त्यः प्रसिद्धः । श्यावाश्वः श्यावाः कृष्णवर्णा अश्वा यस्य स तथोक्तः । सोभरी प्रसिद्धः । अर्चनानाः अर्चनम् अर्चनीयम् अनः शकटं यस्य स तथोक्तः । संज्ञाशब्दोयम् । स च अत्रीणां प्रवरमध्ये पठ्यते । "आत्रेयार्चना-नसश्यावाश्वेति । श्यावाश्वद् अर्चनानसवद् अत्रिवत्" इति । विश्वामित्रः । विश्वं सर्वं जगत् मित्रं यस्य स तथा । ❀ "मित्रे चर्षौ" इति विश्वशब्दस्य दीर्घः ❀ । अयम् इति इदंशब्देन पुरो-वर्तिवस्तुवाचिना सर्वजनसंनिहित्वेन सर्वमित्रत्वम् उपपाद्यते । जमदग्निः । ❀ जमतिर्ज्वलतिकर्मा ❀ । जमन्तो ज्वलन्तः अग्नयो यस्य स तथोक्तः । अत्रिः । आध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिक-भेदभिन्नास्त्रिविधा दुःखानुभवा यस्य न विद्यन्ते स तथा । अत एव यास्को निरवोचत । तस्माद् अत्रिर्न त्रय इति [नि० ३.३७] कश्यपः । आद्यन्तवर्णविपर्ययः । सर्वं जगत् सर्वदा सौक्ष्म्येण पश्यतीति कश्यपः । श्रूयते हि । "कश्यपः पश्यको भवति यत् सर्वं परिपश्यतीति सौक्ष्म्यात्" इति [तै० आ० १. ८. ८] ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वामदेवः । वामो वननीयो देवो द्योतकोस्ति तत्त्वविषये बोधो यस्य स तथा । स खलु गर्भावस्थ एव सन् उत्पन्नतत्त्वज्ञानः स्वस्य सार्वात्म्यम् अनुसंदधौ । श्रूयते हि । "अहं मनुरभवं सूर्यश्च" इति [ऋ० ४. २६. १] ॥

कण्व, कक्षीवान्, पुरुमीढ़, अगस्त्य, श्यावाश्व, सौभरि, अर्चनाना‡, विश्वामित्र, जमदग्नि, × अत्रि + कश्यप ÷ और वामदेव † नामक ऋषि हमारी रक्षा करें ॥ १५ ॥

षष्ठी ॥

विश्वामित्र जमदग्ने वसिष्ठ भरद्वाज गोतम वामदेव शर्दिनो अत्रिरग्रभीन्नमोभिः सुसंशासः पितरो मृडता नः ॥ १६ ॥

---

‡ यह ऋषि अत्रिगोत्रमें उत्पन्न हुए हैं ।

× जमदग्नि शब्दकी व्युत्पत्ति यह है, कि–जिनकी अग्नियें प्रज्वलित रहती थीं वह जमदग्नि नामक ऋषि हैं ।

+ आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक इन तीनों प्रकारके दुःखोंका अनुभव न होनेसे यह ऋषि अत्रि कहलाते थे । निरुक्त ३ । १७ में भी कहा है, कि–'तस्माद् अत्रिर्न त्रय इति' ।

÷ सब जगत्को सदा सूक्ष्मतासे देखनेके कारण इनका कश्यप नाम है । तैत्तिरीय आरण्यक १ । ८ । ८ की श्रुतिमें भी कहा है, कि-"कश्यपः पश्यको भवति यत् सर्वं परिपश्यति सौक्ष्म्यात्" ।

† जिनका तत्त्वविषयमें वाम अर्थात् सेवनीय देव अर्थात् बोध है वह ऋषि वामदेव कहलाते हैं यह ऋषि गर्भावस्थामें ही तत्त्वज्ञानके उदय होनेसे अपने सार्वात्म्यस्वरूपका अनुसंधान करने लगे थे, कि–"अहं मनुरभवम् सूर्यश्च" ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विश्वामित्र । जमत्ऽअग्ने । वसिष्ठ । भरत्ऽवाज गोतम । वामऽदेव । शर्दिः । नः । अत्रिः । अग्रभीत् । नमःऽभिः । सुऽसंशासः । पितरः । मृडत । नः ॥ १६ ॥

पूर्वार्धेन षट्संख्याका ऋषयः संबोध्यन्ते । तत्र वसिष्ठो वसुमत्तमः एतन्नामा ऋषिः । भरणाद् भरद्वाज इति यास्कः [नि० ३. १७] । अन्ये शब्दा उक्तार्थाः । मृडता नः इत्येतद् वक्ष्यमाणं पदद्वयम् अत्रापि संबध्यते । हे विश्वामित्रादय ऋषयः नः अस्मान् मृडत सुखयत । अत्रिः एतत्संज्ञो महर्षिर्नः अस्माकं शर्दिः छर्दिः । गृहनामैतत् । ❀ उछृदिर् दीप्तिदेवनयोः इत्यस्माद् अर्चिशुचिहुसृपिछादिछर्दिभ्य इसिः [उ० २.१०७] इति इसिप्रत्ययः । वर्णव्यत्ययः ❀ । नः अस्मदीयं गृहम् अग्रभीत् अग्रहीत् । रक्षणार्थं गृहीतवान् इत्यर्थः । ❀ ग्रह उपादाने । "हृग्रहोर्भः०" इति भत्वम् ❀ । यद्वा शर्दतिर्बलकर्मा । शर्दयति बलयतीति शर्दिः । एवंगुणविशिष्टः अत्रिर्नः अस्मान् अग्रहीत् आत्मीयत्वेन गृहीतवान् । अथ वा शर्दिर्नाम कश्चिद् ऋषिः । अन्यत् पूर्ववत् । तथा नमोभिः नमस्कारैः । यद्वा अन्ननामैतत् । दीयमानैरन्नैः कव्यरूपैर्हेतुभिः हे पितरः पितृदेवताः यूयं सुशंसासः सुष्ठु शंसितुं स्तोतुं शक्याः । ❀ शंसु स्तुतौ इत्यस्मात् "ईषद्दुःसुषु०" इति कर्मणि खल् प्रत्ययः । "आज्जसेरसुक्" ❀ । सुष्टुताः संस्तुताः सन्तः नः मृडत अस्मान् सुखयत । ❀ मृडत । मृड सुखने ❀ ॥

हे विश्वामित्र जमदग्नि वसिष्ठ भरद्वाज गोतम वामदेव नामक ऋषियो ! हमको सुख दो । अत्रि नामक ऋषिने हमारे घरको रक्षाके लिये ग्रहण कर लिया है । और नमस्कार वा स्वधान्नसे स्तुति करने योग्य पितरों तुम भी हमको सुख दो ॥ १६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शवदहनदिवसे रात्रौ रिक्तकलशभञ्जनकर्ता "कस्ये मृजानाः" इति सप्तमीम् ऋचं जपेत् । ऋक्पाठस्तु—

शवदहनके दिन रात्रिमें खाली घड़ेको फोड़ने वाला "कस्ये मृजाना" इस सप्तम ऋचाका जप करे ।

सप्तमी ॥

कस्ये मृजाना अति यन्ति रिप्रमायुर्दधानाः प्रतरं नवीयः ।
आप्यायमानाः प्रजया धनेनाध स्याम सुरभयो गृहेषु

कस्ये । मृजानाः । अति । यन्ति । रिप्रम् । आयुः । दधानाः । प्रऽतरम् । नवीयः ।

आऽप्यायमानाः । प्रऽजया । धनेन । अध । स्याम । सुरभयः । गृहेषु ॥ १७ ॥

कसः कीकसः। ❀ कीशब्दलोपश्छान्दसः ❀ । कसम् अर्हतीति कस्यो दहनदेशः तस्मिन् मृजानाः बान्धवमृतिजनितं दुःखम् उपलिपन्तः । परित्यजन्त इत्यर्थः । रिप्रम् । पापनामैतत् । शवसंस्पर्शजनितं पापम् । ❀ रपो रिप्रम् इति पापनामनी भवतः इति हि निरुक्तम् [नि० ४, २१] ❀ । मरणनिमित्तं पापम् अति यन्ति अतीत्य गच्छन्ति । इति प्रथमः पादः परोक्षकृतः । यद्वा पुरुषव्यत्ययः । अतीमः । अतीत्य गच्छाम इत्यर्थः । ❀ इण् गतौ । अदादित्वात् शपो लुक् । "इणो यण्" इति यण् आदेशः ❀ । यतो वयम् उक्तरीत्या दुःखम् अतिक्रान्तास्ततो हेतोः नवीयः अतिशयेन नवम् उत्कृष्टम् आयुः जीवितं प्रतरम् प्रकृष्टतरं दधानाः । दीर्घकालजीवनं धारयन्त इत्यर्थः । एवम् अनेन द्वितीयपादेन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चिरकालजीवनं प्रार्थितम् ॥ जीवत एव पुरुषस्य प्रजापश्वाद्यपेक्षेति तृतीयेन पादेन प्रतिपाद्यते। प्रजया पुत्रपौत्रादिरूपया धनेन कनक-रजतादिलक्षणं गवाश्वादिकं च धनम् तेन आप्यायमानाः वर्ध-माना भवेम ॥ अध अथ अनन्तरं गृहेषु सुरभयः शोभनगन्धोपेताः श्लाघ्यगुणयुक्ताः स्याम भवेम ॥

हम श्मशानस्थानमें बान्धवके मरणसे उत्पन्न हुए दुःखको त्यागते हुए शवस्पर्शजनित पापसे मुक्त होते हुए जाते हैं। इस प्रकार हम दुःखरहित होगए हैं अत एव उत्कृष्ट आयु (दीर्घायु) को पाते हुए पुत्र पौत्र आदिक प्रजासे और सोना चाँदी गौ घोड़े आदि धनसे बढ़ते रहें और घरोंमें शोभन गन्धसे सम्पन्न रहें

पिण्डपितृयज्ञे "अञ्जते व्यञ्जते" इति ऋचा पिण्डेषु घृतेन अभिघारणं कुर्यात्। सैषा सूक्ते

पिण्डपितृयज्ञमें "अञ्जते व्यञ्जते" ऋचासे पिंडोंमें घृतका अभि-घारण करे।

अष्टमी ॥

अञ्जते व्य/ञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्य/ञ्जते सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमासु गृह्णते ॥ १८ ॥

अञ्जते। वि। अञ्जते। सम्। अञ्जते। क्रतुम्। रिहन्ति। मधुना। अभि। अञ्जते।

सिन्धोः। उत्ऽश्वासे। पतयन्तम्। उक्षणम्। हिरण्यऽपावाः। पशुम्। आसु। गृह्णते ॥ १८ ॥

पितृत्वं प्राप्ताः कर्मिणो जना धूमादिमार्गेण चन्द्रलोकं प्राप्य तत्र यागहोमादिसुकृतजनितं फलं भुञ्जत इति स सोमः अनया स्तु-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यते । सोमयागं प्रवर्तयन्तः प्रथमम् ऋत्विजः अञ्जते यजमानम् अञ्जनेन संस्कुर्वन्ति । तथा च ऐतरेयकम् । "आञ्जन्त्येनम् । तेजो वा एतद् अक्ष्योर्यद् आञ्जनम् । सतेजसमेवैनं तत् कृत्वा दीक्षयन्ति" इति [ऐ० ब्रा० १. ३] । ❀ अञ्जू व्यक्तिम्लक्षणगतिषु । "श्नसोरल्लोपः" इति अकारलोपः ❀ । तस्याञ्जनस्य लौकिकाद् वैशिष्ट्यं प्रतिपाद्यते व्यञ्जत इति । विविधम् अञ्जते । लौकिकाद् अञ्जनाद् अन्येन प्रकारेण यजमानस्याक्ष्णोरञ्जनं कुर्वन्तीत्यर्थः । तत्प्रकारश्च तैत्तिरीये समाम्नायते । "दक्षिणं पूर्वम् आङ्क्ते । सव्यं हि पूर्वं मनुष्या आञ्जते" [तै० सं० ६. १. १. ६] इत्यादिना । तथा समञ्जते सम्यग् अक्तं कुर्वन्ति । उक्तस्याञ्जनस्य सम्यक्त्वविशेषणप्रतिपादनाय पुनरनुवादः । तथा क्रतुं रिहन्ति । क्रतुः सोमयागसंकल्पः । तं लिहन्ति आस्वादयन्ति । ❀ लिह आस्वादने । कपिलकादित्वात् लत्वविकल्पः ❀ । सोमेन यक्ष्य इत्येवमात्मकं वचो यजमानम् उच्चारयन्तीत्यर्थः । मधुना माधुर्योपेतेन नवनीतेन अभ्यञ्जते अभ्यक्तशरीरं कुर्वन्ति । तथा च ऐतरेयकम् । "नवनीतेनाभ्यञ्जन्ति । स्वेनैवैनं तद् भागधेयेन समर्धयन्ति" [ऐ०ब्रा० १. ३] इति ॥ यद्वा अञ्जनादिसंस्कारैः सोम एव स्तूयते । सोमयागे प्रवृत्ता ऋत्विग्यजमानाः सोमम् अञ्जने दीक्षणीयादिषु हूयमानेनाज्येन सोममेव अञ्जन्ति । संस्कुर्वन्तीत्यर्थः ॥ तथा व्यञ्जते दण्डकृष्णाजिनादिदीक्षाव्यञ्जनद्रव्येण यजमानद्वारा तमेव सोमं संस्कुर्वन्तीत्यर्थः ॥ तथा समञ्जते सोमयागोपयुक्तं यूपं सम्यग् आमूलाग्रम् अञ्जते । तेन च समञ्जनेन यूपद्वारा सोम एव संस्कृतो भवतीत्यर्थः ॥ क्रतुं रिहन्ति । यूपवान् यागः क्रतुः । अत्र तत्साधनभूतः सोमो लक्ष्यते । क्रतुम् सोमं लिहन्ति क्रयाभिषवादिसंस्कारपूर्वकं सोमम् अग्नौ हुत्वा हुतशेषं लिहन्ति । आस्वादयन्तीत्यर्थः । मधुना माधुर्योपेतेन क्षीरादिना श्रपणद्रव्येण तं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सोमम् अभ्यञ्जते अभितः अक्तं संयुक्तं संस्कृतं कुर्वन्तीत्यर्थः ॥ दिवि स्थितश्चन्द्र एव लतारूपसोमात्मना पृथिव्याम् अवस्थित इति प्रतिपादयति सिन्धोरुच्छ्वास इति । सिन्धोः स्यन्दनशीलस्य समुद्रस्य उच्छ्वासे । उच्छ्वास उद्गमः अभिवृद्धिः । तस्मिन् समये पतयन्तम् गच्छन्तम् । उद्यन्तम् इत्यर्थः । ❀ पत गतौ । चुरादिरदन्तः । अतो लोपस्य स्थानिवत्त्वाद् उपधावृद्ध्यभावः ❀ । उक्षणम् सेक्तारम् अमृतमयैः किरणैरभिषिञ्चन्तम् । यद्वा सिन्धोः स्यन्दनशीलस्य वसतीवरीजलस्य उच्छ्वासे उद्गमे सति अभिषवकाले पतयन्तम् गच्छन्तम् । अभिषवसंस्कारेण द्रवीभवन्तम् इति यावत् । उक्षणम् सेक्तारं सर्वजगदुत्पत्तेः आहुतिद्वारा बीजभूतम् इत्यर्थः । स्मर्यते हि ।

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यग् आदित्यम् उपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ।

इति [म० ३. ७६] । तथा पशुम् । पश्यति सर्वं जगत् स्वकिरणैः प्रकाशयतीति पशुश्चन्द्रमाः । ❀ पशुः पश्यतेरिति यास्कः [नि० ३. १६] ❀ । एवंगुणविशिष्टं सोमं रसात्मना अवस्थितं हिरण्यपात्राः हिरण्येन पावयन्तीति हिरण्यपात्राः अभिषोतार ऋत्विजः । अभिषवपवनादिषु तेषां हिरण्यपाणित्वं भगवता आपस्तम्बेनोक्तम् । "हिरण्यपाणिरभिषुणोति गृह्णाति जुहोतीत्यत्यन्तप्रदेशः" इति [आप० १२. ७. १२] । आसु स्थालीषु । सोमयागे हि प्रधानभूतानाम् आग्रयणादीनां ग्रहाणां ग्रहणाय चतस्रः स्थाल्यो विहिताः । तासु गृभ्णते गृह्णते । उपलक्षणम् एतत् । स्थाल्युपलक्षितग्रहचमसपात्रेषु सोमरसग्रहणेन संस्कुर्वन्तीत्यर्थः ॥

[पितृत्वको प्राप्त हुए कर्मकाण्डी धूमादिमार्गसे चन्द्रलोकको प्राप्त होकर तहाँ याग होम आदिके पुण्यसे प्राप्त होने वाले फलको भोगते हैं उस सोमकी इस ऋचासे स्तुति की जाती है, कि-]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सोमयागका आरम्भ करते हुए ऋत्विज पहिले यजमानको अञ्जन से संस्कृत करते हैं [इसी बातको ऐतरेयब्राह्मण १ । ३ में कहा है, कि-"आञ्जन्ति एनं । तेजो वा एतद् अक्ष्योर्यद् आञ्जनम् । सतेजसमेवैनं तत् कृत्वा दीक्षयन्ति ।-इस यजमानको अञ्जित करते हैं, जो नेत्रोंका अञ्जन है यह तेज है अत एव इसको तेजः-सम्पन्न करके ही दीक्षित करते हैं" इस अञ्जनकी लौकिक अञ्जन से विशिष्टता प्रतिपादित करते हैं, कि-] लौकिक अञ्जन से अतिरिक्त अन्य प्रकारसे इस यजमानके नेत्रोंका अञ्जन करते हैं [इसकी रीति तैत्तिरीयसंहिता ६ । १ । १ । ६ में लिखी हुई है, कि-"दक्षिणं पूर्वं आङ्क्ते । सव्यं हि पूर्वं मनुष्या आञ्जते ।-पहिले दाहिने नेत्रको आँजे, मनुष्य तो पहिले बायें नेत्रको आँजा करते हैं" ।] वह ऋत्विज् यजमानके नेत्रोंको इस प्रकार भली भाँति आँजा करते हैं तथा सोमयागका आस्वादन करते हैं अर्थात् यजमानसे कहते हैं, कि-मैं सोमयागसे पूजन करूँगा और मधुरतायुक्त नवनीतसे शरीरका अभ्यञ्जन करते हैं [इसी बातको ऐतरेयब्राह्मण १ । ३ में कहा है, कि-"नवनीतेनाभ्यञ्जन्ति । स्वेनैवैनं तद् भागधेयेन समर्धयन्ति" । अब यह प्रतिपादन करते हैं, कि-द्युलोकमें स्थित चन्द्रमा ही लतासोम आदि रूपमें पृथ्वीमें स्थित है] सिंधुके बढ़ावके समय उदय होते हुए, अमृतमय किरणोंसे सेचन करने वाले, सब जगत्को अपनी किरणोंसे देखने वाले-प्रकाशित करने वाले पशु चन्द्रमाको रसात्मा सोमरूपसे अवस्थित होने पर, सुवर्णसे पवित्र करने वाले सुवर्णपाणि ऋत्विज ‡ सोमयागकी प्रधानभूत आग्रयणादि चार स्थालियोंमें संस्कृत करते हैं ॥ १८ ॥

‡ आपस्तम्बश्रौतसूत्र १२ । ७ । १२ में कहा है, कि-"हिरण्यपाणिरभिषुणोति गृह्णाति जुहोतीत्यत्यन्तप्रदेशः" ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एवं पितृदेवताभूतसोमाञ्जनलिङ्गात् पिण्डाभिघारणे विनियोग उपपन्नः ॥

इस प्रकार पितृदेवताभूत सोमाञ्जनके लिंगसे पिण्डाभिघारण में इसका विनियोग ठीक ही है।

नवमी ॥

यद् वो मुदं पितरः सोम्यं च तेनो सचध्वं स्वयशसो हि भूत ।
ते अर्वाणः कवय आ शृणोत सुविदत्रा विदथे हूयमानाः ॥ १९ ॥

यत् । वः । मुदम् । पितरः । सोम्यम् । च । तेनो इति । सचध्वम् । स्वऽयशसः । हि । भूत ।

ते । अर्वाणः । कवयः । आ । शृणोत । सुऽविदत्राः । विदथे । हूयमानाः ॥ १९ ॥

हे पितरः वः युष्माकं संबन्धि मुदम् मोदकं हर्षजनकम् । ❀ मुद हर्षे इत्यस्मात् स्फायितञ्चीत्यादिना [उ० २. १३] रक् ❀ । यद्वा मुदम् हर्षं राति ददातीति मुदम् । ❀ "आतोऽनुपसर्गे कः" इति कप्रत्ययः ❀ । प्रीतिकरं यद् धनम् सोम्यम् सोमार्हं च विद्यते तेनो तेनैव धनेन सह यूयं सचध्वम् अस्माभिः संगता भवत । ❀ षच समवाये ❀ । तादृग् धनम् अस्मभ्यं प्रयच्छतेत्यर्थः ॥ तत्र हेतुरुच्यते । हि यस्माद् यूयं स्वयशसः स्वायत्तयशस्का भूत भवथ । तस्माद् इष्टफलदानं भवतां युक्तम् इत्यर्थः ॥ ते यूयम् अर्वाणो गन्तारः कवयः क्रान्तदर्शनाः सुविदत्राः शोभन-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञानाः शोभनधना वा विदथे यज्ञे हूयमानाः अस्माभिराहूयमाना आ शृणोत अस्मदाह्वानं शृणुत। ❀ श्रु श्रवणे। लोटि तस्य तबादेशः ❀ ॥

हे पितरो! आपका जो हर्षजनक सोमार्ह धन है उस धनके साथ आप हमसे संयुक्त हूजिये क्योंकि—आप स्वाधीनयशा हैं अतः आपको इष्टफल प्रदान करना उचित ही है। ऐसे चतुर और शोभन धनसे सम्पन्न आप हमारे यज्ञमें आहूत होने पर हमारे आह्वानको सुनिये ॥ १९ ॥

दशमी ॥

ये अत्रयो अङ्गिरसो नवग्वा इष्टावन्तो रातिषाचो दधानाः।
दक्षिणावन्तः सुकृतो य उ स्थाम्याऽस्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् ॥ २० ॥

ये। अत्रयः। अङ्गिरसः। नवऽग्वाः। इष्टऽवन्तः। रातिऽसाचः। दधानाः।
दक्षिणाऽवन्तः। सुऽकृतः। ये। ऊं इति। स्थ। आऽसद्य। अस्मिन्। बर्हिषि। मादयध्वम् ॥ २० ॥

ये पितरो यूयम् अत्रयः अत्रिगोत्रोत्पन्नाः। ये वा अङ्गिरसः अङ्गिरोगोत्रजाः। यद्वा अत्रिमहर्षिरूपेण अङ्गिरोरूपेणावस्थिताः। नवग्वाः अभिनवगमनाः। अथ वा अङ्गिरसो हि केचन सत्रयागं कुर्वाणा नवभिर्मासैः स्वर्गं गतास्ते नवग्वा उच्यन्ते। अपरे दशभिर्मासैर्गतास्ते दशग्वाः तथा चाम्नायते। "नवग्वासः सुतसोमास इन्द्रं दशग्वासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः" इति [ऋ० ५. २९.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१२]। इष्टावन्तः इष्टाः दर्शपूर्णमासादियागास्तद्वन्तः इष्टावन्तः। रातिषाचः रात्रिर्दानम् तत् सचन्ते समवयन्तीति दक्षिणादानयुक्त-क्रिया रातिषाच इत्युच्यन्ते। ता दधानाः धारयन्तः। ये च अन्ये हे पितरो यूयं दक्षिणावन्तः दक्षिणादानयुक्ताः सुकृतः पुण्यकृतः स्थ भवथ। उशब्दः अप्यर्थे। अस्मिन् बर्हिषि यज्ञे आस्तीर्णे दर्भे वा आसद्य उपविश्य ते सर्वे यूयं मादयध्वम् अस्मदीयेन हविषा तृप्ता भवत॥

इति अष्टादशकाण्डे तृतीयेनुवाके द्वितीयं सूक्तम्॥

हे पितरों! जो तुम अत्रिगोत्रके हो, अंगिरागोत्रके हो, नौ मास तक सत्रयाग करके स्वर्गको प्राप्त हुए नवग्वा हो, दर्श पूर्ण-मास आदि यागोंसे पूजन कर चुके हो तो तुम सब दक्षिणा प्रदान करने वाले पुण्यात्मा हो अत एव तुम बिछे हुए कुशा-सन पर बैठ कर हमारी दी हुई हविसे तृप्त होओ॥ २०॥ (१४)

अष्टादशकाण्डके तृतीय अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त॥

"अधा यथा नः" इति आदितश्चतसृणाम् ऋचां प्रेतोपस्थाने विनियोग उक्तः॥

"अधा यथा नः" आदिकी चार ऋचाओंका प्रेतोपस्थानमें विनियोग है।

तत्र प्रथमा॥

अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमा-शशानाः।
शुचीदयन् दीध्यत उक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरु-णीरप व्रन्॥ २१॥

अध। यथा। नः। पितरः। परासः। प्रत्नासः। अग्ने। ऋतम्। आऽशशानाः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुचि । इत् । अयन् । दीध्यतः उक्थऽशसः । क्षाम । भिन्दन्तः ।
अरुणीः । अप । व्रन् ॥ २१ ॥

अध अथ अनन्तरम् । यद्वा अप्यर्थः अधेति निपातः । अपि च यथा येन प्रकारेण नः अस्माकं पितरः पितृपितामहाः । यद्वा अस्माकं पितृभूता अङ्गिरसः परासः । परशब्दः उत्कृष्टवाची । ❀ "आज्जसेरसुक्" ❀ । परा उत्कृष्टाः प्रत्नासः पुराणाः हे अग्ने त्वत्प्रसादाद् ऋतम् यज्ञम् आशशानाः व्याप्नुवन्तः । ❀ अशू व्याप्तौ इत्यस्मात् कानचि रूपम् ❀ । एवंभूतास्ते शुचि दीप्तं स्थानं नाकपृष्ठाख्यम् अयन् अगच्छन् । इच्छब्दः अवधारणे । ❀ इण् गतौ । अस्मात् लङि पूर्वम् "इणो यण्" इति यणि कृते तस्य असिद्धवद्भावेन प्राप्तस्य आटश्छान्दसत्वाद् निवृत्तौ अडागम एव भवति ❀ । दीध्यतः दीप्यमानाः । ❀ दीधीङ् दीप्तिदेवनयोः इत्यस्मात् लट् । व्यत्ययेन शत्रादेशः ❀ । उक्थशासः । उक्थानि शस्त्राणि । तेषां शंसितारः एवंगुणविशिष्टास्ते पितरः क्षमा रात्रिः तत्संबन्धि तमः क्षाम शार्वरं तमो भिन्दन्तः स्वतेजसा निवर्तयन्तः अरुणीः अरुणवर्णा उषसः उषःकालान् अप व्रन् अपावृण्वन् प्राकाशयन् ॥ यद्वा पणिनामानोऽसुरा अङ्गिरसां यज्ञसाधनभूता गा अपहृत्य भूम्यां बिलं प्रावेशयन् अङ्गिरसस्तज्जानन्तः इन्द्रसहाया बिलं विवृत्य ता गा अलभन्तेत्याख्यायिका । तद् एतद् उच्यते । क्षाम क्षमां भूमिं भिन्दन्तः विदारयन्तः अरुणीः अरुणवर्णा गा अप व्रन् अपावृण्वन् बिलद्वारापवरणेन अलभन्तेत्यर्थः ॥

और हे अग्निदेव ! जिस प्रकार हमारे प्राचीन श्रेष्ठ पितर [पितामह वा अंगिरस] आपके प्रसादसे यज्ञको करते हुए दमकते हुए स्वर्ग नामक स्थानको प्राप्त हुए हैं और उक्थोंका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गान करने वाले वे पितर रात्रिके अंधकारको अपने तेजसे दूर करते हुए अरुण वर्ण वाली उषाओंको प्रकाशित करते हैं [तिसी प्रकार हम भी इस पितृमेधके प्रभावसे शरीरान्तमें स्वर्गको प्राप्त होवें] ॥ २१ ॥

द्वितीया ॥

सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तो अयो न देवा जनिमा धमन्तः ।
शुचन्तो अग्निं ववृधन्त इन्द्रमुर्वीं गव्यां परिषदं नो अक्रन् ॥ २२ ॥

सुऽकर्माणः । सुऽरुचः । देवऽयन्तः । अयः । न । देवाः । जनिम । धमन्तः ।
शुचन्तः । अग्निम् । ववृधन्तः । इन्द्रम् । उर्वीम् । गव्याम् । परिऽसदम् । नः । अक्रन् ॥ २२ ॥

सुकर्माणः शोभनकर्माणः सुरुचः सुदीप्तयो देवयन्तः देवान् आत्मन इच्छन्तः अयो न । नेति उपमार्थे । यथा अयस्कारा अयो धमन्ति धमनेन परिशुद्धं कुर्वन्ति एवं स्वकीयं जनिम जन्म धमन्तस्तपसा शोधयन्तो देवाः देवत्वं प्राप्ताः अग्निम् गार्हपत्यादिकं शुचन्तः दीपयन्तः सामिधेनीभिः प्रज्वालयन्तः इन्द्रं ववृधन्तः स्तुतिभिर्वर्धयन्तः उर्वीम् महतीं गव्याम् गवां समूहम् । ❀ "खलगोरथात्" इति समूहार्थे यप्रत्ययः ❀ । नः अस्माकं परिषदम् परितः सीदन्तीम् अक्रन् अकार्षुः । ❀ डुकृञ् करणे । "मन्त्रे घस०" इत्यादिना च्लेर्लुक् ❀ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शोभन कर्म वाले, सुन्दर दीप्ति वाले, देवताओंकी कामना करते हुए और लुहार जैसे लोहेको धोंक कर शुद्ध कर लेते हैं इसी प्रकार तपके द्वारा अपने जन्मको शुद्ध करने वाले अत एव देवत्वको प्राप्त हुए, सामिधेनी ऋचाओंसे गार्हपत्य अग्निको प्रज्वलित करते हुए, स्तुतियोंसे इन्द्रको बढ़ावा देते हुए ये पितर हमारे यहाँ गौओंके समूहको चारों ओर बैठने वाला करें ॥२२॥

तृतीया ॥

आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यद् देवानां जनिमान्त्युग्रः
मर्तासश्चिदुर्वशीरकृप्रन् वृधे चिदर्य उपरस्यायोः २३

आ । यूथाऽइव । क्षुऽमति । पश्वः । अख्यत् देवानाम् । जनिम ।
अन्ति । उग्रः ।

मर्तासः । चित् । उर्वशीः । अकृप्रन् । वृधे । चित् । अर्यः । उपरस्य ।
आयोः ॥ २३ ॥

उग्रः उद्गूर्णबलोयमग्निः देवानाम् यष्टव्यानाम् इन्द्रादीनां जनिम जन्म प्रादुर्भावम् अन्ति अन्तिके समीपे। ❀ "कादिलोपो बहुलम् इति वक्तव्यम्" इति अन्तिकशब्दस्य कादिलोपः ❀। आ अख्यत् अभिपश्यति। आभिमुख्येन ज्ञातुं शक्नोतीत्यर्थः। यूथेव क्षुमति पश्व इति तत्र दृष्टान्तः। यूथा इव। ❀ सप्तम्याः पूर्वसवर्णदीर्घः ❀। यूथे समूहे क्षुमति शब्दवति गवां संघे पश्वः पशून् आत्मीयान् गवादीन् यथा स्वामी पश्यति तद्वत्। अयं देवसंघे यष्टव्यान् जानातीत्यर्थः ॥ यद्वा दाहकोग्निः संबोध्यः। हे अग्ने त्वया दह्यमानोऽयं यजमानस्त्वत्प्रसादाद् उग्रः उद्गूर्णबलः क्षुमति शब्दवति पशुसंघे पश्वः पशूनां यूथा यूथानीव देवानां

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जनिम आखचत् अभिपश्यतीति । देवलोकं गतस्य तस्य देवा अन्तिके प्रादुर्भवन्तीत्यर्थः ॥ मर्तासश्चित् मर्त्या अपि मनुष्यजातीया अपि त्वत्प्रसादाद् उर्वशीः उर्वश्याद्या अप्सरसः अकृपन् अकल्पयन् । उपभोक्तुं समर्था भवन्तीत्यर्थः । ❀ कृपू सामर्थ्ये इत्यस्मात् लुङि च्लेः अङ् आदेशः । "बहुलं छन्दसि" इति रुडागमः ❀ । ततश्च त्वत्प्रसादाद् देवत्वं प्राप्तः अर्यः स्वामी भूत्वा उपरस्य उप्तस्य गर्भाशये निषिक्तस्य आयाः मनुष्यस्य गर्भावस्थस्य वृधे चित् वर्धनाय च । भवतीति शेषः । पितृप्रसादात् पुत्रपौत्राद्यभिवृद्धिरिति भावः ॥

हे अग्ने ! आपसे भस्म किया जाता हुआ यह यजमान आप के प्रसादसे प्रचण्डबलसम्पन्न होकर, शब्द करते हुए पशुओंके झुण्डकी समान देवताओंके प्रादुर्भावको देखे अर्थात् आपके प्रसाद से देवलोकको प्राप्त हुए इसके समीपमें देवता प्रादुर्भूत होवें । मनुष्य मरणधर्मी होने पर भी आपके प्रभावसे उर्वशी आदि अप्सराओं को भोगनेमें समर्थ होते हैं । फिर आपके प्रभावसे देवत्वको प्राप्त हुआ यह स्वामी होकर गर्भाशयमें बोये हुए मनुष्यकी–गर्भावस्थ मनुष्यकी वृद्धिके लिये भी समर्थ होता है अर्थात् पितरोंके प्रसाद से पुत्र पौत्र आदिकी वृद्धि होती है ॥ २३ ॥

चतुर्थी ॥

अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्रन्नुषसो विभातीः ।
विश्वं तद् भद्रं यदवन्ति देवा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ २४ ॥

अकर्म । ते । सुऽअपसः । अभूम । ऋतम् । अवस्रन् । उषसः । विऽभातीः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विश्वम् । तत् । भद्रम् । यत् । अवन्ति । देवाः । बृहत् । वदेम ।

विदथे । सुऽवीराः ॥ २४ ॥

हे अवस्वन् अवनवन् पालक अग्ने ते तुभ्यम् अकर्म परिचरणम् अकार्ष्म । ❀ "मन्त्रे घस०" इत्यादिना च्लेर्लुक् ❀ । अतस्त्वत्प्रसादात् स्वपसः शोभनकर्माणः अभूम अस्माभिः कृतानि यागहोमदानादीनि कर्माणि शोभनानि फलयुक्तानि येषां तथोक्ता अभवाम । अस्मत्कर्माणि फलयुक्तानि भवन्त्वित्यर्थः ॥ तथा विभातीः विभात्यः व्युच्छन्त्य उषसश्च ऋतम् । सत्यनामैतत् । सत्यं यागदानादिकर्मफलम् । कुर्वन्तु इति शेषः ॥ यत् शास्त्रविहितं कर्म देवा अवन्ति रक्षन्ति तद् विश्वम् सर्वं भद्रम् कल्याणं भवति । वयमपि सुवीराः शोभनपुत्रादियुक्ताः सन्तो विदथे यज्ञे बृहत् महत् स्तोत्रं वदेम ब्रूयाम ॥

हे पालक अग्निदेव ! हमने आपकी सेवा की है अत एव आपके प्रभावसे हम शोभन कर्म वाले होवें अर्थात् हमारे कर्म हमको शुभ फल देवें और उषःकाल भी हमारे याग दान आदि कर्मके फलोंको सत्य करें । देवता जिस शास्त्रविहित कर्मकी रक्षा करते हैं वह सब कर्म कल्याण करने वाला होता है अत एव हम भी शोभन पुत्र आदिसे सम्पन्न रहते हुए यज्ञमें विशाल स्तोत्रको कहें ॥ २४ ॥

"इन्द्रो मा. मरुत्वान्" इत्यादिभिः एकादशभिर्ऋग्भिः श्मशानचयनकर्मणि आज्यं जुहुयात् ॥

तथा "इन्द्रो मा मरुत्वान्" इत्यादिपञ्चभिर्ऋग्भिः प्रेतशरीरे अग्निदानानन्तरम् आज्येन सारस्वतहोमान् कुर्यात् ॥

"इन्द्रो मा मरुत्वान्" इत्यादि ग्यारह ऋचाओंसे श्मशानचयनकर्ममें घृतकी आहुति देवे ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा "इन्द्रो मा मरुत्वान्" आदि पाँच ऋचाओंसे प्रेतके शरीरमें अग्नि देनेके अनन्तर घृतसे सारस्वत–होमोंको करे।

पञ्चमी ॥

इन्द्रो मा मरुत्वान् प्राच्या दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २५ ॥

इन्द्रः। मा। मरुत्वान्। प्राच्याः। दिशः। पातु॥ बाहुऽच्युता। पृथिवी। द्याम्ऽइव। उपरि।
लोकऽकृतः। पथिऽकृतः। यजामहे। ये। देवानाम्। हुतऽभागाः। इह। स्थ॥ २५॥

मरुत्वान् मरुद्भिः एकोनपञ्चाशत्संख्याकैर्देवैः सहितः इन्द्रो मा मां संस्कर्तारं प्राच्या दिशः प्राचीदिक्संबन्धिभयहेतोः पातु रक्षतु। तत्र दृष्टान्तः। बाहुच्युता बाहुभ्यो दातृसंबन्धिभ्यश्च्युता विनिर्गता। यद्वा बाहुषु प्रतिग्रहीतृसंबन्धिषु च्युता प्राप्ता। उदकपूर्वं दत्तेत्यर्थः। तादृशी दातृसात्कृता पृथिवी द्यामिव यथा द्याम् दिवं स्वर्गं भूदानप्राप्यम् उपरि आगामिनि काले दातृप्रतिग्रहीतृभ्याम् उपभोग्यं लोकं याति तद्वत्। मां पात्विति संबन्धः।

भूमिं यः प्रतिगृह्णाति यश्च भूमिं प्रयच्छति।
उभौ तौ पुण्यकर्माणौ नियतौ स्वर्गगामिनौ।

इति॥ अपि च लोककृतः लोकस्य पुण्यफलभूतस्य स्वर्गादेः कर्तॄन् पथिकृतः तत्प्राप्त्युपायभूतस्य मार्गस्य कर्तॄन् यजामहे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हविषा पूजयामः। हे देवाः ये यूयं देवानाम् इन्द्रादीनां मध्ये हुतभागाः हुतः स्वाहाकारवषट्काराभ्याम् अग्नौ प्रक्षिप्तो हविर्भागः अंशो येषां ते हुतभागा इह अस्मिन् पितृमेधकर्मणि स्थ भवथ। तान् देवान् लोककृत इति पूर्वेण संबन्धः ॥

उडश्वास मरुत्—गणों सहित इन्द्रदेव मुझ संस्कर्ता पुरुषको पूर्वदिशासे प्राप्त होने वाले भयोंसे बचावें। और दाताके हाथ दी हुई पृथ्वी जैसे भूदानसे प्राप्त होने वाले दाता प्रतिगृहीताके उपभोग्य स्वर्गकी रक्षा करती है तिस प्रकार तेरी रक्षा करे †। हम पुण्यके फलभूत स्वर्गप्राप्तिके मार्गोंके प्रवर्तकोंकी हविसे पूजा करते हैं; हे देवताओं! तुम इस पितृमेधकर्ममें हुतभाग होओ २५

षष्ठी ॥

धाता मा निर्ऋत्या दक्षिणाया दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि।

लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २६ ॥

धाता। मा। निःऽऋत्याः। दक्षिणायाः। दिशः। पातु। बाहुऽच्युता। पृथिवी। द्याम्ऽइव। उपरि।

लोकऽकृतः। पथिऽकृतः। यजामहे। ये। देवानाम्। हुतऽभागाः। इह। स्थ ॥ २६ ॥

† "भूमिं यः प्रतिगृह्णाति यश्च भूमिं प्रयच्छति।
उभौ तौ पुण्यकर्माणौ नियतौ स्वर्गगामिनौ ॥

अर्थात् जो भूमिका दान लेता है और जो भूमिका दान देता है ये दोनों पुण्यात्मा स्वर्गको अवश्य पाते हैं"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धाता सर्वस्य जगतो विधाता धारयिता वा एतत्संज्ञो देवः निर्ऋत्याः। निर्ऋतिः आर्तिकारी पापदेवता। तद्युक्ताया दक्षिणाया दिशो मा मां पातु दक्षिणदिगवस्थिताद्ध रक्षःपिशाचादेर्मां संस्कर्तारम् रक्षतु ॥ बाहुच्युतेत्यादेः पूर्ववद्ध योजना ॥

धाता देवता मुझको पीड़ा देने वाली पापदेवता निर्ऋतिसे सम्पन्न दक्षिण दिशासे प्राप्त होने वाले भयोंसे बचावें। और दाताके हाथमें दी हुई पृथ्वी जैसे भूदानसे प्राप्त होने वाले दाता प्रतिग्रहीताके उपभोग्य स्वर्गकी रक्षा करती है तिस प्रकार मेरी रक्षा करे। जिन देवताओंके लिये भाग होमा जा चुका है उन स्वर्गको प्राप्त कराने वाले मार्गके प्रवर्तक और स्वर्ग आदि लोक देने वाले देवताओंकी हम पूजा करते हैं ॥ २६ ॥

सप्तमी ॥

अदितिर्मादित्यैः प्रतीच्या दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि।

लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ

अदितिः। मा। आदित्यैः। प्रतीच्याः। दिशः। पातु। बाहुऽच्युता। पृथिवी। द्याम्ऽइव। उपरि।

लोकऽकृतः। पथिऽकृतः। यजामहे। ये। देवानाम्। हुतऽभागाः। इह। स्थ ॥ २७ ॥

अदितिः अदीना देवमाता। सा आदित्यैः स्वपुत्रैः सह प्रतीच्या दिशः सकाशात् मा मां पातु प्रत्यग्दिगवस्थितरक्षःपिशाचादेर्मां रक्षत्वित्यर्थः ॥ अन्यद् उक्तार्थम् ॥

अपने पुत्रों सहित देवमाता अदिति मुझको पश्चिममें स्थित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राक्षसादि भयसे बचावे। और दाताके हाथमें दी हुई पृथ्वी जैसे भूदानसे प्राप्त होने वाले दाता प्रतिगृहीताके उपभोग्य स्वर्ग की रक्षा करती है तिस प्रकार तेरी रक्षा करे। जिन देवताओं के लिये भाग होमा जा चुका है उन स्वर्गको प्राप्त कराने वाले मार्गके प्रवर्तक और स्वर्ग आदि लोक देने वाले देवताओंकी हम पूजा करते हैं ॥ २७ ॥

अष्टमी ॥

सोमो मा विश्वैर्देवैरुदीच्या दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि।

लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ

सोमः। मा। विश्वैः। देवैः। उदीच्याः। दिशः। पातु। बाहुऽच्युता। पृथिवी। द्याम्ऽइव। उपरि।

लोकऽकृतः। पथिऽकृतः। यजामहे। ये। देवानाम्। हुतऽभागाः। इह। स्थ ॥ २८ ॥

विश्वैः सर्वैः देवैः सह सोमः एतन्नामको देवः मा माम् उदीच्या दिशः पातु उत्तरदिगवस्थिताद् राक्षसादेः श्मशानवासिनः सकाशाद् रक्षतु ॥

सब देवताओंसहित सोम देवता मुझको उत्तरदिशामें स्थित श्मशान वासी राक्षसोंके भयसे बचावें। और दाताके हाथमें दी हुई पृथ्वी जैसे भूदानसे प्राप्त होने वाले दाता प्रतिगृहीताके उपभोग्य स्वर्गकी रक्षा करती है तिस प्रकार तेरी रक्षा करे। जिन देवताओंके लिये भाग होमा जा चुका है उन स्वर्गको प्राप्त कराने वाले मार्गके प्रवर्तक और स्वर्ग आदि लोक देने वाले देवताओं की हम पूजा करते हैं ॥ २८ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नवमी ॥

धर्ता ह त्वा धरुणो धारयाता ऊर्ध्वं भानुं सविता द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २९ ॥

धर्ता । ह । त्वा । धरुणः । धारयातै । ऊर्ध्वम् । भानुम् । सविता । द्याम्ऽइव । उपरि ।
लोकऽकृतः । पथिऽकृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुतऽभागाः । इह । स्थ ॥ २९ ॥

धरुणः सर्वस्य जगतो धारयिता धर्ता एतत्संज्ञक ऊर्ध्वदिगभिमानी देवः हे प्रेत त्वा त्वाम् ऊर्ध्वम् ऊर्ध्वदिगवस्थितं लोकान्तरं गन्तुम् उद्यतम् ऊर्ध्वमुखं वा धारयातै धारयतु । ❀ "लेटोडाटौ" इति आडागमः । "वैतोन्यत्र" इति ऐकारः ❀ । तत्र दृष्टान्तः । सविता सर्वप्रेरकः सूर्यः भानुम् दीप्तां द्याम् द्युलोकं यथा उपरि धारयति तद्वद् इत्यर्थः ॥ लोककृतः इत्यादि पूर्ववद् व्याख्येयम् ॥

हे प्रेत ! सब जगत्के धारक ऊर्ध्वदिशाके अभिमानी धरुण नामक देव तुझ ऊर्ध्वदिशामें स्थित लोकान्तरमें जानेके लिये उद्यत पुरुषको धारण करें जैसे सर्वप्रेरक सूर्यदेव दमकते हुए द्युलोकको ऊपर धारण किये रहते हैं, इस प्रकार तुझको धारण करें । और दाताके हाथमें दी हुई पृथ्वी जैसे भूदानसे प्राप्त होने वाले दाता प्रतिग्रहीताके उपभोग्य स्वर्गकी रक्षा करती है तिस प्रकार तेरी रक्षा करे । जिन देवताओं लिये भाग होमा जा चुका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है उन स्वर्गको प्राप्त कराने वाले मार्गके प्रवर्तक और स्वर्ग आदि लोक देने वाले देवताओंकी हम पूजा करते हैं ॥ २९ ॥

दशमी ॥

प्राच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ ३० ॥

प्राच्याम् । त्वा । दिशि । पुरा । सम्ऽवृतः । स्वधायाम् । आ । दधामि । बाहुऽच्युता । पृथिवी । द्याम्ऽइव । उपरि । लोककृतः । पथिऽकृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुतऽभागाः । इह । स्थ ॥ ३० ॥

प्राच्यां दहनदेशात् पूर्वस्यां दिशि पुरा पूर्वं संवृतः संछादितः कम्बलेन आवेष्टितोऽहम् यद्वा पूः शरीरम् तेन संवृतः सशरीर एव सन् हे प्रेत त्वा त्वां स्वधायाम् पितॄणां तृप्तिकरी देवता स्वधा तस्याम् आ दधामि स्थापयामि । संस्कारकर्मणा प्रेतत्वप्रच्युतिपूर्वकं पितृदेवतात्वं गमयामीत्यर्थः । बाहुच्युता दातृबाहुभिः प्रच्युता ब्राह्मणेभ्यो दत्ता पृथिवी उपरि उपरिष्टाद्देशस्थितां द्याम् दिवं नाकपृष्ठाख्यं स्थानं यथा पालयति । यद्वा उपरि आगामिनि काले भूदानप्राप्यां दिवं यथा दत्ता पृथिवी पालयति तथा त्वां सैव पृथिवी पालयत्वित्यर्थः ॥

इति तृतीयेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

दहनस्थानसे पूर्वदिशाकी ओर कम्बल आदिसे ढका हुआ मैं हे प्रेत ! तुझको पितरोंको तृप्त करने वाली स्वधामें स्थापित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करता हूँ अर्थात् संस्कारकर्मसे प्रेतत्वको दूर कर पितृदैवत्वको प्राप्त कराता हूँ। जैसे संकल्पपूर्वक हाथसे दी हुई पृथ्वी भविष्यमें दाता प्रतिग्रहीताके स्वर्गका पालन करती है इसी प्रकार पृथ्वी तेरी रक्षा करे। हे देवताओं! जिनके लिये भाग होमा जाचुका है ऐसे जो तुम यहाँ हो उन मार्गकर्ता लोककर्ता देवताओंका हम पूजन करते हैं॥ ३०॥ (१५)

तृतीय अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त॥

"दक्षिणायां त्वा दिशि" इत्यादितः पञ्चानाम् आज्यहोमे अभिमन्त्रणे च विनियोग उक्तः॥

"दक्षिणायां त्वा दिशि" आदि पाँच ऋचाओंका घृतहोममें और अभिमन्त्रणमें विनियोग है।

तत्र प्रथमा॥

दक्षिणायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ॥ ३१॥

दक्षिणायाम्। त्वा। दिशि। पुरा। सम्ऽवृतः। स्वधायाम्। आ। दधामि। बाहुऽच्युता। पृथिवी। द्याम्ऽइव। उपरि। लोकऽकृतः। पथिऽकृतः। यजामहे। ये। देवानाम्। हुतऽभागाः। इह। स्थ॥ २१॥

हे प्रेत त्वा त्वां दक्षिणायां दिशि दक्षिणदिग्भागे पुरा पूर्वमेव संवृतः आत्मरक्षार्थं कम्बलादिना प्रावृतः स्वधायाम् पितृदेवतायाम् आ दधामि स्थापयामि। स्वधाकारभाजं करोमीत्यर्थः॥ अन्यद् व्याख्यातम्॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दहनस्थानसे दक्षिण दिशाकी ओर कम्बल आदिसे ढका हुआ मैं हे प्रेत ! तुझको पितरोंको तृप्त करने वाली स्वधामें स्थापित करता हूँ अर्थात् संस्कारकर्मसे प्रेतत्वको दूर कर पितृदेवत्व को प्राप्त कराता हूँ । जैसे संकल्पूर्वक हाथसे दी हुई पृथ्वी भविष्यमें दाता प्रतिगृहीताके स्वर्गका पालन करती है इसी प्रकार पृथ्वी तेरी रक्षा करे । हे देवताओं ! जिनके लिये भाग होमा जाचुका है ऐसे जो तुम यहाँ हो उन मार्गकर्ता लोककर्ता देवताओं का हम पूजन करते हैं ॥ ३१ ॥

द्वितीया ॥

प्रतीच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ ३२ ॥

प्रतीच्याम् । त्वा । दिशि । पुरा । सम्ऽवृतः । स्वधायाम् आ । दधामि । बाहुऽच्युता । पृथिवी । द्याम्ऽइव । उपरि । लोकऽकृतः । पथिऽकृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुतऽभागाः । इह । स्थ ॥ ३२ ॥

दहनदेशात् पश्चिमायां दिशि पुरा संवृत इत्यादि पूर्ववत् ॥

दहनस्थानसे पश्चिम दिशाकी ओर कम्बल आदिसे ढका हुआ मैं हे प्रेत ! तुझको पितरोंको तृप्त करने वाली स्वधामें स्थापित करता हूँ अर्थात् संस्कारकर्मसे प्रेतत्वको दूर कर पितृदेवत्वको प्राप्त कराता हूँ । जैसे संकल्पपूर्वक हाथसे दी हुई पृथ्वी भविष्य में दाता प्रतिगृहीताके स्वर्गका पालन करती है इसी प्रकार पृथ्वी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तेरी रक्षा करे। हे देवताओं! जिनके लिये भाग होमा जाचुका है ऐसे जो तुम यहाँ हो उन मार्गकर्ता लोककर्ता देवताओंका हम पूजन करते हैं ॥ ३२ ॥

तृतीया ॥

उदीच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ ३३ ॥

उदीच्याम् । त्वा । दिशि । पुरा । सम्ऽवृतः । स्वधायाम् । आ । दधामि । बाहुऽच्युता । पृथिवी । द्याम्ऽइव । उपरि । लोकऽकृतः । पथिऽकृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुतऽभागाः । इह । स्थ ॥ ३३ ॥

उदीच्याम् उत्तरस्यां दिशि ॥ अन्यत् पूर्ववत् ॥

दहनस्थानसे उत्तर दिशाकी ओर कम्बल आदिसे ढका हुआ मैं हे प्रेत! तुझको पितरोंको तृप्त करने वाली स्वधामें स्थापित करता हूँ अर्थात् संस्कारकर्मसे प्रेतत्वको दूर कर पितृदेवत्वको प्राप्त कराता हूँ। जैसे संकल्पपूर्वक हाथसे दी हुई पृथ्वी भविष्यमें दाता प्रतिगृहीताके स्वर्गका पालन करती है इसी प्रकार पृथिवी तेरी रक्षा करे। हे देवताओं! जिनके लिये भाग होमा जाचुका है ऐसे जो तुम यहाँ हो उन मार्गकर्ता लोककर्ता देवताओंका हम पूजन करते हैं ॥ ३३ ॥

चतुर्थी ॥

ध्रुवायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ ३४ ॥

ध्रुवायाम् । त्वा । दिशि । पुरा । सम्ऽवृतः । स्वधायाम् । आ । दधामि । बाहुऽच्युता । पृथिवी । द्याम्ऽइव । उपरि । लोकऽकृतः । पथिऽकृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुतऽभागाः । इह । स्थ ॥ ३४ ॥

ध्रुवा स्थिरा अधरा दिक् । तस्यां दिशि ॥ गतम् अन्यत् ॥

दहनस्थानसे ध्रुवा दिशाकी ओर कम्बल आदिसे ढ़का हुआ मैं हे प्रेत ! तुझको पितरोंको तृप्त करने वाली स्वधामें स्थापित करता हूँ अर्थात् संस्कारकर्मसे प्रेतत्वको दूर कर पितृदेवत्वको प्राप्त करता हूँ । जैसे संकल्पपूर्वक हाथसे दी हुई पृथिवी भविष्य में दाता प्रतिग्रहीताके स्वर्गका पालन करती है इसी प्रकार पृथिवी तेरी रक्षा करे । हे देवताओं ! जिनके लिये भाग होमा जाचुका है ऐसे जो तुम यहाँ हो उन मार्गकर्ता लोककर्ता देवताओंका हम पूजन करते हैं ॥ ३४ ॥

पञ्चमी ॥

ऊर्ध्वायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ ३५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऊर्ध्वायाम् । त्वा । दिशि । पुरा । सम्ऽवृतः । स्वधायाम् । आ । दधामि । बाहुऽच्युता । पृथिवी । द्याम्ऽइव । उपरि । लोकऽकृतः । पथिऽकृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुतऽभागाः । इह । स्थ ॥ ३५ ॥

ऊर्ध्वायाम् उपरितन्यां दिशि हे प्रेत त्वा त्वां स्वधायाम् स्वधाकारे आ दधामि स्थापयामि पुरा पूर्वमेव संवृतः प्रावृतोऽहम् ॥ बाहुच्युता पुण्यकृतां बाहुभिर्दत्ता पृथिवी च त्वां पातु । उपर्यवस्थितां द्यामिव दानफलभूतं स्वर्गं यथा सा पालयति तद्वत् ॥ लोककृतः स्वर्गादिलोकस्य कर्तॄन् यजामहे हविर्भिः पूजयामः । देवानाम् हविर्भुजां मध्ये हे देवाः ये यूयम् इह अस्मिन् लोके हुतभागाः स्थ भवथ ॥

दहनस्थानसे ऊर्ध्वा दिशाकी ओर कम्बल आदिसे ढ़का हुआ मैं हे प्रेत ! तुझको पितरोंको तृप्त करने वाली स्वधामें स्थापित करता हूँ अर्थात् संस्कारकर्म से प्रेतत्वको दूर कर पितृदेवत्वको प्राप्त करता हूँ । जैसे संकल्पपूर्वक हाथसे दी हुई पृथिवी भविष्यमें दाता प्रतिग्रहीताके स्वर्गका पालन करती है इसी प्रकार पृथिवी तेरी रक्षा करे । हे देवताओं ! जिनके लिये भाग होमा जाचुका है ऐसे जो तुम यहाँ हो उन मार्गकर्ता लोककर्ता देवताओं का हम पूजन करते हैं ॥ ३५ ॥

षष्ठसप्तमौ द्वौ यजुर्मन्त्रौ ॥

धर्तासि धरुणोसि वंसगोसि ॥ ३६ ॥

धर्ता । असि । धरुणः । असि । वंसगः । असि ॥ ३६ ॥

उदपूरसि मधुपूरसि वातपूरसि ॥ ३७ ॥

उदऽपूः । असि । मधुऽपूः । असि । वातऽपूः । असि ॥ ३७ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे अग्ने त्वं धर्तासि सर्वेषां धारयितासि । धरुणः । धार्यत इति धरुणः । ❀ धारेर्णिलुक् च [उ० ३. ५८] इति उनन् प्रत्ययः ❀ । गार्हपत्यादिरूपेण सर्वैर्धार्यमाणोसि । वंसगः वननीयगतिर्वृषभः असि भवसि । तथा "चत्वारि शृङ्गा" इत्यस्याम् ऋचि [ऋ० ४. ५८. ३] वृषभरूपकल्पनाग्नेः समाम्नाता । अत एव "तिग्मशृङ्गो न वंसगः" इति अन्यत्रापि [ऋ० ६. १६. ३९] आम्नातम् ॥ तथा हे अग्ने त्वम् उदपूः उदकस्य पूरयितासि । तथा मधुपूः मधुनो माक्षिकस्य पूरयिता असि भवसि । तथा वातपूः वातस्य प्राणात्मकस्य वायोः पूरयिता असि भवसि । एवंगुणविशिष्टस्त्वम् इमं यजमानं पालयेत्यर्थः ॥

हे अग्निदेव ! आप धरुण हैं अर्थात् गार्हपत्य आदिरूपमें आपको सब धारण करते हैं और आप सबको धारण करने वाले हैं । तथा वननीयगति हैं । और सुवर्णके पूरक हैं और प्राणात्मक वायुके भी पूरक हैं तात्पर्य यह है, कि–ऐसे आप इस यजमानका पालन करिये ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

सोमयागे हविर्धानाख्यशकटे प्रवर्त्यमाने "इतश्च मा" इति द्वाभ्याम् अभिमन्त्रयेत । तथा च वैतानं सूत्रम् । "हविर्धाने प्रवर्त्यमाने इतश्च मेति द्वाभ्याम् अनुमन्त्रयते" इति [वै० ३. ५] ॥

सोमयागके हविर्धान नामक शकटके प्रवृत्त होने पर "इतश्च मा" इन दो ऋचाओंसे अभिमन्त्रण करे । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"हविर्धाने प्रवर्त्यमाने इतश्चमेति द्वाभ्याम् अनुमन्त्रयते" (वैतानसूत्र ३ । ५) ॥

अष्टमी ॥

इतश्च मामुतश्चावतां यम इव यतमाने यदैतम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र वां भरन् मानुषा देवयन्तो आ सीदतां स्वमु लोकं विदाने ॥ ३८ ॥

इतः । च । मा । अमुतः । च । अवताम् । यमे इवेति यमेऽइव । यतमाने इति । यत् । ऐतम् ।

प्र । वाम् । भरन् । मानुषाः । देवऽयन्तः । आ । सीदताम् । स्वम् । ऊं इति । लोकम् । विदाने इति ॥ ३८ ॥

इतश्च इतः अस्माद् भूलोकाद् अमुतश्च अमुष्मात् स्वर्गलोकात् लोकद्वयावस्थिताद् भयहेतोः मा मां यजमानम् अवताम् हविर्धाने रक्षताम् । इति परोक्षकृतो निर्देशः ॥ अथ प्रत्यक्षकृतः । हे हविर्धाने यमे इव यमले युगपद् उत्पन्ने अपत्ये इव यतमाने समानव्याप्रियमाणे जगतः पोषणाय प्रयत्नं कुर्वाणे यत् यस्मात् कारणाद् युवाम् ऐतम् गच्छथः ॥ वाम् युवाभ्यां देवयन्तः देवान् आत्मन इच्छन्तो मानुषाः मनुष्या ऋत्विग्यजमानाः प्र भरन् हवींषि समभरन् । तदानीं युवां स्वम् स्वकीयं लोकम् स्थानं विदाने जानती आ सीदतम् उपविशतम् । उ इति पदपूरणः ॥

जिनमें हविको स्थापित किया जाता है वे हविर्धाना द्यावापृथिवी इस भूलोक और उस स्वर्गलोकमें होने वाले भयसे मेरी रक्षा करें । हे हविर्धाने ! तुम यमल उत्पन्न हुए सन्तानोंकी समान एकसा प्रयत्न करके जगत्का पोषण करते हुए चले आरहे हो, अपने पर देवताओंका अनुग्रह चाहने वाले पुरुष जब तुम्हारे लिये हवि अर्पण करें, उस समय तुम अपने स्थानको जान कर उस पर बैठो ॥ ३८ ॥

नवमी ॥

स्वासस्थे भवतमिन्दवे नो युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वि श्लोक एति पथ्येव सूरिः शृण्वन्तु विश्वे अमृतास एतत् ॥ ३९ ॥

स्वासस्थे इति सुऽआसस्थे । भवतम् । इन्दवे । नः । युजे । वाम् । ब्रह्म । पूर्व्यम् । नमःऽभिः ।

वि । श्लोकः । एति । पथ्याऽइव । सूरिः । शृण्वन्तु । विश्वे । अमृतासः । एतत् ॥ ३९ ॥

हे हविर्धाने नः अस्माकम् इन्दवे सोमाय स्वासस्थे सुस्वासनस्थे सुस्थिरे भवतम् । अहं च वाम् युवयोः पूर्व्यम् पूर्वकाले भवं चिरंतनं ब्रह्म परिवृढं स्तोत्रं नमोभिः नमस्कारैः सहितं युजे युनज्मि । यद्वा नमोभिः नमस्कारप्रतिपादकैर्मन्त्रैरित्यर्थः । श्लोकः श्लोकनीयस्तुतिसंघः व्येति विशेषेण युवां गच्छति । तत्र दृष्टान्तः । पथ्या सूरिरिव । पथोनपेतं पथ्यम् । ❀ "सुपां सुलुक्०" इति तृतीयायाः पूर्वसवर्णदीर्घः ❀ । पथोनपेतेन धर्मेण सूरिः विद्वान् अभिमतं फलं प्राप्नोति तद्वद् इत्यर्थः ॥ एतत् अस्माभिः कृतं स्तोत्रम् अमृतासः अमृता मरणरहिता विश्वे सर्वे देवाः शृण्वन्तु आकर्णयन्तु । ❀ श्रु श्रवणे "श्रुवः शृ च" इति श्नुप्रत्ययः शृभावश्च ❀ ॥

"त्रीणि पदानि" इत्यनया दह्यमानं प्रेतशरीरं बान्धवा उपतिष्ठेरन् ॥

हे हविर्धाने ! तुम हमारे सोमके लिये सुस्थिर हो जाओ । जैसे धर्ममार्ग पर चलने वाला विद्वान् अभिमत फलको पाता है इसी प्रकार मैं भी तुम दोनोंके प्राचीन स्तोत्रोंका नमस्कारके साथ प्रयोग करता हूँ, स्तुतियें आपको विशेषरूपसे प्राप्त होती हैं। इस हमारे स्तोत्रको अमरणधर्मी सब देवता सुनें ॥ ३९ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दशमी ॥

त्रीणि पदानि रुपो अन्वरोहच्चतुष्पदीमन्वेतद्व्रतेन।
अक्षरेण प्रति मिमीते अर्कमृतस्य नाभावभि सं पुनाति

त्रीणि। पदानि। रुपः। अनु। अरोहत्। चतुःऽपदीम्। अनु।
एतत्। व्रतेन।
अक्षरेण। प्रति। मिमीते। अर्कम्। ऋतस्य। नाभौ। अभि।
सम्। पुनाति ॥ १० ॥

रुप्यति मुह्यतीति रुपो मृतः पुरुषः। ❀ युप रुप लुप विमोहने। इगुपधलक्षणः कप्रत्ययः ❀। त्रीणि त्रिसंख्याकानि पदानि द्युस्थानानि अन्वरोहत् क्रमेण आरूढवान्। प्राप्तवान् इत्यर्थः। केन साधनेन इत्याह। एतत् एतेन अनुष्ठीयमानेन व्रतेन कर्मणा पैतृमेधिकसंस्कारेण चतुष्पदीम् चत्वारः पादा यस्याः सा तथोक्ता ताम् अनुस्तरणयाख्यां गाम् अनुलक्ष्य। अन्वरोहद् इति संबन्धः। संस्कारमाहात्म्येन मृतो लोकत्रयं व्याप्नोद् इत्यर्थः। अक्षरेण। अश्नुते व्याप्नोति स्वफलभूतं स्थानम् इत्यक्षरं स्वार्जितं सुकृतम्। यद्वा क्षरो विनाशः। तद्रहितम्। तेन स्वार्जितेन सुकृतेन। यद्वा परिच्छेदकशरीरे त्यक्ते अक्षरेण व्यापकेन विनाशरहितेन आत्मस्वरूपेण अर्कम् अर्चनीयं सुकृतफलं स्वर्गादिकं सूर्यमेव वा प्रति मिमीते प्रतिमुखं मिमीते परिच्छिनत्ति। व्याप्नोतीत्यर्थः। यद्वा प्रतिमानं प्रतिबिम्बम्। सूर्यस्य प्रतिबिम्बं भवति। सूर्यसदृशो भवतीत्यर्थः। ऋतस्य योनौ। ऋतम् इति सत्यस्य उदकस्य यज्ञस्य वा नामधेयम्। तस्य योनिः उत्पत्तिस्थानं सूर्यमण्डलम् तत्र अभि अभितः सर्वतः आभिमुख्येन वा सं पुनाति सम्यक् पतो वर्तते॥

इति तृतीयेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोहमें पड़ा हुआ मृतपुरुष इस अनुष्ठित पैतृमेधिक संस्कारसे अनुस्तरणी गौको लक्ष्यमें रखता हुआ तीनों द्युलोकोंको प्राप्त होरहा है अर्थात् संस्कारके माहात्म्यसे मरा हुआ यह त्रिलोकीमें व्याप्त होरहा है। यह परिच्छेदक शरीरके त्यक्त होने पर विनाश-रहित आत्मस्वरूपसे पूजनीय स्वर्गादि फलको पारहा है वा सूर्य में ही व्याप्त होरहा है। वा जलके उत्पत्तिस्थान सूर्यमण्डलमें पूर्णरूपसे पवित्र होकर रहता है ॥ ४० ॥ (१३)

तृतीय अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त

"देवेभ्यः कम्" इत्यादिकं पञ्चमं सूक्तम्। तत्र "त्वमग्न ईलितः" इत्यनया पिण्डपितृयज्ञे समिधम् आदध्यात्। "त्वमग्न ईलितः" [१८. ३. ४२] आ त्वाग्ने [१८. ४. ८८] इत्यादधाति" इति हि [कौ० ११. १०] सूत्रम् ॥

"अग्निष्वात्ताः पितरः" [४४] इत्यनया पिण्डपितृयज्ञे बर्हिः स्तृणीयात् ॥

"उपहूता नः पितरः" [४५] इति उत्तराभ्यां द्वाभ्यां च पिण्डपितृयज्ञे बर्हिः स्तृणीयात् ॥

"ये तातृषुः" [४७] इत्यृचा "ये सत्यासः" [४८] इत्युत्तरया च पिण्डपितृयज्ञे समिधावादध्यात् ॥

"उप सर्प" [४९] इति तिसृभिर्ऋग्भिः श्मशानदेशं शलाकाभिः इष्टकाभिर्वा प्रसव्यं चिनुयात् ॥

"देवेभ्यः कम्" यह पञ्चम सूक्त है। इसमें "त्वमग्न ईलितः" इस ऋचासे पिण्डपितृयज्ञमें समिधाको रक्खे इस विषयमें कौशिक-सूत्र ११। १० का प्रमाण भी है, कि—"त्वमग्न ईलितः (१८। ३। ४२) आ त्वाग्ने (१८। ४। ८८) इत्यादधाति" (कौशिक-सूत्र ११। १०) ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"अग्निष्वात्ताः पितरः" इस चौवालीसवीं ऋचासे पिण्ड-पितृयज्ञमें कुशाओंको फैलावे ।

"उपहूता नः पितरः" इन अगली पैंतालीसवीं और छियालीसवीं दो ऋचाओंसे पिण्डपितृयज्ञमें कुशाओंको बिछावे ॥

"ये तातृषुः" आदि सैंतालीसवीं और अड़तालीसवीं ऋचाओं से पिण्डपितृयज्ञमें समिधाओंको रक्खे ।

"उपसर्प" इन ४९ वीं आदि तीन ऋचाओंसे श्मशानस्थान को शलाकाओंसे वा ईंटोंसे प्रसव्य चुने ।

तत्र प्रथमा ॥

देवेभ्यः कमवृणीत मृत्युं प्रजायै किममृतं नावृणीत ।
बृहस्पतिर्यज्ञमतनुत ऋषिः प्रियां यमस्तन्वं१मा रिरेच

देवेभ्यः । कम् । अवृणीत । मृत्युम् । प्रऽजायै । किम् । अमृतम् । न । अवृणीत ।

बृहस्पतिः । यज्ञम् । अतनुत । ऋषिः । प्रियाम् । यमः । तन्वम् । आ । रिरेच ॥ ४१ ॥

देवेभ्यः दीव्यन्तीति देवाः इन्द्रादयः । तेभ्यः । ❀ तादर्थ्ये चतुर्थी ❀ । तदर्थं कम् कीदृशं मृत्युम् अवृणीत सृष्ट्यादौ विधाता वृतवान् । । देवानाम् अर्थे स्रष्टा कमपि मरणहेतुं न कृतवान् इत्यर्थः काक्वा द्योत्यते । अतो देवानां मृत्युसंबन्धविरहात् तेषाम् अमृतत्वम् उत्पत्तिसिद्धम् इत्यर्थः । प्रजायते उत्पद्यत इति प्रजा मनुष्यादिरूपा । तस्यै वेधाः किम् किंकारणम् अमृतम् अमरणं न अवृणीत न वृतवान् । मनुष्यादीनां देववद् अमृतत्वं न कृतवान् । तत्र कारणं किमपि नास्तीत्यर्थः । प्रजापतिना केचन इन्द्राद्याः अमृताः सृष्टाः मनुष्याद्याः प्राणिनो मरणधर्मोपेताः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कल्पिताः । अतो देवानाम् अमरणं मनुष्याणां मरणं च अनादि-सिद्धम् । अतस्तत्र कारणगवेषणं न कार्यम् इत्यर्थः ॥ बृहस्पतिः बृहतां महतां देवानां पतिः स्वामी ऋषिः अतीन्द्रियार्थद्रष्टा यज्ञम् सोमयागम् अतनुत अकरोत् । भूलोके ऋषिरूपेणावस्थितो बृहस्पतिः स्वस्य ऐहिकामुष्मिकफलप्राप्तये तत्प्राप्त्युपायभूतं यज्ञं कृतवान् इत्यर्थः । श्रूयते हि । "बृहस्पतिरकामयत देवानां पुरोधां गच्छेयम् इति । स एतं बृहस्पतिसवम् अपश्यत् । तम् आहरत् । तेनायजत" इति [तै० ब्रा० २. ७. १. २] । बृहस्पतेः प्रियां तन्वम् प्रेमास्पदं मानुषं शरीरं यमो वैवस्वतः आ रिरेच आसमन्ताद् रिक्तं निःसारं मृतं कृतवान् । ऋषिरूपेणावस्थितस्य बृहस्पतेरपि यमः प्राणान् अपाहार्षीत् किल किमु वक्तव्यम् अन्येषां मनुष्यादीनां यमः प्राणान् अपहरतीति । यद्वा नावृणीत इति पूर्वत्रापि संबध्यते । देवानां कं मृत्युं नावृणीत । सर्वमपि मृत्युं वृतवान् । अतस्तेषाम् अमृतत्वसिद्धये तैः प्रार्थितो बृहस्पतिः ऋषिर्भूत्वा यज्ञम् अतनुत । तस्माद् यज्ञात् ते देवा अमृताः संपन्नाः । तथा प्रजायै मनुष्यादिरूपायै किमपि अमृतं नावृणीत अतः सा मर्त्या भूता । तस्माद् यमो मनुष्यादिशरीरम् आरेचितवान् इति ॥

विधाताने सृष्टिकी आदिमें इन्द्र आदि देवताओंके लिये कैसी मृत्युका वरण किया तात्पर्य यह है, कि-स्रष्टाने देवताओंके निमित्त किसी मरणहेतुको नहीं बनाया, अत एव देवताओंके मृत्युसम्बन्धसे रहित होनेके कारण उनका अमृतत्व उत्पत्तिसिद्ध है । और मनुष्य आदि रूपमें उत्पन्न होने वाली प्रजाके लिये वेधाने किसी अमरणके कारणका वरण नहीं किया अर्थात् मनुष्य आदिके लिये देवताओंकी समान अमरत्व नहीं दिया । परन्तु इसमें कोई कारण नहीं है । अर्थात् प्रजापतिने कुछ इन्द्र आदिको अमृत बनाया और मनुष्य आदि प्राणियोंको मरणधर्मी बना कर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकट किया है अत एव देवताओंका अमरण और मनुष्योंका मरण अनादिसिद्ध है और उसके कारणकी खोज नहीं करनी चाहिये ॥ भूलोकमें ऋषिरूपसे स्थित बृहस्पतिजीने ऐहिक आयुष्मिक फलको पानेके लिये यज्ञ किया [तैत्तिरीयब्राह्मण २ । ७ । १ । २ की श्रुतिमें भी कहा है, कि—"बृहस्पतिरकामयत देवानां पुरोधां गच्छेयम् इति । स एतं बृहस्पतिसवं अपश्यत् । तम् आहरत् । तेनायजत ।—अर्थात् बृहस्पतिजीने देवताओंका पुरोहित बननेकी इच्छा की, इसके लिये उन्होंने बृहस्पतिसवको उपयुक्त समझा, उसकी सामग्री एकत्रित की और उसको किया] तदनन्तर विवस्वान्के पुत्र यमदेवने बृहस्पतिजीके प्रेमास्पद मनुष्य शरीरको चारों ओरसे खेंच कर निःसार कर डाला—मार डाला [तात्पर्य यह है, कि—जब ऋषिरूपमें स्थित बृहस्पतिके प्राणोंका भी यमने अपहरण कर लिया तब दूसरे मनुष्योंके प्राणोंको यम लेजावेंगे—इसमें कहना ही क्या ?

अथवा—क्या प्रजापतिने देवताओंके लिये मृत्युको नहीं रचा था ? नहीं, रचा था अर्थात् उन्होंने सबके लिये मृत्युकी रचना की थी, तब उनको अमर बनानेके लिये बृहस्पतिजीने ऋषि बन कर यज्ञ किया, उस यज्ञसे देवता अमर होगए । और मनुष्यादि प्रजाके लिये प्रजापतिने अमृतकी रचना नहीं की अत एव वह मर्त्य होगए, इस कारण यम मनुष्य आदिके शरीरोंको प्राण खेंच कर रिक्त कर दिया करते ॥ ४१ ॥

द्वितीया ॥

त्वमग्न ईडितो जातवेदोवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वा।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते नक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥ ४२ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्वम् । अग्ने । ईडितः । जातऽवेदः । अवाट् । हव्यानि । सुरभीणि ।
कृत्वा ।

प्र । अदाः । पितृऽभ्यः । स्वधया । ते । अक्षन् । अद्धि । त्वम् ।
देव । प्रऽयता । हवींषि ॥ ४२ ॥

हे जातवेदः जातानां जनिमतां प्राणिनां वेदितः हे अग्ने ईलितः अस्माभिः स्तुतस्त्वं हव्यानि अस्मदीयानि चरुपुरोडाशादीनि सुरभीणि सुगन्धीनि रसवन्ति कृत्वा अवाट् देवेभ्यो वह । ❀ "छन्दसि लुङ्लङ्लिटः" इति लोडर्थे लुङ् । वह प्रापणे इत्यस्मात् लुङि सिपि "बहुलं छन्दसि" इति इडभावे "झलो झलि" इति सिज्लोपः । "हल्ङ्याब्भ्यः०" इति सलोपे रूपम् ❀ ॥ तथा पितृभ्यः पितृदेवताभ्यः स्वधया स्वधाकारेण सह कव्यसंज्ञकानि हवींषि प्रादाः प्रत्तवान् असि । ते च पितरस्त्वया दत्तानि कव्यानि हवींषि अक्षन् अभुञ्जत । ❀ अद भक्षणे । "लुङ्सनोर्घस्लृ" इति घस्लादेशः । "मन्त्रे घसह्वर०" इत्यादिना च्लेर्लुक् । "गमहनजनखनघसां लोपः०" इति उपधालोपः । चर्त्वषत्वे ❀ ॥ हे देव द्योतमान अग्ने त्वमपि प्रयता प्रयतानि प्रकर्षेण अस्माभिर्दत्तानि हवींषि अद्धि भुङ्क्ष्व । ❀ अद भक्षणे । "हुझल्भ्यो हेर्धिः" इति हेर्धिरादेशः ❀ ॥

हे उत्पत्ति वाले प्राणियोंको जानने वाले जातवेदा अग्ने ! हमारे स्तुति करने पर आप हमारी चरु पुरोडाश आदि हवियों को सुगंधित करके देवताओंको पहुँचाइये । और आपने पितृदेवताओं के लिये स्वधाके साथ कव्यनामक हवियोंको दे दिया है और उन पितरोंने तुम्हारी दी हुई हवियोंका भक्षण कर लिया है । अब हे अग्निदेव ! आप भी हमारी बहुतसी दी हुई हवियोंका भोग लगाइये ॥ ४२ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृतीया ॥

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त इहोर्जं दधात

आसीनासः । अरुणीनाम् । उपऽस्थे । रयिम् । धत्त । दाशुषे । मर्त्याय ।

पुत्रेभ्यः । पितरः । तस्य । वस्वः । प्र । यच्छत । ते । इह । ऊर्जम् । दधात ॥ ४३ ॥

हे पितरः अरुणीनाम् अरुणवर्णानां मातॄणाम् उपस्थे उत्सङ्गे आसीनासः आसीना उपविशन्तो दाशुषे हविर्दत्तवते मर्त्याय मरणधर्मणे यजमानाय रयिम् धनं धत्त दत्त प्रयच्छत ॥ पुत्रेभ्यः । पुंनाम्नो नरकात् त्रायन्त इति पुत्राः । तेभ्यः अस्मभ्यं तस्य वस्वः । ❀ कर्मणि षष्ठी ❀ । तत् प्रसिद्धं वसु धनं प्रयच्छत दत्त । ❀ दाण् दाने । "पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्०" इत्यादिना यच्छादेशः ❀ ॥ हे पितरः ते यूयम् इह अस्मिन् भूलोके ऊर्जम् बलकरम् अन्नम् अस्मभ्यं दधात धत्त ॥

हे अरुण वर्ण वाली माता उषाओंकी गोदमें बैठने वाले पितरों ! तुम हवि देने वाले मरणधर्मी यजमानके लिये धन दो, तुम हम पुंनामक नरकसे बचाने वाले पुत्रोंके लिये धन दो, हे पितरों! आप हमारे लिये इस भूलोकमें बलप्रद अन्नको दीजिये । ४३॥

चतुर्थी ॥

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अत्तो हवींषि प्रयतानि बर्हिषि रयिं च नः सर्ववीरं दधात ॥ ४४ ॥

अग्निऽस्वात्ताः । पितरः । आ । इह । गच्छत । सदःऽसदः । सदत । सुऽप्रणीतयः ।

अत्तो इति । हवींषि । प्रऽयतानि । बर्हिषि । रयिम् । च । नः । सर्वऽवीरम् । दधात ॥ ४४ ॥

हे अग्निष्वात्ताः पितरः । पितरो द्विविधाः । बर्हिषदः अग्निष्वात्ताश्चेति । तेषां भेदस्तैत्तिरीयके स्पष्टम् आम्नातः । "पितॄन् बर्हिषदो यजति । ये वै यज्वानस्ते पितरो बर्हिषदः तानेव तद् यजति ॥ पितॄन् अग्निष्वात्तान् यजति । ये वा अयज्वानो गृहमेधिनस्ते पितरोऽग्निष्वात्ताः" इति [तै० ब्रा० १. ६. ९. ६] । कृतसोमयागाः पितरो बर्हिषत्संज्ञकाः अकृतसोमयागास्तु अग्निष्वात्तसंज्ञका इत्यर्थः । हे एतत्संज्ञकाः पितरः इह अस्मिन् यज्ञे आ गच्छत ॥ हे सुप्रणीतयः । प्रणीतिः प्रकृष्टं फलप्रापणम् । शोभना प्रणीतिर्येषां ते तथोक्ताः । आगतास्ते यूयं सदःसदः । सीदन्ति अस्मिन्निति सदः उपवेशनस्थानम् पितृपितामहप्रपितामहादीनां यद्यत् स्थानं परिकल्पितं तत् स्थानं सदत प्राप्नुत । स्वे स्वे स्थाने उपविशतेत्यर्थः ॥ बर्हिषि यज्ञे प्रयतानि प्रत्तानि यद्वा शुद्धानि हवींषि चरुपुरोडाशादीनि अत्त भक्षयत ॥ हविरदनेन संतुष्टा यूयं नः अस्मभ्यं सर्ववीरम् सर्वैर्वीरैरुपेतं रयिम् धनं दधातन धत्त । प्रयच्छतेत्यर्थः । ❀ डुधाञ् दानधारणयोः । लोटि "तप्तनप्तनथनाश्च" इति तस्य तनबादेशः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे शोभन फलको पाने वाले अग्निष्वात्ता † पितरों ! तुम यहाँ आओ और इस यज्ञमें पिता पितामह आदिके लिये जो स्थान कल्पना किया गया है उन २ स्थानों पर बैठो और यज्ञकी चरु पुरोडाश आदि शुद्ध हवियोंका भक्षण करो और हविका प्राशन करके सन्तुष्ट हुए तुम हमको सब वीरोंसे युक्त धनको दो ॥४४॥

पञ्चमी ॥

उपहूता नः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु ते वन्त्वस्मान्

उपऽहूताः । नः । पितरः । सोम्यासः । बर्हिष्येषु । निऽधिषु । प्रियेषु ।

ते । आ । गमन्तु । ते । इह । श्रुवन्तु । अधि । ब्रुवन्तु । ते । अवन्तु । अस्मान् ॥ ४५ ॥

---

† पितर दो प्रकारके होते हैं, एक अग्निष्वात्ता और दूसरे बर्हिषद् । इनका भेद तैत्तिरीयकमें स्पष्ट लिखा है, कि-"पितॄन् बर्हिषदो यजति । ये वै यज्वानस्ते पितरो बर्हिषदः तानेव तद्द यजति । ये वा अयज्वानो गृहमेधिनस्ते पितरोऽग्निष्वात्ताः ।- अर्थात् बर्हिषद पितरोंका यजन करता है, इसका तात्पर्य यह है, कि-जो यजन करने वाले पितर होते हैं वे ही बर्हिषद् कहलाते हैं उन ही का वह यजन करता है । और अग्निष्वात्ता पितरोंके लिये यज्ञ करता है, इसका तात्पर्य यह है, कि-जो यज्ञ न करने वाले गृहस्थी पितर होजाते हैं वे अग्निष्वात्ता पितर कहलाते हैं" (तैत्तिरीय ब्राह्मण १ । ६ । ९ । ६) ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नः अस्माकं पितरः उपहूताः समीपम् आहूताः ॥ सोम्यासः सोम्याः सोमार्हा एवंगुणविशिष्टाः पितृपितामहप्रपितामहाः बर्हिष्येषु बर्हिषि यज्ञे भवा बर्हिष्याः तेषु प्रियेषु प्रीतिविषयेषु निधिषु निधीयमानेषु हविःषु सत्सु प्रागुदीरितास्ते पितरः आ गमन्तु आगच्छन्तु ॥ इह अस्मिन् यज्ञे ते पितरः श्रुवन्तु अस्मदीयं स्तोत्रं शृण्वन्तु । ❀ श्रु श्रवणे । "बहुलं छन्दसि" इति विकरणस्य लुक् ❀ । अधि ब्रुवन्तु अधिवचनं पक्षपातेन वचनम् । अधिवचनेन अस्मान् स्वीकुर्वन्तु । न केवलम् अधिवचनमात्रम् अपि तु ते पितरः अस्मान् अवन्तु ऐहिकामुष्मिकफलप्रदानेन रक्षन्तु ॥

जिन पितरोंको हम अपने समीप बुला रहे हैं, वे हमारे आहूत पिता पितामह आदि पितर सोमके पात्र हैं वे यज्ञकी दी हुई हवियों पर आवें, वे पितर इस यज्ञमें हमारे स्तोत्रको सुनें । और वे हमारे विषयमें पक्षपात भरा वचन कह कर हमको स्वीकार करें और ऐहिक तथा पारलौकिक फल देकर हमारी रक्षा करें ४५

षष्ठी ॥

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा अनूजहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः ।
तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु

ये । नः । पितुः । पितरः । ये । पितामहाः । अनुऽजहिरे । सोमऽपीथम् । वसिष्ठाः ।

तेभिः । यमः । सम्ऽरराणः । हवींषि । उशन् । उशत्ऽभिः । प्रतिऽकामम् । अत्तु ॥ ४६ ॥

नः अस्माकं पितुर्जनकस्य ये पितरः सन्ति ये च पितामहा-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्तज्जनका वसिष्ठाः वसुमत्तमाः एवंगुणविशिष्टा ये पितृपितामह-प्रपितामहाः सोमपीथम् सोमपानम् अनुजहिरे अनुक्रमेण हरन्ति आत्मसात् कुर्वन्ति स्म तेभिस्तैः पितृभिः संरराणः सह रममाणो यमः उशन् कामयमानः उशद्भिः कामयमानैस्तैः पितृभिः सह हवींषि अस्मदीयानि चरुपुरोडाशादीनि हवींषि प्रतिकामम् । कामः अभिलाषः । अभिलाषं प्रति । अभिलाषानुसारेणेत्यर्थः । अत्तु भक्षयतु ॥

जो हमारे पिताके उत्पादक पितर हैं और जो पितामह श्रेष्ठ ज्ञान वाले हैं तथा जिन्होंने सोमका पान किया था, उन पितरोंके साथ रमण करते हुए यमदेव कामना करें और कामना करते हुए पितरोंके साथ हमारी चरु पुरोडाश आदि हवियोंको इच्छाके अनुसार प्राशन करें ॥ ४६ ॥

सप्तमी ॥

ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविद स्तोमतष्टासो अर्कैः
आग्ने याहि सहस्रं देववन्दैः सत्यैः कविभिर्ऋषिभिर्घर्म-
सद्भिः ॥ ४७ ॥

ये । ततृषुः । देवऽत्रा । जेहमानाः । होत्राऽविदः । स्तोमऽतष्टासः । अर्कैः ।

आ । अग्ने । याहि । सहस्रम् । देवऽवन्दैः । सत्यैः । कविऽभिः । ऋषिऽभिः । घर्मसत्ऽभिः ॥ ४७ ॥

देवत्रा देवेषु जेहमानाः । ❀ जेह प्रयत्ने ❀ । प्रयतमानाः व्याप्रियमाणा होत्राविदः होत्राः सप्त वषट्कर्तारः । तत्कृतान् यागान् जानन्तः अर्कैः अर्चनीयैः स्तोत्रैः स्तोमतष्टासः स्तोमस्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्तुतेः कर्तारः स्तोमकर्तारः । ❀ तक्ष् तनूकरणे । तस्मात् कर्तरि निष्ठा ❀ । एवंगुणविशिष्टा ये पितरः तातृषुः तृष्यन्ति पिपासन्ति । तैर्देववन्दैः देवान् वन्दन्ते प्रणमन्तीति देववन्दाः तैः सत्यैः सत्यफलैः कविभिः क्रान्तदर्शिभिर्ऋषिभिः अतीन्द्रियद्रष्टृभिः घर्मसद्भिः घर्मः प्रवर्ग्यः तदुपलक्षिते सोमयागे सीदन्तीति घर्मसदः । ❀ सहार्थयोगे तृतीया ❀ । एवंगुणविशिष्टैः पितृभिः सह हे अग्ने त्वम् अस्माकं सहस्रम् अपरिमितं धनं यथा भवति तथा आ याहि आगच्छ । आगत्य च अस्मदीयेन हविषा पितॄणां तृषं निवर्तयेति भावः ॥

देवताओंमें प्रयत्न करते रहने वाले, सात वषट्कर्ता होत्राओं के किये हुए यागको जानने वाले, पूजनीय स्तोत्रोंसे स्तुतिके करने वाले जो पितर पिलासे होरहे हैं, और तृषाके कारण देवताओंकी वन्दना कर रहे हैं उन सत्यफलको देने वाले, क्रान्तदर्शी, अतीन्द्रिय पदार्थोंको देखने वाले सोमयागमें बैठने वाले पितरोंके साथ हे अग्ने ! आप हमारे पास अपरिमित धन देने के लिये आइये, तात्पर्य यह है, कि—आकर हमारी हविसे पितरों की तृषा को दूर करिये ॥ ४७ ॥

अष्टमी ॥

ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं तुरेण ।
आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् परैः पूर्वैर्ऋषिभिर्घर्मसद्भिः

ये । सत्यासः । हविःऽअदः । हविःऽपाः । इन्द्रेण । देवैः । सऽरथम् । तुरेण ।

आ । अग्ने । याहि । सुऽविदत्रेभिः । अर्वाङ् । परैः । पूर्वैः । ऋषिऽभिः । घर्मसत्ऽभिः ॥ ४८ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ये पितरः सत्यासः सत्याः सत्प्रभवाः सत्यभाषणोपेता वा हविरदः हवींषि चरुपुरोडाशादीनि अदन्ति भक्षयन्तीति हविरदः। हविष्पाः हविः सोमरसं पिबन्तीति हविष्पाः। तुरेण त्वरमाणेन शत्रूणां हिंसकेन वा इन्द्रेण देवैः अन्यैश्च सरथम् समानो रथो यथा भवति तथा। वर्तन्त इति शेषः। इन्द्रेण देवैः सह एकं रथम् उपारूढा वर्तन्त इत्यर्थः। तैः सुविदत्रेभिः सुविदत्रैः शोभनधनैः शोभनप्रज्ञैर्वा परैः उत्कृष्टैः पूर्वैः पूर्वपुरुषैः पितृपितामहप्रपितामहैः ऋषिभिः अतीन्द्रियार्थदर्शिभिः घर्मसद्भिः यज्ञे सीदद्भिः एवंगुणविशिष्टपितृभिः सह हे अग्ने त्वम् अर्वाङ् अस्मदभिमुखः सन् आ याहि आगच्छ ॥

जो पितर सत्य कहते हैं, चरु पुरोडाश आदि हविका भक्षण करते हैं, सोमरसरूप हविका पान करते हैं, हिंसक इन्द्र देवताके साथ तथा अन्य देवताओंके साथ जिनका रथ चलता है, उन शोभन बुद्धि वाले, अतीन्द्रियार्थदर्शी, यज्ञमें बैठने वाले, पिता पितामह आदि, यज्ञमें बैठने वाले पितरोंके साथ हे अग्ने ! आप हमारे अभिमुख आइये ॥ ४८ ॥

नवमी ॥

उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम्।
ऊर्णम्रदाः पृथिवी दक्षिणावत एषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ॥ ४९ ॥

उप। सर्प। मातरम्। भूमिम्। एताम्। उरुऽव्यचसम्। पृथिवीम्। सुऽशेवाम्।

ऊर्णऽम्रदाः। पृथिवी। दक्षिणाऽवते। एषा। त्वा। पातु। प्रऽपथे। पुरस्तात् ॥ ४९ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे प्रेत मातरम् जननीम् एतां भूमिम् उप सर्प उपगच्छ। कीदृशीम्। उरुव्यचसम्। ❀ व्यचतिर्व्याप्तिकर्मा ❀। विस्तीर्णव्यापनां पृथिवीम् प्रथितां प्रख्यातां सुशेवाम् सुसुखाम्॥ एषा त्वया उपसृप्ता पृथिवी दक्षिणावते दक्षिणा अस्य सन्तीति दक्षिणावान् बहीभिर्यज्ञसंबन्धिनीभिर्दक्षिणाभिर्युक्ताय तुभ्यम् ऊर्णम्रदाः ऊर्णाभिर्विरचितकम्बलवन्म्रदीयसी मार्दवेन सुखकरी सती पुरस्तात् पूर्वस्यां दिशि पूर्वमेव वा प्रपथे पथो मार्गस्य प्रारम्भः प्रपथः॥ ❀ "ऋक्पूरब्धूः०" इति अकारः समासान्तः ❀। तत्र वर्तमानं त्वा त्वां पातु रक्षतु॥

हे प्रेत! तू इस विस्तीर्ण प्रसिद्ध माताकी समान सुख देने वाली पृथिवी पर आ, ऐसा होने पर यह तुझ बहुतसी यज्ञदक्षिणा देने वालेको ऊनके कम्बलकी समान मृदु सुख देवे और पूर्वदिशाके प्रारंभिक मार्गमें वर्तमान तेरी रक्षा करे॥ ४९॥

दशमी॥

उच्छ्वञ्चस्व पृथिवि मा नि बाधथाः सूपायनास्मै भव सूपसर्पणा।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि॥ ५०॥

उत्। श्वञ्चस्व। पृथिवि। मा। नि। बाधथाः। सुऽउपायना। अस्मै। भव। सुऽउपसर्पणा।
माता। पुत्रम्। यथा। सिचा। अभि। एनम्। भूमे। ऊर्णुहि

हे पृथिवि भूदेवते त्वम् उच्छ्वञ्चस्व। ❀ श्वञ्चतिर्गतिकर्मा ❀। उच्छूनावयवा पुलकिता भव। एनम् उपसृप्तं पुरुषं मा नि बाधथाः कार्कश्येन मा बाधस्व। अपि च अस्मै पुरुषाय सूपायना सुखेन उपगन्तुम् अर्हा सूपसर्पणा शोभनोपसर्पणयुक्ता च भव। यथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

येन प्रकारेण माता जननी स्वकीयं पुत्रं सिचा चेलाञ्चलेन अभिच्छादयति तथा एनं त्वाम् उपगतं पुरुषम् हे भूमे त्वमपि अभ्यूर्णुहि अभितः प्रच्छादय। यथा अस्य शीतवातोष्णादिजनितदुःखं न भवति तथा एनं आयस्वेत्यर्थः। ❀ ऊर्णुञ् छादने। अदादित्वात् शपो लुक् ❀॥

इति तृतीयेनुवाके पञ्चमं सूक्तम्॥

हे भूदेवते! तुम पुलकित होओ, अपनी कर्कशतासे इस समीप में प्राप्त हुए पुरुषको बाधा मत दो, यह पुरुष सुखपूर्वक तुम्हारे पास रहे, और तुम शोभन उपसर्पण करने वाली होओ, और हे भूमे! माता जिस प्रकार अपने वस्त्रसे पुत्रको आच्छादित करती है, इस प्रकार तू भी इसको चारों ओरसे आच्छादित कर। तात्पर्य यह है, कि—जिस प्रकार शीत वात उष्णता आदि से होनेवाला दुःख प्राप्त न हो इस प्रकार इसकी रक्षाकर ५० (१७)

तृतीय अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त॥

"उच्छ्वञ्चमाना" [५१] इत्याद्याया ऋचो विनियोग उक्तः॥

पात्रचयनकर्मणि यजमानस्य उदरे इडापात्रं निधाय "इमम् अग्ने" [५३] इति द्वाभ्याम् अनुमन्त्रयते॥

यदि आहिताग्निः एकाग्निर्वा सर्पव्याघ्रादिभिर्म्रियेत तर्हि "यत् ते कृष्णः शकुनः" [५५] इत्यनया सर्पदंशनस्थानं दंष्ट्रयादिकृतव्रणस्थानं वा अग्निना दहेत्॥

"पयस्वतीः" [५६] इति ऋचा शवदहनानन्तरं स्नानं कुर्यात्॥

"शं ते नीहारः" [६०] इत्यनया अभिमन्त्रिताभिर्जलक्षीरमिश्रिताभिरोषधीभिर्ब्राह्मणस्य अस्थीनि सिञ्चेत्॥

"उच्छ्वञ्चमाना" इस पहिली (५१) ऋचाका विनियोग कह दिया है।

पात्रचयनकर्ममें यजमानके उदरमें इडापात्रको रखकर "इमम् अग्ने" आदि ५३ वीं और ५४ वीं ऋचाओंसे अनुमन्त्रण करे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.Ih Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यदि आहिताग्नि वा एकाग्नि सर्प वा व्याघ्र आदिसे मर जावे तो "यत् ते कृष्णः शकुनः" इस पचपनवीं ऋचासे साँपके काटनेके स्थानको वा डाढ़ आदिसे हुए घावके स्थानको अग्निसे भस्म करे।

"पयस्वतीः" इस छप्पनवीं ऋचासे शवदहनके अनन्तर स्नान करे।

"शं ते नीहारः" इस साठवीं ऋचासे अभिमन्त्रित जल और क्षीर मिली हुई औषधियोंसे ब्राह्मणकी अस्थियोंका सिञ्चन करे।

तत्र प्रथमा ॥

उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम्।
ते गृहासो घृतश्चुतः स्योना विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र ॥ ५१ ॥

उत्ऽश्वञ्चमाना। पृथिवी। सु। तिष्ठतु। सहस्रम्। मितः। उप। हि। श्रयन्ताम्।
ते। गृहासः। घृतऽश्चुतः। स्योनाः। विश्वाहा। अस्मै। शरणाः। सन्तु। अत्र ॥ ५१ ॥

उच्छ्वञ्चमाना उच्छूयमानावयवा पुलकितशरीरा पृथिवी सु तिष्ठतु सुखेन अवतिष्ठताम्। तत्र श्मशानदेशे सहस्रम् सहस्रसंख्याका अपरिमिता मितः मीयमानाः स्थाप्यमाना ओषधयः उप श्रयन्ताम् उपेत्य आश्रिता भवन्तु। हिशब्दो यस्मादर्थे। यस्माद् ओषधिवनस्पतयस्तत्र उपाश्रितास्तस्मात् ते घृतश्चुतः घृतस्राविणः अत एव स्योनाः सुखकरा अस्मै मृतपुरुषाय गृहासः गृहाः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विश्वाहा सर्वाणि अहानि । ❀ अत्यन्तसंयोगे द्वितीया ❀ । सर्वकालम् अत्र श्मशानदेशे शरणाः रक्षकाः सन्तु भवन्तु ॥

पुलकित शरीर वाली पृथिवी सुखसे स्थित रहे इस श्मशान-स्थानमें स्थापित की हुई अपरिमित औषधियें समीपमें आकर स्थित होवें, और वे औषधियें घृतको प्रवाहित करती हुई अत एव सुख देती हुई इस मृतपुरुषके लिये घररूप होकर सब दिन इस श्मशानमें रक्षक रहें ॥ ५१ ॥

द्वितीया ॥

उत्ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत् परीमं लोगं निदधन्मो अहं रिषम् ।
एतां स्थूणां पितरो धारयन्ति ते तत्र यमः सादना ते कृणोतु ॥ ५२ ॥

उत् । ते । स्तभ्नामि । पृथिवीम् । त्वत् । परि । इमम् । लोगम् । निऽदधत् । मो इति । अहम् । रिषम् ।
एताम् । स्थूणाम् । पितरः । धारयन्ति । ते । तत्र । यमः । सदना । ते । कृणोतु ॥ ५२ ॥

हे मृतपुरुष ते तुभ्यं त्वदर्थम् इमां पृथिवीम् उत् ऊर्ध्वं स्तभ्नामि धारयामि । ❀ ष्टभि स्कभि गतिप्रतिबन्धे । क्र्यादित्वात् श्ना-प्रत्ययः ❀ ॥ त्वत् परि तव परितः इमं लोकम् सर्वप्राण्यधि-ष्ठितं भूलोकं निदधत् निक्षिपन् अहं मो रिषम् मैव हिंसितो भूयम् ॥ तत्र तस्याम् उत्तम्भनेन धृतायां भूम्यां ते त्वदर्थं पितरः पितृदेवताः एतां प्रसिद्धां स्थूणां तव गृहनिर्माणाय धारयन्ति स्थापयन्ति । यमस्तत्र ते तव सादना सदनानि गृहाणि कृणोतु करोतु । ❀ "शेश्छन्दसि बहुलम्" इति शेर्लोपः ❀ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे मृतपुरुष ! मैं तेरे लिये इस पृथिवीको ऊपरको धारण करता हूँ, तेरे चारों ओर भूलोकको स्थापित करता हुआ मैं हिंसित न होऊँ, इस उठाई हुई भूमिमें तेरे लिये पितृदेवता गृह-निर्माणके लिये स्थूणाको धारण करें और यमदेवता तेरे लिये घरोंको बनावें ॥ ५२ ॥

तृतीया ॥

इमममग्ने चमसं मा वि जिह्वरः प्रियो देवानामुत सोम्या-
नाम् ।
अयं यश्चमसो देवपानस्तस्मिन् देवा अमृता माद-
यन्ताम् ॥ ५३ ॥

इमम् । अग्ने । चमसम् । मा । वि । जिह्वरः । प्रियः । देवानाम् ।
उत । सोम्यानाम् ।
अयम् । यः । चमसः । देवऽपानः । तस्मिन् । देवाः । अमृताः ।
मादयन्ताम् ॥ ५३ ॥

हे अग्ने इमं चीयमानं चमसम् भक्षणसाधनम् इडापात्रं मा वि जिह्वरः कुटिलं मा कार्षीः । ॐ ह्वृ कौटिल्ये । अस्माण्ण्यन्तात् लुङि चङि रूपम् । "न माङ्योगे" इति अडभावः ॐ । यश्चमसो देवानाम् अग्न्यादीनां प्रियः प्रीतिकरः । उत अपि च सोम्यानाम् सोमार्हाणां पितॄणां प्रियः । "उपहूता नः पितरः सोम्यासः" इति हि उक्तम् [४५] । देवपानः देवाः पिबन्ति अनेन अमृतम् इति देवपानः ॥ एवंगुणविशिष्टो योयं चमसस्तस्मिन् अमृताः अमरणधर्माणः सर्वे देवा इन्द्रादयो मादयन्ताम् माद्यन्तु । तत्रत्य-हविरास्वादनेन तृप्ता भवन्तु इत्यर्थः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे अग्ने ! इस भक्षणके साधन इडापात्र चमसको तिरछा न कर, यह चमस अग्नि आदि देवताओंको और सोमका उपभोग करनेके पात्र पितरोंको प्रिय है। और देवता इसमें पान करते हैं, ऐसे इस चमसमें सब इन्द्र आदि अमर देवता प्रसन्न होवें अर्थात् इस चमसपात्रकी हविका आस्वादन कर तृप्त होवें॥५३॥

चतुर्थी ॥

अथर्वा पूर्णं चमसं यमिन्द्रायाबिभर्वाजिनीवते ।
तस्मिन् कृणोति सुकृतस्य भक्षं तस्मिन्निन्दुः पवते विश्वदानीम् ॥ ५४ ॥

अथर्वा । पूर्णम् । चमसम् । यम् । इन्द्राय । अबिभः । वाजिनीऽवते ।
तस्मिन् । कृणोति । सुऽकृतस्य । भक्षम् । तस्मिन् । इन्दुः । पवते ।
विश्वऽदानीम् ॥ ५४ ॥

अथर्वा एतन्नामकः अतीन्द्रियार्थद्रष्टा कश्चिद् ऋषिः वाजनीवते वाजः अन्नम् हविर्लक्षणम् अस्याम् अस्तीति वाजिनी यज्ञक्रिया । तद्वते इन्द्राय पूर्णम् सोमादिहविषा पूरितं यं चमसम् अबिभः भृतवान् । ❀ बिभर्तेर्लङि प्रथमैकवचने रूपम् ❀ । इन्द्रप्रीत्यर्थं हविर्भिः पूर्णं यं चमसं संभृतवान् इत्यर्थः । तस्मिन् चमसे सुकृतस्य सुष्ठु कृतस्य यज्ञस्य संबन्धि भक्षम् भक्षणं हुतशिष्टहविषो भक्षणं कृणोति करोति । ऋत्विजां गण इत्यर्थः । तथा तस्मिन् अथर्वकृते चमसे विश्वदानीम् सर्वदा इन्दुः सोमः पवते अमृतरसात्मकः स्रवति । ❀ पूङ् पवने । भौवादिकः ॥ विश्वदानीम् इति । विश्वशब्दाद् दानीं प्रत्ययः ❀ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथर्वा नामक अतीन्द्रियार्थदर्शी एक ऋषिने हविरूप अन्न वाली यज्ञ क्रियाके पात्र इन्द्रदेवके लिये सोम आदि हविसे पूरित जिस चमसको धारण किया था, उस चमसमें ऋत्विज् सुन्दरता से किये हुए यज्ञमें होमनेसे बची हुई हविका भक्षण करते हैं और उसी अथर्वाके बनाये हुए चमसमें रसात्मक अमृत सदा स्रवता रहता है ॥ ५४ ॥

पञ्चमी ॥

यत् ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः ।
अग्निष्टद् विश्वादगदं कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणाँ आविवेश ॥ ५५ ॥

यत् । ते । कृष्णः । शकुनः । आऽतुतोद । पिपीलः । सर्पः । उत । वा । श्वापदः ।

अग्निः । तत् । विश्वऽअत् । अगदम् । कृणोतु । सोमः । च । यः । ब्राह्मणान् । आऽविवेश ॥ ५५ ॥

हे पुरुष ते त्वदीयं यत् अङ्गं कृष्णः कृष्णवर्णः शकुनः पक्षी काकादिः आतुतोद व्यथितं दष्टं कृतवान् । ❀ तुद व्यथने ❀ । तथा पिपीलः विषदंष्ट्रः पिपीलिकाविशेषः उत वा अपि वा सर्पः श्वापदः शुनः पदानीव यस्य स श्वापदो व्याघ्रादिः आतुतोदेति सर्वत्र संबध्यते । तद् अङ्गं विश्वात् विश्वं सर्वम् अत्तीति विश्वात् सर्वभक्षकः अग्निः अगदम् गदो रोगः तद्रहितं कृणोतु करोतु । यः सोमः ब्राह्मणान् ऋत्विग्यजमानान् आविवेश रसरूपेण अन्तः प्रविष्टवान् तादृशः सोमोपि । अगदं कृणोत्विति संबन्धः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे पुरुष ! तेरे जिस अंगको कृष्णवर्णके काकादि पक्षीने काटा है, तथा विषमयी डाढ़ वाली जिस पिपीलिकाने काटा है, सर्पने अथवा कुत्तेकी समान पैर वाले जिस व्याघ्र आदिने काटा है उसको सबका भक्षण करने वाले अग्निदेव रोगरहित करें। और जो सोम ब्राह्मण ऋत्विज यजमानादिमें रसरूपमें प्रविष्ट है वह भी इस अंगको नीरोग करें ॥ ५५ ॥

षष्ठी ॥

पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकं पयः ।
अपां पयसो यत् पयस्तेन मा सह शुम्भतु ॥५६॥

पयस्वतीः । ओषधयः । पयस्वत् । मामकम् । पयः ।
अपाम् । पयसः । यत् । पयः । तेन । मा । सह । शुम्भतु ५६

ओषधयः व्रीहियवाद्याः प्रसिद्धाः याश्च अन्याः फलपाकान्ताः ताः सर्वाः पयस्वतीः अस्मदर्थं पयस्वत्यः । पयःशब्देन सारभूतोंऽश उच्यते । सारवत्यो भवन्तु । ❀ जसि "वा छन्दसि" इति पूर्वसवर्णदीर्घः ❀ । मामकम् मत्संबन्धि मम शरीरस्थितं यत् पयः सारभूतं बलं तदपि पयस्वत् सारवद् भवतु । तथा अपाम् उदकानां संबन्धिनः पयसः सारभूतांशस्य यत् पयः सारभूतः उत्कृष्टोंऽशः स तेन ओषध्यादिगतेन सर्वेण पयसा सह मा मां शुम्भतु शोभनं करोतु । जलाभिमानी वरुणः स्नानेन मां शोधयत्विति भावः । ❀ शुभ शुम्भ दीप्तौ ❀ ॥

व्रीहि जौं आदि औषधियें हमारे लिये सारमयी होवें और मेरे शरीरमें जो सारभूत बल है वह भी सार वाला होवे और जलोंके सारका भी जो सार है उस औषधि आदिके सारसे जलाभिमानी वरुण मुझको स्नानके द्वारा पवित्र करें ॥ ५६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सप्तमी ॥

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम् ।
अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥ ५७

इमाः । नारीः । अविधवाः । सुऽपत्नीः । आऽअञ्जनेन । सर्पिषा । सम् । स्पृशन्ताम् ।
अनश्रवः । अनमीवाः । सुऽरत्नाः । आ । रोहन्तु । जनयः । योनिम् । अग्रे ॥ ५७ ॥

"इमा नारीः" इत्येषा सप्तमी पूर्वम् आम्नाता [१२.२.३१]। तत्रैव व्याख्याता ॥ अर्थस्तु । इमाः प्रेतकुलोत्पन्ना नार्यः वैधव्यरहिताः सुपतिकाः सत्यः सर्पिर्मिश्रेण आञ्जनेन संस्पृष्टा भवन्तु । अश्रुरहिता रोगरहिताः शोभनाभरणा अपत्यजनन्यः अपत्योत्पादनाय योनिम् आ रोहन्त्विति ॥

इस प्रेतके कुलमें उत्पन्न हुई ये स्त्रियें वैधव्यरहित रहें, सुन्दर पतिसे सम्पन्न रहती हुई घृतमिश्रित अञ्जनको लगाती रहें, अश्रुरहित रहें, रोगरहित रहें, शोभन गहनोंको धारण किये रहें और सन्तानको उत्पन्न करती रहें ॥ ५७ ॥

अष्टमी ॥

सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ।
हित्वावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छतां तन्वा सुवर्चाः ५८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम् । गच्छस्व । पितृऽभिः । सम् । यमेन । इष्टापूर्तेन । परमे ।

विऽओमन् ।

हित्वा । अवद्यम् । पुनः । अस्तम् । आ । इहि । सम् । गच्छताम् ।

तन्वा । सुऽवर्चाः ॥ ५८ ॥

हे मृतपुरुष त्वं पितृभिः पितृपितामहप्रपितामहैः सं गच्छस्व पैतृमेधिकेन सापिण्ड्यकरणावधिना संस्कारेण हेतुना संगतो भव। पितृषु मध्ये प्राप्तस्थानो भवेत्यर्थः। यस्तेषां राजा यमः तेनापि सं गच्छस्व। तथा परमे उत्कृष्टे पितृलोकादपि श्रेष्ठे व्योमन् व्योम्नि द्युलोके नाकपृष्ठाख्ये कर्मफलोपभोगस्थाने इष्टापूर्तेन। इष्टम् प्रत्यक्षश्रुतिचोदितं यागहोमदानादि। पूर्तम् स्मृतिपुराणागमचोदितं वापीकूपतटाकदेवागारनिर्माणादि। तेन उभयेन सं गच्छस्व। तत्फलम् उपभुङ्क्ष्वेत्यर्थः। तथा अवद्यम् पापं हित्वा त्यक्त्वा अस्तम्। गृहनामैतत्। उत्तमलोकस्थितं गृहं पुनरेहि प्राप्नुहि॥ सुवर्चाः शोभनदीप्तिकस्तत्र आत्मा तन्वा स्वर्गलोकभोगयोग्येन शरीरेण सं गच्छताम् संयुज्यताम्। ❀ "समो गम्यृच्छि०" इति संपूर्वाद् गमेरकर्मकाद् आत्मनेपदम् ❀॥

हे मृतपुरुष! तू जिसमें सपिण्डी आदि की जाती है उस सपिंडीकरण तकके पैतृमेधिककर्मसे पिता पितामह आदि पितरोंके साथ मिल जा अर्थात् पितरोंके मध्यमें स्थान पा और जो उनका राजा यम है उससे भी मिल। तथा पितृलोकसे भी श्रेष्ठ कर्मफलभोग के स्थान परमव्योम स्वर्गमें श्रुतिसे प्रत्यक्षविहित याग होम दान आदि इष्टसे तथा स्मृति पुराण और शास्त्रोंसे विहित बावड़ी कूप तालाब मन्दिर बनाना आदि पूर्तसे, संयुक्त हो अर्थात् इनके फल को भोग तथा पापको त्याग कर उत्तम लोकमें स्थित घरको पा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुन्दर दीप्ति वाला तेरा आत्मा स्वर्गलोकके योग्य शरीरको प्राप्त करे ॥ ५८ ॥

नवमी ॥

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्वं१न्तरिक्षम् ।
तेभ्यः स्वराडसुनीतिर्नो अद्य यथावशं तन्वः कल्पयाति

ये । नः । पितुः । पितरः । ये । पितामहाः । ये । आऽविविशुः । उरु । अन्तरिक्षम् ।
तेभ्यः । स्वऽराट् । असुऽनीतिः । नः । अद्य । यथाऽवशम् । तन्वः । कल्पयाति ॥ ५९ ॥

नः अस्माकं पितुः जनकस्य ये पितरः जनका ये च पितामहास्तेषामपि उत्पादयितारः । पूजार्थं बहुवचनम् । पितृपितामहप्रपितामहा इत्यर्थः । ये च अन्ये गोत्रजा उरु विस्तीर्णम् अन्तरिक्षम् आविविशुः आविष्टाः प्रविष्टाः । तेभ्यः । ❀ षष्ठ्यर्थे चतुर्थी ❀ । तेषां तन्वः शरीराणि अद्य इदानीं स्वराट् स्वयमेव राजा असुनीतिः असूनां नेता एतत्संज्ञको देवः नः अस्माकं यथावशम् यथाकामं कल्पयाति कल्पयतु । तत्रतत्र फलोपभोगाय शरीराणि संपादयत्वित्यर्थः ॥

जो हमारे पिताके उत्पादक हैं और जो हमारे पिताके पितामह हैं अर्थात् जो पिता पितामह और प्रपितामह हैं इन्होंने तथा और भी हमारे गोत्रमें उत्पन्न हुए जिन पुरुषोंने विस्तीर्ण अन्तरिक्षलोकमें प्रवेश किया है इस समय स्वराट् असुनीति देवता उनके शरीरोंकी इच्छानुसार कल्पना करें अर्थात् फलोपभोगके लिये उचित लोकोंमें उनके शरीरोंको रच देवें ॥ ५९ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दशमी ॥

शं ते नीहारो भवतु शं ते प्रुष्वाव शीयताम् ।
शीतिके शीतिकावति ह्लादिके ह्लादिकावति ।
मण्डूक्य१प्सु शं भव इमं स्व१ग्निं शमय ॥ ६० ॥

शम् । ते । नीहारः । भवतु । शम् । ते । प्रुष्वा । अव । शीयताम् ।
शीतिके । शीतिकाऽवति । ह्लादिके । ह्लादिकाऽवति ।
मण्डूकी । अप्ऽसु । शम् । भवः । इमम् । सु । अग्निम् । शमय ६०

हे प्रेतपुरुष नीहारः अवश्यायः ते तव शं भवतु सुखकरो भवतु । दाहजनितम् औष्ण्यं शमयत्वित्यर्थः । तथा प्रुष्वा विप्रुड्रूपेण स्रवन् उत्सः ते तव शम् सुखं यथा भवति तथा अव शीयताम् अवपततु । अधोमुखं स्रवत्वित्यर्थः ॥ हे शीतिके शीतस्य कारिणि । ओषधिविशेषस्येयं संज्ञा । हे शीतिकावति शीतिकाख्यौषधियुक्ते पृथिवि हे ह्लादके ह्लादः सुखम् तत्कारिणि ओषधे हे ह्लादकावति ह्लादकाख्यौषधियुक्ते पृथिवि मण्डूक्या मण्डूकस्य स्त्री मण्डूकी तया । यद्वा मण्डूकपर्णाख्यया ओषध्या अस्य दग्धस्य पुरुषस्य शं भव । दाहशमनहेतुर्भवेत्यर्थः । तदर्थम् इमं दाहकम् अग्निं सुष्ठु शमय शान्तं कुरु ॥

इति तृतीयेनुवाके षष्ठं सूक्तम् ॥

हे प्रेत ! नीहार तुझको सुख देवे अर्थात् दाहसे हुई तेरी गरमी को शान्त करे, और बूँद २ करके बरसता हुआ मेघ जिस प्रकार तुझको सुख प्राप्त हो तिस प्रकार बरसे । हे शीतिका नामक औषधि वाली पृथिवी ! हे ह्लादिका नामवाली औषधिसे संपन्न पृथिवि ! तू इस दग्ध पुरुषको मण्डूकपर्णी नामक औषधिसे सुख देने वाली हो, इस दाहक अग्निको भली प्रकार शान्त कर ६० (१८)

तृतीय अनुवाक में छठा सूक्त समाप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"विवस्वान् नः" [६१] इत्यादिभिः सप्तभिर्ऋग्भिः श्मशानचयनकर्मणि कर्ता सर्वे गोत्रिणश्च श्मशानस्य पश्चाद्भागे स्थित्वा प्रेतम् उपतिष्ठेरन् ॥

पितृमेधे चतुर्थेऽहनि वैवस्वते स्थालीपाके "विवस्वान् नो अभयम्" इति द्वाभ्यां प्रत्यृचं द्वे आहुती जुहुयात् । युक्ताभ्यां तृतीयाम् आहुतिं कुर्यात् ॥

तथा एताभ्यामेव हुतशेषम् अभिमन्त्र्य समानोदका गोत्रिणः कर्तारं प्राशयेयुः ॥

संचयने "विवस्वान् नः" इति त्र्यृचम् "इन्द्र क्रतुम्" [६७] इत्येतां च स्वस्त्ययनार्थं जपेत् ॥

"यास्ते धानाः" [६९] इति द्वाभ्यां तिलमिश्रा धाना अस्थ्नाम् उपरि आदध्यात् । "पुनर्देहि" [७०] इति ऋचा अस्थीनि वृक्षमूलाद् आददीत यदि अस्थीनि वृक्षमूले पूर्वं स्थापितानि स्युः॥

"आ रभस्व" [७१] इति तिसृभिः प्रेतशरीरे दत्तम् अग्निं काष्ठैर्दीपयेयुः ॥

"ये ते पूर्वे परागताः" [७२] इति ऋचा सर्पिर्मधुभ्यां चरुम् अभिमन्त्र्य अस्थिसमीपे निदध्यात् ॥

तथा पिण्डपितृयज्ञे अनया निरुप्तानां पिण्डानाम् उपरि घृतधारां निनयेत् ॥

"विवस्वान् नः" (६१) आदि सात ऋचाओंसे श्मशानचयनकर्ममें कर्ता और सब गोत्र वाले श्मशानके पीछेकी ओर खड़े होकर प्रेतका उपस्थान करें ।

पितृमेधके चौथे दिन वैवस्वत-स्थालीपाकमें "विवस्वान् नो अभयम्" इन दो ऋचाओंसे दो आहुति देवे और दोनों ऋचाओंको मिला कर तीसरी आहुति देवे ।

तथा इन ही दोनों ऋचाओंसे होमनेसे बचे हुए पदार्थको अभिमन्त्रित करके समानोदक गोत्र वाले कर्ताको प्राशन करावें ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सञ्चयनमें "विवस्वान् नः" ऋचको और "इन्द्र क्रतुम्" (६७) ऋचाको भी स्वस्त्ययनके लिये जपे।

"यास्ते धानाः" (६९) आदि दो ऋचाओंसे तिलमिश्रित धानाओंको अस्थियोंके ऊपर रक्खे। यदि पहिले अस्थियोंको वृक्षकी जड़में रख दिया हो तो "पुनर्देहि" (७०) ऋचासे अस्थियोंको वृक्षमूलसे लेलेवे।

"आ रभस्व" (७१) आदि तीन ऋचाओंसे प्रेतके शरीर में लगाई हुई अग्निको काष्ठोंसे प्रदीप्त करें॥

'ये ते पूर्वे परागताः" (७२) ऋचासे घी और मधुसे चरु को अभिमन्त्रित करके अस्थियोंके समीपमें रक्खे।

तथा पिण्डपितृयज्ञमें इस ऋचासे स्थापित करनेसे पहिले पिण्डोंके ऊपर घृतकी धार डाले।

तत्र प्रथमा॥

विवस्वान् नो अभयं कृणोतु यः सुत्रामा जीरदानुः सुदानुः।
इहेमे वीरा बहवो भवन्तु गोमदश्वावन्मय्यस्तु पुष्टम्

विवस्वान्। नः। अभयम्। कृणोतु। यः। सुऽत्रामा। जीरऽदानुः। सुऽदानुः।
इह। इमे। वीराः। बहवः। भवन्तु। गोऽमत्। अश्वऽवत्। मयि। अस्तु। पुष्टम्॥ ६१॥

विवस्वान् एतत्संज्ञक आदित्यो नः अस्माकम् अभयम् मरणजनितभीतिराहित्यं कृणोतु करोतु। तथा जीरदानुः जीवनस्य कर्ता। ❀ जीव प्राणधारणे। "जीवे रदानुक्" इति ❀। यद्वा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

❀ रकि ज्यः संप्रसारणम् इति [उ० २. २३.] ज्या वयोहानौ इत्यस्माद् रक् प्रत्ययः संप्रसारणं च ❀ । जीरस्य वयोहानेर्दाता जीरदानुः। सुदानुः शोभनदानुः एवंगुणविशिष्टो यः सुत्रामा सुष्ठु त्राता एतत्संज्ञको देवः सोपि अस्माकम् अभयं कृणोत्विति संबन्धः ॥ इह अस्मिन् लोके इमे वीराः पुत्रपौत्रादयः अस्माकं बहवः बहुला भवन्तु । तथा गोमत् बहुभिर्गोभिर्युक्तम् अश्ववत् बहश्वोपेतं पुष्टम् पोषकं धनं मयि आत्मनि अस्तु भवतु । मरणजनितभीतिपरिहारेण पुत्रपौत्रादिसमृद्धिर्धनसमृद्धिश्च अस्माकं भवत्वित्यर्थः ॥

विवस्वान् सूर्यदेव, जीवनप्रदाता जीरदानु, सुदानु, और भली प्रकार रक्षा करने वाले सुत्रामा नामक देव हमको अभय देवें । इस लोकमें हमारे वीर्यसे उत्पन्न होने वाले वीर अर्थात् पुत्र पौत्र आदि बहुतसे होवें तथा मुझमें गौओंसे और घोड़ोंसे सम्पन्न पुष्टि रहे । तात्पर्य यह है, कि–मरणसे होने वाला भय दूर होकर हमारे पास पुत्र पौत्र आदिकी समृद्धि और धनकी समृद्धि होवे ॥ ६१ ॥

द्वितीया ॥

विवस्वान् नो अमृतत्वे दधातु परैतु मृत्युरमृतं न ऐतु
इमान् रक्षतु पुरुषाना जरिम्णो मो ष्वेषामसवो यमं गुः

विवस्वान् । नः । अमृतऽत्वे । दधातु । परा । एतु । मृत्युः । अमृतम् । नः । आ । एतु ।

इमान् । रक्षतु । पुरुषान् । आ । जरिम्णः । मो इति । सु । एषाम् । असवः । यमम् । गुः ॥ ६२ ॥

विवस्वान् आदित्यो नः अस्मान् अमृतत्वे अमरणत्वे दधातु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थापयतु ॥ तत्प्रसादात् मृत्युः मरणकारी देवः परैतु पराङ्मुखो गच्छतु । अमृतम् अमरणं नः अस्मान् एतु प्राप्नोतु ॥ आ जरिम्णः । जरायाः भावो जरिमा । जरावस्थापर्यन्तम् इमान् अस्मदीयान् पुरुषान् पुत्रपौत्रादीन् रक्षतु पालयतु ॥ एषां पुरुषाणाम् असवः प्राणाः सु सुष्ठु मो मैव यमम् वैवस्वतं गुः गच्छन्तु । विवस्वता यमस्य पित्रा रक्षितत्वाद् इति भावः । ❀ इण् गतौ । माङि लुङि "इणो गा लुङि" इति गादेशः ❀ ॥

विवस्वान् सूर्यदेव हमको अमरणमें स्थापित करें । उनके प्रसाद से मरणकारी देवता मृत्यु पराङ्मुख होकर चला जावे । अमरण हमको प्राप्त होवें और वह जरावस्था तक इन पुत्र पौत्र आदिकी रक्षा करे, इन पुरुषोंके प्राण विवस्वान्के पुत्र यमको प्राप्त न हों ६२

तृतीया ॥

यो दध्रे अन्तरिक्षे न मह्ना पितॄणां कविः प्रमतिर्मतीनाम् ।
तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे धात् ॥ ६३ ॥

यः । दध्रे । अन्तरिक्षे । न । मह्ना । पितॄणाम् । कविः । प्रऽमतिः । मतीनाम् ।

तम् । अर्चत । विश्वऽमित्राः । हविःऽभिः । सः । नः । यमः । प्रऽतरम् । जीवसे । धात् ॥ ६३ ॥

यो यमः कविः क्रान्तदर्शी प्रमतिः प्रकृष्टबुद्धिः मह्ना स्वमहिम्ना मतीनाम् मन्तॄणां स्तोतॄणां पितॄणाम् । ❀ "क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्" इति कर्मणः संप्रदानत्वात् चतुर्थ्यर्थे षष्ठी ❀ । पितॄन् अन्तरिक्षेण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्तरा क्षान्तेन लोकेन दधे धारयति हे विश्वमित्राः सर्वजन-मित्रभूता ब्राह्मणाः तं तादृशं यमं हविर्भिश्चरुपुरोडाशादिभिः अर्चत पूजयत ॥ सोर्चितो यमो नः अस्मान् जीवसे जीवनाय प्रतरम् प्रकृष्टतरं धात् दधातु धारयतु । ❀ प्रशब्दात् तरप् । "अमु च च्छन्दसि" इति अमु प्रत्ययः ❀ ॥

जो यम क्रान्तदर्शी हैं, श्रेष्ठ बुद्धि वाले हैं और जो अपनी महिमासे स्तुति करने वाले पितरोंको अन्तरिक्षलोकमें धारण करते हैं, हे सब प्राणियोंके मित्र ब्राह्मणों ! तुम ऐसे यमकी चरु-पुरोडाश आदि हवियोंसे पूजा करो । वह पूजित यम हमको जीवनके लिये श्रेष्ठ रीतिसे धारण करें—पुष्ट करें ॥ ६३ ॥

चतुर्थी ॥

आ रोहत दिवमुत्तमामृषयो मा बिभीतन ।
सोमपाः सोमपायिन इदं वः क्रियते हविरगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ ६४ ॥

आ । रोहत । दिवम् । उत्ऽतमाम् । ऋषयः । मा । बिभीतन ।
सोमऽपाः । सोमऽपायिनः । इदम् । वः । क्रियते । हविः । अगन्म ।
ज्योतिः । उत्ऽतमम् ॥ ६४ ॥

हे ऋषयः मन्त्रदर्शिनो मनुष्याः उत्तमाम् उत्कृष्टां दिवम् स्वर्गम् आ रोहत यज्ञदानादिसत्कर्मभिः प्राप्नुत । मा बिभीतन भयं मा प्राप्नुत । ❀ बिभेतेर्लोटि "तप्तनप्तनथनाश्च" इति तस्य तना-देशः ❀ । ऋषयो विशेष्यन्ते । सोमं पिबन्तीति सोमपाः । स्वयं कृतसोमयागा इत्यर्थः । सोमपायिनः अन्यानपि यजमानान् सोमं पाययन्तीति सोमपायिनः । सोमयागस्य कारयितार इत्यर्थः । दिवम् आरूढानां वः युष्माकम् इदं हविः क्रियते । तेन हविषा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यूयं सुखेन द्युलोके वर्तध्वम् इत्यर्थः । वयं च युष्मत्प्रसादाद् उत्तमम् उत्कृष्टतमं ज्योतिः प्रकाशं चिरकालजीवनम् अगन्म गच्छेम ॥

हे मन्त्रदर्शी मनुष्य ऋषियों ! तुम यज्ञ दान आदि सत्कर्मोंके कारण उत्कृष्ट स्वर्गलोकमें चढ़ो, डरो मत । हे ऋषियों ! तुम सोमका पान करने वाले हो अर्थात् तुमने अपने आप सोमयाग किया है, और तुम सोमपायी हो अर्थात् दूसरोंको सोमयाग कराने वाले हो । स्वर्गमें आरूढ़ हुए तुम्हारे लिये यह हवि की जाती है अर्थात् इस हविसे तुम सुखपूर्वक द्युलोकमें रहो और हम भी आपके प्रसादसे उत्तमज्योति—चिरकाल जीवनको प्राप्त होवें ६४

पञ्चमी ॥

प्र केतुना बृहता भात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति ।
दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थे महिषो ववर्ध ६५

प्र । केतुना । बृहता । भाति । अग्निः । आ । रोदसी इति । वृषभः । रोरवीति ।

दिवः । चित् । अन्तात् । उपऽमाम् । उत् । आनट् । अपाम् । उपऽस्थे । महिषः । ववर्ध ॥ ६५ ॥

अयम् अग्निः केतुना केतयित्रा ध्वजेन बृहता महता धूमेन प्र भाति प्रकर्षेण दीप्यते ॥ तथा रोदसी द्यावापृथिव्यौ आ अभिलक्ष्य वृषभः कामानां वर्षकः अयम् अग्नी रोरवीति भृशं शब्दं करोति ॥ माम् उप मत्समीपे दिवश्चिदन्तात् । चिच्छब्दः अप्यर्थे । आकाशस्य पर्यन्तादपि अयम् अग्निः उदानट् ऊर्ध्वं व्याप्नोत् ॥ तदनन्तरम् अपाम् उदकानाम् उपस्थे उपस्थाने अन्तरिक्षप्रदेशे महिषः । महन्नामैतत् । महान् भूत्वा ववर्ध ववृधे । प्रवृद्धो भूद इत्यर्थः । ❀ वृधु वृद्धौ । व्यत्ययेन परस्मैपदम् ❀ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह अग्निदेव अपनी बड़ी भारी ध्वजा धूमसे बड़े दमकते रहते हैं और यह कामनाओंकी वर्षा करने वाले अग्निदेव द्युलोक और पृथिवीलोकको लक्ष्यमें रख कर बड़ा शब्द करते हैं और मेरे समीपसे यह अग्निदेव द्युलोकसे भी ऊपर व्याप्त होजाते हैं और जलोंके स्थान अन्तरिक्षमें भी प्रधान् होकर बढ़ने लगते हैं ॥६५॥

षष्ठी ॥

नाके सुपर्णमुप यत् पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम्

नाके । सुऽपर्णम् । उप । यत् । पतन्तम् । हृदा । वेनन्तः । अभिऽअचक्षत । त्वा ।

हिरण्यऽपक्षम् । वरुणस्य । दूतम् । यमस्य । योनौ । शकुनम् । भुरण्युम् ॥ ६६ ॥

कं सुखम् अकं दुःखम् । नास्मिन् अकम् अस्तीति नाकः । ❀ "नभ्राण्नपात्०" इत्यादिना नञः प्रकृतिभावः ❀ । तस्मिन् नाके स्वर्गलोके पतन्तम् गच्छन्तं सुपर्णम् शोभनपतनम् उपलक्ष्य हृदा मनसा वेनन्तः । ❀ वेनतिः कान्तिकर्मा ❀ । कामयमानाः हे प्रेत त्वा त्वां यत् यदा अभ्यचक्षत अभिपश्यन्ति तदानीम् हिरण्यपक्षम् हिरण्मयपक्षोपेतं वरुणस्य एतत्संज्ञस्य देवस्य दूतम् । वरुणः खलु सत्यानृतविभागेन प्राणिनां शिक्षकः । श्रूयते हि । "यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यन् जनानाम्" इति [ऋ० ७. ४९. ३] । "अनृते खलु वै क्रियमाणे वरुणो गृह्णाति" इति च [तै० ब्रा० १. ७. २. ६] । अतो वरुणस्य शिक्षकत्वात् तत्समीपे दूतवद् वर्तमानम् इत्यर्थः । यमस्य योनौ गृहे शकुनम् शकुनिवद् वर्तमानं भुरण्युम् भर्तारम् । हे मृत त्वां पश्यन्तीति शेषः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे प्रेत ! जब हृदयमें कामना करते हुए हम जब तुमको स्वर्गलोकमें शोभन गतिसे जाते हुए देखते हैं तब तुमको सुवर्णमय पक्षों वाले वरुणदेवके दूत †, यमके घरमें पक्षीकी समान वर्तमान और भर्तारूपमें देखते हैं ॥ ६६॥

सप्तमी ॥

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ ६७ ॥

इन्द्र । क्रतुम् । नः । आ । भर । पिता । पुत्रेभ्यः । यथा ।
शिक्ष । नः । अस्मिन् । पुरुऽहूत । यामनि । जीवाः । ज्योतिः ।
अशीमहि ॥ ६७ ॥

हे इन्द्र परमैश्वर्ययुक्त देव क्रतुम् कर्म सोमयागादिलक्षणम् यद्वा तद्विषयं ज्ञानं नः अस्मभ्यम् आ भर आहर यथा येन प्रकारेण पिता पुत्रेभ्यः अभिमतं फलं आहरति तद्वत् ॥ हे पुरुहूत पुरुभिर्यजमानैराहूत अस्मिन् यामनि याने संसारगमने नः अस्मान् शिक्ष अनुशाधि । यद्वा शिक्षतिर्दानकर्मा । नः अस्मभ्यम् अभिमतफलं

† वरुणदेव सत्य और असत्यका विवेचन करके शिक्षा देते हैं अत एव उनके समीपमें प्राणी दूतकी समान खड़ा रहता है। ऋग्वेदसंहिता । ७ । ४९ । ३ में लिखा है, कि—"यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यन् जनानाम् ।—जलके राजा वरुणदेव मनुष्योंके मध्यमें सत्य और असत्यको देखते रहते हैं" और तैत्तिरीय ब्राह्मण १ । ७ । २ । ६ में लिखा है, कि—"अनृते खलु वै क्रियमाणे वरुणो गृह्णाति" ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रयच्छेत्यर्थः । वयं च त्वत्प्रसादात् जीवाः चिरकालजीवनोपेता ज्योतिः प्रकाशम् इहलोकसुखानुभवम् अशीमहि प्राप्नुयाम ॥

हे परमैश्वर्ययुक्त इन्द्रदेव ! जिस प्रकार पिता पुत्रोंको अभिमत वस्तु देता है, इस प्रकार आप हमको सोमयाग आदिरूप अभिमत वस्तु दीजिये । हे बहुतसे यजमानोंसे बुलाये जाने वाले पुरुहूत इन्द्रदेव ! आप हमको संसारयात्रामें अभिमत वस्तुएँ दीजिये और हम भी आपके प्रसादसे चिरकालका जीवन पाकर इस लोक के सुखका अनुभव करना–रूप ज्योतिको प्राप्त होवें ॥ ६७ ॥

अष्टमी ॥

अपूपापिहितान् कुम्भान् यांस्ते देवा अधारयन् ।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ॥६८॥

अपूपऽअपिहितान् । कुम्भान् । यान् । ते । देवाः । अधारयन् । ते । ते । सन्तु । स्वधाऽवन्तः । मधुऽमन्तः । घृतऽश्चुतः ॥ ६८ ॥

हे प्रेत ते तुभ्यं त्वदर्थम् अपूपापिहितान् अपूपैरपिहितान् छादितान् यान् कुम्भान् घृतमध्वादिपूर्णान् देवा अधारयन् तवोपभोगाय धारितवन्तः ते कुम्भाः स्वधावन्तः अन्नवन्तः मधुमन्तः मधुनोपेता घृतश्चुतः घृतस्राविणश्च ते तुभ्यं सन्तु भवन्तु ॥

हे प्रेत ! देवताओंने जिन अपूपों (गुलगुलों) से भरे हुए घृत मधु आदिसे पूर्ण कुम्भोंको तेरे उपभोगके लिये रख छोड़ा है, वे कुम्भ तेरे लिये अन्न वाले मधु वाले और घृतस्रावी होवे ६८

नवमी ॥

यास्ते धाना अनुक्षिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
तास्ते सन्तु विभ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानुं मन्यताम् ॥ ६९ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

याः । ते । धानाः । अनुऽकिरामि । तिलऽमिश्राः । स्वधाऽवतीः ।
ताः । ते । सन्तु । विऽभ्वीः । प्रऽभ्वीः । ताः । ते । यमः । राजा ।
अनु । मन्यताम् ॥ ६९ ॥

हे प्रेत ते तुभ्यं तिलमिश्राः तिलैर्मिश्रिताः स्वधावतीः स्वधाकारवतीः स्वधोदकवतीर्वा या धानाः । भृष्टयवा धाना उच्यन्ते । अनुकिरामि आनुपूर्व्येण विक्षिपामि । समर्पयामीत्यर्थः । ❀ कॄ विक्षेपे । तुदादित्वात् शप्रत्ययः ❀ । ता धानास्ते तुभ्यं विभ्वीः विभ्व्यः विविधा भवन्त्यः विभुत्वगुणपेता वा प्रभ्वीः प्रभ्व्यः प्रभवन्त्यः तृप्तिजननसमर्थाश्च सन्तु भवन्तु ॥ राजा राजमान ईश्वरो यमः ते तव ता धाना अनु मन्यताम् भोक्तुम् अनुजानातु । ❀ विभुशब्दात् प्रभुशब्दाच्च "वोतो गुणवचनात्" इति ङीष् । जसि "वा छन्दसि" इति पूर्वसवर्णदीर्घः ❀ ॥

हे प्रेत ! तिल मिले हुए स्वधा वाली जो जौ की खीलें मैं समर्पण कर रहा हूँ वे तुझको विभुत्व गुण वालीं और तृप्ति करने वालीं होकर प्राप्त होवें, राजा यम तुझको खीलों का उपभोग लगानेकी अनुमति देवें ॥ ६९ ॥

दशमी ॥

पुनर्देहि वनस्पते य एष निहितस्त्वयि ।
यथा यमस्य सादन आसातै विदथा वदन् ॥७०॥

पुनः । देहि । वनस्पते । यः । एषः । निऽहितः । त्वयि ।
यथा । यमस्य । सदने । आसातै । विदथा । वदन् ॥ ७० ॥

हे वनस्पते वृक्षविशेष त्वयि य एषः अस्थ्यात्मकः पुरुषो निहितः निक्षिप्तः पूर्वम् तं पुनर्देहि अस्मभ्यं प्रयच्छ । किमर्थम् इति चेत्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उच्यते । यथा येन प्रकारेण यमस्य राज्ञः सदने गृहे विदथा विदथानि विज्ञानानि । यद्वा यज्ञनामैतत् । यज्ञात्मकानि स्वार्जितानि कर्माणि वदन् ब्रुवन् प्रकाशयन् आसातै आसीत उपविशेत् । तदर्थं पुनर्देहीत्यर्थः ॥

हे वनस्पते ! आपमें जो अस्थिरूप पुरुष पहिले स्थापित किया था, आप उसको मुझे फिर दीजिये जिससे वह यमराजके घरमें यज्ञात्मक कर्मोंको प्रकाशित करता हुआ बैठे ॥ ७० ॥

एकादशी ॥

आ रभस्व जातवेदस्तेजस्वद्धरो अस्तु ते ।
शरीरमस्य सं दहाथैनं धेहि सुकृतामु लोके ॥७१॥

आ । रभस्व । जातऽवेदः । तेजस्वत् । हरः । अस्तु । ते ।
शरीरम् । अस्य । सम् । दह । अथ । एनम् । धेहि । सुऽकृताम् ।
ऊं इति । लोके ॥ ७१ ॥

हे जातवेदः जातानाम् उत्पन्नानां प्राणिनां वेदितरग्ने आ रभस्व मृतं दग्धुम् उपक्रमस्व ॥ ते तव तेजस्वत् तेजोभिर्ज्वालाभिर्युक्तं हरः रसहरणशीलं दहनसामर्थ्यम् अस्तु भवतु ॥ अस्य मृतस्य शरीरं सं दह सम्यग् दह । यथा भस्मसाद् भवति तथा कुर्वित्यर्थः ॥ अथ शरीरदहनानन्तरम् एनं पुरुषं सुकृताम् पुण्यकृतां लोके स्वर्गे धेहि स्थापय । यत्र पुण्यकृतो निवसन्ति तं लोकं प्रापयेत्यर्थः ॥

हे जातवेदा अग्ने ! आप जलानेके लिये तयार होवें आपकी रसको हरने वाली दहनशक्ति ज्वालाओंसे सम्पन्न होवे । इस मृतपुरुषके शरीरको आप भली प्रकार भस्म करिये और शरीर को भस्म करनेके अनन्तर इसको पुण्यात्माओंके लोक स्वर्गमें स्थापित करिये ॥ ७१ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वादशी ॥

ये ते पूर्वे परागता अपरे पितरश्च ये ।
तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु शतधारा व्युन्दती ॥ ७२ ॥

ये । ते । पूर्वे । पराऽगताः । अपरे । पितरः । च । ये ।
तेभ्यः । घृतस्य । कुल्या । एतु । शतऽधारा । विऽउन्दती ॥७२॥

ते प्रसिद्धा ये पूर्वे पूर्वभाविनः पूर्वम् उत्पन्ना ज्येष्ठाः पितरः परागताः पराङ्मुखं गताः । अपुनरावृत्तये गता इत्यर्थः । ये च अपरे अपरभाविनः पश्चाद् उत्पन्नाः पितरः तेभ्यः सर्वेभ्यः । ❀ तादर्थ्ये चतुर्थी ❀ । घृतस्य कुल्या क्षरणशीलस्य सर्पिषः कुल्या एतु गच्छतु । कुल्या कृत्रिमा सरित् इति निघण्टुः । घृतपूर्णा कुल्या प्रवहत्वित्यर्थः । कीदृशी सा । शतधारा शतसंख्यधाराभिरुपेता । अत एव व्युन्दती विविधम् आर्द्रीकुर्वती ॥

तुझसे पहिले उत्पन्न हुए तेरे जो ज्येष्ठ पितर पराङ्मुख होकर गए हैं अर्थात् अपुनरावृत्तिके लिये गए हैं और तुझसे पीछे उत्पन्न हुए अपर पितर अपुनरावृत्तिके लिये गए हैं उन सब पितरोंके लिये घृतकी कुल्या ‡ बहे, उसकी सहस्रों धारायें हों अत एव वह अनेक प्रकारसे आर्द्र करती रहे ॥ ७२ ॥

त्रयोदशी ॥

एतदा रोह वयं उन्मृजानः स्वा इह बृहदु दीदयन्ते ।
अभि प्रेहि मध्यतो माप हास्थाः पितॄणां लोकं प्रथमो यो अत्र ॥ ७३ ॥

‡ निघण्टुमें लिखा है, कि—कृत्रिम नदी कुल्या कहलाती है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एतत् । आ । रोह । वयः । उत्ऽमृजानः । स्वाः । इह । बृहत् ।

ऊं इति । दीदयन्ते ।

अभि । प्र । इहि । मध्यतः । मा । अप । हास्थाः । पितॄणाम् ।

लोकम् । प्रथमः । यः । अत्र ॥ ७३ ॥

हे मृतपुरुष एतत् परिदृश्यमानं संनिहितं वयः । वियन्ति गच्छन्ति अस्मिन्निति वयः अन्तरिक्षम् । एतद् आ रोह आरूढो भव । किं कुर्वन् । उन्मृजानः उन्मार्जनं कुर्वन् । शरीराद् उत्क्रमणेन स्वात्मानं शोधयन्नित्यर्थः ॥ स्वाः ज्ञातयः इह अस्मिन् लोके बृहत् अधिकं दीदयन्ते दीप्यन्ताम् । समृद्धा निवसन्तु । ❀ दीदयतिर्दीप्तिकर्मा ❀ । उशब्दः पदपूरणः ॥ आरोहणार्थं मध्यतः बन्धुजनमध्याद् अभि प्रेहि लोकान्तरम् अभिलक्ष्य प्रकर्षेण गच्छ ॥ अत्र अस्मिन् द्युलोके यः पितॄणां संबन्धी प्रथमः मुख्यो लोकः तं लोकं मा अप हास्थाः मा परित्यजेः । चिरं तत्रैव निवसेत्यर्थः । ❀ ओहाक् त्यागे ❀ ॥

इति तृतीयेनुवाके सप्तमं सूक्तम् ॥

अष्टादशकाण्डे तृतीयोनुवाकः ॥

हे मृतपुरुष ! तू शरीरसे उत्क्रमण करके अपने आपेको पवित्र करता हुआ इस आकाशमें आरोहण कर और तेरी जाति वाले इस लोकमें ही समृद्ध होकर निवास करें । आरोहण करनेके लिये बांधवोंके मध्यमेंसे दूसरे लोकको लक्ष्यमें रख कर चल । और इस द्युलोकमें जो पितरोंका मुख्य लोक है उसको मत त्याग अर्थात् उसमें चिरकाल तक निवास कर ॥ ७३ ॥ (१९)

तृतीय अनुवाकमें सप्तम सूक्त समाप्त

तृतीय अनुवाक समाप्त (५४३)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुर्थेनुवाके नव सूक्तानि । तत्र "आ रोहत जनित्रीं जातवेदसः" इत्यादिभिः पञ्चदशभिर्ऋग्भिश्चितिस्थम् आहिताग्निं प्रेतम् उपतिष्ठेत ॥

"आ रोहत जनित्रीम्" [१] इत्यनया ऋचा देशान्तरमृतस्य आहिताग्नेरेकाग्नेश्च अरणिद्वयम् अग्नौ प्रतापयेत् ॥

"जुहूर्दाधार द्याम्" [५] "ध्रुव आ रोह" [६] इत्याभ्याम् ऋग्भ्यां प्रेताङ्गेषु प्रक्षेप्याणि यज्ञपात्राणि अनुमन्त्रयेत ॥

चतुर्थ अनुवाकमें नौ सूक्त हैं। इसकी "आरोहत जनित्रीं जातवेदसः" आदि पन्द्रह ऋचाओंसे चितामें स्थित आहिताग्नि प्रेतके पास खड़ा होवे ।

"आरोहत जनित्रीम्" इस पहिली ऋचासे विदेशमें मरे हुए आहिताग्नि और एकाग्निकी दोनों अरणियोंको अग्निमें तपावे ।

जुहूर्दाधार द्याम्" (५) "ध्रुव आरोह" (६) ऋचाओंसे प्रेतके अंगोंमें फेके जाते हुए यज्ञपात्रोंका अनुमन्त्रण करे ।

तत्र प्रथमा ॥

आ रोहत जनित्रीं जातवेदसः पितृयाणैः सं व आ रोहयामि ।
अवाड्ढव्येषितो हव्यवाह ईजानं युक्ताः सुकृतां धत्त लोके ॥ १ ॥

आ । रोहत । जनित्रीम् । जातऽवेदसः । पितृऽयानैः । सम् । वः । आ । रोहयामि ।

अवाट् । हव्या । इषितः । हव्यऽवाहः । ईजानम् । युक्ताः । सुऽकृताम् । धत्त । लोके ॥ १ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे जातवेदसः। वैतानिकाग्न्यपेक्षया बहुवचनम्। "पश्चा हि स तर्हि भवति" इति श्रुतेः प्रत्यहं होमानन्तरम् आहवनीयशक्तेर्गार्हपत्येऽनुप्रवेशाद् एतद्योनेर्दक्षिणाग्नेश्च तत्रैवानुप्रवेशाद् बहुवदुक्तिः। स्मार्ताग्निपक्षे पूजायां बहुवचनम्। जातानि भूतानि विदन्ति जातैः प्राणिभिर्विद्यन्ते ज्ञायन्त इति वा जातवेदसः। ❀ कर्तरि कर्मणि वा असुन् ❀। यद्वा वेद इति धननाम। जातस्य प्राणिमात्रस्य वेदो धनं येभ्योग्निभ्यो भवति। उपलक्षणम् एतत्। सर्वेषां वैदिकानां स्मार्तानां च कर्मणाम् अग्निसाध्यत्वात् तत्कर्मफलस्य प्रापयितारः हे गार्हपत्यादयोग्नयः जनित्रीम् स्वोत्पादिकाम् अरणिम्। ❀ "जनिता मन्त्रे" इति निपातनात् णिलोपः। प्रत्येकविवक्षया एकवचनम् ❀। आ रोहत शक्त्यात्मना प्रविशत॥ अहमपि अरणी आ रोहतो वः युष्मान् पितृयाणैः। पितरो यान्ति एभिः पथिभिः पित्र्यं लोकम् इति पितृयाणाः पन्थानः। ❀ करणे ल्युट् ❀। द्विविधो हि मार्गः देवयानः पितृयाण इति। देवलोकप्राप्तिसाधनभूतो देवयानः। पितृलोकप्रापक इतरः। तत्र तैः पितृयाणैः समा रोहयामि सम्यक् विधिपूर्वकम् अधिरोहयामि अरण्योः। अग्नीनां तत्रानुप्रवेशे पथा भाव्यम् इति पितृसंबन्धात् पन्थास्तादृश उक्तः। आहिताग्नेर्मृतत्वाद् उत्तरत्र तेन अग्निभिः साध्यानां कर्मणाम् अभावात् समारोपणम्॥ इतः पूर्वं तु हव्यवाहः। द्विविधं हि हविः। दैवं हविर्हव्यम् पित्र्यं हविः कव्यम्। पूर्वं पित्र्यहविःसंबन्धाभावात् हव्यम् इत्युक्तम्। हव्यं दैवं वहतीति हव्यवाहः अग्निः। ❀ "कर्मण्यण्" । हविर्वोढृत्वाकारेण एकत्वाद् एकवचनम् ❀। अग्निरपि द्विविधः। हव्यवाहनः कव्यवाहन इति। इषिता इषितानि इष्टानि। ❀ "तीषुसह०" इति इडागमः ❀। तत्तत्फलसाधनत्वेन अभिमतानि यजमानेन दत्तानि हव्या हव्यानि हवींषि अवाट् अवा-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षीत् । उद्दिष्टान् देवान् प्रापिपत् । ❀ वहेर्लुङि सिच् । "वद-व्रज०" इति हलन्तलक्षणा वृद्धिः । "बहुलं छन्दसि" इति इड-भावः । "झलो झलि" इति सकारलोपः । "हल्ङ्या०" इत्या-दिना तिपो लोपे ढत्वजश्त्वचर्त्वानि ❀ । अतः हे अग्नयः यूयं युक्ताः परस्परं समवेताः सन्तः ईजानम् येन यूयम् आहिता इष्टाश्च तम् इष्टवन्तं देशान्तरे मृतं यजमानं सुकृताम् सुकृतकर्मणां लोके स्थाने धत्त धारयत स्थापयत । ❀ ईजानम् इति । यजेर्लिटः कानचि "वचिस्वपि०" इति संप्रसारणे "लिट्यभ्यासस्य०" इति अभ्यासस्य संप्रसारणम् ❀ ॥ यद्वा हे जातवेदसः जनित्रीम् अर-णीम् आ रोहत आहवनीयादिशक्तिरूपेण । अरणी आरूढवतो वः युष्मान् पितृयाणैर्मार्गैः समा रोहयामि । पुण्यलोकम् इति शेषः । यजमानस्य देशान्तरे मरणात् तत्प्रतिनिधित्वेन तदाहिता-नाम् अग्नीनां परलोकनयनम् । अत एव अग्नीनामपि पितृयाणः पन्था उक्तः । गार्हपत्याद्याकारेण परलोकनयने तदर्थं हविषोऽपेक्षि-तत्वात् हविःसद्भावं तन्नेतारम् अग्निं च दर्शयति । हव्यवाहः । अत्र हविषः अग्निदेवत्यत्वात् हव्यम् इत्युक्तम् । तद्वहतीति हव्य-वाहः अग्निः । इषिता इषितानि । ❀ इष गताविति धातुः ❀ । अस्माभिः संस्कर्तृभिः प्रेषितानि प्रत्तानि हव्या हव्यानि अवाट् अवाक्षीत् वक्ष्यति प्रापयिष्यति युष्मान् । ❀ वहेश्छान्दसो लुङ् ❀ । एवं पुण्यलोकं प्रापिताः हविर्भिः प्रीणयिष्यमाणाश्च हे अग्नयः यूयं युक्ताः समाहिताः सन्तः । ❀ युज समाधौ इति धातुः ❀ । ईजानम् इष्टवन्तं पुण्यलोके स्थापयतेति ॥

हे गार्हपत्य आदि अग्नियों ! तुम जातवेदा हो अर्थात् उत्पन्न हुए प्राणिमात्र तुमसे धन पाते हैं, अत एव तुम जातवेदा हो (अर्थात् क्या वैदिक और क्या स्मार्त सब ही कर्म अग्निसाध्य होनेसे कर्मफलको प्राप्त करानेवाले हैं) ऐसे तुम अपनेको उत्पन्न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करने वालीं अरणियोंमें प्रवेश करो, मैं भी अरणीमें आरोहण करते हुए तुमको पितृयानोंके द्वारा अरणियोंमें आरोहण कराता हूँ (जिन मार्गोंसे पितर पितृलोकमें जाते हैं वे पितृयान कहलाते हैं । मार्ग दो प्रकारका होता है देवयान और पितृयान । देवलोक की प्राप्तिका साधनरूप मार्ग देवयान कहलाता है और दूसरा पितृयान कहलाता है । आहिताग्निके मर जाने पर आहिताग्नि अग्नियोंसे वियुक्त होनेके कारण भविष्यमें अग्निसाध्य कर्मोंको न कर सकेगा अत एव अग्नियोंका समारोहण कहा । अब हवि दो प्रकारकी होती है दैव हवि हव्य कहलाती है, पित्र्य हवि कव्य कहलाती है पहिले पित्र्यहविके अभाववश यहाँ हव्यका वर्णन है । दैव हव्यको वहन करनेवाले अग्नि हव्यवाट् कहलाते हैं । और पितरोंकी हविका वहन करने वाले कव्यवाट् कहलाते हैं ऐसे) हव्यवाहन अग्निने यजमानके दिये हुए हव्योंको तत् तत् कर्मोंका फल देने वाले देवताओंको पहुँचाया था, अत एव हे अग्नियों ! जिसने तुम्हारा आधान और यजन किया था उस विदेशमें मरे हुए यजमानको तुम पुण्यात्माओंके लोकमें स्थापित करो ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

देवा यज्ञमृतवः कल्पयन्ति हविः पुरोडाशं स्रुचो यज्ञायुधानि ।
तेभिर्याहि पथिभिर्देवयानैर्यैर्राजाना स्वर्गं यन्ति लोकम्

देवाः । यज्ञम् । ऋतवः । कल्पयन्ति । हविः । पुरोडाशम् । स्रुचः । यज्ञऽआयुधानि ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तेभिः । याहि । पथिऽभिः । देवऽयानैः । यैः । ईजानाः । स्वःऽगम् । यन्ति । लोकम् ॥ २ ॥

देवाः इन्द्राद्या यष्टव्या देवताः ऋतवः वसन्ताद्याश्च कालाः यज्ञं कल्पयन्ति कुर्वन्ति। स्वयं हविःस्वीकारार्थं यष्टॄणां च फलसिद्ध्यर्थं यज्ञं निर्मिमते । तत्स्वरूपं दर्शयति । हविः चर्वाज्यसोमलक्षणं हविः । पुरोडाशम् पिष्टमयम् । स्रुचः । उपलक्षणम् एतत् । जुहादीनि यज्ञोपयुक्तानि । यज्ञायुधानि पात्राणि आयुधवद् आयुधानि । यथा योद्धारः आयोधनसाधनैः शस्त्रादिभिर्द्विषो निघ्नन्ति एवं यष्टारोपि एतैः स्रुगादिपात्रैर्यज्ञविद्वेषकारिणः स्वोपद्रवकारिणश्च परिहरन्तीति आयुधत्वोपचारः । एवं देवर्तुनिर्मितपुरोडाशयज्ञायुधात्मकयज्ञम् अनुष्ठितवन् हे आहिताग्ने प्रेत त्वं देवयानैः देवा यान्ति एभिरिति देवयानास्तैर्देवलोकप्राप्तिसाधनैस्तेभिस्तैः पथिभिः मार्गैः याहि गच्छ । गन्तव्यं स्थानं दर्शयति । ईजानाः इष्टवन्तः कृतयज्ञाः पुरुषा यैः पथिभिः स्वर्गम् सुखात्मकं लोकम् स्थानं यन्ति गच्छन्ति ॥

इन्द्र आदि पूजनीय देवता, वसन्त आदि ऋतु यज्ञकी कल्पना करते हैं । चरु घृत और सोमरूप हवि, पिष्टमय पुरोडाश, स्रुवा आदि यज्ञके पात्र, यज्ञके जुहू आदि पात्ररूप आयुध भी यज्ञकी कल्पना करते हैं । इस प्रकार देवनिर्मित पुरोडाश यज्ञायुधात्मक यज्ञका अनुष्ठान करने वाले हे आहिताग्ने प्रेत ! तू देवयान मार्गों से जा । यज्ञ करने वाले पुरुष जिन मार्गोंसे जाते हैं जिन मार्गोंसे सुखात्मक स्वर्गलोकको जाते हैं उस देवयानमार्गसे तू प्रस्थान कर२

तृतीया ॥

ऋतस्य पन्थामनु पश्य साध्वङ्गिरसः सुकृतो येन यन्ति।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तेभिर्याहि पथिभिः स्वर्गं यत्रादित्या मधु भक्षयन्ति
तृतीये नाके अधि वि श्रयस्व ॥ ३ ॥

ऋतस्य । पन्थाम् । अनु । पश्य । साधु । अङ्गिरसः । सुऽकृतः ।
येन । यन्ति ।
तेभिः । याहि । पथिऽभिः । स्वऽगम् । यत्र । आदित्याः । मधु ।
भक्षयन्ति । तृतीये । नाके । अधि । वि । श्रयस्व ॥ ३ ॥

ऋतस्य सत्यभूतस्य यज्ञस्य पन्थाम् पन्थानम् । ❀ सुपो डादेशः ❀ । साधु सम्यक् । पथो वा विशेषणम् । ❀ सुपो लुक् ❀ । साधुं समीचीनम् अर्चिरादिमार्गम् अनु पश्य अनुक्रमेण जानीहि । ❀ पश्यतिर्ज्ञानार्थः ❀ । सुकृतः सुकर्माणः अङ्गिरसः एतत्संज्ञका महर्षयः अङ्गारोत्पन्नाः । "येङ्गारा आसंस्तेऽङ्गिरसोऽभवन्" इति ऐतरेयकश्रुतेः [ऐ० ब्रा० ३. ३४] । येन पथा यन्ति स्वर्गलोकम् । अङ्गिरसां सत्त्रयागानुष्ठानेन स्वर्गलोकप्राप्तिः ऐतरेयके श्रूयते । "अङ्गिरसो वा इमे स्वर्गाय लोकाय सत्त्रम् आसते" इति । "तं स्वर्यन्तोऽब्रवन्नेतत् ते ब्राह्मण सहस्रम् इति" [इति ऐ० ब्रा० ५. १४] । तेभिः तैः पथिभिः मार्गैः स्वर्गं याहि । प्रेत एव संबोध्यते । यत्र यस्मिन् स्वर्गे आदित्याः अदितेः पुत्रा देवाः मधु मधुवत्प्रीतिकरं मधुरम् अमृतं भक्षयन्ति आस्वादयन्ति । गत्वा च तृतीये त्रित्वसंख्यापूरके उत्तमे नाके । कम् सुखम् । अकम् दुःखम् । न विद्यते अकं यस्मिन् । ❀ "नभ्राण्नपात्०" इति नाकशब्दो नलोपाभावेन निपातितः । अधिः सप्तम्यर्थानुवादी ❀ । तस्मिन् सुखात्मके स्वर्गे वि श्रयस्व विश्रितः प्रतिष्ठितो भव । यद्वा स्वर्गस्य लोकस्य उत्तममध्यमाधमभेदेन त्रिवृत्त्वात् तृतीये नाक इत्युक्तम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा च ऐतरेयकम् । "त्रयो वा इमे त्रिवृतो लोकाः" इति [ऐ० ब्रा० २. १७] । मन्त्रवर्णोपि "तिस्रो भूमीर्धारयन्त्रीँरुत द्यून्" [ऋ० २. २७. ८] इति । तथा "यदिन्द्राग्नी परमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्याम् अवमस्याम् उत स्थः" इति च [ऋ० १. १०८. १०] ॥

हे प्रेत ! तू सत्यभूत यज्ञके समीचीन अर्चिरादिमार्गसे भली प्रकार जान अंगार गोत्रमें ‡ उत्पन्न हुए अङ्गिरस महर्षि जिस मार्गसे ÷ स्वर्गको गए हैं उन मार्गोंसे तू स्वर्गलोकको जा । जिस स्वर्गमें अदितिके पुत्र देवता मधुकी समान प्रसन्न करने वाले मधुर अमृतका आस्वादन लेते हैं उस दुःखके लेशसे भी रहित तृतीय स्वर्गलोकमें हे प्रेत ! तू प्रतिष्ठित हो ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

त्रयः सुपर्णा उपरस्य मायू नाकस्य पृष्ठे अधि विष्टपि श्रिताः ।
स्वर्गा लोका अमृतेन विष्ठा इषमूर्जं यजमानाय दुहाम्

त्रयः । सुऽपर्णाः । उपरस्य । मायू इति । नाकस्य । पृष्ठे । अधि । विष्टपि । श्रिताः ।

स्वःऽगाः । लोकाः । अमृतेन । विऽस्थाः । इषम् । ऊर्जम् । यजमानाय । दुहाम् ॥ ४ ॥

‡ ऐतरेय ब्राह्मण ३ । ३४ में लिखा है, कि–"येऽङ्गारा आसन् तेऽङ्गिरसोऽभवन् ।–जो अंगार थे वे अंगिरस हुए ।"

÷ अंगिरसोंको सत्रयागानुष्ठानसे स्वर्गप्राप्तिका वर्णन ऐतरेय ब्राह्मण ५ । १४ में लिखा है, कि--अंगिरसो वा इमे स्वर्गाय लोकाय सत्रं आसते" ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्रयः त्रिसंख्याकाः सुपर्णाः सुपतना अग्निसूर्यसोमाः उपरस्य। "उपर उपलो मेघो भवति" इति यास्कः [नि० २.२१]। तस्य मेघस्य संबन्धिनौ मायू। ❀ मायुशब्दो लुप्तमत्वर्थीयः ❀। मायुमन्तौ शब्दकारिणौ वायुपर्जन्यौ। तौ हि मेघसंबन्धेन शब्दकारिणौ। एते अग्न्यादयः अधिष्ठातृदेवाः क्रमेण नाकस्य स्वर्गस्य पृष्ठे उपरिभागे तृतीयकक्ष्यायां विष्टपि। विष्टपशब्दः अन्तरिक्षवचनः। ❀ सप्तम्येकवचने अन्त्यलोपश्छान्दसः ❀। तस्मिन् विष्टपे अधि श्रिताः। अग्न्यादयः स्वर्गलोकम् वायुपर्जन्यावन्तरिक्षलोकम् अधितिष्ठन्तीत्यर्थः। एतैरग्न्यादिभिरधिष्ठिताः स्वर्गाः सुखात्मका लोकाः स्वकर्मभिरार्जिताः। कर्मभेदात् फलवैचित्र्येन उत्तमादिभेदेन वा स्वर्गा लोका इति बहुवचनम्। अमृतेन अमरणसाधनेन सुधारसेन विष्टाः व्याप्ताः पूर्णाः। ❀ विष्लृ व्याप्तौ। अस्मात् निष्ठाप्रत्ययः ❀। यजमानाय यज्ञं स्मार्तं वैदिकं वा अनुष्ठितवते प्रेताय इषम् इष्यमाणम् अन्नम् ऊर्जम् बलकरम् अन्नरसं च दुहाम् दुहतां प्रयच्छन्तु। ❀ दुहेर्लोटि झस्य अदादेशः। "आम् एतः"। "लोपस्त आत्मनेपदेषु" इति तकारलोपः। "बहुलं छन्दसि" इति झादेशस्य तस्य रुडागमः ❀॥

सुन्दरतासे गमन करने वाले तीन अग्नि वायु और सूर्य, तथा मेघके सम्बन्धसे शब्द करनेवाले वायु और पर्जन्य, ये सब अधिष्ठात्री देवता क्रमसे नाकके ऊपर विष्टपमें स्थित हैं, तात्पर्य यह है, अग्नि आदिक स्वर्गलोकमें और वायु तथा पर्जन्य अन्तरिक्षलोकमें अधिष्ठित हैं। यह अपने कर्मोंसे अर्जित, अग्नि आदिसे अधिष्ठित स्वर्गलोक अमरणके साधन सुधारससे पूर्ण हैं, ये स्मार्त वा वैदिक कर्मका अनुष्ठान करने वाले प्रेत यजमानके लिये अभिलषित अन्न और अन्नरस प्रदान करें ॥४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पञ्चमी ॥

जुहूर्दाधार द्यामुपभृदन्तरिक्षं ध्रुवा दाधार पृथिवीं प्रतिष्ठाम् ।
प्रतीमां लोका घृतपृष्ठाः स्वर्गाः कामंकामं यजमानाय दुहाम् ॥ ५ ॥

जुहूः । दाधार । द्याम् । उपऽभृत् । अन्तरिक्षम् । ध्रुवा । दाधार । पृथिवीम् । प्रतिऽस्थाम् ।
प्रति । इमाम् । लोकाः । घृतऽपृष्ठाः । स्वःऽगाः । कामम्ऽकामम् । यजमानाय । दुहाम् ॥ ५ ॥

जुहूः जुहोति हूयते वा अनया हविरिति जुहूर्होमसाधनभूतः पात्रविशेषः । ❀ जुहोतेर्द्वे च इति क्विप् द्विर्वचनं चकाराद्धातोर्दीर्घश्च ❀ । द्याम् द्युलोकं दाधार धृतवती । ❀ धरतेर्भौवादिकस्य लिटि तुजादित्वाद् अभ्यासस्य दीर्घः ❀ । उपभृत् उप समीपे जुह्वाः भ्रियते धार्यत इति उपभृत् एतत्संज्ञकः पात्रविशेषः अन्तरिक्षम् अन्तरा क्षान्तं मध्यमलोकं धरति । ध्रुवा बर्हिषि आसादनम् आरभ्य यज्ञपरिसमाप्तेरचलभावा ध्रुवा प्रतिष्ठिता एतत्संज्ञका स्रुक् प्रतिष्ठाम् चराचरात्मकस्य जगत आश्रयभूतां पृथिवीम् प्रथितां भूमिं दाधार । एवं जुह्वाद्यास्तिस्रः स्रुचो द्युलोकादिधारकत्वेन प्रशस्ताः ॥ इमाम् ध्रुवया धारितां पृथिवीं प्रति अभिलक्ष्य घृतपृष्ठाः । ❀ घृ क्षरणदीप्त्योः ❀ । दीप्तोपरिभागाः सर्वतो ज्योतिष्मन्तः स्वर्गाः सुखात्मका लोकाः । कदयात्रयवत्त्वाद् बहुवचनम् । यजमानाय इष्टवते कामंकामम् । ❀ "नित्यवीप्सयोः" इति द्विर्भावः ❀ । काम्यमानानि सर्वाणि फलानि दुहाम् ॥ पूर्वस्मिन्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मन्त्रे तृतीये नाके अधि वि श्रयस्वेति उत्तमं स्वर्गं लोकम् आरूढवतो यजमानस्य स्वकर्मार्जिताः पुण्यलोकाः सुकृतफलं प्रयच्छन्तु इत्युक्तम्। अस्मिंस्तु मन्त्रे पुण्यक्षयानन्तरं मर्त्यलोकं प्राप्तवतः अस्यैवाहिताग्नेः पूर्वजन्मार्जितसुकृतवासनाबलाद् इहलोकेपि पुनः स्वर्गलोकप्रापकाणि यज्ञादीनि समीचीनानि कर्माणि भवन्तु इत्याशास्यते। तथा च भगवतोक्तम्।

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।

ते पुण्यम् आसाद्य सुरेन्द्रलोकम् अश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान्।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति॥ इति [भ० गी० ९. २०, २१]॥

प्राप्य पुण्यकृतां लोकान् उषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते॥
तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन॥
इति च [भ० गी० ६. ४३]॥

जिससे हवि होमी जाती है वह होमका पात्र जुहू कहलाता है उस जुहूने द्युलोकको पुष्ट किया है, और जुहूके समीप धारण किया जाने वाला उपभृत् नामक पात्र अन्तरिक्षलोकको धारण करता है, तथा यज्ञमें बैठनेसे लेकर यज्ञकी समाप्ति तक अचल रहने वाला ध्रुवा पात्र—चराचरात्मक जगत्की आश्रयभूता प्रतिष्ठा विस्तृत भूमिको धारण करता है [इस प्रकार जुहू आदि तीनों स्रुचकी द्युलोक आदिके आधारकरूपसे प्रशंसा की] इस ध्रुवा से धारित पृथ्वीको लक्ष्यमें रख कर दमकते हुए उपरि भागवाले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुखात्मक स्वर्गलोक, यज्ञ करने वाले यजमानके लिये सकल अभिलषित फलोंको दें ‡ ॥ ५ ॥

‡ पहिले मन्त्रमें "तृतीये नाके अधि विश्रयस्व" । से कहा, कि-उत्तम लोक स्वर्गमें चढ़ते हुए यजमानको अपने कर्मसे संपादित पुण्यलोक पुण्यके फलको देवें !" अब इस मन्त्रमें यह कहा है, कि- पुण्यक्षयके अनन्तर यदि यह यजमान मृत्युलोकमें आजावे तो इस आहिताग्निको पूर्वजन्ममें एकत्रित किये हुए पुण्योंकी वासनाके बलसे इस लोकमें भी फिर स्वर्गलोकको प्राप्त कराने वाले यज्ञ आदि समीचीन कर्म प्राप्त हों । इसी बातको श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है, कि-"त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते । ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकं अश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवलोकान् ॥ ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ॥-ऋक् यजु साम इन तीनों वेदोंको जानने वाले पुरुष ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंसे यजन कर अन्तमें सोमका पान करते हैं तब उनके पाप प्रक्षालित होजाते हैं और वे मुझसे स्वर्गप्राप्तिकी प्रार्थना करते हैं। तब वे पुण्यमय सुरेन्द्रलोकको पाकर स्वर्गमें (मनुष्योंको दुर्लभ) दिव्य भोगोंको भोगते हैं, उस विशाल स्वर्गलोकमें भोग भोग चुकने पर वह पुण्य क्षीण होजानेसे मृत्युलोकमें प्रवेश करते हैं" अध्याय ९ श्लोक २० और २१ ॥ तथा भगवद्गीताके छठे अध्यायके तैंतालीसवें श्लोक में कहा है, कि-"प्राप्य पुण्यकृतां लोकान् उषित्वा शाश्वतीः समाः । शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥ तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् । यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥-अर्थात् योगभ्रष्ट पुरुष पुण्य करने वालोंके लोकको प्राप्त होता है और तहाँ बहुत वर्षों तक रह कर बादको श्रीमान् और पवित्रतासे रहने वालोंके घरमें उत्पन्न होता है, फिर तहाँ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

षष्ठी ॥

ध्रुव आ रोह पृथिवीं विश्वभोजसमन्तरिक्षमुपभृदा क्रमस्व ।
जुहु द्यां गच्छ यजमानेन साकं स्रुवेण वत्सेन दिशः प्रपीनाः सर्वा धुक्ष्वाहूयमानः ॥ ६ ॥

ध्रुवे । आ । रोह । पृथिवीम् । विश्वऽभोजसम् । अन्तरिक्षम् । उपऽभृत् । आ । क्रमस्व ।
जुहु । द्याम् । गच्छ । यजमानेन । साकम् । स्रुवेण । वत्सेन । दिशः । प्रऽपीनाः । सर्वाः । धुक्ष्व । अहूयमानः ॥ ६ ॥

हे ध्रुवे एतन्नामधेये स्रुक् । ❀ "आमन्त्रितस्य च" इति षाष्ठिकम् आद्युदात्तत्वम् ❀ । विश्वभोजसम् विश्वस्य भोजयित्रीं सस्यादिद्वारेण विश्वभोगाधिकरणभूतां वा पृथिवीम् आ रोह अधितिष्ठ । यजमानेन साकम् इति तृतीयवाक्ये समाम्नातस्य सर्वत्रानुषङ्गः । यजमानोपि पृथिवीम् अधितिष्ठतु । ❀ "सहयुक्तेऽप्रधाने" इति तृतीया ❀ । ध्रुवा नाम स्रुक् बर्हिषि आसादिता यज्ञपरिसमाप्तिपर्यन्तम् आज्येन संपूर्णा अविचलिता वर्तते । पृथिव्यपि स्थिरा । अतस्तस्या सा अधिष्ठात्रीत्युच्यते ॥ हे उपभृत् अन्तरिक्षम् मध्यमलोकम् आ क्रमस्व आक्राम । ❀ ज्योतिरुद्गमनाभावेपि "आङ उद्गमने" इति आङ्पूर्वात् क्रमेर्व्यत्ययेन आत्मनेपदम् ❀ । अध्वर्युणा हि हस्ताभ्यां जुहूरुपभृच्च यागकाले धार्येते ।

पूर्वजन्मकी बुद्धिको पाता है और हे कुरुनन्दन ! फिर सिद्धि पानेके लिये उद्योग करने लगता है"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तत्र उपभृतं सव्यहस्तेन गृहीत्वा दक्षिणेन जुह्वा जुहोति । अतोत्र जुह्वा उपभृत् अधस्तनीति मध्यमलोकाधिष्ठातृत्वेन उच्यते ॥ हे जुहु द्याम् दिवं यजमानेन साकम् सह गच्छ। हे ध्रुवादिस्रुचः यूयं क्रमेण पृथिव्यादिलोकान् यजमानेन अधिष्ठापयतेत्यर्थः ॥ अथ प्रत्यक्षवदुक्तिः । एवं स्रग्भिर्लोकत्रयं प्रापितो यजमानस्त्वम् अहृणीयमानः । ❀ "हृणीङ् रोषे लज्जायाम्" इति कण्ड्वादौ पठ्यते ❀ । कथम् अहं व्याप्ता दिशः अभिलषितानि दुहीयेति विचिकित्साम् अकुर्वन् स्रुवेण वत्सेन वत्सवद् वत्सः वत्सो यथा प्रथमं स्तन्यपानेन मातरं पीनोध्नीं करोति तद्वत् स्रुवोपि सर्वाणि जुह्वादीनि पात्राणि आज्यपूरितानि करोतीति वत्सत्वेन रूपितः। वत्सरूपेण स्रुवेण प्रपीनाः प्रकर्षेण प्रवृद्धस्तनीः । प्रस्नुतस्तनीरित्यर्थः । ताः सर्वा दिशः प्राच्याद्या दश दिशः कर्म धुक्ष्व अभिलषितानि फलानि । ❀ दुहिर्द्विकर्मकः । प्रपीना इति । प्यायतेर्निष्ठायां पीभावः । "ओदितश्च" इति निष्ठानत्वम् ❀ ॥

हे ध्रुवा नामक स्रुक् ! तू सस्य आदि विश्वभोगकी अधिकरणभूत पृथ्वी पर आरोहण कर और यजमान भी पृथ्वी पर अधिष्ठित रहे । [ध्रुवा नामक स्रुच यज्ञमें रखी जाने पर यज्ञकी पूर्तिपर्यन्त घृतसे पूर्ण अविचलित रहती है और पृथिवी भी स्थिर होती है अत एव वह उसकी अधिष्ठात्री कहलाती है] हे उपभृत् ! तू मध्यमलोक अन्तरिक्षमें चढ़ [अध्वर्यु यागके समय दोनों हाथोंसे जुहू और उपभृत्को धारण करता है । बायें हाथसे उपभृत्को पकड़ दायें हाथसे जुहूसे होम करता है अत एव जुहू से नीचे रहनेके कारण उपभृत् मध्यमलोककी अधिष्ठात्री कहलाती है] हे जुहु ! तू द्यलोकको यजमानके साथ जा, तात्पर्य यह है, कि-हे ध्रुवा आदि स्रुच् ! तुम इस प्रकार क्रमसे यजमानके द्वारा पृथिवी आदि लोकोंमें स्थापित की जाओ । इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकार स्रुच् आदिके द्वारा तीनों लोकोंको प्राप्त हुआ तू यजमान "मैं किस प्रकार इन व्याप्त दिशाओंमेंसे अभिलषित वस्तुओंको दुहूँ" इस प्रकार ऊहापोह न करता हुआ स्रुचरूपी वत्ससे † प्रवृद्धस्तनी सब दिशाओंसे अभिलषित फलोंको दुह ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो महीरिति यज्ञकृतः सुकृतो येन यन्ति अत्रादधुर्यजमानाय लोकं दिशो भूतानि यदकल्पयन्त

तीर्थैः । तरन्ति । प्रऽवतः । महीः । इति । यज्ञऽकृतः । सुऽकृतः । येन । यन्ति । अत्र । अदधुः । यजमानाय । लोकम् । दिशः । भूतानि । यत् । अकल्पयन्त ॥ ७ ॥

तीर्थैः । ❀ तरन्ति दुष्कृतानि एभिरिति करणे कथन् प्रत्ययः ❀। तरणसाधनैर्यज्ञादिभिः प्रवतः । ❀ "उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे" इति वतिप्रत्ययः । वतेः अव्ययत्वेपि अर्थग्रहणसामर्थ्याल्लिङ्गसंख्यायोगः ❀ । प्रवतः प्रकृष्टा महीः महतीः आपदस्तरन्ति अतिक्रामन्ति इति एवं यज्ञादीनि आपदुत्तरकाणि भवन्तीति बुद्ध्या यज्ञकृतः यज्ञं वैदिकं स्मार्तं च कुर्वाणा अत एव सुकृतः सुकृतकर्माणो येन पथा यन्ति प्राप्नुवन्ति पुण्यलोकम् अत्र अस्मिन् पुण्यलोकप्राप्तिसाधने पथि तं पन्थानम् अनुसृत्य आगच्छते यजमानाय तदर्थं लोकम् पुण्यार्जितम् अदधुः विदधतु यज्ञकृतः सुकृतकर्तारः दिशो

† जैसे बछड़ा पहिले स्तनोंका पान कर माताके ऐनोंको मोटा कर देता है, इसी प्रकार स्रुच् भी जुहू आदि सब पात्रोंको घृतसे पूरित करता है अतः उसको बछड़ा कहा है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूतानि वा। ❀ दधातेश्छान्दसो लुङ् ❀। यत् ❀ सुपो लुक् ❀। यं लोकं दिशा "स्रवेण वत्सेन दिशः प्रपीनाः सर्वा धुक्ष्व" इति पूर्वमन्त्रे अभिलषितफलप्रदत्वेन उपवर्णिता दिशः भूतानि भवन्तवन्ति सर्वदिगवस्थितप्राणिजातानि च अकल्पयन्त यजमानार्थं समपादयन्। तं लोकम् अदधुरिति पूर्वेण संबन्धः॥

"पापोंसे पार उतारने वाले तीर्थ यज्ञ आदिसे पुरुष बड़ी २ विशाल विपत्तियोंको लाँघ जाते हैं" इस प्रकार यज्ञ आदि आपत्तिसे पार करने वाले होते हैं—यह विचार वैदिक और स्मार्त-कर्मरूप यज्ञको करने वाले पुण्यात्मा पुरुष जिस मार्गसे स्वर्ग-लोकको प्राप्त होते हैं, स्वर्गलोकप्राप्तिके मार्गसमूहमें उस मार्गको ढूँढनेके लिये आते हुए इस यजमानके लिये यज्ञकर्ता पुण्यात्मा दिशा वा भूत उस मार्गको और लोकको बनावें॥ ७॥

अष्टमी॥

अङ्गिरसामयनं पूर्वो अग्निरादित्यानामयनं गार्हपत्यो दक्षिणानामयनं दक्षिणाग्निः।
महिमानमग्नेर्विहितस्य ब्रह्मणा समङ्गः सर्व उप याहि शग्मः॥ ८॥

अङ्गिरसाम्। अयनम्। पूर्वः। अग्निः। आदित्यानाम्। अयनम्। गार्हऽपत्यः। दक्षिणानाम्। अयनम्। दक्षिणऽअग्निः। महिमानम्। अग्नेः। विऽहितस्य। ब्रह्मणा। सम्ऽअङ्गः। सर्वः। उप। याहि। शग्मः॥ ८॥

परितश्चिताम् आहिताग्नेर्गार्हपत्यादयोऽग्नयो विहृता यथाप्रदेशं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्तन्ते । तेऽग्नयः अभिलषितप्रदा भवन्तु इत्ययम् अर्थः इत उत्तरै-र्मन्त्रैः प्रतिपाद्यते । अङ्गिरसाम् अयनं नाम सत्त्रात्मकः क्रतुविशेषः । स एव पूर्वः पूर्वस्यां दिशि वर्तमानोग्निः आहवनीयः । आदित्या-नाम् अयनम् एतत्संज्ञकः सत्त्रयागः गार्हपत्योग्निः । ❀ "गृह-पतिना संयुक्ते ञ्यः" इति ञ्यप्रत्ययः ❀ । दक्षिणानाम् दक्षा एव दक्षिणाः दक्षाणाम् अयनं सत्त्रविशेषः स एव दक्षिणाग्निः दक्षिणस्यां दिशि वर्तमानोग्निः ॥ एवं ब्रह्मणा मन्त्रेण मन्त्रसाध्य-सत्त्रयागात्मना वा विहितस्य निर्मितस्य पृथगायतनेषु स्थापितस्य अग्नेर्महिमानम् आहवनीयादिसंज्ञाभिर्व्यवहियमाणां विभूतिं समङ्गः संहतावयवः सर्वः संपूर्णावयवः अतः शग्मः । सुखनामैतत् । सुखितः सन् उप याहि । सर्वैरग्निभिर्दह्यमानः प्रेत एवम् उच्यते॥

[अब यहाँसे लेकर अगले मंत्रोंमें यह प्रतिपादन किया जाता है, कि–] आहिताग्निकी चारों ओरसे चिनी हुई चितामें रक्खी हुई गार्हपत्य आदि अग्नियें यथाप्रदेश रहती हैं । वे अग्नियें अभि-लषित फलको देवें । पूर्वदिशामें वर्तमान आहवनीय अग्नि अंगि-राओंका अयन नामक सत्रात्मक एक क्रतु है । गार्हपत्य अग्नि आदित्योंका अयन नामक सत्रयाग है । दक्षिणदिशामें वर्तमान दक्षिणाग्नि दक्षायन नामक सत्र है । इस प्रकार मंत्रसाध्य सत्र-यागरूपसे पृथक् २ स्थानोंमें स्थापित अग्निकी आहवनीय आदि नामोंसे व्यवहृत विभूतिको हे प्रेत ! तू सम्पूर्णावयव होकर अत एव सुख पाता हुआ प्राप्त हो अर्थात् तू सब अग्नियोंसे भस्म हो ८

नवमी ॥

पूर्वो अग्निष्ट्वा तपतु शं पुरस्ताच्छं पश्चात् तपतु गार्हपत्यः दक्षिणाग्निष्टे तपतु शर्म वर्मोत्तरतो मध्यतो अन्त-रिक्षाद् दिशोदिशो अग्ने परि पाहि घोरात् ॥९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्वः । अग्निः । त्वा । तपतु । शम् । पुरस्तात् । शम् । पश्चात् ।

तपतु । गार्हऽपत्यः ।

दक्षिणऽअग्निः । ते । तपतु । शर्म । वर्म । उत्तरतः । मध्यतः ।

अन्तरिक्षात् । दिशःऽदिशः । अग्ने । परि । पाहि । घोरात् ९

हे अग्निभिर्दह्यमान प्रेत पूर्वो अग्निः पूर्वस्यां दिशि दीप्यमान आहवनीयः पुरस्तात् पूर्वस्यां दिशि शम् सुखं यथा तथा त्वा त्वां तपतु तापयतु दहतु । तथा गार्हपत्यः गृहपतिना यजमानेन आहितः सर्वाग्नियोनिभूतोग्निः पश्चात् पश्चिमभागे शम् सुखं तपतु त्वां दहतु । दक्षिणाग्निः दक्षिणस्यां दिशि निहितोग्निस्ते त्वदर्थं शर्म सुखं यथा तथा वर्म कवचं पराभेद्यं यथा तथा तपतु । कवचं यथा सर्ववारकम् यद्वा शर्म गृहम् गृहं यथा सर्वाच्छादकम् एवं सर्वं त्वदीयशरीरम् आवृत्य दहत्वित्यर्थः ॥ अथ अग्नेः प्रत्यक्ष-स्तुतिः । हे अग्ने । आहवनीयाद्यनुगतत्वाकारेण एकवचनम् । उत्तरतः । ❀ "पञ्चम्यास्तसिल्" ❀ । उत्तरस्यादिशः । ❀"तसिलादिष्वाकृत्वसुचः" इति पुंवद्भावः ❀ । मध्यतः पूर्वा-दीनां चतसृणां मध्यप्रदेशाद् अन्तरिक्षात् आकाशाद् दिशो दिशः सर्वस्या अवान्तरदिशः परि पाहि परितो रक्ष ॥ न केवलं दिशो घ्नन्ति किं तु तत्रस्थो भयंकरः पुरुषो हिनस्ति । तथा च महारण्यं प्रस्तुत्य मन्त्रवर्णः । "न वा अरण्यानिर्हन्त्यन्यश्चेन्नाभिगच्छति" इति [ऋ० १०. १४६. ५] । अतो भीतिकारणम् आह घोरा-दिति । घोरात् क्रूरात् हिंसकात् परि पाहि । ❀ "भीत्रार्थानां भयहेतुः" इति सर्वत्र अपादानसंज्ञा । "अपादाने पञ्चमी" इति पञ्चमी ❀ ॥

हे अग्नियोंसे भस्म होते हुए प्रेत ! पूर्वदिशामें दमकते हुए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अग्निदेव, जिस प्रकार पूर्वदिशामें तुझको सुख प्राप्त हो तिस प्रकार तुझको भस्म करें। तथा गृहपति यजमानके द्वारा आहित स्थापित–सब अग्नियोंका कारण गार्हपत्य अग्नि तुझको पश्चिम दिशामें जिस प्रकार सुख प्राप्त हो तिस प्रकार भस्म करे। दक्षिण दिशामें स्थापित दक्षिणाग्नि जिस प्रकार तुझको सुख प्राप्त हो तिस प्रकार तथा कवचकी समान चारों ओरसे न भिदता हुआ तुझको भस्म करे, वा घरकी समान तुझको चारों ओरसे आच्छादित करके भस्म करे। हे अग्ने! आप उत्तरदिशासे और पूर्व आदि चारों दिशाओंके मध्यभागसे आकाशसे और सब दिशाओं की अवान्तर दिशाओंसे अर्थात् उन दिशाओंके क्रूर हिंसक समुदायसे इस प्रेतकी रक्षा करिये [दिशाएँ किसीको नहीं मारती हैं किंतु उनमें स्थित भयंकर पुरुष मारते हैं अत एव यहाँ घोर–क्रूरहिंसक–कहा है। इसी बातको महावनको दिखाते हुए ऋग्वेदसंहिताके १०। १४६। ५ के मन्त्रमें कहा है, कि–"न वा अरण्यानिर्हन्त्यन्यश्चेन्नाभिगच्छति।–यदि दूसरा न आवे तो महावन किसीको नहीं मार सकता"]॥ ९॥

दशमी॥

यूयमग्ने शंतमाभिस्तनूभिरीजानमभि लोकं स्वर्गम्।
अश्वा भूत्वा पृष्टिवाहो वहाथ यत्र देवैः सधमादं मदन्ति॥ १०॥

यूयम्। अग्ने। शम्ऽतमाभिः। तनूभिः। ईजानम्। अभि। लोकम्। स्वःऽगम्।

अश्वाः। भूत्वा। पृष्टिऽवाहः। वहाथ। यत्र। देवैः। सधऽमादम्। मदन्ति॥ १०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे अग्ने यूयम् । एकस्यैवाग्नेस्त्रेधाभवनाद् यूयम् इति बहुवचनम् । पृथगायतनेषु स्थापिता यूयम् शंतमाभिः अत्यन्तं सुखकरीभिस्तनूभिः शरीरैः । द्विविधाः खलु अग्नेस्तन्वः घोराश्च शिवाश्चेति । उभयस्तन्वस्तैत्तिरीयके श्रूयन्ते । "ये ते अग्ने शिवे तनुवौ विराट् च स्वराट् च ते मा विशतां ते मा जिन्वताम् । सम्राट् चाभिभूश्च । विभूश्च परिभूश्च । प्रभ्वी च प्रभूतिश्च । यास्ते अग्ने शिवास्तनुवः" इत्यादि [तै० ब्रा० १.१.७.३.] । "यास्ते अग्ने घोरास्तनुवः । क्षुच्च तृष्णा च । अस्नुक् चानाहुतिश्च । अशनया च पिपासा च । सेदिश्चामतिश्च । एतास्ते अग्ने घोरास्तनुवः" इति [तै० आ० ४. २२]। तत्र शिवाभिस्तनूभिः सह ईजानम् येन यूयम् आहिता इष्टाश्च तम् इष्टवन्तं पुरुषं स्वर्गम् सुखेन गन्तव्यं सुखात्मकं लोकम् अभि वहाथ अभिगमयत । अग्नित्रयस्य गन्तव्यप्रापणे दृष्टान्तम् आह अश्वो भूत्वेति । प्रष्टिवाहः अश्वो भूत्वा । पुरस्ताद् एकः पश्चाद् द्वौ इत्येवं त्रिभिरश्वैर्युक्तो दैवो रथः प्रष्टिः । तं वहन् प्रष्टिवाहः अश्वो भूत्वा । समष्टिरूपेण एकवचनम् । एवं त्रिधाभवन्तो यूयम् एनं आहिताग्निं स्वर्गं लोकम् अभिगमयतेति । ❀ वहतेर्लेटि आडागमः ❀ । यत्र यस्मिन् स्वर्गे लोके देवैः अमृतपैः सधमादम् सह मदो यस्मिन् कर्मणि तथा मदेम हृष्यास्म । उपस्तोतॄन् गोत्रिणोऽपेक्ष्य उत्तमपुरुषो बहुवचनं च । ❀ "सधमादस्थयोश्छन्दसि" इति सहस्य सधादेशः । मदेमेति । माद्यतेः आशीर्लिङि "लिङ्याशिष्यङ्" इति अङ् प्रत्ययः ❀ ॥

इति चतुर्थेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

(एक ही अग्नि तीन रूपोंमें होगए हैं अत एव) हे अग्ने ! पृथक् २ स्थानोंमें स्थापित किये हुए तुम, जिसने तुम्हारा आधान और पूजन किया था उस यजमानको अपने परम कल्याण करने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाले शरीरोंसे † आगे एक और पीछे दो घोड़े जोते जाने वाले दैव रथ पृष्टिको खेंचने वाले घोड़ोंकी समान घोड़े बनकर स्वर्गलोकमें लेजाओ, उस स्वर्गलोकमें उपस्तोता वा गोत्र वालों सहित हम, देवताओंके साथ प्रसन्न होवें ॥ १० ॥ (२०)

चतुर्थ अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त ॥

"शमग्ने" इति द्वितीयसूक्ते आदितः पञ्चानाम् ऋचां चितिस्थाहिताग्न्युपस्थाने विनियोग उक्तः। "ईजानश्चितमारुक्षत्" [१४] इति द्वाभ्याम् ऋग्भ्यां चितावुत्तानम् आहितं प्रेतं कर्ता अनुमन्त्रयेत। "अपूपवान् क्षीरवान्" [१६] इति नवभिर्ऋग्भिर्मन्त्रोक्तद्रव्ययुतान् नवसंख्याकांश्चरून् अभिमन्त्र्य अस्थ्नां समीपे पश्चिमदिक्प्रभृत्यष्टसु दिक्षु एकं मध्य इति क्रमेण निदध्यात् ॥

---

† अग्निके दो प्रकारके शरीर (लपटें) होते हैं एक घोर और दूसरे सुखप्रद। तैत्तिरीयकमें दोनों प्रकारके शरीरोंका वर्णन है, कि—"ये ते अग्ने शिवे तनुवौ विराट् च स्वराट् च ते मा विशतां ते मा जिन्वताम्। सम्राट् चाभिभूश्च। विभूश्च परिभूश्च। प्रभ्वी च प्रभूतिश्च। यास्ते अग्ने शिवास्तनुवः० ।—हे अग्ने आपके जो विराट् और स्वराट् नामक कल्याणप्रद शरीर हैं वे, मुझमें प्रवेश करें मुझको प्रसन्न करें। सम्राट् अभिभू, विभू और प्रभू, प्रभ्वी और प्रभूति नामक जो आपके शरीर हैं वे मुझमें प्रवेश करें और मुझको प्रसन्न करें०" (तैत्तिरीयब्राह्मण १। १। ७। ३)। "यास्ते अग्ने घोरास्तनुवः। क्षुच्च तृष्णा च। अस्नुक् चानाहुतिश्च। अशनया च पिपासा च। सेदिश्चामतिश्च। एतास्ते अग्ने घोरास्तनुवः।—जो आपके घोर शरीर हैं उनका वर्णन करता हूँ। भूख तृष्णा अस्नुक् अनाहुति, अशना पिपासा, सेदि और अमति हे अग्ने! ये आपके घोररूप हैं" (तैत्तिरीय आरण्यक ४। २२) ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"शमग्ने" आदि द्वितीय सूक्तमें आरम्भकी पाँच ऋचाओंका चितामें स्थित आहिताग्निके उपस्थानमें विनियोग है। 'ईजानश्चितमारुक्षत्" (१४) आदि दो ऋचाओंसे चितामें चित्त रक्खे हुए प्रेतका कर्ता अनुमन्त्रण करे। "अपूपवान् क्षीरवान् (१६) आदि सोलह ऋचाओंसे मन्त्रोक्त द्रव्य पढ़े नौ चरुओंको अभिमन्त्रित करके अस्थियोंके समीपमें पश्चिम आदि आठ दिशाओं में और मध्यमें एकको रक्खे।

तत्र प्रथमा ॥

शमग्ने पश्चात् तप शं पुरस्ताच्छमुत्तराच्छमधरात् तपैनम्।
एकस्त्रेधा विहितो जातवेदः सम्यगेनं धेहि सुकृतामु लोके ॥ ११ ॥

शम्। अग्ने। पश्चात्। तप। शम्। पुरस्तात्। शम्। उत्तरात्। शम्। अधरात्। तप। एनम्।

एकः। त्रेधा। विऽहितः। जातऽवेदः। सम्यक्। एनम्। धेहि। सुऽकृताम्। ऊं इति। लोके ॥ ११ ॥

हे अग्ने त्वं पश्चात्। ❀ "पश्चात्" इति निपातितोयं शब्दः ❀। पश्चिमभागे गार्हपत्यः सन् शम् सुखं तप दह। पुरस्तात् पूर्वभागे शम्। तपेत्यनुषङ्गः। उत्तरात् उत्तरदिक्प्रदेशे। अधरात्। अधरशब्देनात्र उत्तरप्रतियोगिनी दक्षिणा दिग् उच्यते। ❀ उभयत्र "उत्तराधरदक्षिणादातिः" इति आतिप्रत्ययः ❀। वाक्यभेदात् शंपदस्य आवृत्तिः। एनम् आहिताग्निं तप ॥ हे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जातवेदः जातानां वेदितरग्ने त्वं पूर्वम् एकोपि त्रेधा विहितः गार्हपत्यादिरूपेण त्रिप्रकारं स्थापितः एनम् अन्वादिष्टम् अग्न्याहितम् प्रेतम् । उशब्दः अवधारणे । सुकृताम् सुकृतकर्वणां लोके स्थाने स्वर्गाख्य एव सम्यक् समीचीनं यथा तथा धेहि स्थापय । सम्यक्त्वं नाम अविकलं चिरकालावस्थायित्वम् ॥

हे अग्ने ! तुम पश्चिमभागमें गार्हपत्य रूपमें सुखपूर्वक भस्म करो, पूर्वभागमें सुख प्राप्त हो तिस प्रकार भस्म करो । उत्तर और दक्षिणा दिशामें भी हे अग्ने ! आप इस आहिताग्निको भस्म करें; हे जातवेदा अग्ने ! यजमानने पहिले एक होनेपर भी गार्हपत्य आदि रूपमें आपको तीन प्रकारसे स्थापित किया था ऐसे इस अग्निहोत्रीको आप पुण्यात्माओंके लोकमें समीचीनरूप से स्थापित करिये ॥ ११ ॥

द्वितीया ॥

शमग्नयः समिद्धा आ रभन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः ।
भृतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन् ॥ १२ ॥

शम् । अग्नयः । सम्ऽइद्धाः । आ । रभन्ताम् । प्राजाऽपत्यम् ।
मेध्यम् । जातऽवेदसः ।
भृतम् । कृण्वन्तः । इह । मा । अव । चिक्षिपन् ॥ १२ ॥

आभ्याम् अग्नीन् संभूय प्रार्थयते । जातवेदसः जातानां वेदितारोग्नयः समिद्धाः सम्यक् प्रदीपिताः सन्तः प्राजापत्यम् प्रजापतिदेवत्यं मेध्यम् मेधो यज्ञः पिधृमेधाख्यः तदर्हम् इमं प्रेतरूपं पशुं समा रभन्ताम् संस्पृशन्तु परितो दहन्तु । इह अस्मिन् दहनकर्मणि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रृतम् प्राजापत्यम् इमं यज्ञार्हं पशुं पक्वं कृण्वन्तः कुर्वन्तः अवमा चिक्षिपन् अवक्षिप्तम् अवकीर्णं मा कुर्वन्तु । यथा निरवशेषं दह्यते तथेति । ❀ "सास्य देवता" इत्येतस्मिन्नर्थे "०पत्युत्तरपदाण्ण्यः" इति ण्यः । श्रृतम् इति । श्रा पाके इत्येतस्मात् कर्मकर्तरि निष्ठायां "श्रृतं पाके" इति निपातनात् श्रृभावः ❀ ॥

उत्पन्न हुओंको जानने वाली अग्नियें प्रदीप्त होकर इस प्रजापति देवता वाले पितृमेधके योग्य प्रेतरूप पशुका भली प्रकार स्पर्श करें । अर्थात् इसको चारों ओरसे भस्म करें । इस दहन कर्ममें इस प्राजापत्ययज्ञार्ह पशुको पकाती हुई अग्नियें इसको इधर उधर न फेंके अर्थात् इसको अधकचरा न जलावें जिस प्रकार यह सब भस्म होजावे तिस प्रकार भस्म करडालें ॥१२॥

तृतीया ॥

यज्ञ एति विततः कल्पमान ईजानमभि लोकं स्वर्गम् ।
तमग्नयः सर्वहुतं जुषन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः ।
श्रृतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन् ॥ १३ ॥

यज्ञः । एति । विऽततः । कल्पमानः । ईजानम् । अभि । लोकम् । स्वःऽगम् ।

तम् । अग्नयः । सर्वऽहुतम् । जुषन्ताम् । प्राजाऽपत्यम् । मेध्यम् । जातऽवेदसः ।

श्रृतम् । कृण्वन्तः । इह । मा । अव । चिक्षिपन् ॥ १३ ॥

विततः प्राच्योदीच्याङ्गैर्विस्तृतः कल्पमानः इष्टं प्रदेशं प्रापयितुं समर्थो यज्ञः पितृमेधाख्यः ईजानम् इष्टवन्तम् एनं स्वर्गम् सुखात्मकं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोकम् अभ्येति । ❀ अन्तर्भावितण्यर्थोयम् एतिः ❀ । अभिगमयति अभिप्रापयति ॥ अतो जातवेदसः अग्नयः प्राजापत्यं मेध्यं तम् ईजानं प्रेतरूपं पशुं सर्वहुतम् सर्वः निरवशेषः हुतो दग्धः तं जुषन्ताम् सेवन्ताम् ॥ शृतम् इत्यादि व्याख्यातम् ॥

प्राच्य और उदीच्य अंगोंसे विस्तृत, इष्ट प्रदेशको प्राप्त कराने की शक्ति रखने वाला यह पितृमेध नामक यज्ञ इस पूजन करने वालेको सुखात्मक स्वर्गलोकको प्राप्त करा रहा है । अत एव जातवेदा अग्नियें इस सर्वहुत प्राजापत्य मेध्य पशुका सेवन करें और इसको पक्व करती हुई अग्नियें इसको इधर उधर फेंक कर—छोड़ कर—अधजला न रहने दें ॥ १३ ॥

चतुर्थी ॥

ईजानश्चितमारुक्षदग्निं नाकस्य पृष्ठाद् दिवमुत्पतिष्यन्
तस्मै प्र भाति नभसो ज्योतिषीमान्त्स्वर्गः पन्थाः
सुकृते देवयानः ॥ १४ ॥

ईजानः । चितम् । आ । अरुक्षत् । अग्निम् । नाकस्य । पृष्ठात् ।
दिवम् । उत्ऽपतिष्यन् ।
तस्मै । प्र । भाति । नभसः । ज्योतिषीऽमान् । स्वःऽगः । पन्थाः ।
सुऽकृते । देवऽयानः ॥ १४ ॥

ईजानः इष्टवान् पुरुषः चितम् विषमसंख्याकाभिः शलाकाभिरिष्टकाभिर्वा चयनेन संस्कृतम् अग्निम् प्रदेशम् । इष्टकचितः प्रदेशः अग्निरित्युच्यते । उक्तं हि भगवता आपस्तम्बेन । "अग्निष्टोम उत्तरवेदिरुत्तरेषु क्रतुष्वग्निः" इति [आप० २५. ४] । तम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आ अरुक्षत् आरूढवान्। ❀ रुहेर्लुङि "शल इगुपधाद् अनिटः०" इति क्सः। क्ङित्त्वाद् गुणाभावः ❀। किमर्थम् नाकस्य दुःखरहितस्य स्वर्गस्य पृष्ठे उपरिभागे दिवम् तृतीयकक्ष्यारूपं द्युलोकम्। "त्रयो वा इमे त्रिवृतो लोकाः" इति श्रुतेः [ऐ० ब्रा० २. १७] एकैकस्य लोकस्य त्रिवृत्त्वाद् एकस्यापि स्वर्गलोकस्य उत्तमाधममध्यभेदेन त्रैविध्यम्। मध्यमायाः स्वर्गकक्ष्यायाः परमां तृतीयकक्ष्याम् उत्पतिष्यन्। उत्पतनाद्धेतोरित्यर्थः। तस्मै दिवम् उत्पतिष्यते सुकृते सुकृतकर्मणे तदर्थं नभसः मध्याकाशस्य ज्योतिषीमान् ज्योतिष्मान् प्रकाशकः देवयानः देवा यान्ति अनेनेति सः स्वर्गः सुखेन गन्तव्यः परमः स्वर्गप्राप्तिसाधनभूतो वा पन्थाः मार्गः प्रभाति प्रकर्षेण दीप्यतां प्रकाशताम्। ❀ भातेः पञ्चमलकारः ❀ ॥

यह यज्ञ करने वाला पुरुष स्वर्गसे स्वर्गके तीसरे उच्च दर्जे पर चढ़नेके लिये विषमसंख्यक शलाका वा ईंटोंसे चिने हुए इस अग्निप्रदेश पर आरूढ़ होगया है। उस स्वर्गमें उत्क्रमण करते हुए पुण्यात्मा प्रेतके निमित्त मध्याकाशका प्रकाशक देवयान भली प्रकार प्रकाशित हो ॥ १४ ॥

पञ्चमी ॥

अग्निर्होताध्वर्युष्टे बृहस्पतिरिन्द्रो ब्रह्मा दक्षिणतस्ते अस्तु
हुतोयं संस्थितो यज्ञ एति यत्र पूर्वमयनं हुतानाम् १५

अग्निः। होता। अध्वर्युः। ते। बृहस्पतिः। इन्द्रः। ब्रह्मा। दक्षिणतः। ते। अस्तु।

हुतः। अयम्। सम्ऽस्थितः। यज्ञः। एति। यत्र। पूर्वम्। अयनम्। हुतानाम् ॥ १५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे चितस्थ प्रेत ते तव पितृमेधाख्ये यज्ञे अग्निर्होतारः वषट्कर्ता एतत्संज्ञक ऋत्विग् अस्तु । बृहस्पतिः बृहतां देवानां पतिः पालको देवः अध्वर्युः अध्वरं यज्ञं यजमानस्य कामयमानः एतत्संज्ञक ऋत्विग् अस्तु । ❀ अध्वरशब्दात् "छन्दसि परेच्छायाम्" इति क्यच् । "कप्यध्वरपृतनस्यर्चि लोपः" इति अन्त्यलोपः । "क्याच्छन्दसि" इति उप्रत्ययः । अध्वर्युष्ट इत्यत्र "युष्मत्तत्ततक्षुःषु०" इति सांहितिको मूर्धन्यादेशः ❀ । इन्द्रो दक्षिणस्यां दिशि आसीनो ब्रह्मा एतत्संज्ञक ऋत्विक् ते तव पितृमेधाख्ये यज्ञे अस्तु भवतु । अस्मिन् प्रेतसंस्काररूपपितृमेधे अग्न्यादीनां होत्रादिमहर्त्विग्भावेन रूपणम् अस्य कर्मणो वैकल्याभावद्योतनायेति मन्तव्यम् । होत्रादिकीर्तनम् अन्येषाम् ऋत्विजाम् उपलक्षणार्थम् । एवं होत्रादिरूपैरग्न्यादिभिरनुष्ठितोयं यज्ञः पितृमेधाख्यः संस्थितः समापितः सन् एति गच्छति । गन्तव्यं स्थानं दर्शयति । यत्र यस्मिन् स्थाने हुतानाम् इष्टानां यज्ञानां पूर्वम् पूर्वकालीनम् अयनम् गमनं प्राप्तिर्विद्यते । यज्ञस्य उत्तमलोकप्राप्त्या तत्संस्कृतस्य पुरुषस्य स्वर्गलोकप्राप्तिरुक्तेत्यनुसंधेयम् ॥

हे चितामें स्थित प्रेत ! तेरे पितृमेध नामक यज्ञमें अग्निदेव होता नामक ऋत्विज होवें, बृहस्पति देव यजमानके यज्ञकी कामना करने वाले अध्वर्यु नामक ऋत्विज बनें इन्द्रदेव दक्षिण दिशामें बैठे हुए ब्रह्मा नामक ऋत्विज होवें । [इस प्रेतसंस्काररूप पितृमेधमें अग्नि आदिका बड़े २ ऋत्विजोंके रूपमें आरोप इस कर्मकी विकलताका अभाव दिखानेके लिये है । तथा होता आदिका कीर्तन अन्य ऋत्विजोंका भी उपलक्षण है] इस प्रकार होता आदि रूप वाले अग्नि आदिसे अनुष्ठित यह पितृमेध नामक यज्ञ समापित होकर उस स्थानमें आता है, कि–जिस स्थानमें पूर्व समयमें हुत यज्ञोंका स्थान है । तात्पर्य यह है, कि–यज्ञको उत्तम-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोककी प्राप्तिसे उसमें संस्कृत पुरुषको ही स्वर्गलोककी प्राप्ति होगी ॥ १५ ॥

षष्ठी ॥

अपूपवान् क्षीरवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ

अपूपऽवान् । क्षीरऽवान् । चरुः । आ । इह । सीदतु ।
लोकऽकृतः । पथिऽकृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुतऽभागाः ।
इह । स्थ ॥ १६ ॥

अपूपवान् गोधूमादिपिष्टविकारा अपूपाः तद्वान् । क्षीरवान् क्षीरं गोपयः तद्वान् । चरुः कुम्भ्यां पक्व ओदनः इह अस्मिन् संचयनकर्मणि अस्थ्नां समीपे पश्चिमदिग्भागे आ सीदतु आसन्नो भवतु ॥ चर्वासादनमेव देवानां प्रीणनकारीति दर्शयति । लोककृतः संस्क्रियमाणस्य प्रेतस्य लोकं स्वर्गं कुर्वन्तीति लोककृतः तान् पथिकृतः गन्तव्यस्थानस्य मार्गकर्तॄन् मार्गप्रदर्शकान् देवान् यजामहे प्रीणयामः । इह अस्मिन् संचयनकर्मणि अपूपक्षीरयुक्तचर्वासादने देवानां यष्टव्यानाम् इन्द्रादीनां मध्ये ये यूयं हुतभागाः हुतं हविः । भागः भजनीयोंऽशः । ❀ कर्मणि घञ् ❀ । हविर्भागवन्तः स्थ भवथ तान् यजामहे ॥ एवम् उत्तरेऽष्टौ पर्याया व्याख्येयाः । विशेषस्तु वक्ष्यते ॥

पिसे हुए गेहूँ आदिसे बने हुए अपूपोंसे सम्पन्न गोदुग्धसे संयुक्त, कुम्भीमें पका हुआ ओदनरूप चरु इस संचयन कर्ममें अस्थियोंके समीप पश्चिम दिशाके भागमें रक्खा रहे । अब यह बताते हैं, कि–चरुका रखना ही देवताओंको प्रसन्न करने वाला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होता है] हम इस संस्क्रियमाण प्रेतके लिये स्वर्गलोकका निर्माण करने वाले और गन्तव्य मार्गके प्रदर्शक इन्द्र आदि देवताओंमें से इस होमे हुए अंशके अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओंको प्रसन्न करते हैं ॥ १६ ॥

सप्तमी ॥

अपूपवान् दधिवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ १७ ॥

अपूपऽवान् । दधिऽवान् । चरुः । आ । इह । सीदतु ।
लोकऽकृतः । पथिऽकृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुतऽभागाः । इह । स्थ ॥ १७ ॥

अपूपसाहित्यं सर्वेषां चरूणां साधारणम् । दधिवान् दधिमान् । ❀ भूम्नि मतुप् । "छन्दसीरः" इति मतुपो वत्वम् ❀ । दधियोगो द्वितीयचरोर्विशेषः ॥

पिसे हुए गेहूँ आदिसे बने हुए अपूपोंसे सम्पन्न, मोदधिसे संयुक्त, कुम्भीमें पका हुआ ओदनरूप चरु, इस सञ्चयनकर्म में अस्थियोंके समीप पश्चिम दिग्भागमें रक्खा जावे [अब यह दिखाते हैं, कि—चरुका रखना ही देवताओंको प्रसन्न करने वाला होता है] हम इस संस्क्रियमाण प्रेतके निमित्त स्वर्गलोकका निर्माण करने वाले और गन्तव्यमार्गके प्रदर्शक इन्द्र आदि देवताओंमेंसे इस होमे हुए अंशके अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओंको प्रसन्न करते हैं ॥ १७ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अष्टमी ॥

अपूपवान् द्रप्सवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ

अपूपऽवान् । द्रप्सऽवान् । चरुः । आ । इह । सीदतु ।
लोकऽकृतः । पथिऽकृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुतऽभागाः ।
इह । स्थ ॥ १८ ॥

द्रप्सा दधिकणाः । तद्वत्त्वम् अस्य चरोर्विशेषः ॥

पिसे हुए गेहूँ आदिसे बने हुए अपूपोंसे संपन्न, दधिकण द्रप्ससे संयुक्त, कुम्भीमें पका हुआ ओदनरूप चरु, इस सञ्चयन कर्म में अस्थियोंके समीप पश्चिम दिग्भागमें रक्खा जावे [अब यह दिखाते हैं, कि-चरुका रखना ही देवताओंको प्रसन्न करने वाला होता है] हम इस संस्क्रियमाण प्रेतके निमित्त स्वर्गलोकका निर्माण करने वाले और गन्तव्यमार्गके प्रदर्शक इन्द्र आदि देवताओंमेंसे इस होमे हुए अंशके अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओं को प्रसन्न करते हैं ॥ १८ ॥

नवमी ॥

अपूपवान् घृतवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ

अपूपऽवान् । घृतऽवान् । चरुः । आ । इह । सीदतु ।
लोकऽकृतः । पथिऽकृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुतऽभागाः ।
इह । स्थ ॥ १९ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घृतवान् घृतं भूयोस्यास्तीति घृतवान् ॥

पिसे हुए गेहूँ आदिसे बने हुए अपूपोंसे सम्पन्न, गोघृतसे संयुक्त, कुम्भीमें पका हुआ ओदनरूप चरु, इस सञ्चयनकर्म में अस्थियोंके समीप पश्चिम दिग्भागमें रक्खा जावे [अब यह दिखाते हैं, कि-चरुका रखना ही देवताओंको प्रसन्न करने वाला होता है] हम इस संस्क्रियमाण प्रेतके निमित्त स्वर्गलोकका निर्माण करने वाले और गन्तव्यमार्गके प्रदर्शक इन्द्र आदि देवताओंमेंसे इस होमे हुए अंशके अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओंको प्रसन्न करते हैं ॥ १९ ॥

दशमी ॥

अपूपवान् मांसवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ

अपूपऽवान् । मांसऽवान् । चरुः । आ । इह । सीदतु ।
लोकऽकृतः । पथिऽकृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुतऽभागाः ।
इह । स्थ ॥ २० ॥

मांसवत्त्वम् अस्य विशेषः ॥

इति चतुर्थेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

पिसे हुए गेहूँ आदिसे बने हुए अपूपोंसे सम्पन्न, मांससे संयुक्त, कुम्भीमें पका हुआ ओदनरूप चरु, इस सञ्चयनकर्म में अस्थियोंके समीप पश्चिम दिग्भाग रक्खा जावे [अब यह दिखाते हैं, कि-चरुका रखना ही देवताओंको प्रसन्न करने वाला होता है] हम इस संस्क्रियमाण प्रेतके निमित्त स्वर्गलोकका निर्माण करने वाले और गन्तव्यमार्गके प्रदर्शक इन्द्र आदि देव-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ताओंमेंसे इस होमे हुए अंशके अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओं को प्रसन्न करते हैं ॥ २० ॥ (२१)

चतुर्थ अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त

"अपूपवानन्नवांश्चरुः" इति आदितश्चतसृणाम् ऋचाम् अस्थिसमीपे मन्त्रोक्तचरुस्थापनकर्मणि उक्तो विनियोगः ॥

"अपूपापिहितान्" [२५] इत्यनया पूर्वस्थापितान् नवचरुकुम्भान् अभिमन्त्रयेत । मिश्रा धाना आदध्यात् ॥

"द्रप्सश्चस्कन्द" [२८] इत्यनया अग्निष्टोमादिक्रतुषु बहिष्पवमानप्रसर्पणकाले वैप्रुषहोमं कुर्यात् ॥

"शतधारम्" [२९] इति द्वाभ्याम् ऋग्भ्याम् अभिमन्त्रितेन शतच्छिद्रपात्रपतितोदकेन अस्थीनि आप्लावयेत् ॥

"अपूपवानन्नवांश्चरुः" आदिकी चार ऋचाओंका अस्थियोंके समीपके मन्त्रोक्तचरुस्थापनके कर्ममें विनियोग कह दिया है ।

"अपूपापिहितान्" (२५) ऋचासे पहिले स्थापित किये हुए नौ चरुओंका अभिमन्त्रण करे । मिश्र धानाओंको रक्खे ।

"द्रप्सश्चस्कन्द" इस अट्ठाईसवीं ऋचासे अग्निष्टोम आदि यज्ञोंमें बहिष्पवमानप्रसर्पणके समय वैप्रुषहोम (बिन्दुहोम) को करे

"शतधारम्" इन २९ वीं और ३० वी ऋचाओंसे अभिमन्त्रित शतच्छिद्र (चलनी) से गिरते हुए जलसे हड्डियोंको आप्लावित करें ॥

तत्र प्रथमा ॥

अपूपवानन्नवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ

अपूपऽवान् । अन्नऽवान् । चरुः । आ । इह । सीदतु ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोकऽकृतः । पथिऽकृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुतऽभागाः । इह । स्थ ॥ २१ ॥

अन्नम् अदनीयम् ओदनम् स्थालीपक्वे चरौ पात्रान्तरपक्वम् ओदनं प्रक्षेप्तव्यम् इत्यर्थः । ओदनान्तरयुक्तश्चरुरिति यावत् ॥

पिसे हुए गेहूँ आदिसे बने हुए अपूपोंसे सम्पन्न, अन्नसे संयुक्त, कुम्भीमें पका हुआ ओदनरूप चरु, इस सञ्चयनकर्ममें अस्थियोंके समीप पश्चिम दिग्भागमें रक्खा जावे [अब यह दिखाते हैं, कि–चरुका रखना ही देवताओंको प्रसन्न करने वाला होता है] हम इस संस्क्रियमाण प्रेतके निमित्त स्वर्गलोकका निर्माण करने वाले और गन्तव्यमार्गके प्रदर्शक इन्द्र आदि देवताओंमेंसे इस होमे हुए अंशके अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओंको प्रसन्न करते हैं ॥ २१ ॥

द्वितीया ॥

अपूपवान् मधुमांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ

अपूपऽवान् । मधुऽमान् । चरुः । आ । इह । सीदतु ।
लोकऽकृतः । पथिऽकृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुतऽभागाः । इह । स्थ ॥ २२ ॥

मधुमान् मधु माक्षिकं तद्वान् ॥

पिसे हुए गेहूँ आदिसे बने हुए अपूपोंसे सम्पन्न, मधुसे संयुक्त, कुम्भीमें पका हुआ ओदनरूप चरु, इस सञ्चयनकर्ममें अस्थियों के समीप पश्चिम दिग्भागमें रक्खा जावे [अब यह दिखाते हैं, कि–चरुका रखना ही देवताओंको प्रसन्न करने वाला होता है]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हम इस संस्क्रियमाण प्रेतके निमित्त स्वर्गलोकका निर्माण करने वाले और गन्तव्यमार्गके प्रदर्शक इन्द्र आदि देवताओंमेंसे इस होमे हुए अंशके अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओंको प्रसन्न करते हैं ॥ २२ ॥

तृतीया ॥

अपूपवान् रसवांश्चरुरेह सीदतु ।

लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ

अपूपऽवान् । रसऽवान् । चरुः । आ । इह । सीदतु ।

लोकऽकृतः । पथिऽकृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुतऽभागाः । इह । स्थ ॥ २३ ॥

रसवान् रसाः स्वादुम्ललवणतिक्तोषणकषायाख्याः षट्संख्याकाः तद्वान् ॥

पिसे हुए गेहूँ आदिसे बने हुए अपूपोंसे सम्पन्न, स्वादु अम्ल लवण तिक्त ऊषण और कषाय नामक छः रसोंसे संयुक्त, कुम्भी में पका हुआ ओदनरूप चरु, इस सञ्चयनकर्ममें अस्थियोंके समीप पश्चिम दिग्भागमें रक्खा जावे [अब यह दिखाते हैं कि-चरुका रखना ही देवताओंको प्रसन्न करने वाला होता है] हम इस संस्क्रियमाण प्रेतके निमित्त स्वर्गलोकका निर्माण करने वाले और गन्तव्यमार्गके प्रदर्शक इन्द्र आदि देवताओंमेंसे इस होमे हुए अंश के अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओंको प्रसन्न करते हैं ॥२३॥

चतुर्थी ॥

अपूपवानपवाश्चरुरेह सीदतु ।

लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपूपऽवान् । अपऽवान् । चरुः । आ । इह । सीदतु ।

लोकऽकृतः । पथिऽकृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुतऽभागाः ।

इह । स्थ ॥ २४ ॥

अपूपवान् । भिन्नप्रकृतिका अपूपा विवक्षिताः । तद्वान् चरुः इह मध्यप्रदेशे आ सीदतु ॥ लोककृतः इत्यादि पूर्ववत् ॥

पिसे हुए गेहूँ आदिसे बने हुए अपूपोंसे सम्पन्न, भिन्न प्रकारके अपूपसे संयुक्त, कुम्भीमें पका हुआ ओदनरूप चरु, इस सञ्चयनकर्ममें अस्थियोंके समीप पश्चिम दिग्भागमें रक्खा जावे [अब यह दिखाते हैं, कि—चरुका रखना ही देवताओंको प्रसन्न करने वाला होता है] हम इस संस्क्रियमाण प्रेतके निमित्त स्वर्गलोकका निर्माण करने वाले और गन्तव्यमार्गके प्रदर्शक इन्द्र आदि देवताओंमेंसे इस होमे हुए अंशके अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओंको प्रसन्न करते हैं ॥ २४ ॥

पञ्चमी ॥

अपूपापिहितान् कुम्भान् यांस्ते देवा अधारयन् ।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ॥ २५ ॥

अपूपऽअपिहितान् । कुम्भान् । यान् । ते । देवाः । अधारयन् ।

ते । ते । सन्तु । स्वधाऽवन्तः । मधुऽमन्तः । घृतऽश्चुतः ॥२५॥

पूर्वानुवाके व्याख्यातैषा [३. ६८] । अपूपापिहितान् अपूपैराच्छादितान् यान् कुम्भान् चरुपूर्णान् नवकलशान् देवाः तत्तद्विभागिनो मन्त्रोक्ता देवताः ते संचितास्थिरूप हे प्रेत त्वदीयान् अधारयन् स्वस्वभागत्वेन धारितवन्तः स्वीकृतवन्तः ते हुत-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भागैर्देवैः स्वीयत्वेन परिगृहीताः कुम्भस्थाश्चरवः ते परलोकप्राप्तवते तुभ्यं स्वधावन्तः स्वम् आत्मानं दधाति पुष्णाति धिनोतीति वा स्वधा अन्नम् तद्वन्तः सन्तु । मधुमन्तः मधुसहिताः घृतश्चुतः बहाज्यक्षारिणो भवन्तु । भवदीयास्थिसमीपे स्थापिताश्चरवः परलोकं प्राप्तस्य तव प्रीणनाय बहन्नराशयो मधुघृतकुल्यायुक्ता भवन्तु इत्यर्थः ॥

हे प्रेत ! हवियोंके भागी मन्त्रोक्त देवताओंने जिन अपूपोंसे आच्छादित चरुपूर्ण नवीन कलशोंको अपने भागरूपमें स्वीकार करके धारण किया है वह देवताओंके द्वारा अपने मान कर ग्रहण किये हुए कुम्भोंके चरु तुझको परलोकमें स्वधावान् [अपनेको पुष्ट करने वाले अन्नसे संयुक्त, मधुसे सम्पन्न और घृत टपकते हुए हों । तात्पर्य यह है, कि–तेरी अस्थियोंके समीपमें स्थापित यह चरु तुझ परलोकको प्राप्त हुएको तृप्त करनेके लिये बहुतसी अन्नराशि वाले और मधु तथा घृतकी नदी वाले होवें ॥ २५ ॥

यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
तास्ते सन्तूदुम्बीः प्रुम्बीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम्

याः । ते । धानाः । अनुऽकिरामि । तिलऽमिश्राः । स्वधाऽवतीः ।
ताः । ते । सन्तु । उत्ऽम्बीः । प्रुऽम्बीः । ताः । ते । यमः ।
राजा । अनु । मन्यताम् ॥ २६ ॥

अक्षितिं भूयसीम् ॥ २७ ॥

अक्षितिम् । भूयसीम् ॥ २७ ॥

षष्ठी ॥ हे संचितास्थिरूप प्रेत ते त्वदर्थं तिलमिश्राः कृष्णतिलयुक्ताः स्वधावतीः अन्नवतीर्या धानाः भृष्टयवान् अनुकिरामि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुक्रमेण विकिरामि अनूचीनं वा विक्षिपामि ता धानास्ते परलोकं प्राप्नवतस्तव प्रीणनाय अभ्वीः । महन्नामैतत् । महत्यो भवन्तु । प्रभ्वीः प्रभूताश्च सन्तु भवन्तु । ❀ "भुवश्च" इति ङीष् । प्रभ्वीरिति । "वा छन्दसि" इति पूर्वसवर्णदीर्घः ❀ । ता महतीः प्रभूताश्च धानास्ते तव भोगाय यमः नियन्ता पितॄणां राजा अनुमन्यताम् अनुजानातु । अनुमतेर्निरवधित्वं दर्शयति अक्षितिं भूयसीम् इति । भूयसीम् अत्यन्तं बहुम् अक्षितिम् अक्षयम् । बहुकालपर्यन्तम् इति यावत् । ❀ "कालाध्वनोः०" इति द्वितीया ❀ । यथा लोके नगरे तिष्ठन् पुरुषः स्वीयं बहुधनं पुरः स्वामिनोनुज्ञया भुङ्क्ते एवं यमराज्यं प्राप्नवतः प्रेतस्य अन्नभोगाय पितृराजस्य यमस्य अनुज्ञा प्रार्थ्यते ॥

हे सञ्चितास्थिरूप प्रेत ! मैं तेरे लिये जिन काले तिलों वाले, स्वधान्नसे सम्पन्न भुनी हुई जौंकी खीलोंको बखेर रहा हूँ, वे खीले तेरे परलोकमें पहुँचने पर तुझको बड़ी २ और विशाल परिमाणमें मिलें । और इन बड़ी २ ढेरकी ढेर खीलों का भोग लगानेके लिये यमराज तुझको अनुमति दें चिरकाल तक भोग लगानेके लिये अनुमति देवें [अर्थात् जैसे नगरमें बसता हुआ पुरुष अपने बहुतसे धनको नगराधीशकी अनुज्ञासे भोगता है इसी प्रकार यमराज्यमें पहुँचे हुए प्रेतके अन्नभोगके लिये पितृराज यमकी अनुज्ञाकी प्रार्थना की गई है] ॥२६॥२७॥

द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।
समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः २८

द्रप्सः । चस्कन्द । पृथिवीम् । अनु । द्याम् । इमम् । च । योनिम् । अनु । यः । च । पूर्वः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समानम् । योनिम् । अनु । समञ्चरन्तम् । द्रप्सम् । जुहोमि ।
अनु । सप्त । होत्राः ॥ २८ ॥

सप्तमी ॥ पितृत्वं प्राप्ता जना धूमादिमार्गेण पितृलोकम् आसाद्य तत्र सोमयागजनितं सुकृतफलम् उपभुञ्जत इति अस्मिन् पित्र्ये प्रकरणे सोमे स्थितस्य उदकस्य कणः सोमो वा अनया स्तूयते । द्रप्सः सोमरसस्थितोदककणः पृथिवीम् भूमिं द्याम् दिवं च अनुलक्ष्य चस्कन्द स्कन्नो विप्रकीर्णोभवत् । ❀ लक्षणार्थे अनुः कर्मप्रवचनीयः । "कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया" इति द्वितीया ❀ । ग्रावभिरभिषवकाले भूमौ सोमरसः स्कन्दति । दशापवित्राद् द्रोणकलशं प्रति धारापातसमये अन्तरिक्षे सोमकणो विप्रकीर्णो भवतीति यावत् । एतदेव उच्यते इमं च योनिम् इति । इमं योनिम् सर्वस्य चराचरात्मकस्य जगतः कारणं पृथिवीम् अनुलक्ष्य तथा पूर्वः पूर्वम् उत्पन्नो यो द्युलोकस्तम् अनु । ❀ परस्परसमुच्चयार्थौ चकारौ । योनिशब्दः पुंलिङ्गोपि विद्यते ❀ । समानम् एकविधं योनिम् द्यावापृथिवीलक्षणं स्थानम् अनुलक्ष्य संचरन्तम् समन्ताद् विप्रकीर्णं द्रप्सम् सोमरसकणं सप्त सप्तसंख्याका होत्राः । वषट्कर्तॄणां संज्ञा होत्रा इति । सप्त होतृमैत्रावरुणब्राह्मणाच्छंसिपोतृनेष्ट्राग्नीध्राच्छावाकसंज्ञकान् वषट्कर्तॄन् अनुलक्षीकृत्य जुहोमि अग्नौ प्रक्षिपामि । उत्तरत्र होत्रादिवषट्कारे सोमरसः अध्वर्युभिर्हूयते । तदर्थं स्कन्नं सोमरसं द्रप्सदेवतार्थं करोमीत्यर्थः । वाजसनेयब्राह्मणे खलु एष द्रप्सः आदित्यात्मना स्तुतः । तथा च आम्नायते । "असौ वा आदित्यो द्रप्सः । स दिवं च पृथिवीं च स्कन्दति । इमं च योनुमनु यश्च पूर्व इति । इमं च लोकम् अमुं चेत्येतत् । समानं योनिमनु संचरन्तम् इति । समानं ह्येष एतं योनिमनु संचरति । द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्रा इति । असौ वा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदित्यो द्रप्सः । दिशः सप्त होत्राः । अमुं तदादित्यं दिक्षु प्रतिष्ठापयति" इति [श० ब्रा० ७, ४, १. २०] ॥

[पितृत्वको प्राप्त हुए पुरुष धूमादिमार्गसे पितृलोकमें पहुँच कर तहाँ सोमयागके कारण प्राप्त होने वाले पुण्यके फलको भोगते हैं । इस चालू पित्र्य प्रकरणमें सोममें स्थित उदकके कण या सोमकी इस ऋचासे स्तुति की है, कि–]सोमरसमें स्थित जल का कण द्रप्स, पृथिवीको और द्युको लक्ष्यमें रख कर बिखर जाता है विप्रकीर्ण होजाता है।[पत्थरसे कूटते समय सोमरस भूमिमें पड़ता है । और दशापवित्र (अँगोछे) से धारापातके समय द्रोणकलश नामक पात्रमें गिरता हुआ अन्तरिक्षमें छींटोंके रूपमें उड़ने लगता है,इसी बातको कहते हैं, कि-] इस चराचर जगत्की कारण पृथ्वी को लक्ष्यमें रखकर और पूर्व उत्पन्न हुआ जो द्युलोक है उस को लक्ष्य कर और द्यावापृथिवीरूप समानयोनिक स्थानको भी लक्ष्यमें रख कर चारों ओर छिटकते हुए सोमरसकण द्रप्सको होता मैत्रावरुण ब्राह्मणाच्छंसी पोता नेष्टा अग्नीध्र और अच्छावाक आदि सात वषट्कर्ता होताओंको भी लक्ष्यमें रख कर मैं अग्निमें होमता हूँ । आगे होत्रादिवषट्कारमेंसे सोमरसको अध्वर्यु होमेंगे, इसलिये मैं स्कन्न सोमरसको द्रप्स देवताके लिये करता हूँ । [वाजसनेयिब्राह्मणमें इस द्रप्सकी आदित्यरूपमें स्तुति की है, कि "असौ वा आदित्यो द्रप्सः । स दिवं च पृथिवीं च स्कन्दति । इमं च योनिमनु यश्च पूर्व इति । इमं च लोकं अमुं चेत्येतत् । समानं योनिमनुसञ्चरन्तम् इति । समानं ह्येष एतं योनिमनु सञ्चरति । द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्रा इति । असौ वा आदित्यो द्रप्सः । दिशः सप्त होत्राः । अमुं तदादित्यं दिक्षु प्रतिष्ठापयति ।" शतपथब्राह्मण ७ । ४ । १ । २०] ॥ २८ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शतधारं वायुमर्कं स्वर्विदं नृचक्षसस्ते अभि चक्षते रयिम् ।
ये पृणन्ति प्र च यच्छन्ति सर्वदा ते दुह्रते दक्षिणां सप्तमातरम् ॥ २९ ॥

शतऽधारम् । वायुम् । अर्कम् । स्वःऽविदम् । नृऽचक्षसः । ते । अभि । चक्षते । रयिम् ।
ये । पृणन्ति । प्र । च । यच्छन्ति । सर्वदा । दुह्रते । दक्षिणाम् ।
सप्तऽमातरम् ॥ २९ ॥

अष्टमी ॥ शतधारम् शतसंख्याकच्छिद्रपतितोदकप्रवाहयुक्तम् अत एव वायुम् । ❀ लुप्तमत्वर्थीयः ❀ । वायुमन्तम् । सच्छिद्रे वस्तुनि वायुर्वाति । यद्वा वायुम् वातारं चरन्तं वायुवदेव कुम्भोपि हस्ताद्धस्तप्रापणेन सर्वदा चरति तम् अर्कम् अर्चनीयं स्वर्विदम् स्वः स्वर्गस्य लम्भकम् एतं कुम्भं नृचक्षसः नृणां द्रष्टारो देवास्ते त्वदर्थम् । ❀ युष्मच्छब्दस्य "तेमयावेकवचनस्य" इति ते इत्यादेशो व्यत्ययेन उदात्तः ❀ । हे प्रेत त्वदर्थं रयिम् धनम् अभि चक्षते पश्यन्ति जानन्ति । एतं कुम्भं तव धनम् इत्येव जानन्ति । ये गोत्रिणः संस्कर्तारः पृणन्ति अस्थिरूपं त्वां कुम्भोदकेन प्रीणयन्ति प्र यच्छन्ति च कुम्भोदकं ते सप्तमातरम् सप्तसंख्याका मातृभूता अग्निष्टोमादिसंस्था यस्यास्ताम् यद्वा सप्तसंख्याका मातारः कर्मणां निर्मातारः कर्तारो होत्रादयः सन्ति यस्याः तादृशीम् । अथ वा मातारः परिच्छेत्तारो यस्याम् एकधा दत्तां सप्तधा मान्ति परिच्छिन्दन्ति ताम् । ❀ "ऋतश्छन्दसि" इति रूपः प्रतिषेधः ❀ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथाविधां दक्षिणां सर्वदा दुहते दुहते । उदकेन आस्रावनं नाम दक्षिणादोहनम् इत्यर्थः । ❀ दुहेर्लटि झस्य "बहुलं छन्दसि" इति रुडागमः ❀ ॥

मनुष्यों पर दृष्टि रखने वाले देवता, सैंकड़ों छिद्रोंसे टपकते हुए जलप्रवाहसे सम्पन्न और वायुकी समान एक हाथसे दूसरे हाथमें चलते हुए, अर्चनीय और स्वर्गको प्राप्त कराने वाले इस कुंभको हे प्रेत ! तेरे लिये धनरूप ही समझते हैं । और जो तेरे गोत्र वाले तुझ अस्थिरूपको कुम्भोदकसे तृप्त कर रहे हैं और कुम्भोदकको दे रहे हैं वे होता आदिके कारण सप्तमातृक उदक-धारारूप दक्षिणाको सर्वदा देरहे हैं ॥ २९ ॥

कोशं दुहन्ति कलशं चतुर्बिलमिडां धेनुं मधुमतीं स्वस्तये ।

ऊर्जं मदन्तीमदितिं जनेष्वग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन्

कोशम् । दुहन्ति । कलशम् । चतुऽबिलम् । इडाम् । धेनुम् । मधुऽमतीम् । स्वस्तये ।

ऊर्जम् । मदन्तीम् । अदितिम् । जनेषु । अग्ने । मा । हिंसीः । परमे । विऽओमन् ॥ ३० ॥

नवमी ॥ चतुर्बिलम् । शतसंख्याकच्छिद्रस्य कुम्भस्य चतुर्णां छिद्राणाम् अवयुत्य स्तुतिः । चतुश्छिद्रं चतुःस्तनं कोशम् कोशवत् कोशः । कोशो यथा धनकनकादिसंपूर्णस्तद्वत् पयःपूर्णं कलशम् कुम्भं कुम्भोपमम् ऊधः मधुमतीम् मधुररसक्षीरयुक्ताम् इडाम् । धेनुनामैतत् । एतत्संज्ञकां धेनुम् । यद्वा इडा भूमिः । भूमिरूपां धेनुं दुहन्ति । ❀ दुहिर्द्विकर्मकः ❀ । किमर्थम् । स्वस्तये । स्व-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्तीत्यविनाशिनाम । प्रेतस्य सर्वदा,परलोकनिवासाय । चतुश्छिद्र-कलशोदकेन आप्लावनं नाम चतुःस्तनधेनुदोहनमेवेत्यर्थः । मद-न्तीम् मदयन्तीं तोषयन्तीम् अदितिम् अखण्डनीयाम् ऊर्जम् बल-करम् अन्नं जनेषु पितृत्वं प्राप्तेषु मध्ये हे अग्ने मा हिंसीः पितॄणां मध्ये एतस्य प्रेतस्य भोगाय अन्नं मा च्छेत्सीः । परमे व्योमन्निति पदद्वयं कलशं दुहन्तीत्यनेन संबन्धनीयम् । परमे उत्कृष्टे व्योमन् । ❀ सप्तम्या लुक् । "न ङिसंबुद्ध्योः" इति नलोपाभावः ❀ । व्योमनि आकाशे शतच्छिद्रं कलशं दुहन्तीति ॥

इति चतुर्थेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

[सैंकड़ों छिद्र वाले कुम्भके चार छिद्रोंको अलग करके यहाँ स्तुति की है, कि–] धन सुवर्ण आदिसे सम्पन्न कोशकी समान पयःपूर्ण स्तनोंकी समान चार छिद्र वाले कलशको इस प्रकार दुहते हैं जैसे मधुर रस क्षीरसे सम्पन्न धेनुको, दुहते हैं । अर्थात् चार छिद्र वाले कलशसे जल छिड़कना चार स्तन वाली धेनुको दुहना ही है । हे अग्ने ! पितरोंमें, पहुँचे हुए इस प्रेतके लिये आप सन्तुष्ट करने वाली अखण्डनीया अदिति देवीको और बलकर अन्नको छिन्न मत करना अर्थात् तहाँ पर इसको सदा तुष्टि और अन्न प्राप्त होता रहे ॥ ३० ॥ (२२)

चतुर्थ अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त ॥

"एतत् ते देवः" इति सूक्तस्य आद्यया ऋचा वासोऽभिमन्त्र्य प्रेतं प्रच्छादयेत् ॥

"धाना धेनुरभवत्" [३२] "एतास्ते असौ धेनवः" [३३] "एनीर्धाना हरिणीः" [३४] इति तिसृभिर्ऋग्भिः अस्थ्नाम् उपरि तिलमिश्रा धाना आदध्यात् ॥

पितृमेधे द्वितीयेऽहनि "वैश्वानरे हविः" [३५] इत्यनया दहनस्थान संनिधौ अन्यवत्साया गोः पयः पयसि शृतं स्थालीपाकं वा जुहुयात्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"सहस्रधारम्" [३६] इत्यनया अभिमन्त्रितेन सहस्रच्छिद्र-पात्रप्रतितोदकेन अस्थीन्वासावयेत् ॥

"इदं कसाम्बु" [३७] इत्यनया गर्ते स्थापितानि अस्थीनि गोत्रिणः सर्वे वा ईक्षेरन् । कर्ता मन्त्रं ब्रूयात् ॥

"इहैवैधि" इत्यनया पिण्डपितृयज्ञे दीप्तयोः काष्ठयोरेकं हृत्वा पांसुषु प्रक्षिपेत् । सूत्रितं हि । "द्वे काष्ठे गृहीत्वा उशन्तः[१८.१.५६] इत्यादीपयति । आदीप्तयोरेकं प्रतिनिदधाति । इहैवैधि धनसनिः [१८.४.३८] इत्येकं हृत्वा पांसुष्वाधाय" इति [कौ० ११.८] ॥

"पुत्रं पौत्रम्" [३९] इत्यृचा पिण्डपितृयज्ञे पिण्डदानानन्तरम् आचामेत् ॥ "आपो अग्निम्" [४०] इत्युत्तरया अद्भिरग्निम् अवसिञ्चेत् ॥

सूत्रितं हि । "आपो अग्निम् इत्यद्भिरग्निम् अवसिच्य पुत्रं पौत्रम् अभितर्पयन्तीरित्याचामति" इति [कौ० ११. ९] ॥

"एतत् ते देवः" सूक्तकी पहिली ऋचासे वस्त्रको अभिमन्त्रित करके प्रेतको ढक देय ।

"धाना धेनुरभवत्" (३२) एतास्ते असौ धेनवः (३३) एतार्धाना हरिणीः (३४) इन तीन ऋचाओंसे अस्थियोंके ऊपर तिलमिश्रित जौंकी खीलोंको रक्खे ।

पितृमेधके दूसरे दिन "वैश्वानरे हविः" (३५) ऋचासे दहनस्थानके पासमें अन्यवत्सा (जिसका अपना बछड़ा न होकर दूसरी गौका बछड़ा हो उस) गौके दूधको वा दूधमें औटे हुए स्थालीपाकको होम देय ।

"सहस्रधारम्" (३६) ऋचासे अभिमन्त्रित सहस्रछिद्रपात्र से गिरते हुए जलसे अस्थियोंको आसावित करे ।

"इदं कसाम्बु" (३७) ऋचासे गड्ढेमें रखी हुई हड्डियोंको गोत्र वाले वा सब पुरुष देखें । कर्ता मन्त्रको कहे ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"इहैवेधि" ऋचासे पिण्डपितृयज्ञमें प्रज्वलित दो काष्ठोंमेंसे एकको ग्रहण करके धूलमें फेंक देय। सूत्रमें भी कहा है, कि– "द्वे काष्ठे गृहीत्वा उशन्तः (१८।१।५६) इत्यादीपयति। आदीप्तयोरेकं प्रति निदधाति। इहैवैधि धनसनिः (१८।४।३८) इत्येकं हृत्वा पांसुष्वाधाय" (कौशिकसूत्र ११।८)॥

"पुत्रं पौत्रम्" (३९) ऋचासे पिण्डपितृयज्ञमें पिण्डदानके अनन्तर आचमन करे। "आपो अग्निम्" इस चालीसवीं ऋचा से जलसे अग्निको सिक्त करे।

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–"आपो अग्निं इत्यद्भिरग्निं अवसिच्य पुत्रं पौत्रं अभितर्पयन्ति इत्याचामयति" (कौशिकसूत्र ११।९)॥

तत्र प्रथमा॥

एतत् ते देवः सविता वासो ददाति भर्तवे।
तत् त्वं यमस्य राज्ये वसानस्तार्प्यं चर॥ ३१॥

एतत्। ते। देवः। सविता। वासः। ददाति। भर्तवे।
तत्। त्वम्। यमस्य। राज्ये। वसानः। तार्प्यम्। चर॥३१॥

हे प्रेत ते तव सविता सर्वस्य प्रेरको देवः एतत् इदं वासः वस्त्रं भर्तवे भरणाय आच्छादनाय ददाति प्रयच्छति। त्वं च तत् तार्प्यम् तर्पणार्हं प्रीतिकरम्। यद्वा तृपा नाम तृणविशेषः। तन्निर्मितं घृताक्तं वस्त्रं तार्प्यम् इति अन्ये वदन्ति। तद् वस्त्रं वसानः आच्छादयन्। ❀ वस आच्छादने। आदादिकः अनुदात्तेत् ❀। यमस्य प्रेताधिराजस्य राज्ये चर परिभ्राम्य॥

हे प्रेत! सर्वप्रेरक सविता देवता इस वस्त्रको आच्छादन करने के लिये तुझे देते हैं, तू भी इस तृप्ति देने वाले वस्त्रको ओढ़कर प्रेताधिराज यमके राज्यमें विचरण कर॥ ३१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वितीया ॥

धाना धेनुरभवद् वत्सो अस्यास्तिलो भवत् ।
तां वै यमस्य राज्ये अक्षितामुप जीवति ॥ ३२ ॥

धानाः । धेनुः । अभवत् । वत्सः । अस्याः । तिलः । अभवत् ।
ताम् । वै । यमस्य । राज्ये । अक्षिताम् । उप । जीवति ॥३२॥

धाना भृष्टयवः धेनुः प्रीणयित्री गौरभवत् । अस्या धेनुरूपाया धानायास्तिलः वत्सोऽभवत् । तां वत्सरूपतिलसहितां धेनुरूपां धानां यमस्य राज्ये अक्षिताम् क्षयरहिताम् उप जीवाति उपजीवेद् अयं प्रेतः । ❀ जीवतेर्लेटि आडागमः ❀ । वैशब्दः प्रसिद्धिद्योतनार्थः । यद्वा । ❀ तिङां तिङो भवन्तीति हेस्तिबादेशः ❀ । उपजीव हे प्रेत त्वम् इति । ❀ अक्षिताम् । क्षि क्षये । "निष्ठायाम् अण्यदर्थे" इति पर्युदासाद् दीर्घाभावः । ण्यदर्थो भावकर्मणी । अत एव दीर्घाभावाद् नत्वाभावः ❀ ॥

यह भुने हुए जौंकी खील धेनु बनेगी और तिल इसका बछड़ा बनेगा, हे प्रेत ! तू इस वत्सरूप तिलसहित अक्षीणा धेनुरूपा खील से उपजीवन कर ॥ ३२ ॥

तृतीया ॥

एतास्ते असौ धेनवः कामदुघा भवन्तु ।
एनीः श्येनीः सरूपा विरूपास्तिलवत्सा उप तिष्ठन्तु त्वात्र ॥ ३३ ॥

एताः । ते । असौ । धेनवः । कामऽदुघाः । भवन्तु ।
एनीः । श्येनीः । सऽरूपाः । विऽरूपाः । तिलऽवत्साः । उप ।
तिष्ठन्तु । त्वा । अत्र ॥ ३३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असौ इति प्रेतस्य संबोधनम् । हे असौ अमुकनामधेय प्रेत ते तव एता धानाः कामदुघाः कामं काम्यमानं फलं दुहन्तीति कामदुघाः । ❀ "दुहः कब्घश्च" इति कप् प्रत्ययो घश्च अन्तादेशः❀। इष्टफलदा धेनवो भवन्ति । ता एव विशिनष्टि । एनीः । एताः संध्यावर्णाः । श्येतः शुभ्रवर्णः । ❀ उभयत्र "वर्णाद् अनुदात्तात्०" इति ङीन्नकारौ । "वा छन्दसि" इति पूर्वसवर्णदीर्घः❀। एन्यः संध्यावर्णाः शुभ्रारुणवर्णाः श्येन्यो धवलवर्णाः सरूपाः समानरूपाः विरूपाः विविधरूपाः तिलवत्साः तिलात्मकवत्ससहिता धेनुरूपा धानाः अत्र अस्मिन् यमराज्ये हे प्रेत त्वा त्वाम् उप तिष्ठन्तु अभिमतफलदोहनार्थं समीपे सेवन्ताम् परिचरन्तु ॥

हे अमुक नाम वाले प्रेत ! यह लाल श्वेत बछड़ेकी समान और बछड़ेसे भिन्न रूपवाली तिलात्मक बछड़े वाली धेनुरूपा खीलें तेरे लिये कामधेनु होवें और इस यमलोकमें अभिमत फल देनेके लिये तेरे पास उपस्थित रहें ॥ ३३ ॥

चतुर्थी ॥

एनीर्धाना हरिणीः श्येनीरस्य कृष्णा धाना रोहिणीर्धेनवस्ते ।
तिलवत्सा ऊर्जमस्मै दुहाना विश्वाहा सन्त्वनपस्फुरन्तीः ॥ ३४ ॥

एनीः । धानाः । हरिणीः । श्येनीः । अस्य । कृष्णाः । धानाः । रोहिणीः । धेनवः । ते ।

तिलऽवत्साः । ऊर्जम् । अस्मै । दुहानाः । विश्वाहा । सन्तु । अनपऽस्फुरन्तीः ॥ ३४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्वमन्त्रोक्तोर्थः अनया विव्रियते। एनीश्येनीशब्दौ व्याख्यातौ। हरिणीः हरिण्यः हरितवर्णाः। कृष्णाः अतिभर्जनात् कृष्णवर्णाः। रोहिणीः रोहितवर्णा अरुणवर्णाः। ❀ सर्वत्र पूर्ववद् ङीम्नकारदीर्घाः ❀। धेनुरूपा धानाः अस्य ते तव भवन्ति। तास्तिलवत्सा धेनवो विश्वाहा सर्वेषु अहःसु। ❀ "कालाध्वनोः०" इति द्वितीया ❀। अनपस्फुरन्तीः अनपस्फुरन्त्यः। अपस्फुरणं नाम नाशः। अविनश्वर्यः अक्षीणाः सत्यः अस्मै अस्थिरूपाय ते तव ऊर्जम् बलकरम् अन्नं दुहानाः प्रयच्छन्त्यः सन्तु भवन्तु॥

लाल और श्वेत वर्ण वालीं, हरित वर्णकी, अधिक भूननेसे काले वर्णकी, अरुण वर्णकी ये खीलें तेरे लियें धेनुरूप होरही हैं ये तिलरूपी बछड़े वालीं धेनुएँ प्रतिदिन अटूटरूपसे इसके लिये बलप्रद अन्नको देती रहें॥ ३४॥

पञ्चमी॥

वैश्वानरे हविरिदं जुहोमि साहस्रं शतधारमुत्सम्।
स बिभर्ति पितरं पितामहान् प्रपितामहान् बिभर्ति पिन्वमानः॥ ३५॥

वैश्वानरे। हविः। इदम्। जुहोमि। साहस्रम्। शतऽधारम्। उत्सम्।
सः। बिभर्ति। पितरम्। पितामहान्। प्रऽपितामहान्। बिभर्ति। पिन्वमानः॥ ३५॥

वैश्वानरे विश्वनरहितो विश्वानरः। ❀ "नरे संज्ञायाम्" इति पूर्वपदस्य दीर्घः ❀। विश्वानर एव वैश्वानरः। तस्मिन् अग्नौ इदं पयोरूपं स्थालीपाकरूपं वा हविः जुहोमि प्रक्षिपामि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हविर्विशिनष्टि । साहस्रम् सहस्रविधोदकप्रवाहयुक्तम् । ❀ "तपः सहस्राभ्यां विनीनी" । "अण् च" इति मत्वर्थीयः अण् प्रत्ययः ❀ । शतधारम् शतप्रवाहोपेतम् । अवयुत्य स्तुतिः । उत्सम् प्रस्रवणम् । यथा एवंविध उत्सः स्वोपजीविनः प्राणिनः प्रीणयति एवम् इदं हविः नानाविधं सत् पितॄन् पुष्णातीति उत्सात्मना रूपितम् ॥ पिन्वमानः । ❀ पिविरिदन्तः प्रीणनार्थो भौवादिकः । इदित्वान्नुम् ❀ । हविषा प्रीतः स वैश्वानरोग्निः पितरम् पितृत्वं प्राप्तं स्वजनकं प्रेतं पितामहान् पितुः पितॄन् बिभर्ति प्रीणयति । तथा प्रपितामहान् प्रकृष्टान् पितामहान् स्वपितुः पितामहान् । बहुवचनेन पितामहादीन् सर्वान् स्ववंश्यान् । बिभर्ति पुष्णातीति । ❀ "पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः" इति पितामहशब्दो निपातितः ❀ ॥

मैं इन वैश्वानर अग्निदेवमें इस दुग्धात्मक वा स्थालीपाकरूप हविको होमता हूँ । यह हवि अनेक प्रकारके जलप्रवाहसे सम्पन्न है सैंकड़ों प्रवाहों वाली है, और वर्षा करके मेघकी समान अपने उपजीवी पितरोंको तृप्त करने वाली है । इस हविसे प्रसन्न हुए वैश्वानर अग्नि पितृत्वको प्राप्त हमारे प्रेत पिताको, पिताके पिताओं (चचेरे तऐरे सगे दादाओं) को और प्रपितामहोंको अर्थात् मेरे वंशमें उत्पन्न हुए सब पुरुषोंको पुष्ट करे ॥ ३५ ॥

षष्ठी ॥

सहस्रधारं शतधारमुत्समक्षितं व्यच्यमानं सलिलस्य पृष्ठे ।
ऊर्जं दुहानमनपस्फुरन्तमुपासते पितरः स्वधाभिः ३६

सहस्रऽधारम् । शतऽधारम् । उत्सम् । अक्षितम् । विऽअच्यमा-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नम् । सलिलस्य । पृष्ठे ।

ऊर्जम् । दुहानम् । अनपऽस्फुरन्तम् । उप । आसते । पितरः ।

स्वधाभिः ॥ ३६ ॥

सहस्रधारम् सहस्रसंख्याकच्छिद्रपतितोदकप्रवाहयुक्तं शतधारम् । अवयुत्यैव स्तुतिः । उत्सम् । उत्सवद्वा उत्सः । उत्सोपमं कलशम् अक्षितम् क्षयरहितम् उदकपूर्णं सलिलस्य अन्तरिक्षस्य,पृष्ठे उपरिभागे व्यच्यमानम् । ❀ व्यचतिर्व्याप्तिकर्मा ❀ । व्याप्नुवन्तम् । आकाशे धार्यमाणम् इति यावत् । ऊर्जम् बलकरम् अन्नम् । अन्नसाधनोदकम् इति यावत् । दुहानम् क्षारयन्तम् अनपस्फुरन्तम् बहुच्छिद्रसाहित्येपि अविदीर्यमाणं सम्यक् शोभमानं वा सहस्रच्छिद्रं कुम्भं पितरः प्रेतभूताः । ❀ पूजायां बहुवचनम् ❀ । स्वधाभिः । ❀ हेतौ तृतीया ❀ । स्वप्रीणनसाधनैरन्नैर्हेतुभिः उपासते सेवन्ते उपगच्छन्ति ॥

प्रेतभूत पितर, सहस्र छिद्रोंसे गिरते हुए जलप्रवाहसे सम्पन्न अत एव मेघकी समान क्षयरहित उदकपूर्ण अन्तरिक्षके ऊपरके भागमें व्याप्त–आकाशमें धरे हुए–अन्नके साधन जलको टपकाते हुए बहुतसे छिद्र होने पर भी न टूटते हुए कुंभकी उपासना करते हैं ॥ ३६ ॥

सप्तमी ॥

इदं कसाम्बु चयनेन चितं तत् संजाता अव पश्यतेत ।
मर्त्योयममृतत्वमेति तस्मै गृहान् कृणुत यावत्सबन्धु

इदम् । कसाम्बु । चयनेन । चितम् । तत् । सऽजाताः । अव ।

पश्यत । मा । इत ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मर्त्यः । अयम् । अमृतत्वम् । एति । तस्मै । गृहान् । कृणुत ।

यावत्सबन्धु ॥ ३७ ॥

हे सजाताः सहजन्मानः समानकुले जाता गोत्रिणः यूयं चयनेन ,संचयनकर्मणा चितम् संचितम् एकत्र समूहीकृतं तद् इदं कसाम्बु कसाः कीकसाः अस्थीनि ।❀ आदिवर्णलोपश्छान्दसः❀। कसाश्च अम्बूनि च कसाम्बु । ❀ द्वन्द्वैकवद्भावः ❀ । पूर्वमन्त्रेण अस्थ्नाम् उदकेन आप्लावनम् उक्तम् । उदकाप्लावितान्यस्थीनि अव पश्यत अवधानेन ईक्षध्वम् । एत आगच्छत ॥ अयं मर्त्यः मरणधर्मा प्रेतः अमृतत्वम् एति अमरणधर्मं प्राप्नोति । तस्मै तदर्थं गृहान् स्थानानि कृणुत कुरुत । यावत्सबन्धु यावन्तः सबन्धवः समानगोत्रा भवथ ते सर्वे यूयं तस्मै प्रेताय गृहान् कुरुतेति । तस्यास्थिनिरीक्षणमेव परलोके स्थानकरणम् इत्यर्थः ॥

हे समान कुलमें उत्पन्न हुए गोत्र वालों ! तुम सञ्चयन कर्म से एकत्रित किये हुए इस जलप्लावित अस्थिसमूहको सावधानी से देखो । आओ । यह अमरणधर्मीप्रेत अमरणधर्मको प्राप्त हो रहा है उसके लिये घर बनाओ, जितने तुम एक गोत्र वाले हो उतने तुम सब प्रेतके लिये घरोंको बनाओ तात्पर्य यह है, कि– इसकी अस्थियोंका देखना ही इसके लिये घर बनाना है ॥ ३७ ॥

अष्टमी ॥

इहैवैधि धनसनिरिहचित्त इहक्रतुः ।

इहैधि वीर्यवत्तरो वयोधा अपराहतः ॥ ३८ ॥

इह । एव । एधि । धनऽसनिः । इहऽचित्तः । इहऽक्रतुः ।

इह । एधि । वीर्यवत्ऽतरः । वयःऽधाः । अपराऽहतः ॥ ३८ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे दीप्तपांसुष्वाहित उल्मुक त्वम् इहैव पांसुलक्षणे प्रदेश एव एधि भव। धनसनिः अस्माकं धनस्य दाता भव। ❀ "छन्दसि वनसनरक्षिमथाम्" इति सनोतेः इन् प्रत्ययः ❀। इह अस्मिन् प्रदेशे चित्तः प्रज्ञातो भव। ❀ चिञ् संज्ञाने। कर्मणि निष्ठा। "श्वीदितो निष्ठायाम्" इति इडभावः ❀। इह क्रतुः कर्म अस्मदीयकर्मसंपादको भव। तथा इहैव प्रदेशे वीर्यवत्तरः अत्यन्तं बलवान् वयोधाः। वय इति अन्ननाम। तस्य धाता विधाता अपराहतः शत्रुभिरपराजितश्च सन् एधि भव। ❀ अस्तेर्लोटि हौ रूपम् ❀॥

हे उल्मुक! तू यहाँ ही धूलिमय देशमें रह हमको धनदान करने वाला हो, इस देशमें ही प्रज्ञात हो, यहाँ हमारे कर्मका सम्पादक हो, तथा इसी प्रदेशमें परम बली, अन्नको पुष्ट करने वाला और शत्रुओंसे अप्रधृष्य रहता हुआ बढ़॥ ३८॥

नवमी॥

पुत्रं पौत्रमभितर्पयन्तीरापो मधुमतीरिमाः।
स्वधां पितृभ्यो अमृतं दुहाना आपो देवीरुभयांस्तर्पयन्तु॥ ३९॥

पुत्रम्। पौत्रम्। अभिऽतर्पयन्तीः। आपः। मधुऽमतीः। इमाः। स्वधाम्। पितृऽभ्यः। अमृतम्। दुहानाः। आपः। देवीः। उभयान्। तर्पयन्तु॥ ३९॥

मधुमतीः मधुररसोपेता इमा आचमनार्हा आपः पुत्रम् अव्यवहितं पुमपत्यं पौत्रम् पुत्रस्य पुमपत्यम्। ❀ उभयत्र एकवचनम् अतन्त्रम्। लिङ्गं तु विवक्षितम् ❀। पुत्रान् पौत्रांश्च अभितर्प-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यन्तीः अभितः सर्वतस्तर्पयन्त्यः प्रीणयन्त्यो भवन्ति यतः अतः पितृभ्यः स्वीयेभ्यः पिण्डोपजीविभ्यः अमृतम् अमरणसाधनं स्वधाम् आत्मप्रीणनकरम् अन्नं दुहानाः प्रयच्छन्त्यो देवीः देव्यो द्योतमाना आपः आचमनीया उभयान् पुत्रान् पौत्रांश्च उभयविधान् तर्पयन्तु वर्धयन्तु । अथ वा उभयशब्देन स्वीया मातृपितामहादयः पितृवंश्याश्च विवक्ष्यन्ते । तान् उभयविधांस्तर्पयन्तु । पिण्डदानान्तरं क्रियमाणेन अनेन आचमनकर्मणा तृप्तान् कुर्वन्तु । ❀ अस्मिन् पक्षे पितृभ्य इत्यत्र "पिता मात्रा" इति एकशेषो द्रष्टव्यः ❀ ॥

यह मधुर रस वाला आचमनके योग्य जल पुत्र और पौत्रोंको तृप्त करता रहता हैं और पिण्डोपजीवी पितरोंके लिये अमरण-साधन अपनेको प्रसन्न करने वाली स्वधाको देता रहता है। ऐसा यह जल आचमन करने पर मातृकुलके और पितृकुलके इस प्रकार दोनों ओरके पितरोंको तृप्त करे ॥ ३९ ॥

दशमी ॥

आपो अग्निं प्रहिणुत पितॄँरुपेमं यज्ञं पितरो मे जुषन्ताम्
आसीनामूर्जमुप ये सचन्ते ते नो रयिं सर्ववीरं नि यच्छान् ॥ ४० ॥

आपः । अग्निम् । प्र । हिणुत । पितॄन् । उप । इमम् । यज्ञम् । पितरः । मे । जुषन्ताम् ।

आसीनाम् । ऊर्जम् । उप । ये । सचन्ते । ते । नः । रयिम् । सर्वऽवीरम् । नि । यच्छान् ॥ ४० ॥

हे आपः अवसेचनसाधनभूता यूयम् अग्निम् युष्माभिरवसिच्यमानं दक्षिणाग्निं पितॄन् पितृपितामहादीन् उप । उपशब्दः समी-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पश्चचनः। पितॄणां समीपं प्र हिणुत प्रेषयत। बर्हिर्दत्तान् पिण्डान् दातुम् इति शेषः॥ मे मदीयम् इमम् इदानीम् अनुष्ठीयमानं यज्ञम् पिण्डपितृयज्ञाख्यं पितरः मदीया जुषन्ताम् सेवन्ताम्। पिण्डान् आस्वादयन्तु। ये पितरः आसीनाम् उपविष्टाम्। ❀ आस उपवेशने। "ईदासः" इति ईकारः ❀। बर्हिषि आसादिताम् ऊर्जम् बलकरपिण्डलक्षणम् अन्नम् उप सचन्ते स्वीकर्तुं समीपे समवयन्ति ते पितरो नः अस्मभ्यं सर्ववीरम्। वीराः कर्मणि कुशलाः पुत्रपौत्रादयः। बहुपुत्रादिसहितं रयिम् धनं नि यच्छान् नियच्छन्तु प्रयच्छन्तु। नियमनं नाम स्थैर्येण अवस्थापनम्। ❀ यमेर्लेटि "इतश्च लोपः परस्मैपदेषु" इति इकारलोपः ❀॥

इति चतुर्थेनुवाके चतुर्थं सूक्तम्॥

हे जलों! अवसेचनके साधनरूप तुम अपने द्वारा अवसिक्त दक्षिणाग्निको यज्ञमें दिये हुए पिण्डोंको पहुँचानेके लिये पिता पितामह आदि पितरोंके समीप पहुँचाओ। मेरे पितर इस पिंडपितृयज्ञ नामक यज्ञका सेवन करें—पिण्डोंका आस्वादन करें। और जो पितर यज्ञमें रखे हुए बलप्रद पिण्डरूप अन्नका सेवन करनेके लिये समीपमें आते हैं, वे पितर हमको सब कर्मोंमें कुशल पुत्र पौत्र आदि सहित बहुतसे धनको देवें॥ ४०॥ (२३)

चतुर्थ अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त।

"समिन्धते" इति आद्यया ऋचा पिण्डपितृयज्ञे समिधम् आदध्यात्। सूत्रितं हि। "उपसमादधाति ये निखाताः [१८. २. ३४] समिन्धते [१८. ४. ४१] ये तातृषुः [१८. ३. ४७] ये सत्यासः [१८. ३. ४८] इति [कौ० ११. ८]

"यास्ते धानाः" [४३] इत्यस्या अस्थिषु तिलमिश्रधानाविकिरणे विनियोग उक्तः॥

"इदं पूर्वम्" [४४] इत्यनया दहनार्थं प्रेतम् उत्थाप्य शकटे निदध्यात्॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"सरस्वतीं देवयन्तः" [४५] इति तिसृणां प्रेतशरीरे अग्निदानानन्तरं सारस्वतहोमे विनियोग उक्तः ॥

"पृथिवीं त्वा" [४८] इत्यनया सवयज्ञेषु मृद्गोमयादिना चरुस्थालीम् आलिम्पेत् । "पृथिवीं त्वा पृथिव्याम् इति कुम्भीम् आलिम्पति" इति [कौ० ८. २] सूत्रं प्रागेव प्रदर्शितम् ॥

"आ प्र च्यवेथाम्" [४९] इति ऋचा प्रेतवाहनवृषभौ अभिमन्त्र्य कर्ता गृह्णीयात् ॥

पितृमेध एव चतुर्थेऽहनि "एयमगन्" [५०] इति ऋचा दक्षिणारूपां गाम् अभिमन्त्र्य प्रतिगृह्णीयात् ॥

"समिन्धते" इस पहिली ऋचासे पिण्डपितृयज्ञमें समिधाको रक्खे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"उपसमादधाति ये निखाताः (१८ । २ । ३४) समिंधते (१८ । ४ । ४१) ये तातृषुः (१८ । ३ । ४७) ये सत्यासः (१८ । ३ । ४८)" (कौशिकसूत्र ११ । ८) ॥

"यास्ते धानाः" इस (४३ वीं) ऋचाका अस्थियों पर तिलमिश्रित भुने हुए जौंकी खीलोंके प्रक्षेपमें विनियोग कह दिया । "इदं पूर्वम्" इस चौबालीसवीं ऋचासे भस्म करनेके लिये प्रेत को उठा कर शकटमें रक्खे ।

"सरस्वतीं देवयन्तः" आदि (४५ । ४६ । ४७) तीन ऋचाओं का प्रेतशरीरमें अग्निदानके अनन्तर सारस्वतहोममें विनियोग कहा है

"पृथिवीं त्वा" इस अड़तालीसवीं ऋचासे सब यज्ञोंमें मट्टी गोबर आदिसे चरुस्थालीको लीप देय। इस विषयका कौशिकसूत्र ८ । २ "पृथिवीं त्वा पृथिव्याम् इति कुम्भीं आलिम्पन्ति" पहिले ही कह दिया है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"आ प्रच्यवेथां" इस ४९ वीं ऋचासे प्रेतको सवारी देनेवाले बैलोंको अभिमन्त्रित करके कर्ता ग्रहण करे।

पितृमेधमें ही चौथे दिन "एयमगन्" इस ५० वीं ऋचासे दक्षिणाकी गौको अभिमन्त्रित करके ग्रहण करे॥

तत्र प्रथमा॥

समिन्धते अमर्त्यं हव्यवाहं घृतप्रियम्।
स वेद निहितान् निधीन् पितॄन् परावतो गतान् ४१

सम्। इन्धते। अमर्त्यम्। हव्यऽवाहम्। घृतऽप्रियम्।
सः। वेद। निऽहितान्। निऽधीन्। पितॄन्। पराऽवतः। गतान्

अमर्त्यम् अमरणधर्माणं घृतप्रियम् प्रियं प्रीतिकरं घृतम् आज्यं यस्य। ❀ "वा प्रियस्य" इति प्रियशब्दस्य पूर्वनिपातविकल्पनाद् अत्र परनिपातः ❀। आज्येन अग्निः प्रवृद्धज्वालो भवतीति घृतप्रियत्वम्। हव्यवाहम् हव्यस्य हविषो वोढारम् अग्निं समिन्धते समिन्धनसाधनैः काष्ठैः सम्यग् दीपयन्ति कर्तारः। ❀ इन्धेर्लटि बहुवचने रूपम् ❀। यद्वा ❀ तस्मादेव धातोर्लेटि अडागमः ❀। समिद्भिः समिन्धीत। यतः सोग्निः निहितान् भूमौ स्थापितान् निधीन् निक्षेपान्। लुप्तोपमम् एतत्। यथा भूम्यां निगूढा निधयः प्रदर्शकेन विना न प्रकाशन्ते एवं पितरोपि पुरःस्फूर्तिका न भवन्ति। निधीनिव स्थितान् परावतः। परावच्छब्दो दूरवाची। ❀ पराशब्दाद् "उपसर्गाच्छन्दसि०" इति वतिप्रत्ययः ❀। अतिदूरान् देशान् गतान् प्राप्तान् पितॄन् वेद जानाति। अस्य पितरः अत्र देशे वर्तन्त इति सम्यग् जानाति। ❀ वेत्तेः "विदो लटो वा" इति तिपो णल् आदेशः ❀। अतः समिन्धत इति संबन्धः॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्ता पुरुष मरणधर्म रहित, घृतसे बढ़ने वाले अत एव घृतप्रिय, हवियोंका वहन करने वाले अग्निको काष्ठोंसे प्रदीप्त करते हैं। क्योंकि-जैसे भूमिमें छिपे हुए खजानेको किसी दिखाने वालेके विना कोई नहीं जान सकता, इसी प्रकार पितर भी अपने आप ही प्रकाशित होने वाले नहीं होते। और यह अग्निदेव निधिकी समान परम दूर देशमें स्थित पितरोंको जानते हैं, कि-इसके पितर यहाँ इस देशमें रहते हैं, अत एव कर्ता इस अग्निको प्रदीप्त करते हैं॥ ४१॥

द्वितीया॥

यं ते मन्थं यमोदनं यन्मांसं निपृणामि ते।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः॥ ४२॥

यम्। ते। मन्थम्। यम्। ओदनम्। यत्। मांसम्। निऽपृणामि। ते।
ते। ते। सन्तु। स्वधाऽवन्तः। मधुऽमन्तः। घृतऽश्चुतः॥४२॥

प्रेतस्य हि प्रीणनाय सक्तुमन्थादयः प्रदीयन्ते। "ये अग्नयः [३. २१.१] इति दशर्चेन पलाशपर्णैः सक्तुमन्थं विकिरेत्" इति हि सूत्रम् [कौ० ११.३]। "अपूपवान् मांसवान्" इति[२०]"०अन्नवान्" [२१] इति च मन्त्रयोर्मांसान्नदानं विहितम्। उपलक्षणम् एतत् क्षीरौदनदध्योदनतिलमिश्रधानादेः। यन्मन्थादिकम् हे प्रेत ते तुभ्यं निपृणामि ददामि। निपरणं नाम पित्र्योपवीतिना पराचीन पाणिना पित्रर्थं चोदितद्रव्यस्य प्रक्षेपः। ते मन्थादयः ते तव स्वधावन्तः बहन्ना मधुमन्तः मधुयुक्ता घृतश्चुतः घृतसहिताश्च सन्तु भवन्तु॥

[प्रेतको तृप्त करनेके लिये सक्तुमन्थ आदि दिये जाते हैं इस विषयमें कौशिकसूत्र ११। ३ का प्रमाण है, कि-"ये अग्नयः ३। २१। १ इति दशर्चेन पलाशपर्णेन सक्तुमंथं विकिरेत्।-ये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अग्नयः (३ । २१ । १) आदि दश ऋचाओंसे पलाशपत्रोंके द्वारा मन्थको देवे" अत एव इन मन्त्रोंसे] जो मन्थ आदि हे प्रेत ! तुझको देरहा हूँ । वे मन्थ आदि तेरे लिये स्वधा वाले और घृत वाले हों ॥ ४२ ॥

तृतीया ॥

यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
तास्ते सन्तूद्भ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम्

याः । ते । धानाः । अनुऽकिरामि । तिलऽमिश्राः । स्वधाऽवतीः । ताः । ते । सन्तु । उत्ऽभ्वीः । प्रऽभ्वीः । ताः । ते । यमः । राजा । अनु । मन्यताम् ॥ ४३ ॥

"यास्ते धानाः" इति तृतीया ऋग् अस्मिन्नेनुवाकाके तृतीयसूक्ते व्याख्याता [२६] ॥

हे प्रेत ! मैं तेरे लिये जिन काले तिलों वाली स्वधान्नसे संपन्न भुनी हुई जौंकी खीलोंको देरहा हूँ, वे खीलें तेरे परलोकमें पहुँचने पर तुझको बड़ी २ और विशाल परिमाणमें मिलें । और इन खीलोंका भोग लगानेके लिये यमराज तुझको अनुमति दें ४३

चतुर्थी ॥

इदं पूर्वमपरं नियानं येना ते पूर्वे पितरः परेताः ।
पुरोगवा ये अभिशाचो अस्य ते त्वा वहन्ति सुकृतामु लोकम् ॥ ४४ ॥

इदम् । पूर्वम् । अपरम् । निऽयानम् । येन । ते । पूर्वे । पितरः । पराऽइताः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुरःऽगवाः । ये । अभिऽशाचः । अस्य । ते । त्वा । वहन्ति ।

सुऽकृताम् । उ । इति । लोकम् ॥ ४४ ॥

इदं नियानम् । नीचीनं पराङ्मुखं यान्ति अनेन प्रेता इति नियानं शकटम् । इदं पुरोवर्ति प्रेतवहनाय संनद्धं नियानं शकटं पूर्वम् पुरातनम् अपरम् अद्यतनं च । पूर्वेषां प्रेतानां वहनाय एतदेव शकटम् अपरेषाम् इदानींतनानामपि इदमेव शकटम् इति पूर्वम् अपरं चेत्युच्यते । पूर्वत्वमेव उपपादयति । येन शकटेन ते तव पूर्वे पुरातनाः पितरः परेताः इतः पराङ्मुखं गताः ॥ अस्य अपरस्य इदानीं संनह्यमानस्य शकटस्य अभिषाचः अभितः पार्श्वद्वये सचमानाः संगच्छमानाः पुरोगवाः शकटस्य पुरस्ताद्भागे धुरि युज्यमानाः अनड्वाहो ये सन्ति । ❀ "गोरतद्धितलुकि" इति टच् समासान्तः ❀ । ते पुरोगवास्त्वा त्वां सुकृताम् सुकृतकर्मणाम् । उशब्दः अवधारणे । लोकमेव वहन्त प्रापयन्तु । ❀ वहिर्द्विकर्मकः ❀ ॥

जिसके द्वारा प्राणी इस लोकसे पराङ्मुख होकर जाते हैं वह यह प्रेतको ढोनेके लिये तयार नियान (शकट) प्राचीन भी है और नवीन भी है । [अर्थात् पहिलेके प्रेतोंको ढोनेके लिये भी ऐसा ही शकट था और अब भी ऐसा ही शकट है अत एव यह प्राचीन भी है और नवीन भी है] इसके द्वारा तेरे पूर्व प्रेत गए थे । इस समय जोड़े जाते हुए इस शकटके दोनों ओर जो दो बैल हैं वह तुझको पुण्यात्माओंके लोकमें लेजावें ॥४४॥

पञ्चमी ॥

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।

सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सरस्वतीम् । देवऽयन्तः । हवन्ते । सरस्वतीम् । अध्वरे । तायमाने ।
सरस्वतीम् । सुऽकृतः । हवन्ते । सरस्वती । दाशुषे । वार्यम् । दात्

"सरस्वतीं देवयन्तः" [१८. १. ४१] इति पञ्चम्याद्यास्तिस्र ऋचः अस्मिन्नेव काण्डे प्रथमेनुवाके पञ्चमे सूक्ते व्याख्याताः ॥

मृतशरीरके संस्कारक अग्निदेवको चाहते हुए पुरुष वाग्देवता सरस्वतीका आह्वान करते हैं और ज्योतिष्टोम आदि यज्ञके समय भी सरस्वतीका आह्वान करते हैं और पुण्यात्मा पुरुषोंने भी सरस्वतीका आह्वान किया है। वह सरस्वती हविः प्रदान करने वाले यजमानके लिये वरणीय पदार्थको देवे ॥ ४५ ॥

षष्ठी ॥

सरस्वतीं पितरो हवन्त दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे

सरस्वतीम् । पितरः । हवन्ते । दक्षिणा । यज्ञम् । अभिऽनक्षमाणाः ।
आऽसद्य । अस्मिन् । बर्हिषि । मादयध्वम् । अनमीवाः । इषः ।
आ । धेहि । अस्मे इति ॥ ४६ ॥

वेदीके दक्षिणभागमें बैठे हुए पितर भी सरस्वतीदेवीका आह्वान करते हैं [सर्वकर्माणि तां दिशम्—सब कर्म दक्षिण दिशाकी ओर किये जावें" इस आश्वलायनसूत्र २ । ६ । ३ के अनुसार वेदीके दक्षिणभागमें सब पित्र्य कर्म किये जाते हैं और पितरोंको भी स्वधाप्राप्तिके लिये मन्त्ररूपा सरस्वतीकी अपेक्षा होती ही है] हे पितरों ! तुम इस यज्ञमें बैठ कर प्रसन्न होओ। सरस्वती को तृप्त करो और आकर हमारी दी हुई हविसे तृप्त होओ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और हे सरस्वति ! पितरोंसे बुलाई हुई तुम व्याधिशून्य अभिलषित अन्नको हममें स्थापित करो ॥ ४६ ॥

सप्तमी ॥

सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
सहस्रार्घमिडो अत्र भागं रयस्पोषं यजमानाय धेहि

सरस्वति । या । सऽरथम् । ययाथ । उक्थैः । स्वधाभिः । देवि । पितृऽभिः । मदन्ती ।

सहस्रऽअर्घम् । इडः । अत्र । भागम् । रायः । पोषम् । यजमानाय । धेहि ।

हे सरस्वती देवि ! आप उक्थ शास्त्र तथा स्वधान्नसे पितरोंसहित अपनेको तृप्त करती हुई एक ही रथ पर आती हैं आप यहाँ पुत्र आदि अनेकों व्यक्तियोंको तृप्त करने वाले अन्नके भाग को और धनकी पुष्टिको मुझ यजमानके लिये दीजिये ॥ ४७ ॥

अष्टमी ॥

पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि देवो नो धाता प्र तिरात्यायुः ।
परापरैता वसुविद् वो अस्त्वधा मृताः पितृषु सं भवन्तु

पृथिवीम् । त्वा । पृथिव्याम् । आ । वेशयामि । देवः । नः । धाता । प्र । तिराति । आयुः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पराऽपरैता । वसुऽवित् । वः । अस्तु । अध । मृताः । पितृषु । सम् । भवन्तु ॥ ४८ ॥

पृथिव्याम् पृथिवीविकारभूतायां कुम्भ्यां पृथिवीम् हे मृत्तिके त्वा त्वां मृदम् आ वेशयामि आलिम्पामि । मृद्गोमयादिलेपनेन चरुस्थालीं त्वा ईषद् दृढां करोमि । धाता विधाता सर्वस्य देवो नः अस्माकं सवयज्ञानुष्ठातॄणाम् आयुः जीवनं प्र तिराति । ❀ प्रपूर्वस्तिरतिर्वर्धनार्थः ❀ । प्रतिरतु प्रवर्धयतु । ❀ प्रपूर्वात् तिरतेर्लेटि आडागमः ❀ । हे परापरेताः परावतं दूरदेशं पराङ्मुखम् इतो गता हे पितरः वः युष्माकं वसुवित् वसु अन्नलक्षणं धनम् तस्य लम्भयित्री प्रापयित्री अस्तु भवतु । एषा मृदालिप्ता चरुकुम्भीति लभ्यते ॥ अथ परोक्षस्तुतिः । अध अथ चरुस्वाहाकारानन्तरं पितृषु पितृत्वं प्राप्तेषु पुरातनेषु स्वपूर्वजेषु अमृताः अमरणधर्माणः सन्तः सं भवन्तु संप्राप्ताः संयुक्ता भवन्तु । इदानींतनाः पितरः स्वपूर्वजान् पितॄन् संयुञ्जन्तु । ❀ भवतिरत्र प्राप्त्यर्थः ❀ ॥

पृथिवीकी विकार कुंभीमें हे पृथिवि (मृत्तिके) ! मैं तुझको प्रवेश कराता हूँ अर्थात् मट्टी गोबर आदिके लेपसे तुझ चरुस्थाली को कुछ दृढ़ करता हूँ । धाता देवता हम सब सवयज्ञका अनुष्ठान करने वालोंकी आयुको बढ़ावें । हे दूर देशमें गए हुए पितरों ! यह मट्टीगोबरसे लिपी हुई चरुकुंभी तुमको अन्नरूपी धनकी प्राप्ति कराने वाली होवे । चरुस्वाहाकारके अनन्तर यह मृत पुरुष अपने पूर्वज पितरोंसे संयुक्त होजावें ॥ ४८ ॥

नवमी ॥

आ प्र च्यवेथामप तन्मृजेथां यद् वामभिभा अत्रोचुः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अस्मादेतमघ्न्यौ तद् वशीयो दातुः पितृष्विहभोजनौ मम ॥ ४९ ॥

आ । प्र । च्यवेथाम् । अप । तत् । मृजेथाम् । यत् । वाम् । अभिऽभाः । अत्र । ऊचुः ।

अस्मात् । आ । इतम् । अघ्न्यौ । तत् । वशीयः । दातुः । पितृषु । इहऽभोजनौ । मम ॥ ४९ ॥

हे प्रेतवाहनवृषभौ युवाम् आ अस्मदभिमुखं प्र च्यवेथाम् शकटात् प्रच्युतौ वियुक्तौ भवेतम् । ❀ च्युङ् प्लुङ् गतौ । भौवादिक आत्मनेपदी ❀ । तत् वक्ष्यमाणं निन्दारूपं वाक्यम् अप मृजेथाम् अपमार्जयतं शोधयतम् । ❀ मृजेर्लोटि व्यत्ययेन शः । "आतो ङितः" इति इयादेशः ❀ । किं तद् अपमार्जनीयं तद् आह । अभिभाः अभिभावका दूषकाः पुरुषाः । ❀ अभिपूर्वाद् भवतेः "डोन्यत्रापि दृश्यते" इति डः ❀ । अत्र अस्मिन् प्रेतवहनकर्मणि वाम् युवां यद् ऊचुः पुंगवौ किल अस्पृश्यम् अनिरीक्ष्यं प्रेतम् ऊढवन्तौ इत्यादिनिन्दारूपं यद् वाक्यम् उदितवन्तस्तच्छोधयतम् इति । अतो हेतोः हे अघ्न्यौ अहन्तव्यौ हे वृषभौ युवाम् अस्मात् निन्दानिमित्ताच्छकटाद् एतम् आगच्छतम् । तत् आगमनं वशीयः श्रेष्ठं भवति युवयोः । ततः इह अस्मिन् पितृमेधे पितृषु । ❀ विषयसप्तमी ❀ । पितृविषये पितॄन् उद्दिश्य दातुः अग्निं प्रदातुः हविः प्रदातुर्वा मम भोजनौ भोजयितारौ पालयितारौ भवतम् इति ॥

हे प्रेतको सवारी देने वाले वृषभों ! तुम दोनों हमारे सामने इस शकटसे अलग होओ, और जो तुम्हारे निन्दक यह कह रहे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं, कि इन्होंने अस्पृश्य प्रेतको सवारी दी है उस निन्दावाक्यसे मुक्त होओ। अतएव हे अवध्य वृषभों! तुम इस निन्दानिमित्तक शकटसे आओ। तुम्हारा यह आगमन श्रेष्ठ हो और इस पितृमेध में पितरोंके निमित्त हवि देने वाले मेरे पालक बनो॥ ४९॥

दशमी॥

एयमगन् दक्षिणा भद्रतो नो अनेन दत्ता सुदुघाः वयोधाः।
यौवने जीवानुपपृञ्चती जरा पितृभ्य उपसंपराणयादिमान्॥ ५०॥

आ। इयम्। अगन्। दक्षिणा। भद्रतः। नः। अनेन। दत्ता। सुऽदुघा। वयःऽधाः।
यौवने। जीवान्। उपऽपृञ्चती। जरा। पितृभ्यः। उपऽसंपरानयात्। इमान्॥ ५०॥

इयं दक्षिणा गोरूपा नः अस्मान् संस्कर्तॄन् भद्रतः कल्याणात् प्रदेशाद् आ अगन् आगच्छति॥ ❀ गमेर्लुङि "मन्त्रे घस०" इति च्लेर्लुक्। "हल्ङ्या०" इत्यादिना तिपो लोपे "मो नो धातो" इति नत्वम् ❀। अनेन प्रेतेन दत्ता वितीर्णा सुदुघा सुष्ठु दोग्ध्री वयोधाः। वय इति अन्ननाम। अन्नस्य क्षीरलक्षणस्य विधात्री प्रदात्री गोरूपा दक्षिणा यौवने। युवस्या भावो यौवनम्। ❀"हायनान्तयुवादिभ्योऽण्" इति अण् प्रत्ययः ❀। यौवनं नाम शरीरस्य मध्यावस्था तस्याम्। लुप्तोपमम् एतत्। यौवन इव वार्धके जरा उपपृञ्चती आत्मानं जरया संपर्चयन्ती संयोजयन्ती। अपि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दः अध्याहार्यः । संयोजयन्त्यपि यौवने वर्तमानेव जीवा ीवतु । किं च गोरूपा दक्षिणा पितृभ्यः पूर्वजेभ्यः । ❀ तादर्थ्ये चतुर्थी ❀ । इमान् अधुना संस्क्रियमाणान् पितॄन् उप समीपं संपराणयात् सम्यक् पराङ्मुखं नयतु पूर्वजान् प्रापयतु । ❀ उभयत्र लेटि आडागमः ❀ ॥

इति चतुर्थेनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

यह गोरूपा दक्षिणा हम संस्कर्ताओंके पास कल्याणमय स्थानसे आरही है । यह इस प्रेतके द्वारा दी हुई सुन्दर फलोंको देती हुई और क्षीरलक्षण अन्नको देती हुई गौरूपा दक्षिणा यौवनकी समान ही बुढ़ापेमें युवती रहे और यह गोरूपा दक्षिणा पूर्वज पितरोंके पास इस संस्क्रियमाण पितरको पहुँचावे ५० (२४)

चतुर्थ अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त ॥

"इदं पितृभ्यः" इति [५१] प्रथमायाः प्रथमार्धेन चितिकाष्ठानाम् उपरि दर्भान् स्तृणाति । उत्तरार्धेन आस्तीर्णदर्भायां चितौ प्रेतम् उत्तानशयं कुर्यात् ॥

तथा श्मशानचयनकर्मणि "इदं पितृभ्यः" इत्यर्धर्चेन गर्ते दर्भान् स्तृणीयात् । "तदा रोह" इत्युत्तरार्धेन अस्थीनि तस्मिन् गर्ते निदध्यात् ॥

"एदं बर्हिः" इति [५२] ऋचा कुले ज्येष्ठः अस्थीनि यथापरु संचिनुयात् ॥

"पर्णो राजा" इति [५३] ऋचा "अपूपवान् क्षीरवान्" इति मन्त्रोक्तान् प्रतिदिशं मध्ये च स्थापितान् नव चरून् शतच्छिद्रसहस्रच्छिद्रादिपात्राणि च मध्वपलाशपत्रैराच्छादयेत् ॥

"ऊर्जो भागः" इति [५४] ऋचा चरून् पात्राणि च पाषाणैरिष्टकाभिर्वा पिदध्यात् ॥

"यथा यमाय" इति [५५] ऋचा शलाकाभिरिष्टकाभिर्वा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रसव्यं चितं श्मशानप्रदेशं कुट्टयेयुः। सर्वत्र कर्तुरेव मन्त्रवचनम्। तत्र पितृगृहम् उन्नतं कुर्यात् "उन्नतं स्वर्गकामस्य" इति श्रुतेः ॥

"इदं हिरण्यम्" इति [५६] प्रथमार्धेन प्रेतहस्ते विद्यमानं हिरण्यम् आज्येन अभिघार्य ज्येष्ठपुत्रेण अग्नावादीपयेत्। "स्वर्गं यतः" इत्युत्तरार्धेन पुत्रः प्रेतहस्तं मार्जयेत् ॥

"ये च जीवाः" इति [५७] ऋचा सर्पिर्मधुसहितं चरुद्वयम् अभिमन्त्र्य अस्थिसमीपे निदध्यात् ॥

पिण्डपितृयज्ञे अनया बर्हिषि पित्रर्थं दत्तान् पिण्डान् घृतेन अभिघारयेत् ॥

"वृषा मतीनाम्" [५८] इत्यादीनां तिसृणां पितृमेध एव काण्डोक्तो विनियोगोनुसंधेयः ॥

"इदं पितृभ्यः" (५१) इस प्रथम ऋचाके प्रथमार्धसे चिता के काष्ठोंके ऊपर दर्भोंको फैलावे। उत्तरार्धसे कुशा बिछी हुई चिता पर प्रेतको चित्त करके लिटावे।

तथा श्मशानचयन–कर्ममें "इदं पितृभ्यः" इस आधी ऋचा से गड़हेमें कुशाओंको बिछावे। "तदारोह" इस उत्तरार्धसे उन अस्थियोंको गड़हेमें रक्खे।

"एदं बर्हिः" इस बावनवीं ऋचासे कुलमें ज्येष्ठ पुरुष अस्थियों को गाँठोंके अनुक्रमसे एकत्रित करे।

"पर्णो राजा" इस तरेपनवीं ऋचासे "अपूपवान् क्षीरवान्" आदि मन्त्रमें कहे हुए प्रत्येक दिशामें स्थापित नौ चरुओंको और सौ तथा सहस्र छिद्र वाले पात्रोंको भी मध्यपलाशपत्रोंसे आच्छादित कर देय।

"ऊर्जो भागः" इस चौअनवीं ऋचासे चरुओंको और पात्र को भी पाषाणों वा ईंटोंसे ढक देय।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"यथा यमाय" इस पचपनवीं ऋचासे शलाका वा ईंटोंसे प्रसव्य चुने हुए श्मशान प्रदेशको कूटें। तहाँ पिताके घरको उन्नत बनावे। श्रुतिमें भी कहा है, कि-"उन्नतं स्वर्गकामस्य।-स्वर्गकी अभिलाषा वालेका उत्तम घर होना चाहिये"।

"इदं हिरण्यम्" इस छप्पनवीं ऋचाके प्रथमार्धसे प्रेतके हाथ में रखे हुए सुवर्णको घृतसे अभिघारित करके ज्येष्ठपुत्रके द्वारा अग्निमें भस्म करा देय। "स्वर्गं यतः" इस उत्तरार्धसे पुत्र प्रेत के हाथका मार्जन करे।

"ये च जीवाः" इस सत्तावनवीं ऋचासे घी शहद पड़े हुए दो चरुओंको अभिमन्त्रित करके अस्थियोंके समीपमें धर देय।

पिण्डपितृयज्ञमें इस ऋचासे कुशाओं पर पिताके लिये दिये हुए पिण्डोंको घृतसे अभिघारित करे।

"वृषा मतीनाम्" (५८। ५९। ६०) इन तीन ऋचाओंका पितृमेधमें ही काण्डोक्त विनियोग समझना चाहिये॥

तत्र प्रथमा॥

इदं पितृभ्यः प्र भरामि बर्हिर्जीवं देवेभ्य उत्तरं स्तृणामि।
तदा रोह पुरुष मेध्यो भवन् प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम्॥ ५१॥

इदम्। पितृऽभ्यः। प्र। भरामि। बर्हिः। जीवम्। देवेभ्यः। उत्ऽतरम्। स्तृणामि।

तत्। आ। रोह। पुरुष। मेध्यः। भवन्। प्रति। त्वा। जानन्तु। पितरः। पराऽइतम्॥ ५१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पितृभ्यः पित्रर्थम् इदं बर्हिः प्र भरामि प्रहरामि आस्तृणामि। तस्मिन्नास्तीर्णे बर्हिषि देवेभ्यः देवार्थं जीवन् जीवनवान् अहं संस्कर्ता उत्तरम् उपरितनं बर्हिः स्तृणामि। ❀ स्तृञ् आच्छादने ❀। हे पुरुष त्वं मेध्यः। मेधो यज्ञः पितृमेधाख्यः। तदर्हो भवन् तत् बर्हिः आ रोह आतिष्ठ। ❀ भवतेः शत्रन्तं पदं भवन्निति ❀। पितरः पूर्वजाः परेतम् इतः पराङ्मुखं गतं त्वा त्वां प्रति जानन्तु अनुजानन्तु। बर्हिरारोहणाय अस्मदीयोयं पितृलोकं प्राप्नोत्विति स्मरन्तु इत्यर्थः। ❀ "संप्रतिभ्याम् अनाध्याने" इति आध्यानपर्युदासाद् आत्मनेपदाभावः ❀॥

मैं इन कुशाओंको पितरोंके लिये बिछाता हूँ और इन बिछे हुए कुशाओंके ऊपर मैं संस्कर्तापुरुष देवताओंके लिये जीवित रहना चाहता हुआ कुशाओंको बिछाता हूँ। हे पुरुष! तू पितृमेधके योग्य होता हुआ इन कुशाओं पर आरोहण कर, पूर्वज पितर तुझको प्रेत हुआ जानें॥ ५१॥

द्वितीया॥

एदं बर्हिरसदो मेध्योभूः प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम्
यथापरु तन्वं१ सं भरस्व गात्राणि ते ब्रह्मणा कल्पयामि

आ। इदम्। बर्हिः। असदः। मेध्यः। अभूः। प्रति। त्वा।
जानन्तु। पितरः। पराऽइतम्।
यथाऽपरु। तन्वम्। सम्। भरस्व। गात्राणि। ते। ब्रह्मणा।
कल्पयामि॥ ५२॥

हे प्रेत त्वम् इदं चितावास्तीर्णं बर्हिः असदः आरुक्षः। ❀ सदेर्लृदित्वात् च्लेः अङ् ❀॥ अतो मेध्यः पितृमेधयज्ञार्हः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अभूः । दहनेन संस्कृतोभूरिति यावत् ॥ प्रति त्वेति पादो व्याख्यातः । जानन्त्विति लोडन्तं पदं भूतकालपरतया व्याख्येयम् । अथ वा क्रियमाणास्थिसंचयनार्थम् अनुजानन्त्विति यथास्थितम् अस्तु ॥ तन्वम् तनूम् अस्थिरूपां यथापरु । परुशब्दः पर्ववाची । यथापर्व जीवदवस्थायां येन संनिवेशेन अस्थीनि संहितानि तं निवेशम् अनतिक्रम्य । ❀ पदार्थानतिवृत्तौ अव्ययीभावः ❀ । सं भरस्व संहरस्व । ❀ "हृग्रहोर्भः०" ❀ । संधेहि ॥ अहमपि कुले ज्येष्ठः ते तव गात्राणि अङ्गानि अस्थिरूपाणि ब्रह्मणा मन्त्रेण कल्पयामि पूर्वस्थितपर्वानतिक्रमेण समर्थानि संहितानि करोमि ॥

हे प्रेत ! तू इस चिता पर बिछी हुई कुशा पर चढ़ गया है अतः पितृमेधके योग्य पवित्र होगया है, पितर तुझको प्रेत हुआ जानें अर्थात् यह हमारा पुरुष कुशाओं पर चढ़नेसे पितृलोकको प्राप्त हो यह जानें । जीवित अवस्थामें जिस प्रकार तेरी अस्थियें थीं वैसी ही रहें । कुलमें ज्येष्ठ मैं भी तेरे अस्थिरूप अंगोंको मन्त्रसे संहित करता हूँ ॥ ५२ ॥

तृतीया ॥

पर्णो राजापिधानं चरूणामूर्जो बलं सह ओजो न आगन् ।
आयुर्जीवेभ्यो विदधद् दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ५३

पर्णः । राजा । अपिऽधानम् । चरूणाम् । ऊर्जः । बलम् । सहः । ओजः । नः । आ । अगन् ।

आयुः । जीवेभ्यः । विऽदधत् । दीर्घायुऽत्वाय । शतऽशारदाय ५३

चरूणाम् "अपूपवान् क्षीरवान्" [१६] इति मन्त्रोक्तद्रव्ययुतानां नवानां चरूणां पिधानम् आच्छादनभूतः । ❀ "वष्टि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भागुरिरल्लोपम् अवाप्योरुपसर्गयोः" इति अपिशब्दस्य आदिवर्णलोपः ❀ । पर्णः पलाशवृक्षः पलाशो राजा यज्ञियत्वात् सर्ववृक्षाणाम् अधिपतिः नः अस्माकम् ऊर्जः ऊर्जयति बलवन्तं करोतीति ऊर्जः अन्नरसः । ❀ ऊर्ज बलप्राणने । अस्मात् एयन्तात् पचाद्यच् ❀ । बलम् शारीरं बाह्यं च मनुष्यसंपत्त्यादिलक्षणं द्विविधं बलं सहः शत्रुधर्षणसामर्थ्यम् । ❀ सहतेरभिभवार्थाद् असुन् ❀ । ओजः तेजः शरीरकान्तिः सर्वधात्वान्तरभूतः शरीरधारकोष्टमधातुर्वा आ अगन् । सकलचरुपिधायकः पलाशपर्णः अस्माकम् ऊर्जबलाद्यात्मक एव आगच्छतु । यद्वा ऊर्जो बलम् इत्यादीनि द्वितीयान्तानि पदानि । अन्नादीनि दातुम् आगच्छतु इति क्रियाध्याहारेण योज्यम् । ❀ गमेर्लुङि च्लेर्लुक् ❀ ॥ न केवलम् अन्नादिदानं किंतु जीवेभ्यः जीवनवद्भ्यः अस्मभ्यम् आयुः जीवनं विदधत् विदध्यात् प्रयच्छतु । ❀ दधातेर्लेटि श्लुः । "घोर्लोपो लेटि वा" इति धातोः आकारलोपः । "लेटोडाटौ" इति अडागमः ❀ । शतशारदाय । शरच्छब्दः संवत्सरवाची । शतसंवत्सरपरिमिताय । ❀ उत्तरपदवृद्धिश्छान्दसी ❀ । दीर्घायुत्वाय दीर्घायुष्ट्वाय । ❀ पृषोदरादित्वाद् अन्त्यलोपः ❀ । चिरकालजीवनाय ॥

चरुओंका ढक्कनरूप, सब वृक्षोंके अधिपति पलाशका पत्र हम को अन्नरस, भीतरी बाहरी शारीरक बल, शत्रुको दबानेकी शक्ति, तेजको देनेके लिये आवे, हम जीवित पुरुषोंको सौ वर्षकी दीर्घायु देता हुआ हमको प्राप्त हो ॥ ५३ ॥

चतुर्थी ॥

ऊर्जो भागो य इमं जजानाश्मान्नानामाधिपत्यं जगाम ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे धात् ॥ ५४ ॥

ऊर्जः । भागः । यः । इमम् । जजान । अश्मा । अन्नानाम् । आधिऽपत्यम् । जगाम ।

तम् । अर्चत । विश्वऽमित्राः । हविःऽभिः । सः । नः । यमः । प्रऽतरम् । जीवसे । धात् ॥ ५४ ॥

ऊर्जः अन्नस्य अस्थिसमीपस्थापितचरुलक्षणस्य भागः संभक्ता। ❀ कर्तरि व्यत्ययेन घञ् ❀ । यो यमः इमं प्रेतं जजान जनयामास । येन च यमेन अश्मा यमदेवत्यचरुपिधायकः पाषाणः अन्नानां चरूणाम् आधिपत्यम् अधिपतित्वम् उपर्यवस्थायित्वं जगाम प्राप्तवान् । हे विश्वमित्राः विश्वं मित्रं येषां ते सकलोपकारिजनवन्तो हे बान्धवाः तं यमं हविर्भिरर्चत प्रीणयत । ❀ अर्चतिर्भौवादिकः ❀ । स यमः नः अस्मान् प्रतरम् प्रकृष्टं जीवसे जीवनाय धात् विदधातु । अयम् अर्धर्चः पूर्वानुवाके व्याख्यातः [१८. ३. ६३] ॥

अस्थियोंके समीपमें स्थित किये हुए चरुरूप अन्नके पात्र जिन यमदेवने इसको प्रेतरूपमें प्रकट किया है और जो यम इन चरुओंको ढकने वाले पाषाणोंके अधिपतित्वको प्राप्त हैं । हे सब का उपकार करने वाले बांधवों ! उन यमदेवको तुम हवियोंसे तृप्त करो वह यमदेव हमको चिरजीवनके लिये पुष्ट करें ॥५४॥

पञ्चमी ॥

यथा यमाय हर्म्यमवपन् पञ्च मानवाः ।

एवा वपामि हर्म्यं यथा मे भूरयासत ॥ ५५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यथा । यमाय । हर्म्यम् । अवपन् । पञ्च । मानवाः ।

एव । वपामि । हर्म्यम् । यथा । मे । भूरयः । असत ॥ ५५ ॥

पञ्च पञ्चसंख्याका मानवाः मनोरपत्यादिजनाः । निषादपञ्चमाश्चत्वारो वर्णाः पञ्च जना इति हि यास्कः [नि० ३. ८]। अथ वा देवमनुष्यादयः पञ्च जनाः । तथा च ऐतरेयकब्राह्मणे समाम्नायते । "सर्वेषां वा एतत् पञ्चजनानाम् उक्थं देवमनुष्याणां गन्धर्वाप्सरसां सर्पाणां च पितॄणां च । एतेषां वा एतत् पञ्चजनानाम् उक्थम्" इति [ऐ० ब्रा० ३. ३१]। एते पञ्च जना यथा येन प्रकारेण यमाय प्रेताधिपतये हर्म्यम् निवासस्थानं सौधम् अवपन् निर्मितवन्तः एव एवं हर्म्यम् स्थानम् उन्नतं पितृगृहम् आवपामि मृत्तिकया संपादयामि प्रेतनिवासार्थं विदधामि । यथा येन प्रकारेण मे मदीया बान्धवा यूयं भूरयः बहवः असत स्यात । प्रेतोन्नतस्थानाकरणे बान्धवानां प्रत्यवायो भवतीति उन्नतपितृगृहकरणम् । ❀ अस्तेर्लेटि अडागमः ❀ ॥

पञ्चजनोंने जिस प्रकार यमदेवके लिये निवासस्थानको (उन्नत) बनाया है, इसी प्रकार मैं प्रेतनिवासके लिये इस पितृगृह को ऊँचा बनाता हूँ । क्योंकि–ऐसा करनेसे हे मेरे बान्धवों ! तुम बहुतसे रहोगे । (प्रेतका स्थान उन्नत न बनानेसे बांधवों को प्रत्यवाय लगता है अतएव पितृगृहको उन्नत किया गया है) ५५

षष्ठी ॥

इदं हिरण्यं बिभृहि यत् ते पिता बिभः पुरा ।
स्वर्गं यतः पितुर्हस्तं निर्मृड्ढि दक्षिणम् ॥ ५६ ॥

इदम् । हिरण्यम् । बिभृहि । यत् । ते । पिता । अबिभः । पुरा ।

स्वःऽगम् । यतः । पितुः । हस्तम् । निः । मृड्ढि । दक्षिणम् ५६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे प्रेत इदं हिरण्यम् सुवर्णनिर्मितम् अंगुलीयं पिपृहि पूरय। आज्येन अभिघारयेत्यर्थः। ❀ पॄ पालनपूरणयोः। जौहोत्यादिकः। "अर्तिपिपर्त्योश्च इति अभ्यासस्य इत्त्वम् ❀। यत् हिरण्यं ते तव पिता पुरा पूर्वम् अबिभः भृतवान् हस्ते धारितवान्। ❀ डुभृञ् धारणपोषणयोः। शपः श्लुः। "भृञामित्" इति अभ्यासस्य इत्त्वम्। तिपि धातोर्गुणे "हल्ङ्या०" इत्यादिना तिपो लोपे विसर्जनीयः ❀। स्वर्गम् सुखेन गन्तव्यं कर्मार्जितं लोकं यतः गच्छतः पितुः जनकस्य दक्षिणं हस्तं निमृड्डि निर्मार्जय शोधय। हिरण्यस्य दक्षिणहस्ते धारणात् तस्य प्रमार्जनम्। ❀ मृजेः आदादिकात् लोटि हित्वधित्वादिकार्याणि ❀॥

हे प्रेत! तू इस सुवर्णकी बनी हुई अंगूठीको घृतसे अभिघारित कर। तेरे पिताने जिस सुवर्णको पहिले धारण कर रखा था तेरे पिताका जो स्वर्गप्रापक हाथ है पिताके उस दक्षिण हाथका तू मार्जन कर (सुवर्णका दक्षिण हाथमें धारण करना ही मार्जन है)॥ ५६॥

सप्तमी॥

ये च जीवा ये च मृता ये जाता ये च यज्ञियाः।
तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु मधुधारा व्युन्दती॥ ५७॥

ये। च। जीवाः। ये। च। मृताः। ये। जाताः। ये। च। यज्ञियाः।
तेभ्यः। घृतस्य। कुल्या। एतु। मधुऽधारा। विऽउन्दती॥५७॥

ये जीवाः जीववन्तः ये मृताः परासवः। समुच्चयार्थश्चकाराः। ये जाताः जनिमन्तः उत्पन्नाः ये जज्ञियाः जनिष्यमाणाः जज्ञिम् उत्पत्तिं यान्ति गच्छन्तीति जज्ञियाः। ❀ जनी प्रादुर्भावे। "आदृगमहनजनः०" इति किप्रत्ययः। लिड्वद्भावाद् द्विर्वचनादि कार्यम्। जज्ञिपदोपपदाद् यातेर्विच् प्रत्ययः ❀। तेभ्यः जीवादिभ्यः सर्वेभ्यस्त-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दर्थं मधुधाराः मधुप्रवाहान् व्युन्दती विशेषेण सिञ्चती अभिवर्षन्ती घृतस्य आज्यस्य कुल्या कृत्रिमा सरित् एतु तत्प्रीणनाय गच्छतु ॥

जो जीवित हैं, जो मर गए हैं, जो उत्पन्न होगए हैं, जो उत्पन्न होने वाले हैं, उन जीवित आदि सबके लिये, मधुके प्रवाहका अभिवर्षण करती हुई घृतकी नदी प्राप्त हो ॥ ५७ ॥

अष्टमी ॥

वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सूरो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः ।
प्राणः सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्दिमाविशन्मनीषया ॥ ५८ ॥

वृषा । मतीनाम् । पवते । विऽचक्षणः । सूरः । अह्नाम् । प्रऽतरीता । उषसाम् । दिवः ।
प्राणः । सिन्धूनाम् । कलशान् । अचिक्रदत् । इन्द्रस्य । हार्दिम् । आऽविशन् । मनीषया ॥ ५८ ॥

पितृत्वं प्राप्ताः पुरुषा धूमादिमार्गेण पितृलोकं प्राप्य सोमयागादिजनितसुकृतफलम् उपभुञ्जते । अतः अनया पित्र्यप्रकरणे सोमः स्तूयते । मतीनाम् मन्तॄणां स्तोतॄणां वृषा वर्षिता अभिमतफलवर्षकः मतीनाम् स्तुतीनां वा वर्षकः स्तुतिविषये विचक्षणः विशेषेण द्रष्टा सर्वस्य सर्वैर्वा द्रष्टव्यः सोमः पवते । ❀ पवतिर्गतिकर्मा ❀ । गच्छति दशापवित्रात् स्यन्दते । यद्वा । ❀ पूञ् पवने । व्यत्ययेन कर्मणि कर्तृप्रत्ययः शप् ❀ । पूयते शोध्यते अध्वर्युभिः । अह्नाम् । अहोरात्राणाम् इत्यर्थः । सूरः प्रेरयिता निष्पादयिता ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

❀ षू प्रेरणे । औणादिको रक् प्रत्ययः ❀ । उषसाम् उषःकालानां दिवः द्युलोकस्य च प्रतरीता प्रवर्धयिता । ❀ तरतेस्तृचि "वृतो वा" इति इडागमस्य दीर्घः ❀ । सिन्धूनाम् स्यन्दमानानां वसतीवरीणाम् अपां प्राणः प्राणभूतः स्वात्मरूपत्वेन कर्ता सोमः कलशान् द्रोणकलशपूतभृदाधवनीयान् ऐन्द्रवायवादिग्रहान् वा । अभिलक्ष्य इत्यध्याहारः । अचिक्रदत् अत्यन्तं शब्दायते । अथ वा कलशान् अचिक्रदत् धारापातध्वनिना तद्वतः करोति । यद्वा कलशान् अचिक्रदत् कामयते ॥ ततः इन्द्रस्य सवनत्रये यष्टव्यस्य हार्दिम । हृदयम् इत्यर्थः । हृदयमेव हार्दिम । ❀ पृथ्वादिषु पाठो द्रष्टव्यः । स्वार्थिकश्चेमनिच अवगन्तव्यः ❀ । हृदययुक्तं जठरं वा मनीषया मनस ईषया यथामनोभिलाषम् अविशत् प्रविशति । यद्वा मनीषया मननीयया इष्यमाणया धारया अविशत् ॥

[पितृत्वको प्राप्त हुए पुरुष धूमादिमार्गसे पितृलोकको प्राप्त होकर सोमयाग आदिसे मिलने वाले पुण्यके फलको भोगते हैं। अत एव पित्र्यप्रकरणमें इस ऋचासे सोमकी स्तुति की गई है, कि-] स्तोताओंको अभिमत फल देने वाला, सबके देखने योग्य सोम दशापवित्रसे गमन करता है यह सोम दिन और रात्रिको निष्पन्न करने वाला है । उषःकाल और द्युलोकका बढ़ाने वाला है, स्यन्दित होने वाले वसतीवरी जलोंका प्राणरूप है ऐसा सोम द्रोणकलश पूतभृत् आधवनीय आदि कलशोंको लक्ष्य कर बड़ा शब्द कर रहा है । और फिर अपनी अभिलाषाके अनुसार, सवनत्रयमें यष्टव्य इन्द्रके जठरमें प्रवेश कर रहा है ॥ ५८ ॥

बबभ्रुः ॥

त्वेषस्ते धूम ऊर्णोतु दिवि षञ्चुक्र आततः ।
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥ ५९ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्वेषः । ते । धूमः । ऊर्णोतु । दिवि । सन् । शुक्रः । आऽततः ।
सूरः । न । हि । द्युता । त्वम् । कृपा । पावक । रोचसे ॥५९॥

अत्र प्रेताग्निः स्तूयते । हे प्रेताग्ने ते तव त्वेषः दीप्तो धूमः ऊर्णोतु आच्छादयतु अन्तरिक्षं कर्म सर्वत्र मेघात्मना परिणतः । अथ वा त्वेषः । ❀ त्विष दीप्तौ । "अन्येभ्योपि दृश्यते" इति विच् प्रत्ययः । लघूपधगुणः । द्वितीयाबहुवचनम् शस् । व्यत्ययेन अन्तोदात्तत्वम् ❀ । दीप्तीः सूर्यस्य त्वदीयो धूम ऊर्णोतु । दिवि अन्तरिक्षे सन् भवन् शुक्रः शोचिष्मान् आततः विस्तीर्णः ॥ किं च हे पावक शोधक दाहक प्रेताग्ने त्वं सूरो न सूर्य इव हि । इति पूरणः । द्युता दीप्त्या रोचसे दीप्यसे कृपा । ❀ तृतीयायाः पूर्वसवर्णदीर्घः ❀ । कृपया स्तुत्या सहितः । स्तूयमान इत्यर्थः ॥

[इस ऋचामें प्रेताग्निकी स्तुति की गई है, कि–] हे प्रेताग्ने ! तेरा दमकता हुआ धूम मेघरूपसे अन्तरिक्षको आच्छादित कर देवे । अथवा–तेरा धुआँ सूर्यकी कान्तिको ढक देवे । आकाशमें जा समाने वाला होकर फैल जावे । हे शोधक दाहक प्रेताग्ने ! आप स्तुतिके कारण अपनी कान्तिसे सूर्यकी समान दमकते हैं ॥ ५९ ॥

दशमी ॥

प्र वा एतीन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतिं सखा सख्युर्न प्र मिनाति संगिरः ।
मर्य इव योषाः समर्षसे सोमः कल्शं शतयामना पथा ।

प्र । वै । एति । इन्दुः । इन्द्रस्य । निःऽकृतिम् । सखा । सख्युः ।
न । प्र । मिनाति । सम्ऽगिरः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मर्यःऽइव । योषाः । सम् । अर्षसे । सोमः । कलशे । शतऽयाम्ना । पथा ॥ ६० ॥

पितृलोकाधिपतिः सोमः स्तूयते । इन्दुः स्यन्दमानः सोमः इन्द्रस्य निष्कृतिम् । जठरलक्षणं स्थानम् इत्यर्थः । वै प्रैति प्रगच्छति । वैशब्दः प्रसिद्धौ । "अस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिष्वेमं जठर इन्दुम् इन्द्र" इति हि मन्त्रवर्णः [ऋ० ३, ३५, ६] ॥ सखा सखेव हितकारी सोमः सख्युः अभिषवस्तोत्रादिना सखिभूतस्य यन्दुः संगिरः संगीर्यमाणानि इदमेव फलं सोमादेव लभेय इत्येवं प्रतिज्ञायमानानि काम्यमानानि वस्तूनि न प्र मिनाति न हिनस्ति मोघानि न करोति किं तु प्रयच्छति । यद्वा सखा सोमः सख्युः इन्द्रस्य संगिरः । ❀ एकवचनस्य बहुवचनम् आदेशः ❀ । संगिरम् । उदरम् इत्यर्थः । संगिरति निगिरति अत्र ओदनादिकम् इति व्युत्पत्तेः । न प्र हिनस्ति शून्यं न करोति । सर्वदा स्वेन पूर्णं करोतीत्यर्थः । ❀ मीञ् हिंसायाम् । "मीनातेर्निगमे" इति ह्रस्वत्वम् ❀ ॥ मर्य इव मर्यो मरणधर्मा मनुष्यः यथा योषा । ❀ तृतीयाया आकारः ❀ । योषया युवत्या संगच्छते एवं सोमः कलशे सोमाधारे द्रोणकलशे शतयाम्ना शतयानेन पथा मार्गेण समर्षसे । ❀ पुरुषव्यत्ययः ❀ । समर्षते संगच्छते । ❀ ऋषी गतौ । भौवादिकः । व्यत्ययेन आत्मनेपदम् ❀ । उदकमिश्रितस्य सोमरसस्य दशापवित्रात् स्यन्दनसमये बहुधारासद्भावात् शतयाम्नेत्युक्तम् ॥

इति चतुर्थेऽनुवाके षष्ठं सूक्तम् ॥

[इस ऋचामें पितृलोकके अधिपति सोमकी स्तुति की गई है, कि-] यह निचड़ता हुआ सोम इन्द्रदेवके उदरमें ही जाता है † । यह मित्रकी समान हितकारी सखा सोम, निचोड़ने और

† ऋग्वेदसंहिता ३ । ३५ । ६ में भी इसी बातका प्रति-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्तोत्र आदिके कारण मित्र बने हुए यष्टाकी विचारी हुई "मैं सोम से इस फलको अवश्य पाऊँगा" आदि कामनाओंको निष्फल नहीं करता है, किन्तु प्रदान ही करता है। अथवा—यह स्तुति आदिके कारण यजमानका मित्र बना हुआ सोम अपने मित्र इन्द्र के उदरको शून्य नहीं रखता है किन्तु अपने द्वारा सर्वदा पूर्ण रखता है। और मनुष्य जैसे स्त्रीसे मिलता है इसी प्रकार यह सोम द्रोणकलशमें सहस्रों मार्गोंसे मिलता है। अर्थात् जल डाल कर अँगोछेसे निचोड़ते समय बहुतसी धारोंसे मिलता है६० (२५)

चतुर्थ अनुवाकमें छठा सूक्त समाप्त।

पिण्डपितृयज्ञे "अक्षन्नमीमदन्त" इति प्रथमया ऋचा पिण्डोपस्थानानन्तरम् उत्तरपरिषेकं कुर्यात् ॥

"आ यात पितरः" इति [६२] ऋचा पिण्डदानार्थं स्तीर्णे बर्हिषि तिलान् प्रकिरेत् ॥

"परा यात" [६३] ऋचा पितॄन् विसर्जयेत् ॥

पिण्डपितृयज्ञ एव अनया सांयवनांस्तण्डुलान् जुहुयात् ॥

पिण्डपितृयज्ञे "अभूद् दूतः" इति [६५] ऋचा समिदाधानानन्तरं सर्वप्रणीतम् अग्निं प्रत्यानयेत्। सूत्रितं हि। "अभूद् दूत इत्यग्निं त्रिः प्रत्यानयति यदि सर्वः प्रणीतः स्यात्। दक्षिणाग्नौ त्वेतद् आहिताग्नेः। गृह्येप्यनाहिताग्नेः" इति [कौ० ११.१०]

"असौ हा इह ते" इति [६६] द्वाभ्यां श्मशानदेशं विषमसंख्याकाभिः शलाकाभिरिष्टकाभिर्वा प्रसव्यं चिनुयात् ॥

पादन किया गया है, कि—"अस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिष्वेमं जठर इन्दुम् इन्द्र।—हे इन्द्र! इस यज्ञमें इन कुशाओं पर बैठकर इस सोमको अपने उदरमें स्थापित करिये"।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"येस्माकं पितरः" इति [६८] अर्धर्चेन पिण्डमदानार्थं बर्हिः स्तृणीयात् ॥

"उदुत्तमम्" इति [६९] ऋचा शवदाहानन्तरं सर्वे ब्राह्मणाः स्नानं कुर्युः ॥

"प्रास्मत् पाशान्" इति [७०] ऋचं पितृमेधे दशरात्रपर्यन्तं सायंप्रातः स्वस्त्ययनार्थं पठेयुः ॥

पिण्डपितृयज्ञमें "अक्षन्नमीमदन्त" इस पहिली ऋचासे पिण्डोपस्थानके अनन्तर उत्तरपरिषेकको करे ।

"आयात पितरः" इस बासठवी ऋचासे पिण्डदानके लिये बिछाई हुई कुशाओं पर तिल डाले ।

"परा यात" इस तरेसठवीं ऋचासे पितरोंका विसर्जन कर देय ।

और पिण्डपितृयज्ञमें इस ऋचासे सांयवम तण्डुलोंकी आहुति देवे ।

पिण्डपितृयज्ञमें "अभूद् दूतः" इस पैंसठवीं ऋचासे सन्निदाधानके अनन्तर सर्वप्रणीत अग्निका प्रत्यानयन करे । इस विषय में सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"अभूद् दूत इत्यग्निं त्रिः प्रत्यानयति यदि सर्वः प्रणीतः स्यात् । दक्षिणाग्नौ त्वेतद् आहिताग्नेः । गृहेष्वनाहिताग्नेः" । (कौशिकसूत्र ११ । १०) ॥

"असौ हा इह ते" इन छियासठवीं और सरसठवीं दो ऋचाओं से श्मशानदेशको विषमसख्यक शलाका वा ईंटोंसे प्रसव्य चुने ।

"येऽस्माकं पितरं" इस अड़सठवीं ऋचाके पूर्वार्धसे पिण्डप्रदानके लिये कुशाओंको बिछावे ।

उदुत्तमम्" इस उनहत्तरवीं ऋचासे शवदाहके अनन्तर सब ब्राह्मण स्नान करें ।

और "प्रास्मत् पाशान्" इस सत्तरवीं ऋचाका स्वस्त्ययनके लिये पितृमेधमें दश रात तक सायंकाल और प्रातःकालके समय सबको पाठ करना चाहिये ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तत्र प्रथमा ॥

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रियाँ अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा यविष्ठा ईमहे ॥ ६१ ॥

अक्षन् । अमीमदन्त । हि । अव । प्रियान् । अधूषत ।
अस्तोषत । स्वऽभानवः । विप्राः । यविष्ठाः । ईमहे ॥ ६१ ॥

अत्र पितरः स्तूयन्ते। अक्षन् अघसन् बर्हिषि दत्तान् पिण्डान्। ❀ अद भक्षणे। "लुङ्मनोर्घस्लृ" इति घस्लादेशः। "मन्त्रे घस०" इति च्लेर्लुक्। "गमहन०" इति उपधालोपः। "शासिवसिघसीनां च" इति षत्वम्। "खरि च" इति चर्त्वेन घकारस्य ककारः। कषयोगे क्षः। "लुङ्लङ्०" इति अडागम उदात्तः। पादादित्वाद् अनिघातः ❀। अमीमदन्त। हिशब्दश्चार्थे। ❀तिङ उचरत्वाद् निघाताभावः ❀। पिण्डभक्षणेन तृप्ताश्च अभूवन्। ❀ मद तृप्तियोगे। चुरादेरात्मनेपदिनश्चङि रूपम् ❀। यद्वा हिशब्दो इत्यर्थे। यतस्तृप्ता अतः प्रियान् स्वकीयान् देहान् अधूषत अकम्पयन्। अतिशयितरसास्वादनेन गन्तुम् अशक्नुवन्तः शरीराण्येव अकम्पयन्। ❀ धूविधूनने। क्र्यादिः। लुङि सिच्। "गाङ्कुटादिभ्यः०" इति सिचो ङित्त्वाद् गुणाभावः। व्यत्ययेन आत्मनेपदम् ❀। अनन्तरं स्वभानवः स्वायत्तदीप्तयः पितरः अस्तोषत अस्तावि षुरस्मान् साधु कृतम् इति। ❀ ष्टुञ् स्तुतौ। लुङि सिच्। "सार्वधातुकार्धधातुकयोः" इति गुणः ❀। एवं पिण्डभक्षणेन तृप्तान् पितॄन् विप्राः मेधाविनो यविष्ठाः युवतमा वयम् ईमहे। ❀ याच्ञाकर्मा ❀। याचामहे स्वेष्टानि फलानि। ❀ईङ् गतौ। दैवादिक आत्मनेपदी। श्यनोलुक् बाहुलकात्❀॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पितरोंने पिण्डोंका भक्षण कर लिया और वे पिण्डभक्षण करके तृप्त होगए, तृप्त होनेके कारण वे अपने शरीरोंको कँपा रहे हैं अर्थात् परम स्वादु रसका आस्वादन कर जानेकी शक्ति न रहनेसे अपने शरीरको ही कँपा रहे हैं। फिर ये पितर स्वायत्त-दीप्तिक होकर हमारी स्तुति करते हैं, कि-इन्होंने अच्छा किया। इस प्रकार पिण्डभक्षणसे तृप्त हुए पितरोंसे हम विद्वान् और तरुण पुरुष अपने अभिलषित फलोंकी याचना करते हैं ॥ ६१ ॥

द्वितीया ॥

आ यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पितृयाणैः।
आयुरस्मभ्यं दधतः प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम् ॥ ६२ ॥

आ। यात। पितरः। सोम्यासः। गम्भीरैः। पथिऽभिः। पितृऽयानैः।
आयुः। अस्मभ्यम्। दधतः। प्रऽजाम्। च। रायः। च। पोषैः।
अभि। नः। सचध्वम् ॥ ६२ ॥

हे पितरः सोम्यासः सोमार्हा यूयम् आ यात आगच्छत गम्भीरैः दुर्गमैः पितृयाणैः पितरो यान्ति एभिरिति तैः पथिभिः मार्गैः। आगत्य च अस्मभ्यं पिण्डदानार्थं स्तीर्णे बर्हिषि तिलान् विकिरद्भ्यः आयुः बहुकालजीवनं प्रजाम् प्रकर्षेण जायमानां पुत्रपौत्रादिलक्षणां संततिं च दधत धत्त प्रयच्छत। ❀ दधातेर्लेटि "घोर्लोपो लेटि०" इति धातोराकारलोपः। अडागमः। यद्वा दध धारणे। भौवादिक आत्मनेपदी। अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम्। अथ वा श्लुश्च शश्चेति विकरणद्वयम्। शस्य ङित्त्वात् "श्नाभ्य-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्तयोरातः" इति आकारलोपः ❀ । किं च नः अस्मान् रायः धनस्य पोषैः समृद्धिभिः अभि सचध्वम् अभितः समवेत । रयि-पोषेण अस्मान् संयोजयतेति ॥

हे सोमके योग्य पितरों ! तुम गंभीर पितृयानोंसे आओ और आकर पिण्डदान करनेके लिये कुशा बिछा कर तिल देने वाले हमको आयु और प्रजा दो और धनकी पुष्टियोंसे हमको संयुक्त करो ॥ ६२ ॥

तृतीया ॥

परा यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पूर्याणैः ।
अधा मासि पुनरा यात नो गृहान् हविरत्तु सुप्रजसः सुवीराः ॥ ६३ ॥

परा । यात । पितरः । सोम्यासः । गम्भीरैः । पथिऽभिः ।
पूःऽयानैः ।
अध । मासि । पुनः । आ । यात । नः । गृहान् । हविः । अत्तु ।
सुऽप्रजसः । सुऽवीराः ॥ ६३ ॥

हे पितरः सोम्यासो यूयं पूर्याणैः पू पुरं स्वीयः पितृलोकस्तं यान्ति एभिरितिपूर्याणास्तैः स्वपुरप्राप्तिसाधनैः गम्भीरैः पथिभिः परा यात इतः पराङ्मुखा यात स्वस्थानं गच्छत ॥ अध अथ अनन्तरं मासि मासे पूर्णे । अमावास्यायाम् इत्यर्थः । हविरत्नून् हविरदन्ति एषु गृहेष्विति ते हविरत्नवः तान् हविर्भक्षस्थानभूतान् नः अस्मदीयान् गृहान् पुनरा यात आगच्छत । किंविशिष्टान् । सुप्रजसः । प्रजा संततिः पुत्रलक्षणा । शोभनपुत्रयुक्तान् । ❀ "नित्यम् असिच् प्रजामेधयोः" इति असिच् समासान्तः ❀ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुवीराः । वीरः कर्मणि कुशलः पौत्रादिशोभनपौत्रादिसमेतान् । ❀ शसो जसादेशः ❀ । एवंविधान् गृहान् आ यात । पितॄणां वा विशेषणम् । शोभनप्रजसः सुवीराः सन्तः अस्मभ्यं पुत्रपौत्रादिलक्षणां संततिं दातुं पुनरायातेति संबन्धः ॥

हे सोमके पात्र पितरों ! तुम अपने लोकको जाने वाले पितृलोकके गंभीर मार्ग पितृयानोंके द्वारा अपने लोकको जाओ और मासके पूर्ण होने पर अमावास्याके दिन हविका भक्षण करनेके स्थानरूप हमारे घरोंमें फिर आजाना। हे पितरों ! तुम सुन्दर प्रजा और पौत्र आदि देनेमें समर्थ हो ॥ ६३ ॥

"यद् वो अग्निः" इत्यनया चितिस्थानाद् विप्रकीर्णं प्रेतावयवं पुनरग्नौ प्रक्षिपेत् । सैषा सूक्ते

"यद् वो अग्निः" इस ऋचाके द्वारा चितास्थलसे गिरे हुए प्रेतके अवयवको फिर अग्निमें डाले ।

चतुर्थी ॥

यद् वो॑ अ॒ग्निरज॑हा॒देक॒मङ्गं॑ पितृलो॒कं ग॒मयं॑ जा॒तवे॑दाः ।
तद् व॑ ए॒तत् पुन॒रा प्या॑ययामि सा॒ङ्गाः स्व॒र्गे पि॒तरो॑ मादयध्वम् ॥ ६४ ॥

यत् । वः॒ । अ॒ग्निः । अजहात् । एक॑म् । अङ्ग॑म् । पि॒तृ॒ऽलो॒कम् । गम॑यन् । जा॒तऽवे॑दाः ।

तत् । वः॒ । ए॒तत् । पुनः॑ । आ । प्या॒य॒या॒मि॒ । स॒ऽअङ्गाः॑ । स्व॒ःऽगे । पि॒तरः॑ । मा॒द॒य॒ध्व॒म् ॥ ६४ ॥

हे प्रेताः वः युष्मान् पितृलोकम् पितृभिरधिष्ठितं स्थानं गमयन् प्रापयन् जातवेदाः जातानां वेदिता पुण्यापुण्यकर्मणः यद्वा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जातानां कर्मफलस्य लम्भयिता प्रापयिता अग्निः प्रेतदाहकः यद्व युष्मदीयम् एकम् अङ्गम् अजहात् त्यक्तवान्। चितेर्विप्रकीर्णम् अवयवं नादहद्व इत्यर्थः। ❀ ओहाक् त्यागे। जौहोत्यादिकः ❀। वः युष्माकं तद्व एतत् पुरोवर्ति अङ्गम् अवयवं पुनरा प्याययामि अग्नौ प्रक्षेपेण प्रवर्धयामि। यूयं साङ्गाः संपूर्णावयवाः पितरो भूत्वा स्वर्गे मादयध्वम् मोदध्वम् ॥

हे प्रेत! तुमको पितृलोकमें पहुँचाते हुए जातवेदा अग्निने जो तुम्हारे एक अंगको त्याग दिया है अर्थात् चितासे छिटका कर भस्म नहीं किया है उस अंगको मैं अग्निमें डाल कर फिर तुमको बढ़ाता हूँ। तुम पूरे अवयवों वाले पितर बन कर स्वर्गलोकमें प्रसन्न होओ ॥ ६४ ॥

पञ्चमी ॥

अभूद् दूतः प्रहितो जातवेदाः सायं न्यह्न उपवन्द्यो नृभिः।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥ ६५ ॥

अभूत्। दूतः। प्रऽहितः। जातऽवेदाः। सायम्। निऽअन्हे। उपऽवन्द्यः। नृऽभिः।

प्र। अदाः। पितृऽभ्यः। स्वधया। ते। अक्षन्। अद्धि। त्वम्। देव। प्रऽयता। हवींषि ॥ ६५ ॥

सायं न्यह्ने सायं प्रातः नृभिरुपवन्द्यः मनुष्यैरुपासनीयो जातवेदाः जातानां वेदिताग्निः दूतः प्रहितोभूत् दूतत्वे नियुक्तः सन्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रेषितोभूत् अस्माभिः पितॄन् प्रति ॥ अथ प्रत्यक्षनिर्देशः । हे अग्ने एतादृशस्त्वं पितृभ्यः प्रादाः अस्माभिः प्रयतानि हवींषि प्रयच्छ । ते पितरः स्वधया अक्षन् स्वधाकारेण दत्तानि हवींषि भक्षयन्तु । अनन्तरम् हे देव अग्ने त्वमपि प्रयता प्रयतानि तुभ्यमेव दत्तानि हवींषि अद्धि भक्षय । अद भक्षणे । प्राप्तकाले लोट् ❀ । पित्रर्थं त्वदर्थं च अस्माभिस्त्वयि हुतानां हविषां पितृभ्यः प्रदानानन्तरं पावकीनहविर्भक्षणस्य कालः प्राप्त इति यावत् ॥

सायङ्काल और प्रातःकालके समय मनुष्योंसे बन्दनीय अग्निदेवको हमने दूत बना कर पितरोंके पास भेजा है । हे अग्ने ! आप हमारी दी हुई हवियोंको पितरोंके अर्पण करिये । और वे पितर स्वधाकारसे दी हुई हवियोंका भक्षण करें । हे अग्निदेव ! इसके अनन्तर आप भी अपने लिये ही दी हुई हवियोंका भक्षण करिये ॥ ६५ ॥

षष्ठी ॥

असौ हा इह ते मनः ककुत्सलमिव जामयः ।
अभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥ ६६ ॥

असौ । है । इह । ते । मनः । ककुत्सलम्ऽइव । जामयः ।
अभि । एनम् । भूमे । ऊर्णुहि ॥ ६६ ॥

असौ इति प्रेतस्य संबोधनम् । हे अमुकनामधेय प्रेत ते तव मनः इह अस्मिन् प्रसव्यम् इष्टकचिते प्रदेशे वर्तते । हा संतोषे ॥ हे भूमे चितश्मशानदेश एनम् अन्वादिष्टम् अत्रैव अवतिष्ठमानं प्रेतम् अभ्यूर्णुहि अभितः सर्वत आवृणु आच्छादय । तत्र दृष्टान्तः । जामयः भगिन्यः । उपलक्षणम् एतत् । आप्ता बान्धवाः ककुत्स्थलमिव । ककुच्छब्दः प्रधानवाची । प्रधानावयवप्रदेशमिव । यथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मात्रादय आप्ता बान्धवाः पुत्रादीनां शिरःप्रभृतीन्यङ्गानि शीतातपवातनिवारणाय वाससाच्छादयन्ति एवम् । यद्वा जामिशब्दः स्त्रीमात्रपरः । यथा स्त्रियः ककुत्स्थलम् । ग्रीवापरभागः ककुत् । स्वकन्धरप्रदेशंवाससा प्रोर्णुवन्ति तद्वत् ॥

हे अमुक नामवाले प्रेत! तेरा मन इस ईंटोंसे चिने हुए स्थान में है यह सन्तोषकी बात है । हे चिनी हुई श्मशानदेशरूप भूमे! तू यहाँ पर स्थित प्रेतको इस प्रकार आच्छादित कर जिस प्रकार स्त्रियें अपने कंधेको वस्त्रसे ढक लेती हैं ॥ ६६ ॥

सप्तमी । द्विपदा ॥

शुम्भन्तां लोकाः पितृषदनाः पितृषदने त्वा लोक आ सादयामि ॥ ६७ ॥

शुम्भन्ताम् । लोकाः । पितृऽसदनाः । पितृऽसदने । त्वा । लोके । आ । सादयामि ॥ ६७ ॥

हे प्रेत तव पितृसदनाः पितरः सीदन्ति अत्र इति पितृसदना लोकाः शुम्भन्ताम् प्रकाशन्ताम् । ❀ शुभ शुम्भ शोभायाम् । तौदादिकः ❀ । अहं संस्कर्ता पितृसदने पितृभिरधिष्ठिते लोके त्वा त्वाम् आ सादयामि स्थापयामि ॥

हे प्रेत! जिनमें पितर बैठते हैं वे लोक तेरे लिये प्रकाशित हों, मैं संस्कर्ता पुरुष पितरोंसे अधिष्ठित लोकमें तुझको स्थापित करता हूँ ॥ ६७ ॥

एकपदाष्टमी ऋक् एवम् आम्नायते ।

अष्टमी ॥

ये३स्माकं पितरस्तेषां बर्हिरसि ॥ ६८ ॥

ये । अस्माकम् । पितरः । तेषाम् । बर्हिः । असि ॥ ६८ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ये अस्माकं पितरः पितृत्वं प्राप्ताः पूर्वजास्तेषां बर्हिः आसदनस्थानम् असि भवसि। इति पिण्डदानार्थं स्तीर्यमाणं बर्हिः संबोध्यते

(इस ऋचामें पिण्डदानके लिये बिछाई हुई कुशको सम्बोधित करके कहा है, कि-)हे बर्हिः! जो हमारे पितृत्वको प्राप्त हुए पूर्वज पितर हैं तू उनके बैठनेका स्थान बनती है ॥ ६८ ॥

नवमी ॥

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।
अधा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ६९

उत्। उत्ऽतमम्। वरुण। पाशम्। अस्मत्। अव। अधमम्।
वि। मध्यमम्। श्रथय।
अध। वयम्। आदित्य। व्रते। तव। अनागसः। अदितये। स्याम

एषा पुरस्ताद् व्याख्याता[७. ८८. ३]। वरुणपाशास्त्रिविधा उत्तमाधममध्यमभेदेन। तत्र हे वरुण त्वदीयम् उत्तमं पाशम् अस्मत् अस्मत्तः उत् श्रथाय ऊर्ध्वम् उन्मोचय। अधमम् निकृष्टं पाशम् अव श्रथाय अवस्ताद् मोचय। मध्यमं तु पाशं वि श्रथाय विश्लेषय। ❀ श्रन्थ प्रतिहर्षविमोचनयोः। क्र्यादिकः। "छन्दसि शायजपि" इति हौ शायजादेशः ❀ ॥ अथ अनन्तरं विमुक्तपाशा वयम् हे आदित्य अदितेः पुत्र वरुण तव व्रते कर्मणि परिचरणरूपे अनागसः निर्दोषाः प्रत्यवायरहिताः सन्तः अदितये अखण्डनाय अहिंसायै स्याम इति संग्रहार्थः। ❀ दो अवखण्डने। क्तिनि "द्यतिस्यतिमास्थामित् ति किति" इति इत्त्वम् ❀ ॥

हे वरुण! आप अपने उत्तम पाशको हमसे उन्मुक्त करिये, अपने निकृष्ट पाशको उन्मुक्त करिये, अपने मध्यम पाशको अलग करिये। पाशोंसे छूटनेके अनन्तर हम हे अदितिके पुत्र

४०४६
Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वरुण ! आपकी सेवामें लगने पर निष्पाप होनेके कारण अहिंसित रहें ॥ ६९ ॥

दशमी ॥

प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान् यैः समामे बध्यते यैर्व्यामे ।
अधा जीवेम शरदं शतानि त्वया राजन् गुपिता रक्षमाणाः ॥ ७० ॥

प्र । अस्मत् । पाशान् । वरुण । मुञ्च । सर्वान् । यैः । सम्ऽआमे । बध्यते । यैः । विऽआमे ।

अध । जीवेम । शरदम् । शतानि । त्वया । राजन् । गुपिताः । रक्षमाणाः ॥ ७० ॥

हे वरुण वारक देव पाशान् वक्ष्यमाणान् बन्धनसाधनभूतान् सर्वान् अस्मत् अस्मत्तः प्र मुञ्च प्रमोचय । यैः पाशैः समामे बध्यते पुरुषः व्यामे च यैर्बध्यते । व्यामो नाम "व्यामो बाह्वोः सकरयोस्ततयोस्तिर्यगन्तरम्" इत्येवंविहितप्रमाणकः प्रदेशः । पञ्चारत्निर्व्याम इति याज्ञिकाः। समामो नाम व्यामसंज्ञितप्रदेशात् संकुचितप्रमाणको देशः । संनिहिते प्रदेशे दूरे प्रदेशे च इति यावत् ॥ अध अथ पाशमोचनानन्तरम् हे राजन् वरुण त्वया गुपिताः रक्षिताः पूर्वं पालिता रक्षमाणाः । ❀ यगभावश्छान्दसः ❀ । रक्ष्यमाणा इतः परमपि पाल्यमाना वयं शतानि शरदम् शरदः । ❀ "कालाध्वनोः०" इति द्वितीया ❀ । बहुवर्षपर्यन्तं जीवेम जीवनवन्तः स्याम ॥

इति चतुर्थेनुवाके सप्तमं सूक्तम् ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे वारक वरुणदेव ! जिन पाशोंसे पुरुष कौलियामें जकड़ा हुआसा होजाता है और जिससे उससे भी संकुचित स्थानमें जकड़ा हुआसा होजाता है उन सब पाशोंको हमसे दूर करिये। फिर हे राजन् वरुण ! इस प्रकार आपसे रक्षित और भविष्यमें भी रक्षा पाते हुए हम सौ वर्ष तक जीवित रहें ॥ ७० ॥ (२६)

चतुर्थ अनुवाकमें सप्तम सूक्त समाप्त

पिण्डपितृयज्ञे "अग्नये कव्यवाहनाय" इति त्रिभिर्मन्त्रैः "स्वधा पितृभ्यः पृथिविषद्भ्यः" इति अष्टमनवमदशमैश्च त्रिभिः स्थाली-पाकं जुहुयात् । सूत्रितं हि । "ये रूपाणि" इति प्रक्रम्य "कुम्भी-पाकम् अभिघारयति । अग्नये कव्यवाहनायेति । जुहोति । यथा निरुप्तं द्वितीयां यमाय पितृमते स्वधा पितृभ्य इति तृतीयाम्" इति [कौ० ११. ९] ॥ निर्वापप्रकारस्तु एवं कौशिकेन उक्तः । "यज्ञोपवीती दक्षिणपूर्वम् अन्तर्देशम् अभिमुखः शूर्प एकपवित्रा-न्तर्हितान् हविष्यान् निर्वपति इदम् अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा पितृभ्यः पृथिविषद्भ्यः इति। इदं सोमाय पितृमते स्वधा पितृभ्यः सोमवद्भ्यः । पितृभ्यो वान्तरिक्षसद्भ्यः इति । इदं यमाय पितृ-मते स्वधा पितृभ्यश्च दिविषद्भ्यः" इति [कौ० ११. ८.] ॥

पिण्डपितृयज्ञ एव "एतत् ते प्रततामह स्वधा" इति पञ्चम-षष्ठसप्तमैर्मन्त्रैर्बर्हिषि त्रीन् पिंडान् संहितान् निदध्यात् । सूत्रितं हि । "उद्धृत्याज्येन संनीय त्रीन् पिण्डान् संहितान् निदधाति एतत् ते प्रततामहेति" [इति कौ० ११. ९.] ॥

एतत् सूक्तं सर्वं यजुर्मन्त्रात्मकम् ॥

पिण्डपितृयज्ञमें "अग्नये कव्यवाहनाय" आदि तीन मन्त्रोंसे और "स्वधा पितृभ्यः पृथिविषद्भ्यः" इन आठवें नवें और दशम मन्त्रोंसे भी स्थालीपाककी आहुति देय। सूत्रमें भी "ये रूपाणि" का आरम्भ करके कहा है, कि-"कुम्भीपाकं अभिघारयति ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अग्नये कव्यवाहनायेति जुहोति । यथा निरुप्तं द्वितीयां यमाय पितृमते स्वधा पितृभ्य इति तृतीयाम् ।–कुम्भीपाकका अभिघारण करता है । अग्नये कव्यवाहनाय–से आहुति देवे, और आहुति देनेसे पहिले यमाय पितृमते कह कर दूसरी आहुति देवे और स्वधा पितृभ्यः–से तीसरी आहुति देवे ।" (कौशिकसूत्र ११।९) निर्वापकी रीति कौशिकने इस प्रकार कही है; कि–"यज्ञोपवीती दक्षिणपूर्वं अन्तर्देशं अभिमुखः शूर्प एकपवित्रान्तर्हितान् हविष्यान् निर्वपति इदं अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा पितृभ्यः पृथिविषद्भ्यः इति । इदं सोमाय पितृमते स्वधा पितृभ्यः सोमवद्भ्यः पितृभ्यो वान्तरिक्षसद्भ्यः इति । इदं यमाय पितृमते स्वधा पितृभ्यश्च दिविषद्भ्यः ।–यज्ञोपवीती पुरुष दक्षिण और पश्चिमके कोणकी ओर मुख कर छाजमें एक पवित्री पड़े हुए इन मन्त्रोंसे हविष्योंको डाले । इदं०" । (कौशिकसूत्र ११ । ८) ॥

पिण्डपितृयज्ञमें ही "एतत् ते प्रपितामह स्वधा" आदि पाँचवें छठे और सातवें मन्त्रोंसे कुशाओं पर तीन पिण्डोंको मिलाकर रक्खे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–उद्धृत्याज्येन संनीय त्रीन् पिण्डान् संहितान् निदधाति एतत् ते प्रपितामहेति" (कौशिकसूत्र ११ । ९) ।

तत्र प्रथमादितो मन्त्रचतुष्टयपाठस्तु

अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः ॥ ७१ ॥

अग्नये । कव्यऽवाहनाय । स्वधा । नमः ॥ ७१ ॥

सोमाय पितृमते स्वधा नमः ॥ ७२ ॥

सोमाय । पितृऽमते । स्वधा । नमः ॥ ७२ ॥

पितृभ्यः सोमवद्भ्यः स्वधा नमः ॥ ७३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पितृऽभ्यः सोमवत्ऽभ्यः । स्वधा नमः ॥ ७३ ॥

यमाय पितृमते स्वधा नमः ॥ ७४ ॥

यमाय । पितृऽमते । स्वधा । नमः ॥ ७४ ॥

दैवहविःप्रापकोग्निः हव्यवाहनः । पित्र्यहविःप्रापकोग्निः कव्यवाहनः । तत्र कव्यवाहनाय कव्यं पित्र्यं हविः । तद्वहते पितॄन् प्रापयते । ❀ कव्योपपदाद् वहेर्ण्युट् प्रत्ययः । अस्वाद् उपधावृद्धिः ❀ । तस्मै अग्नये स्वधा स्वधाकारेण इदं हविः हुतम् अस्तु नमः नमस्कारोस्तु । स्वहाकारवषट्कारप्रदाना हि देवाः । स्वधाकारनमस्कारप्रदानाः खलु पितरः । स्वाहाकारवषट्कारौ विकल्पितौ । स्वधानमःशब्दौ समुच्चितौ । "स्वधा नम इति वषट्करोति । स्वधाकारो हि पितॄणाम्" इति तैत्तिरीयकश्रुतेः [तै० ब्रा० १. ६. ९. ५.] । ❀ "नमःस्वस्तिस्वाहा०" इति अग्नय इति चतुर्थी ❀ ॥ एवम् उत्तरे मन्त्रा योज्याः । सोमस्य पितरो विशेषणभूताः सोमो वा पितॄणां विशेषणम् ॥

यह पूर्ण सूक्त यजुर्वेदके मन्त्रोंमें भी आता है। [देवताओंको हवि पहुँचाते समय अग्नि हव्यवाहन कहलाते हैं और पितरोंको हवि पहुँचाते समय अग्नि कव्यवाहन कहलाते हैं उन] कव्यवाहन अग्निके लिये स्वधा-शब्दसे यह हवि आहुत हो और यह नमस्कार उनको प्राप्त हो । पितृमान् सोमके लिये स्वधा शब्दसे यह आहुति आहुत हो और यह नमस्कार उनको प्राप्त हो । सोम वाले पितरोंको वह स्वधा शब्दसे आहुत आहुति प्राप्त हो और यह प्रणाम उनको प्राप्त हो । पितरोंके अधिपति यमदेव के लिये स्वधा शब्दसे यह आहुति आहुत होकर प्राप्त हो और यह प्रणाम उनको प्राप्त हो । [स्वाहा या वषट् कह कर देवताओं को हवि दी जाती है और स्वधा सहित नमः शब्द कह कर पितरों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को हवि दी जाती है। तैत्तिरीयब्राह्मण १.। ६। ९। ५ में कहा है, कि–"स्वधा नम इति वषट्करोति। स्वधाकारो हि पितॄणाम्"]॥ ७१—७४॥

पिण्डप्रदानमन्त्रा एवम् आम्नायन्ते।

एतत् ते प्रपितामह स्वधा ये च त्वामनु ॥ ७५ ॥

एतत्। ते। प्रऽपितामह। स्वधा। ये। च। त्वाम्। अनु ॥७५॥

एतत् ते पितामह स्वधा ये च त्वामनु ॥ ७६ ॥

एतत्। ते। पितामह। स्वधा। ये। च। त्वाम्। अनु ॥ ७६ ॥

एतत् ते तत स्वधा ॥ ७७ ॥

एतत्। ते। तत। स्वधा ॥ ७७ ॥

हे प्रपितामह प्रपितामह। ततशब्दः पितृवचनः। सृष्ट्यादौ हि प्रजापतिना स्वजनकाह्वानार्थं ततेति तातेति व्याहृतम्। तथा च ऐतरेयकम् "एतां वाव प्रजापतिः प्रथमां वाचं व्याहरद् एकाक्षरमक्षरां ततेति तातेति। तयैव तत् तत्तवत्या वाचा प्रतिपद्यते" इति [ऐ० आ० १. ३. ३]। अतः प्रशस्तत्वात् ततेति आम्नातम्। आश्वलायनेन तु स्वपित्रादीनां नामधेयान्यजानानः पुत्रस्ततशब्दं प्रयुञ्जीतेति सूत्रितम्। "नामान्यविद्वांस्ततपितामहप्रपितामहेति" [इति। आश्व० २. ६]। ततामहप्रपितामहेत्यर्थः। यद्वा देवानां परोक्षनामप्रियत्वात् ततेत्यादिना परोक्षनाम्ना व्यवहारः। अथवा पितृलोकं प्राप्ताः सर्वेपि पितरः। तत्र शृङ्गग्राहिकया स्वजनकादीनाम् आह्वानाय ततेतिशब्दप्रयोगः। हे प्रपितामह प्रपितामह ते तुभ्यम् एतत् पिण्डलक्षणं हविः स्वधाकारेण दत्तम् अस्तु। ये च पितरः भार्यापुत्रादयः पितरस्त्वाम् अनुसृत्य वर्तन्ते तेभ्योपि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वधास्तु। ते च अत्र अंशभागिनो भवेयुरिति ॥ एवम् उत्तरौ मन्त्रौ व्याख्येयौ। हे ततामह पितामह। हे तत पितः। अत्र तृतीये मन्त्रे पिण्डप्रदातरि पुत्रे जीवति सति अनुगामिनाम् अन्येषाम् अभावाद् ये च त्वाम् अनु इति मन्त्रशेषो नाम्नातः ॥

पिंडप्रदानके मन्त्र इस प्रकार हैं—

[तत शब्द पितृका वाचक है। सृष्टिकी आदिमें प्रजापतिने अपने जनकका आह्वान करनेके लिये तत तात कहा था। इसी बात को ऐतरेयकमें लिखा है, कि—"एतां वाव प्रजापतिः प्रथमां वाचं व्याहरद् एकाक्षरद्व्यक्षरां ततेति तातेति। तयैव तत् ततवत्या वाचा प्रतिपद्यते ॥—प्रजापतिने पहिले एक ही अक्षरके दो अक्षर वाली तत तात इस वाणीको कहा। उस ततवती वाणीसे ही पिता आदि को बुलाया जाता है" [ऐतरय आरण्यक १। ३। ३]। अतः प्रशस्त होनेसे यहाँ मन्त्रमें पिताके शब्दके स्थानमें तत शब्दका प्रयोग किया है। आश्वलायनमुनिने अपने सूत्रोंमें यह कहा है, कि—अपने पिता आदिके नामसे अपरिचित पुरुष तत शब्दका प्रयोग करे। यथा—"नामान्यविद्वान् तत पितामह प्रपितामहेति।—नामसे अपरिचित पुरुष तत पितामह प्रपितामह आदि कहे" आश्वलायनसूत्र २। ६ ॥ अथवा—देवता छिपे हुए (परोक्ष) नामसे प्रसन्न होते हैं अत एव तत इस नामसे व्यवहार किया है। अथवा—पितृलोकमें गए हुए सब पितरोंको तत शब्दसे कह सकते हैं। अत एव शृंगग्राहिकारीतिसे अर्थात् सींग पकड़ लिये तो सारे ढोरको पकड़ लिया रीतिसे अपने जनक आदिका आह्वान करनेके लिये तत शब्दका प्रयोग किया है] हे प्रततामह अर्थात् प्रपितामह! आपके लिये यह पिण्डलक्षणहवि स्वधाकार से दी हुई हो और जो भार्या पुत्र आदि पितर आपके अनुकूल होकर रहते हों उनको भी यह स्वधा प्राप्त हो। हे ततामह अर्थात्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पितामह ! आपके लिये यह पिण्डरूप हवि स्वधाकारसे प्राप्त हो और जो भार्यापुत्र आदि पितर आपके कारण भाग पासकते हैं उनको भी स्वधासे हविकी प्राप्ति हो। हे तत अर्थात् पितः ! आपके लिये स्वधाकारसे यह हवि प्राप्त हो [तृतीयमन्त्रमें पिण्ड-दान करने वाले पुत्रके जीवित रहनेके कारण "ये च त्वामनु" भाग नहीं कहा है] ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

अष्टमादिमन्त्रास्त्रय एवम् आम्नायन्ते।

स्वधा पितृभ्यः पृथिविषद्भ्यः ॥ ७८ ॥

स्वधा। पितृऽभ्यः। पृथिविसत्ऽभ्यः ॥ ७८ ॥

स्वधा पितृभ्यो अन्तरिक्षसद्भ्यः ॥ ७९ ॥

स्वधा। पितृऽभ्यः। अन्तरिक्षसत्ऽभ्यः ॥ ७९ ॥

स्वधा पितृभ्यो दिविषिद्भ्यः ॥ ८० ॥

स्वधा। पितृऽभ्यः। दिविसत्ऽभ्यः ॥ ८० ॥

पृथिविषद्भ्यः पृथिव्यां सीदद्भ्यः। ❀ पूर्वपदस्य ह्रस्वत्वं छान्दसम्। "पूर्वपदात्" इति षत्वम् ❀। पितृभ्यः स्वधा। इदं हविः स्वधाकारेण हुतम् अस्तु ॥ एवम् उत्तरौ व्याख्येयौ। दिविषद्भ्यः दिवि द्युलोके सीदद्भ्यः। ❀ "तत्पुरुषे कृति बहुलम्" इति सप्तम्या अलुक्। पूर्ववद् उत्तरपदस्य मूर्धन्यादेशः ❀ ॥

इति चतुर्थे अनुवाके अष्टमं सूक्तम् ॥

पृथिवीमें रहने वाले पितरोंके लिये यह हवि स्वधासे प्राप्त हो। अन्तरिक्षमें रहने वाले पितरोंके लिये यह हवि स्वधासे प्राप्त हो। द्युलोकमें रहने वाले पितरोंके लिये यह हवि स्वधाशब्दसे प्राप्त हो ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ (२७)

चतुर्थ अनुवाकमें अष्टम सूक्त समाप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"नमो वः पितरः" इति अष्टभिर्यजुर्मन्त्रैर्बर्हिषि पिण्डेषु आवाहितान् पितॄन् उपतिष्ठेत । सूत्रितं हि । "नमो वः पितरः [८१] इत्युपतिष्ठते । अक्षन् [६१] इत्युत्तरसिचम् अवधूय परा यात [६३] इति "परायापयति" इति [कौ० ११. ९] ॥

तत्रैव कर्मणि "आ त्वाग्ने" इत्यनया समिधम् आदध्यात् । "समिधोभ्यादधाति" इति प्रक्रम्य सूत्रितम् । "त्वमग्न ईळितः [१८. ३. ४२] आ त्वाग्न इधीमहि [१८. ४. ८८]" इति [कौ० ११. १०] ॥

"वारुणीं जलभये जलसंक्षये च" इति [न० क० १७.] विहितायां वरुणदेवत्यायां महाशान्तौ "चन्द्रमा अप्स्वन्तरा" इत्येनाम् ऋचम् आवपेत् । उक्तं हि नक्षत्रकल्पे । "यद् देवा देवहेलनम् [६. ११४. १] इति याम्याया चन्द्रमा अप्स्वन्तरा [१८. ४. ८९] इति वारुण्याम्" इति [न० क० १८] ॥

"नमो वः पितरः" इन आठ यजुर्मंत्रोंसे कुशाओं पर रखे हुए पिण्डों पर आवाहित पितरोंका उपस्थान करे । इस विषयमें सूत्र का प्रमाण है, कि—"नमो वः पितरः (८१) इत्युपतिष्ठते । अक्षन् (६१) इत्युत्तरसिचम् अवधूय परायात (६३) इति परायापयति" (कौशिकसूत्र ११ । ९) ॥

तहाँ ही कर्ममें "आ त्वाग्ने" ऋचासे समिधाको रक्खे । "समिधोऽभ्यादधाति" को कह कर सूत्रमें कहा है, कि—"त्वमग्न ईलितः (१८ । ३ । ४२) आ त्वाग्न इधीमहि (१८।४ ८८ " (कौशिकसूत्र ११ । १०)

वारुणीं जलभये जलसंक्षये च।—जलका भय वा जलका क्षय होने पर वारुणीशांतिको करे" इस नक्षत्रकल्प १७ से विहित वरुणदेवकी महाशान्तिमें "चन्द्रमा अप्स्वन्तरा" ऋचाको पढ़े । इसी बातको नक्षत्रकल्पमें कहा है, कि—"यद् देवा देवहेलनम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(६ । ११४ । १) इति याम्यायां चन्द्रमा अप्स्वन्तरा(१८ । ४ । ८९) इति वारुण्याम्" (नक्षत्रकल्प १८) ॥

मन्त्रपाठस्तु

नमो वः पितर ऊर्जे नमो वः पितरो रसाय ॥८१॥

नमः । वः । पितरः । ऊर्जे । नमः । वः । पितरः । रसाय ८१

नमो वः पितरो भामाय नमो वः पितरो मन्यवे ८२

नमः । वः । पितरः । भामाय । नमः । वः । पितरः । मन्यवे ८२

नमो वः पितरो यद् घोरं तस्मै नमो वः पितरो यत् क्रूरं तस्मै ॥ ८३ ॥

नमः । वः । पितरः । यत् । घोरम् । तस्मै । नमः । वः । पितरः । यत् । क्रूरम् । तस्मै ॥ ८३ ॥

नमो वः पितरो यच्छिवं तस्मै नमो वः पितरो यत् स्योनं तस्मै ॥ ८४ ॥

नमः । वः । पितरः । यत् । शिवम् । तस्मै । नमः । वः । पितरः । यत् । स्योनम् । तस्मै ॥ ८४ ॥

नमो वः पितरः स्वधा वः पितरः ॥ ८५ ॥

नमः । वः । पितरः । स्वधा । वः । पितरः ॥ ८५ ॥

एते मन्त्रा निगदव्याख्याताः । एतैर्मन्त्रैः पितॄणां नमस्कारः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिपाद्यते। "नमस्करोति। नमस्कारो हि पितॄणाम्" इति श्रुतेः [तै०ब्रा० १. ३. १०. ८]। नमस्कारस्य फलप्रतिपादकानि ऊर्जे इत्यादीनि। यद्वा पितृभिर्युष्माभिर्दीयमानाय ऊर्जे नम इति। एवम् उत्तरत्र। ऊर्जे अन्नाय रसाय अन्नरसाय॥ भामाय। ❀ भाम क्रोधे। अस्माद् घञ् ❀॥ क्रोधाय। अत्र पितृसंबन्धी क्रोध एव नमस्कार्यः। तथा अन्यत्र समाम्नायते। "नमस्ते रुद्र मन्यवे" इति [तै० सं० ४. ५. १. १]। मन्युः मानसः क्रोधविशेषः॥ घोरम् अहितकारिणां भयंकरं रूपं तस्मै नमः। क्रूरम् हिंस्रं रूपं तस्मै नमः॥ शिवम् मङ्गलं रूपं स्योनम् सुखप्रदं तस्मै च नमः नमस्कारोस्तु॥ हे पितरः वः युष्मभ्यं नमः। हे पितरः वः युष्मभ्यं स्वधा स्वधाकारेण इदं हविर्हुतम् अस्तु॥

[इन मन्त्रोंसे पितरोंको नमस्कार किया गया है तैत्तिरीयब्राह्मण १। ३। १०। ८ की श्रुतिमें भी कहा है, कि—"नमस्करोति। नमस्कारो हि पितॄणाम्।—नमस्कार करे! नमस्कार-पितरोंके लिये आवश्यक है।"] हे पितरों! मैं अन्न और रस पानेके लिये आपको प्रणाम करता हूँ वा आपके अन्न और रसके लिये प्रणाम है। हे पितरों! आपके क्रोधके लिये प्रणाम है। [यहाँ पितरोंके क्रोधको ही प्रणाम करना चाहिये। तैत्तिरीयसंहिता ४। ५। १। १ में भी कहा है, कि—"नमस्ते रुद्र मन्यवे"।] हे पितरों! आपके मानसक्रोध मन्युके लिये प्रणाम है। हे पितरों! अहितकारियोंके लिये भयंकर आपके भयंकर रूपके लिये नमस्कार हो। हे पितरों! आपके हिंसक रूपके लिये प्रणाम हो हे पितरों! आपके मङ्गलकारी रूपके लिये भी नमस्कार है। हे पितरों! आपके सुखप्रद रूपके लिये भी नमस्कार है। हे पितरों! तुम्हारे लिये प्रणाम है। हे पितरों! आपके लिये यह हवि हुत हो॥ ८१—८५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

षष्ठादिमन्त्रपाठस्तु

येत्र पितरः पितरो येत्र यूयं स्थ युष्मांस्तेनु यूयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्थ ॥ ८६ ॥

ये । अत्र । पितरः । पितरः । ये । अत्र । यूयम् । स्थ । युष्मान् । ते । अनु । यूयम् । तेषाम् । श्रेष्ठाः । भूयास्थ ॥ ८६ ॥

य इह पितरो जीवा इह वयं स्मः । अस्मांस्तेनु वयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्म ॥ ८७ ॥

ये । इह । पितरः । जीवाः । इह । वयम् । स्मः ॥ अस्मान् । ते । अनु । वयम् । तेषाम् । श्रेष्ठाः । भूयास्म ॥ ८७ ॥

अत्र अस्मिन् पिंडपितृयज्ञे ये पितरो यूयं स्थ देवतात्वं प्राप्ताः स्थ । आदरार्थं व्यतिहारेण पुनर्वचनम् । युष्मान् अनुसृत्य ते अधिकत्वेन प्रसिद्धाः पितरो वर्तन्ते । तेषां यूयं श्रेष्ठाः प्रशस्यतमा उपजीव्या भूयास्थ भवत । युष्मत्प्रसादात् तेषां पिंडांशभागित्वात् ॥ इह अस्मिन् यज्ञे ये पितरः पितृत्वेन संभावितास्तेषां श्रेष्ठा भूयास्थेति संबन्धः । इह अस्मिन् लोके वयं पिण्डदातारो जीवाः जीवनवन्तः आयुष्मन्तः स्मः । अस्मान् अनुसृत्य ते प्रसिद्धाः समानवयोवंशविद्याधना वर्तन्ते । तेषां श्रेष्ठा भूयास्म । इति पिण्डेष्वावाहितान् पितॄन् उपतिष्ठेत ॥

[इस ऋचामें आदरके लिये बहुवचनका प्रयोग किया गया है] हे पितरों ! इस पिण्डपितृयज्ञमें जो तुम देवतारूपमें बैठे हुए हो । तुम्हारे आश्रयसे जो और पितर रहते हैं उनमें तुम श्रेष्ठ होओ वे तुमसे आजीविका चलावें तुम उनमें श्रेष्ठ उपजीव्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होओ। क्योंकि-वे आपके प्रसादसे पिण्डके अंशके भागी हो सकते हैं। इस यज्ञमें जो पितर पितृत्वसे संभावित हैं उनमें तुम श्रेष्ठ बनो। और इस लोकमें पिण्ड देने वाले हम भी जीवन-सम्पन्न आयु वाले होवें। और हमारे पास जो हमारी ही समान अवस्था वंश विद्या और धन वाले हैं उनमें हम श्रेष्ठ होवें [इस प्रकार पिण्डोंमें आवाहित पितरोंका उपस्थान करे] ॥८६॥८७॥

आ त्वाग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।

यद् घ सा ते पनीयसी समिद् दीदयति द्यवि ।

इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ८८ ॥

आ । त्वा । अग्ने । इधीमहि । द्युऽमन्तम् । देव । अजरम् ।

यत् । घ । सा । ते । पनीयसी । सम्ऽइत् । दीदयति । द्यवि ।

इषं । स्तोतृऽभ्यः । आ । भर ॥ ८८ ॥

नवमी ॥ हे देव द्योतमान हे अग्ने द्युमन्तम् दीप्तिमन्तम् अजरम् जरारहितं त्वा त्वाम् आ इधीमहि समिधा अभिमुखं समिधीमहि दीपयामः । ❀ इन्धेर्लिङि बाहुलकात् श्नमो लुक् । "अनिदिताम्०" इति धातुनकारलोपः ❀ । यत् । ❀ सुपो लुक् ❀ । यस्य ते तव । घेति पूरणः । सा प्रसिद्धा पनीयसी । ❀ पनतिः स्तुतिकर्मा ❀ । स्तुत्यतरा समित् सम्यक् प्रकाशिका दीप्तिः द्यवि । ❀ द्योशब्दाद् ओकारान्तात् सप्तम्येकवचनम् ❀ । दिवि अन्तरिक्षे दीदयति दीप्यते । ❀ दीदेतिर्दीप्तिकर्मा ❀ । हे अग्ने समिधा समिध्यमानस्त्वं स्तोतृभ्यः स्तुतिकारिभ्यः अस्मभ्यम् इषम् इष्यमाणम् अन्नम् इष्टं फलं वा आ भर आहर देहि । ❀ "हृग्रहोर्भः०" ❀ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे दमकते हुए अग्निदेव ! दीप्तिमान् जरारहित आपको हम अपने सन्मुख समिधाओंसे प्रदीप्त करते हैं। आपकी जो स्तुत्य कान्ति है वह आकाशमें भली प्रकार दमकती है। हे समिधाओं से दमकते हुये अग्निदेव ! आप हम स्तुति करने वालोंको अभिलषित अन्न वा फल दें ॥ ८८ ॥

चन्द्रमा अप्स्व१न्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ८९ ॥

चन्द्रमा । अप्ऽसु । अन्तः । आ । सुऽपर्णः । धावते । दिवि ।
न । वः । हिरण्यऽनेमयः । पदम् । विन्दन्ति । विऽद्युतः । वित्तम् ।
मे । अस्य । रोदसी इति ॥ ८९ ॥

दशमी ॥ अत्र शाट्यायनिन इतिहासम् आचक्षते । एकतो द्वितस्त्रित इति पुरा त्रय ऋषयो बभूवुः । एते कदाचिद् मरुभूमौ अरण्ये वर्तमानाः पिपासया संतप्तगात्राः सन्तः एकं कूपम् अविन्दन् । तत्र त्रिताख्य एको जलपानाय कूपं प्राविशत् । प्रविश्य स्वयम् अपः पीत्वा इतरयोश्च कूपाद् उदकम् उद्धृत्य प्रादात् । तावुभौ तद् उदकं पीत्वा तं त्रितं कूपे पातयित्वा तदीयं धनं सर्वम् अपहृत्य कूपं च रथचक्रेण पिधाय प्रास्थिषाताम् । ततः कूपे पतितः स त्रितः कूपाद् उत्तरीतुम् अशक्नुवन् सर्वे देवा माम् उद्धरन्तु इति मनसा सस्मार । अथ स त्रितो रात्रौ कूपस्य अन्तश्चन्द्रमसो रश्मीन् अपश्यन् अनया ऋचा परिदेवयत इति ॥ अस्या ऋचः अयम् अर्थः । अप्सु आन्तरिक्षासु उदकमये मण्डले अन्तः मध्ये । यद्वा आप इति अन्तरिक्षनाम । तत्र मध्ये वर्तमानः सुपर्णः शोभनपतनः । यद्वा सुपर्ण इति रश्मिनाम । सुषुम्नाख्येन सूर्यरश्मिना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

युक्तश्चन्द्रमाः चन्द्रम् आह्लादं सर्वस्य जगतो निर्मिमीत इति चन्द्रमाः। ❀ "चन्द्रे माङो डित् [उ० ४. २२७] इति असुन्। दासीभारादिषु पाठात् पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀। आह्लादकारी सोमो दिवि द्युलोके आ धावते शीघ्रं गच्छति। ❀सृ गतौ। "पाघ्रा०" इत्यादिना वेगितायां गतौ धाव् आदेशः। व्यत्ययेन आत्मनेपदम् ❀। तादृशस्य चन्द्रमसः संबन्धिनो हे हिरण्यनेमयः सुवर्णसदृशपर्यन्ता हितरमणीयप्रान्ता वा हे विद्युतः विद्योतमाना रश्मयः वः युष्माकं पदं पादस्थानीयम् अग्रं न विन्दन्ति मदीयानि इन्द्रियाणि कूपेन आवृतत्वाद् न लभन्ते। न पश्यन्तीत्यर्थः। अतः इदम् अनुचितम्। तस्मात् कूपाद् माम् उत्तारयतेत्यर्थः॥ अपि च हे रोदसी द्यावापृथिव्यौ मे मदीयम् अस्य इदं स्तोत्रं वित्तम् जानीतम्। ❀ विद ज्ञाने। लोटि अदादित्वात् शपो लुक्। पादादित्वात् "तिङ्ङतिङः" इति निघाताभावः ❀। यद्वा मे मदीयं कूपपतनरूपं यद् इदं दुःखं तद् अवगच्छतम्। मदीयं स्तोत्रं श्रुत्वा मदीयं दुःखं ज्ञात्वा अस्मात् कूपाद् माम् उत्तारयतम् इत्यर्थः। ❀ अस्येति। "क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्" इति कर्मणः संप्रदानत्वाच्चतुर्थ्यर्थे षष्ठी। "ऊडिदम्०" इति विभक्तेरुदात्तत्वम्॥

चतुर्थेनुवाके नवमं सूक्तम्॥

अनुवाकश्च समाप्तः॥

श्रीमद्राजाधिराजराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरहरिहरमहाराजकारिते सायणाचार्यविरचिते अथर्ववेदार्थप्रकाशे अष्टादशकाण्डं समाप्तम्॥

[शाट्यायनियोंने यहाँ एक इतिहास लिखा है, कि—पूर्वसमयमें एकत द्वित और त्रित नामक तीन ऋषि थे। वे एक समय रेगिस्तानके जंगलमें घूम रहे थे। विचरते २ उनको पिलास लगी और उनका मुख सूखने लगा, इतनेमें उन्होंने एक कूप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देखा। तब त्रित नामक ऋषि कूपमें घुसे तहाँ जाकर उन्होंने अपने आप जल पिया और कुएँसे उसार कर उन दोनोंको भी पिलाया। उन दोनोंने जल पी कर त्रितको कुएँमें ढकेल दिया और कुएँ पर रथका पहिया धर दिया और उसके सारे धनको लेकर चल दिये। तब कूपमें पड़े हुए और कूपसे न निकल सकते हुए त्रितने मनसे यह प्रार्थना की, कि-सब देवता इस कूपसे मेरा उद्धार करें। इसके अनन्तर रात्रिमें कूपके भीतर चन्द्रमाकी किरणोंको देख कर ऋषिने इस ऋचामें विलाप किया है, कि-] उदकमय मण्डलमें वर्तमान, सुषुम्ना नामक सूर्यरश्मिसे संयुक्त चन्द्रमा द्युलोकमें शीघ्रतासे चल रहे हैं। ऐसे चन्द्रमाकी हे सुवर्णकी समान दमकते हुए प्रान्त वाली किरणों! मेरी इन्द्रियें कुएमें बन्द होनेसे तुम्हारे रूपको नहीं देख पातीं [अत एव मुझे इस कूपसे निकालो] और हे द्यावापृथिवी! तुम मेरे इस स्तोत्रको जानो अर्थात् मेरे स्तोत्रको सुन मेरे दुःखको जान कर इस कूपसे मुझको निकालिये ॥ ८९ ॥ (२८)

4455

चतुर्थ अनुवाकमें नवम सूक्त समाप्त।

चतुर्थ अनुवाक समाप्त (५४४)

श्री गणेश वर्णी दि० जैन संस्थान नरिया, वाराणसी-५

इति श्रीअथर्ववेदसंहिताका अष्टादशकाण्ड ऋषिकुमार

प० रामस्वरूपशर्मात्मज सनातनधर्मपताकाका

सम्पादक कु० ऋ० प० रामचन्द्र

शर्मा कृत सायणभाष्यानुकूल

भाषानुवाद सहित

समाप्त.

॥ अष्टादशः काण्डः समाप्तः ॥

४०६१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

4455

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

4455

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैदिक-ग्रन्थ :

१	**ऋग्वेद प्रातिशाख्यम्**। उव्वंट्-भाष्य-हिन्दी टीका सहित। डॉ॰ वीरेन्द्रकुमार वर्मा	(चौ. प्रति. ११)	१५०-००
२	**हिन्दी ऋग्वेदभाष्य-भूमिका**। श्री जगन्नाथ पाठक।	(वि. सं. ४५)	१५-००
३	**ऋग्वेदसंहिता**। (प्रथम अध्याय, सूक्त १-१९) सम्पादक — प्रो॰ उमाशंकर शर्मा 'ऋषि'	(वि. सं. १६३)	६०-००
४	**ऋग्वेद :**। पदपाठ। **सायणभाष्य हिन्दी टीका सहित** (१-९ भाग सम्पूर्ण)		२५००-००
५	ताण्ड्यमहाब्राह्मणम्। सायणाचार्यकृत भाष्य सहित। सम्पा.—आनन्दचन्द्रवेदान्तवागीश १-२ भाग	(व्रज.प्रा. ३८)	१०००-००
६	**निरुक्त** : १-७ अध्याय। विवेचनात्मक बृहत् हिन्दी व्याख्या, भूमिकादि सहित। व्याख्याकार — डॉ॰ उमाशङ्कर शर्मा 'ऋषि'	(वि. सं ५७)	५०-००
७	अथर्ववेदः। सायणाचार्य कृत भाष्य सह हिन्दी व्याख्या सहित। रामस्वरूप शर्मा 'गौड़' १-८ भाग सम्पूर्ण	(वि.प्रा. १८)	१५००-००
८	**मूल-संस्कृत-उद्धरण**। (ओरिजिनल संस्कृत टेक्स्ट्स) लेखक — प्रो॰ जे॰ मूइर। हिन्दी अनुवादक — डॉ॰ रामकुमार राय। (१-५ भाग)	(वि. रा. ६७)	५००-००
९	**वेदकालीन समाज**। डॉ॰ शिवदत्त शर्मा	(वि. रा. १०७)	७५-००
१०	**सामवेदः**। सायणाचार्यकृत भाष्य सह हिन्दी व्याख्या सहित।	(वि.प्रा. ७)	२००-००
११	**शुक्लयजुर्वेदसंहिता**। मूलमात्र। (निर्णयसागर संस्करण (पत्रात्मक १००-०० सजिल्द १२५-००		
१२	निरुक्तम्। दुर्गाचार्यकृत ऋज्वर्थाख्य व्याख्यायानुसारिणी संस्कृत व्याख्या		२००-००
१३	**वैदिक इण्डेक्स**। (वैदिक-कोष) मैकडोनेल और कीथ। (हिन्दी रूपान्तर) अनुवादक — डॉ॰ रामकुमार राय। (१-२ भाग सम्पूर्ण)	(वि. रा. ४६)	४००.००
१४	**वैदिक एवं वेदोत्तर भारतीय संस्कृति**। श्रीगङ्गाधरमिश्र	(चौ. भा. ५)	३०-००
१५	**वैदिक निबन्धावली**। डॉ॰ मुन्शीराम शर्मा	(वि. रा. ६१)	२०-००
१६	**वैदिक माइथोलॉजी**। (वैदिक पुराकथाशास्त्र) प्रो॰ ए॰ ए॰ मैकडोनल। (हिन्दी रुपान्तर) अनुवादक — डॉ॰ रामकुमार राय नवीन संस्करण	(वि. रा. ४०)	८०-००
१७	**वैदिक युग के भारतीय आभूषण**। डॉ॰ रायगोविन्दचन्द	(वि. रा. ८४)	७५-००
१८	**वैदिक योगसूत्र**। श्री हरिशंकर जोशी।	(चौ. रा. ३)	७५-००
१९	प्रातिशाख्यों में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों का आलोचनात्मक अध्ययन		५०-००
२०	(हिन्दी) **वैदिक व्याकरण**। श्री उमेशचन्द्र पाण्डेय	(वि. रा. ३७)	८-००
२१	**वैदिक साहित्य और संस्कृति**। वाचस्पति गैरौला	(चौ. प्रति. १४)	७५-००
२२	**वैदिक साहित्य का इतिहास**। डॉ॰ पारसनाथ द्विवेदी	(चौ. भा. ७)	३०-००
२३	**वैदिक साहित्य की रूपरेखा**। प्रो॰ हंसराज अग्रवाल	(वि. रा. ८७)	१०-००
२४	वैदिक वाङ्मयस्येतिहासः। आचार्य जगदीश चन्द्र मिश्र	(चौ.सु. १५१)	६०-००
२५	**शुक्लयजुर्वेद-प्रातिशाख्यम् अथवा वाजसनेयिप्रातिशाख्यम्**। भाष्यद्वयसहित। टीकाकार — डॉ॰ वीरेन्द्रकुमार वर्मा	(चौ. प्रति. १६)	८०-००

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi